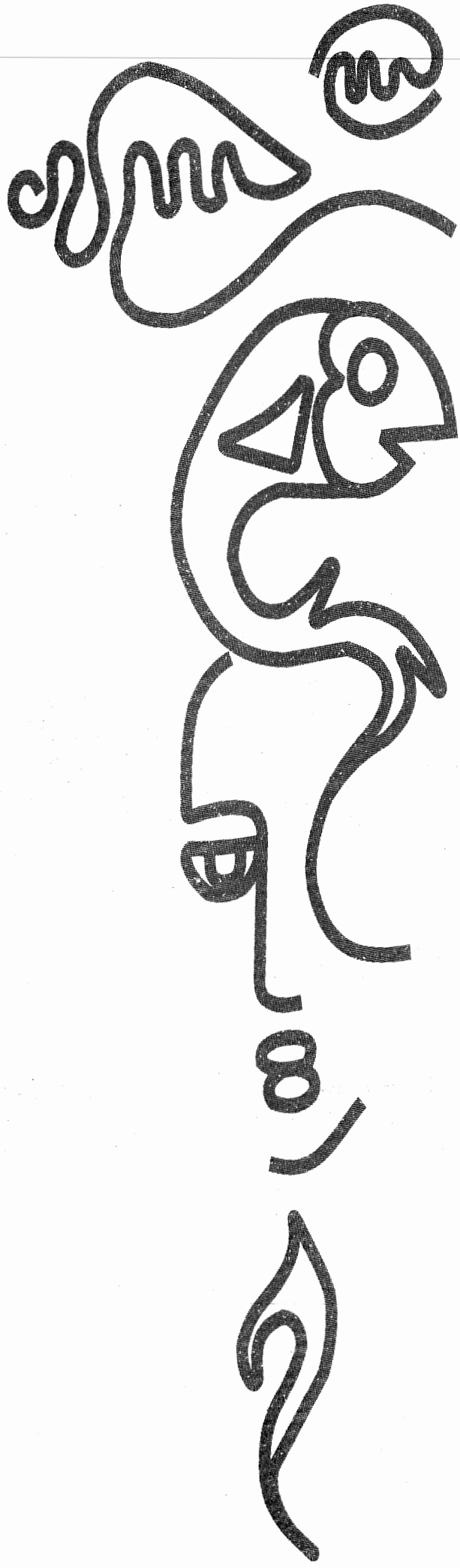


गाथा परम विजय की

आचार्य महाप्रज्ञ

संपादक
शासन-गौरव
मुनि धनंजयकुमार

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
लाडनूं (राज.) 341306
जिला : नागौर (राजस्थान)
फोन : 01581-222080/025
फैक्स : 01581-223280
e-mail:secretariatldn@jvbharati.org

सौजन्य
पूज्य पिताजी स्व. फागणचंद जी चोरड़िया एवं पूज्य माताजी स्व. बसंती देवी चोरड़िया की पुण्य स्मृति में सुपुत्र सुभाष-प्रभा, सुपौत्र सोनू चोरड़िया। सुपुत्री सुचित्रा-विकास बरड़िया, दौहित्र शोभित बरड़िया
गंगाशहर–गुवाहाटी

प्रथम संस्करण : दिसंबर २०१० ई. (प्रतियां ३०००)

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

मूल्य : तीन सौ रुपये मात्र

आवरण एवं आकल्पन : अडिग

मुद्रक : सांखला प्रिंटर्स
विनायक शिखर, शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

ISBN 978-81-7195-164-2

GATHA : PARAM VIJAY KI by Acharya Mahapragya

₹ 300



संपादकीय

- विजय मनुष्य की स्वाभाविक आकांक्षा है।
- उसे विजय प्रिय है, पराजय प्रिय नहीं है। वह विजयश्री का वरण करना चाहता है, पराजय का दंश झेलना नहीं चाहता।
- वह विजय के लिए क्या-क्या नहीं करता। संघर्ष करता है, युद्ध करता है, मनोबल और शौर्य-वीर्य का प्रदर्शन करता है।
- कहा गया–**जुद्धारिहं खलु दुल्लहं**–युद्ध का क्षण दुर्लभ है। इस दुर्लभ क्षण का उपयोग करो और विजय की ऋचाएं लिखो।
- जब मनुष्य की जुझारू वृत्ति विजय के स्वस्तिक रचती है तब उसका आनन/अंतःकरण प्रमुदित, प्रफुलित और विकस्वर हो जाता है। ऐसा लगता है, जैसे दुनिया की सारी खुशियां उसकी चादर में समा गई हैं।

  जब वह विजय के द्वार पर दस्तक देने में सफल नहीं होता तब स्वयं को निष्प्रभ और निस्तेज अनुभव करता है। ऐसा लगता है, जैसे खुशियों से भरे सदाबहार मुख-चंद्र को किसी राहु ने ग्रस लिया है।
- प्रश्न होता है–क्या विजय का मंत्र दुर्लभ है? विजय का मंत्र दुर्लभ नहीं है। दुर्लभ है विजय के मंत्र की आराधना। यदि विजय के मंत्र की निष्ठा और तन्मयता के साथ, शुभ अध्यवसाय और संकल्पपूर्वक आराधना करें तो पग-पग पर विजय का साक्षात्कार हो सकता है।
- विजय के मंत्र की आराधना से पूर्व लक्ष्य का निर्धारण जरूरी है–हम विजय किस पर प्राप्त करें? हमारा शत्रु कौन है? क्या हमारा शत्रु कोई व्यक्ति है? कोई वस्तु या परिस्थिति है?
- अध्यात्म की भूमिका पर भगवान महावीर ने कहा–व्यक्ति स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु–**अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठियसुपट्ठिओ।** अपनी दुष्प्रवृत्त आत्मा शत्रु है और सुप्रवृत्त आत्मा मित्र। दूसरों में शत्रुता का आरोपण उचित नहीं है।
- व्यवहार के क्षेत्र में शत्रु प्रतीत होता है दूसरा व्यक्ति। वस्तु सत्य यह है–शत्रु दूसरा व्यक्ति नहीं है, अपनी ही आत्मा है। इसीलिए अध्यात्मविदों का निर्देश सूत्र रहा–**अप्पाणमेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ**–तुम अपने आपसे लड़ो, बाहरी शत्रुओं से लड़ने से क्या होगा? उन्होंने इस तथ्य को इस प्राणवान् शब्दावली में प्रतिष्ठापित किया–एक व्यक्ति दुर्जय संग्राम में लाखों व्यक्तियों को जीतता है और एक व्यक्ति अपनी आत्मा को जीतता है। इन दोनों में परम विजय है अपनी आत्मा पर विजय।

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ।।

- दूसरों को जीतना विजय और अपनी आत्मा को जीतना परम विजय–इस रहस्यपूर्ण वक्तव्य को समझने का अर्थ है–जीवन के परम लक्ष्य को समझना।

  वह विजय, जहां व्यक्ति दूसरों को जीतता है, केवल विजय नहीं है। वहां विजय और हार दोनों स्थितियां हैं। दो व्यक्तियों के संघर्ष में एक व्यक्ति जीतता है और एक हारता है। दूसरे व्यक्ति की हार की निष्पत्ति है–विजय।

  वह विजय, जहां व्यक्ति स्वयं को जीतता है, केवल विजय है। वह किसी संहार और हार की निष्पत्ति नहीं है। इसीलिए आत्म-विजय परम विजय है।

- पर-विजय में जीतने वाला उत्फुल्ल होता है, जश्न मनाता है, हारने वाला निराश और मायूस होता है। आत्म-विजय में विजेता प्रसन्न होता है, उसकी विजय मानव-जाति को शुभ सुकून देती है, उसमें मानव-मन में व्याप्त निराशा को दूर करने वाली आशा-किरण का साक्षात्कार होता है।

- जहां पर-विजय है वहां उत्कर्ष और अपकर्ष का मनोभाव प्रबल होता है। जहां पर-विजय है वहां अहं और हीनता की ग्रंथि को पोषण मिलता है। जहां पर-विजय है वहां ईर्ष्या, प्रतिशोध और वैरानुबंध की भट्ठी जलती रहती है।

  जहां आत्म विजय है वहां स्वयं का परम उत्कर्ष है पर अपकर्ष किसी का नहीं है। जहां आत्म विजय है, वहां स्वयं की अनंत शक्ति का प्रस्फोट है, हीनता और अहं से परे एक अक्षय-शक्ति का समुद्भव है। जहां आत्म विजय है वहां आनंद का अजस्र-स्रोत है। ईर्ष्या, प्रतिशोध और वैरानुबंध की चिनगारी उस निर्मल जल में उत्पन्न ही नहीं हो सकती।

- हम विजय और परम विजय के इस अंतर को समझें, अनुचिंतन और अनुशीलन करें–

  क्या हम उस विजय में व्यामूढ़ बनें, जिसके पीछे हार छिपी है? क्या हम उस विजय में उन्मत्त बनें, जिसमें विनाश के मंत्र भी छिपे हैं? क्या उस विजय को मूल्य दें, जिसमें हजारों-लाखों लोगों के जीवन की बाती बुझ जाती है? क्या वह विजय काम्य हो सकती है, जो इतिहास के भाल पर क्रूरता का जीवन्त शिलालेख अंकित कर दे? क्या वह विजय कभी चिरस्थायी हो सकती है, जिसके साथ शत्रुओं की एक विशाल पंक्ति भी खड़ी हो जाए? क्या हम उस विजय को महत्त्व दें, जो मदांध, सत्तांध, कामांध बनने की उर्वरा भूमि बन जाए? वह कैसी विजय है, जो अहंकार का संवर्धन करे, करुणा और संवेदनशीलता का रस सोख ले? क्या हम पर-विजय से जुड़े इन प्रश्नों की उपेक्षा कर सकते हैं?

- परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञ का प्रस्तुत सृजन 'गाथा परम विजय की' एक उदात्त चरित्र का हृदयस्पर्शी विश्लेषण है, जो विजय और परम-विजय के मध्य एक सूक्ष्म किन्तु स्पष्ट रेखा खींचता है। उससे आत्म विजय के कुछ नए अर्थ फलित होते हैं–

  आत्म विजय का एक अर्थ है–कषाय विजय। आत्म विजय का एक अर्थ है–इन्द्रिय और मन के दासत्व से मुक्ति। आत्म विजय का एक अर्थ है–समता और आत्मतुला की चेतना का जागरण। आत्म विजय का एक अर्थ है–चेतना के निरावृत स्वरूप का साक्षात्कार। आत्म विजय का एक अर्थ है–पदार्थ निरपेक्ष सुख और शांति की अनुभूति।

- प्रस्तुत ग्रंथ में वर्तमान ऐतिहासिक युग के अंतिम केवली जंबू स्वामी के यशस्वी जीवन का रोचक शैली में रोमांचक चित्रण है, जिसका अथ होता है पर-विजय से और इति होती है आत्म-विजय में। पर-विजय से परम-विजय की इस अलौकिक यात्रा में अनेक घुमावदार मोड़ हैं, विलक्षण आरोह और अवरोह हैं, जो औपन्यासिक रसात्मकता के साथ जीवन-स्पर्शी उद्बोध और संबोध देने में समर्थ हैं।

- हस्ति-विजय, विद्याधर-विजय, ब्रह्मचर्य का संकल्प और विवाह प्रस्ताव की स्वीकृति। आठ अप्सरा-तुल्य श्रेष्ठी कन्याओं से पाणिग्रहण। सुहागरात में वैराग्य का संगीत। एक ही रात में आठ भोगानुरक्त कन्याओं का चित्त विरक्त। पांच सौ अट्ठाईस व्यक्तियों, जिनमें पांच सौ दुर्दांत चोर, के केवल एक अंधियारी रात में हृदय-परिवर्तन का इतिहास-विरल प्रसंग। आचार्य सुधर्मा से दीक्षा-ग्रहण और कैवल्य की उपलब्धि–इतना सा कथा-सूत्र विशद विवेचना के साथ बृहद्काय ग्रंथ 'गाथा परम विजय की' में रूपायित है।

- आचार्यश्री महाप्रज्ञ कुशल वाग्मी और प्रवचनकार थे। प्रस्तुत कृति सन् १९९६ में उनके द्वारा प्रदत्त ५६ प्रवचनों की निष्पत्ति है। प्रवचन के आधारभूत ग्रंथ रहे–१. पंडित राजमल विरचित जंबूस्वामिचरितम[1], २. आचार्य भिक्षु रचित जंबू चरित्र।[2]

---

१. प्रकाशक–माणिकचंद दिगंबर जैन ग्रंथमाला समिति, मुंबई २. प्रकाशक–जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा

यद्यपि जंबू स्वामी चरित्र के संदर्भ में श्वेतांबर-दिगंबर परंपरा में अनेक स्थलों पर मतान्तर है–

जंबू कुमार के माता-पिता के नाम भिन्न हैं। दिगंबर परंपरा में चार तथा श्वेतांबर परंपरा में आठ कन्याओं से विवाह का उल्लेख है। हस्ति-विजय और विद्याधर-विजय का श्वेतांबर परंपरा में उल्लेख नहीं मिलता।

जहां श्वेतांबर परंपरा मौन है, वहां आचार्यश्री ने दिगंबर परंपरा में मान्य तथ्यों को भी प्रवचन का विषय बनाया। फलतः जंबू चरित्र एक अभिनव रूप में जनता के सामने आ रहा है।

- आचार्य श्री महाप्रज्ञ का जंबू चरित्र पर आदि प्रवचन १० मार्च १९९६ तथा अंतिम प्रवचन ३ जून १९९६ को हुआ। १२ वर्ष तक वे प्रवचन कैसेटों में सुरक्षित रहे। प्राचीन अनुश्रुति है–आम बारह वर्ष में फलता है। सन् २००९ में इस प्रवचन श्रृंखला के संपादन का संकल्प प्रस्फुटित हुआ।

जून २००९ के प्रथम सप्ताह में मैंने पहला प्रवचन संपादित किया। त्वरित संपादन में निमित्त बना तेरापंथ टाइम्स। मुनि योगेश कुमार जी और मर्यादा कोठारी का अनुरोध रहा–आचार्यवर की कोई धारावाहिक प्रवचन-श्रृंखला तेरापंथ टाइम्स में प्रकाशित हो। आचार्यवर ने इस अनुरोध को स्वीकार किया। 'गाथा परम विजय की' इस शीर्षक से तेरापंथ टाइम्स (६-१२ जुलाई २००९) के अंक में पहली किश्त प्रकाशित हुई। मैंने आचार्यवर से निवेदन किया–'आचार्यवर! आपकी कृतियों को हजारों-हजारों प्रबुद्ध लोग पढ़ते हैं, उनसे दिशा, दृष्टि और समाधान प्राप्त करते हैं। कभी-कभी आपको भी अपनी कृतियों को पढ़ना चाहिए।' आचार्यवर ने मुस्कराते हुए पूछा–'मैं अपनी कृति क्यों पढ़ूं?'

'आचार्यवर! आपके विचार निर्विचार स्थिति में प्रकट होते हैं। आप कभी-कभी अपने विचारों को इस दृष्टि से पढ़ें कि निर्विचार से कैसे विचार उद्भूत हुए हैं? निवेदन का दूसरा कारण यह है–आपश्री का प्रवचन साहित्य बन जाता है। हम उस वाङ्मय को किस रूप में संपादित करते हैं? आपश्री की समीक्षात्मक दृष्टि हमारे लिए दिशा दर्शक बन सकेगी।'

दूसरा दिन। मध्याह्न का समय। आचार्यवर ने मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी से कहा–आज 'गाथा परम विजय की' सुनना है। साध्वीश्री ने तेरापंथ टाइम्स में प्रकाशित पूरी किश्त पढ़ी। पूज्य गुरुदेव अवधान पूर्वक सुनते रहे। यत्र-तत्र समीक्षात्मक टिप्पणी भी करते रहे। उसके पश्चात् यह नियमित क्रम सा बन गया। आचार्यवर प्रत्येक नई किश्त सुनते और अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करते। आचार्यवर की समीक्षात्मक प्रतिक्रिया से हमें आत्मतोष और संबोध–दोनों मिलते।

- 'गाथा परम विजय की' धारावाहिक के श्रवण-काल ने अनेक अविस्मरणीय संस्मरणों को भी जन्म दिया। मैं केवल एक संस्मरण को अंकित करना चाहता हूं।

उस दिन शनिवार था। मेरे आयंबिल तप था। आचार्यवर को मुख्य नियोजिका जी ने 'गाथा परम विजय की' की सद्यः प्रकाशित किश्त सुनाई। आचार्यश्री ने पूछा–'तुम इसके संपादन में कितना समय लगाते हो।'

मैंने कहा–'वर्तमान में सप्ताह का क्रम प्रायः निश्चित है–दो दिन विज्ञप्ति लेखन में, दो दिन 'गाथा परम विजय की' के संपादन में, दो दिन कुछ संदेश आदि के लिए। शनिवार के दिन आयंबिल तप रहता है। उस दिन प्रायः इन कार्यों से मुक्त रहने का प्रयास करता हूं।'

मुख्य नियोजिकाजी–'मुनिश्री! आप आयंबिल क्यों करते हैं?'

मुनि धनंजय–'सप्ताह में एक दिन सहज तप हो जाता है। इससे विगय-वर्जन आदि की जो संघीय विधि है उसका अनुपालन होता है। लंघन स्वास्थ्य के लिए भी अच्छा है। शरीर में हलकापन और मन में प्रसन्नता रहती है।'

मुख्य नियोजिकाजी (आचार्यश्री की ओर अभिमुख होकर)–गुरुदेव! आप विगय-वर्जन की बख्शीश करा सकते हैं?'

आचार्यश्री (मुस्कराकर)–'विगय-वर्जन की बख्शीश बहुत छोटी बात है।'

मुख्य नियोजिका जी (विस्फारित नेत्रों से)–'क्या विगय-वर्जन की बख्शीश छोटी बात है?'

आचार्यश्री–'हां, इनके लिए बहुत छोटी बात है।'

मुख्य नियोजिका जी–'गुरुदेव! कैसे है यह छोटी बात?'

आचार्यश्री–'धनंजयजी की सेवाएं केवल साहित्य से जुड़ी हुई नहीं हैं। इनकी सेवाएं सर्वतोमुखी हैं। इनके लिए बहुत कुछ किया जा सकता है....कुछ भी किया जा सकता है।'

मुख्य नियोजिकाजी (मेरी ओर अभिमुख होकर)–मुनिश्री! गुरुदेव के ये शब्द केवल सुनने के नहीं हैं, नोट करने के हैं। किसी सौभाग्यशाली शिष्य को ही ऐसा आशीर्वाद और अनुग्रह मिलता है।'

मैं विनत-प्रणत स्वर में बोला–'मैं जो कुछ हूं या मैंने जो कुछ पाया है, वह सब गुरुदेव का है। मैंने स्वयं को गुरुदेव से भिन्न कभी माना ही नहीं।'

आचार्यश्री ने मेरे कथन पर टिप्पणी करते हुए कहा–'हां, ये सदा समर्पित और एकरूप रहे हैं।'

पूज्य गुरुदेव के ये शब्द मेरे जीवन की अमूल्य निधि हैं। प्रस्तुत ग्रंथ की किश्तों को सुनते हुए आचार्यवर ने अनेक बार वर्धापित, पुरस्कृत और उपकृत किया। सृजन का ऐसा अवसर भी मिला, जिसकी मैंने कभी कल्पना ही नहीं की थी।

- प्रस्तुत ग्रंथ की बीसवीं किश्त छपते-छपते ज्ञात हुआ–पूज्य गुरुदेव के प्रवचन के दो कैसेट उपलब्ध नहीं हो पा रहे हैं। मैंने गुरुदेव से वस्तुस्थिति निवेदित की। गुरुदेव का प्रश्न था–अब कैसे होगा?

  मैंने कहा–'गुरुदेव! दो किश्तें लिखवा दें अथवा प्रवचन करा दें।'

  गुरुदेव–'अभी तो यह संभव नहीं लगता।'

  मुनि धनंजय–'लेकिन इन दो किश्तों के बिना तो अधूरापन लगेगा।'

  आचार्यवर–'फिर तुम क्या करोगे?'

  मुनि धनंजय–'क्या मैं उन्हें लिख कर निवेदित कर दूं?'

  आचार्यवर–'हां, यह हो सकता है।'

  आचार्यवर के इंगित को शिरोधार्य कर मैंने वे दो किश्तें लिखीं। आचार्यवर के साहित्य के साथ इस रूप में जुड़ने का यह मेरे जीवन का अद्वितीय प्रसंग है। आचार्यवर ने उन किश्तों को अवधानपूर्वक पढ़ा। उसी रूप में प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान करते हुए आचार्यवर ने जिन शब्दों में मुझे आशीर्वाद प्रदान किया, उन्हें मैं जीवन के लिए वरदान तुल्य मानता हूं। वह वरदायी आशीर्वाद, जो केवल अनुभूति का विषय है, जीवन का सतत सहचर बना रहे।

- 'गाथा परम विजय की' बहुश्रुत आचार्यश्री महाप्रज्ञ की जागृत प्रज्ञा का एक और जीवन्त प्रमाण है। इसमें दर्शन शास्त्र, स्वास्थ्य शास्त्र, धर्मशास्त्र, अध्यात्म विद्या, योग, मनोविज्ञान आदि की आसेवनीय सामग्री इतनी सरसता-सहजता के साथ परोसी गई है कि वह पाठक के अंतस्तल को प्रीणित और तृप्त कर दे, जीवन के परम लक्ष्य के साथ जोड़ दे।

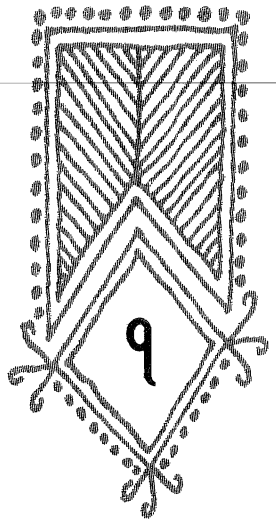
- हमने यह सोचा था–आचार्यवर अपनी इस अपूर्व कृति का स्वयं लोकार्पण करेंगे किन्तु नियति को यह मान्य नहीं था और नियति के आगे किसका वश चलता है? परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमण आचार्यश्री महाप्रज्ञ के यशस्वी उत्तराधिकारी हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा निर्दिष्ट कार्यों के क्रियान्वयन में पूज्यप्रवर का मंगल आशीर्वाद और दिशा-दर्शन हमें प्राप्त है।

- यह सुखद संयोग भी मेरे लिए प्रसन्नता का विषय है–मैं पचासवें वर्ष-प्रवेश (मृगसर शुक्ला पूर्णिमा, २१ दिसंबर २०१०) के दिन प्रस्तुत ग्रंथ आराध्य के श्रीचरणों में समर्पित कर रहा हूं। और इस संकल्प के साथ कर रहा हूं–परम विजय की उपलब्धि मेरे जीवन का ध्येय बना रहेगा।

२१ दिसंबर, २०१०

नोखा

मुनि धनंजयकुमार



वसंत ऋतु परिवर्तन की ऋतु है। इस ऋतु में पुराने पत्ते झड़ जाते हैं, नई कोंपलें फूटने लग जाती हैं। केवल वृक्ष में ही नहीं, परिवर्तन मनुष्य के शरीर में भी होता है। उसमें भी नए रक्त का संचार होता है। नव रक्त के संचार का समय है वसंत ऋतु। इस ऋतु में सहज ही प्रकृति अपनी सुषमा बिखेरती है। फूल विकस्वर होते हैं। कोकिल का आलाप शुरू हो जाता है। आम बौराने लग जाते हैं। मधु और महक वाला मीठा सा वातावरण निर्मित होता है। हर व्यक्ति के मन में वन क्रीड़ा करने की भावना भी जागती है।



वनस्पति जगत् के साथ मनुष्य का बहुत गहरा संबंध है। यदि वनस्पति न हो, हरियाली न हो तो आदमी भी सूखने लग जाए। वनस्पति जितनी प्रफुलित रहती है, पेड़-पौधे जितने पुष्पित, पल्लवित और फलित रहते हैं, उतना ही आदमी भी पुष्पित, पल्लवित और फलित होता है। वनस्पति का जगत् मुरझाता है, मनुष्य भी मुरझाने लग जाता है। बहुत गहरा संबंध है दोनों में।

जब-जब नया कुछ आता है, मनुष्य के मन में एक कुतूहल की भावना पैदा होती है। वसंत ऋतु में पुष्प पराग बिखेरने लगे। पुष्प की परिमल से आकृष्ट होकर भंवरे भी चारों ओर मंडराने लगे। सुषमा बढ़ गई। इतना सौन्दर्य प्रकृति ने बिखेरा कि सबका मन उसमें लुभावना बन गया।

राजगृह नगर के लोग बाहर आए। आदमी घर में रहता है पर सदा घर में रहना अच्छा नहीं लगता। कभी-कभी बाहर जाना अच्छा लगता है। घर में रहते-रहते ऊब जाता है, तब बाहर जंगलों में, बगीचों और उद्यानों में जाता है। वन-विहार, वन-क्रीड़ा के लिए जाता है। छत के नीचे रहना अच्छा नहीं लगता। छत भी एक बंधन है, एक घेरा है। सदा सीमा में रहना अच्छा नहीं लगता। मनुष्य की मूल प्रकृति है घेरे से मुक्त रहना, सीमा से मुक्त रहकर असीम में रहना। असीम में रहने की बात, घर के बंधन से मुक्त रहने की बात जाने-अनजाने मन में रहती है। इसीलिए वह असीम आकाश के नीचे रहना चाहता है, घर के बंधन से मुक्त होकर खुले वातावरण में रहना चाहता है।



राजगृह के नागरिक वनक्रीड़ा के लिए उद्यान में गए। नाना प्रकार के वृक्षों से भरा हुआ उद्यान। चारों ओर क्रीड़ा का समारंभ। उसमें राजा भी शरीक हुआ। हजारों मनुष्य आए। बड़े-बड़े लोग हाथी और घोड़ों पर सजधज कर आए। उद्यान में एक मेला-सा लग गया। सब लोग क्रीड़ा करने में लीन बने हुए हैं।

क्रीड़ा-काल में प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में मादकता सहज पैदा हो जाती है। हमारे शरीर में कुछ ऐसे रसायन हैं, जो मादकता को पैदा करते हैं। यदि मादकता न हो तो मनुष्य बहुत दुःखी बन जाता है। जो मादकता बाहर की वस्तु से, नशे की वृत्ति से पैदा की जाती है, वह मादकता बहुत खराब है, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अपने भीतर से, अपने भीतरी रसायनों से जो मादकता पैदा होती है, वह उत्तम है। उसमें आदमी मस्त हो जाता है, झूम उठता है। सारी चिन्ताओं को भूल जाता है।

वह प्राकृतिक दृश्य, वह सुषमा, वह सौन्दर्य, वह मीठी-मीठी, भीनी-भीनी हवा–कुल मिलाकर सारा वातावरण ऐसा था जो मस्तिष्क को सुखमय अथवा मादकतामय की अनुभूति में ले जा रहा था। जब मनुष्य में भी मादकता आती है, तब जो मादकता के प्रखर प्राणी हैं उनमें तो वह स्वाभाविक है। सर्दी के दिनों में राजस्थानी ऊंट के मद झरता है। हाथी के तो इतना मद झरता है कि उसका वर्णन कवि इस भाषा में करते हैं–हाथियों के झुंड से इतना मद झरा कि एक नदी बन गई।

वन-क्रीड़ा के मध्य पट्टहस्ती मद से उन्मत्त हो गया। मद के आवेश से इतना आविष्ट हो गया कि उसने आलान–शृंखला-बंधन को तोड़ दिया। शृंखला-बंधन को तोड़कर स्वतंत्र रूप से जाने लगा। चारों ओर आमोद-प्रमोद और नाटक हो रहा था। हाथी चमक गया। पट्टहस्ती हाथियों में प्रमुख होता है। उसके लक्षण भी भिन्न होते हैं। गंधहस्ती और ज्यादा शक्तिशाली होता है। कहा जाता है–पांच सौ हाथी हैं, बड़े शक्तिशाली। यदि गंधहस्ती आ जाए तो वे पांच सौ हाथी बकरी बन जाएं उसकी गंध मात्र से। उसकी गंध के परमाणु इतने शक्तिशाली हैं कि पांच सौ शक्तिशाली हाथी निःवीर्य और बकरी जैसे बन जाते हैं, अपना मुंह नीचा कर लेते हैं। उनकी लड़ने की ताकत समाप्त हो जाती है। वह होता है गंधहस्ती।

वह पट्टहस्ती था, गंधहस्ती नहीं। वह हस्ति सेना का युग था। उस समय युद्ध में उसकी विजय होती थी जिसके पास शक्तिशाली हस्ति सेना होती थी। वर्तमान में जिसके पास प्रक्षेपास्त्र हैं, शक्तिशाली आधुनिकतम टैंक हैं, वह विजयी होता है। उस युग में जिसकी हस्ति सेना शक्तिशाली होती, उसे विजयश्री मिलती।

पट्टहस्ती शृंखला-बंधन को तोड़कर स्वच्छंद घूमने लगा। ऊपर महावत बैठा था, अंकुश भी था। हाथी सामान्य मद में होता है तो अंकुश को मान लेता है। जब मद का अतिरेक हो जाता है, तब वह अंकुश को भी गिनता नहीं है। महावत ने बहुत अंकुश लगाए, वश में करने का प्रयत्न किया, पर कोई प्रयत्न सार्थक नहीं हुआ। हाथी उन्मत्त घूमने लगा। उसने महावत को भी नीचे गिरा दिया। चारों ओर चीत्कार की आवाजें आने लगीं। आमोद-प्रमोद, क्रीड़ा, हास्य-व्यंग्य में लीन लोग भागने लगे। जल-क्रीड़ा आदि में लीन लोग भयाक्रांत हो गए। आमोद विषाद में बदल गया। सबने देखा–भीमकाय हाथी उन्मत्त हो गया है। 'बचाओ बचाओ' की आवाजें आने लगीं। लोग चारों ओर दौड़ने लगे। भगदड़ मच गई।

राजा ने सैनिकों को आदेश दिया–'हाथी को वश में करो।' सैनिकगण ने देखा तो लगा–जैसे कोई अंजनाद्रि है। एक काला पर्वत होता है जिसका नाम है अंजन-गिरि। एक ऐसा विशालकाय हाथी सामने है,

जैसे कोई अंजनगिरि है। वह अपने बड़े-बड़े दांतों से कभी पृथ्वी को खोद रहा है, विशाल वृक्षों को उखाड़ रहा है। पूरे उद्यान को तहस-नहस कर रहा है। बड़ा भयंकर रूप बना हुआ है।

अंजनाद्रिसमो दंती, चलत् कर्णप्रभञ्जनः।
स्थूलकायः कृतांताभो, नवाषाढ़पयोदवत्।।

सैनिकों ने देखा–हाथी आम, जामुन, चंदन के पेड़ों को उखाड़ता हुआ, भयंकर रूप धारण किए हुए जा रहा है। सैनिक लड़ाकू योद्धा थे, पास में शस्त्र भी थे पर हाथी के सामने जाने का साहस किसी का नहीं हुआ। सब डर रहे थे। कह रहे थे–'यह बड़ा खतरनाक है। जो भी सामने जाएगा, उसकी मौत निश्चित है।' राजा का आदेश है–'हाथी को मारना नहीं है। वह पट्टहस्ती है। उसे वश में करना है।' मारना हो तो आदमी दूर से भी मार देता है किन्तु मारना नहीं है, पकड़ना है, वश में करना है। सामने कौन जाए? जो जाए, उसका जीवन भी रहे या नहीं। कोई सैनिक सामने नहीं गया। सब इधर-उधर बगलें झांकने लगे। दूर से ही ललकारने लगे पर हाथी पर कोई नियंत्रण नहीं पा सका।

एक हाथी पर विजय पाना कठिन है तो अपनी आत्मा पर विजय पाना कितना कठिन है? इसीलिए कितना ठीक कहा है–एक प्राणी दूसरे प्राणी पर विजय पाए, वह विजय है, पर परम विजय नहीं है। परम विजय है अपनी इंद्रियों को जीतना, अपने मन और वृत्तियों को जीत लेना। दूसरों के जीतने से भी कठिन कार्य है अपने आपको जीतना।

गाथा
परम विजय की

आज हाथी योद्धाओं/सैनिकों द्वारा अजेय बन गया। उसे जीतने की ताकत किसी में नहीं रही। सब कतरा रहे हैं, सबको अपने प्राण प्यारे लगते हैं। हर आदमी जीना चाहता है–

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।

महावीर की वाणी में एक शाश्वत वृत्ति का उद्‌गान हुआ है–सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।



सव्वे पियाउया सुहसाया दुहपडिकूला।

सब सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता। प्राण सबको प्यारे हैं।

उद्यान में फंसे सब लोगों को चिन्ता है–घर का क्या होगा? परिवार का क्या होगा? धन का क्या होगा? यह चिन्ता मनुष्य को बलहीन बना देती है। कोई भी आगे नहीं बढ़ा, हाथी पर नियंत्रण नहीं पा सका। योद्धा दोनों ओर खड़े हैं, एक-दूसरे का मुंह ताक रहे हैं।

गौरमास्यं सुयोद्धारः, पश्यन्ति स्म परस्परम्।
विमनस्का बभुस्तत्र, निरुत्साहनिरुद्यमाः।।

एक-दूसरे को देखते हुए मानो पूछ रहे हैं–आज क्या हुआ? बल कहां चला गया? बोल नहीं रहे हैं पर नेत्रों की भाषा में कह रहे हैं। आंख की भाषा अलग होती है, जीभ की भाषा अलग होती है। कुछ बातें ऐसी होती हैं जिन्हें जीभ नहीं कह पाती, किन्तु आंख कह देती है। सब एक-दूसरे को आंखों से निहार रहे हैं, पर कोई आगे नहीं बढ़ रहा है।



जम्बूस्वामिकुमारोऽसौ, महावीर्यो महाबलः।
तस्थौ तत्र यथास्थाने, न चचाल ततो मनाक्।।

दाएं-बाएं सैनिकों की पंक्तियां चल रही हैं। बीच में मदांध हाथी उखाड़ता-पछाड़ता चला जा रहा है। हाथी जिस मार्ग पर आगे बढ़ रहा है, उसी मार्ग पर जम्बूकुमार क्रीड़ा कर रहे थे। जम्बूकुमार ने देखा–हाथी आ रहा है। वे रास्ते में सामने खड़े हो गए, जैसे एक जिनकल्प मुनि खड़ा होता है। जिनकल्प मुनि का विधान है–वह रास्ते में चल रहा है। सामने कोई शेर आ जाए, चीता आ जाए, वह अपना मार्ग छोड़ कर इधर-उधर नहीं जाता। वह डरेगा नहीं। जम्बूकुमार ने भी ऐसा ही किया। छोटी अवस्था, कुमार अवस्था में जिनकल्प का सा उदाहरण प्रस्तुत कर दिया। भयंकर हाथी के सामने खड़े हो गए। न इधर गए, न उधर। सब लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा–यह युवक कौन है? क्या यह मरना चाहता है? इतना भयंकर हाथी विनाश लीला रचता हुआ आ रहा है और यह रास्ते के बीच में खड़ा है?

जम्बूकुमार नहीं हटे। क्यों नहीं हटे? उनमें बल था। हमारे जीवन में सबसे पहली शक्ति है–शरीर का बल। शरीरबल का मूल आधार है हमारा अस्थि-संस्थान। जैन दर्शन में अस्थि रचना पर बहुत विस्तार से विचार किया गया। छह प्रकार के संहनन होते हैं, उनमें सबसे शक्तिशाली संहनन होता है–वज्रऋषभनाराच। जिसका अस्थि-संस्थान इतना मजबूत होता है वह व्यक्ति डरता नहीं है, घबराता नहीं है, भागता नहीं है, हार नहीं मानता, विजयी बनता है। उसका शरीरबल अमाप्य होता है। शरीरबल और आत्मबल–दोनों का गहरा संबंध है। साधना के क्षेत्र में भी शरीरबल का महत्त्व है।

पूछा गया–शुक्लध्यान कौन कर सकता है? शुक्लध्यान की विशिष्ट अवस्था में वह जा सकता है जिसका संहनन वज्रऋषभनाराच संहनन है। हड्डियां इतनी मजबूत कि हथौड़े से मारो तो भी टूटती नहीं हैं। वर्तमान का अस्थि-संस्थान इतना कमजोर है कि हथौड़े की जरूरत ही नहीं है। थोड़ा सा गिरा, पूरा गिरा भी नहीं और हड्डी टूट गई। कभी-कभी बिना गिरे ही हड्डी टूट जाती है। इतना कमजोर है अस्थि-संस्थान। जितना अस्थि-संस्थान कमजोर, उतना ही मनोबल कमजोर, उतना ही आंतरिक ज्ञानबल कमजोर। शुक्लध्यान वज्रऋषभनाराच संहनन में होता है। विशिष्ट साधना वज्रऋषभनाराच संहनन में होती है। केवलज्ञान वज्रऋषभनाराच संहनन में होता है।

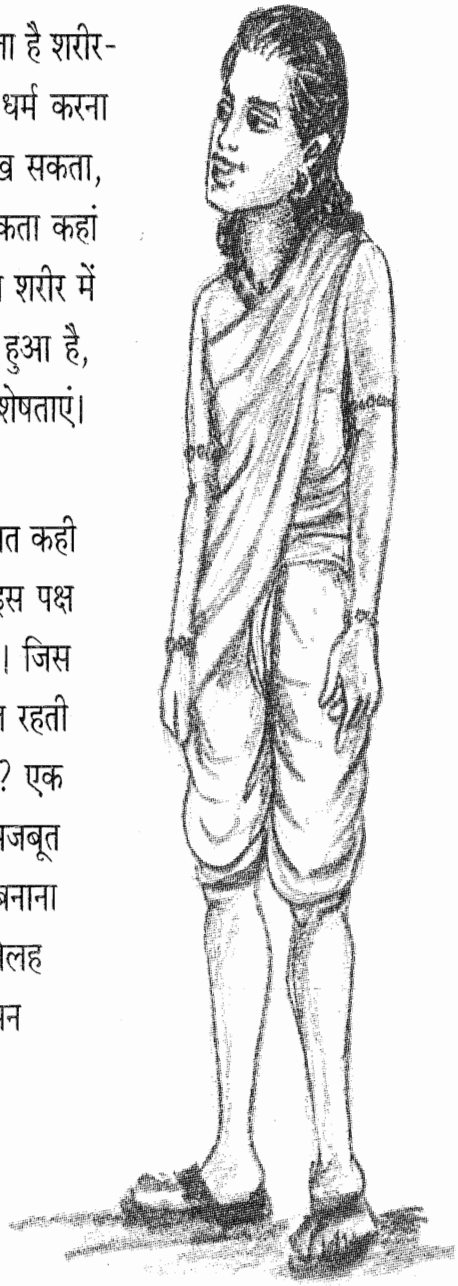
जम्बूकुमार का संहनन वज्रऋषभनाराच था। ऐसी वज्र कील और ऐसा हड्डियों का ढांचा जुड़ा हुआ था कि एक बार तो वज्र की चोट करे तो भी टूटेगा नहीं।

वज्रास्ति बंधनः सोऽयं, वज्रकीलश्च वज्रवत्।
वज्रेणापि न हन्येत, का कथा कीटहस्तिनः।।

महावीर को इतना कष्ट दिया गया, किसी ने पछाड़ भी दिया पर हड्डियां नहीं टूटीं। ऊपर से उछाल दिया, नीचे फेंक दिया फिर भी हड्डियां नहीं टूटीं। कारण क्या? उनके वज्रऋषभनाराच संहनन था।

भगवान ऋषभ के दो पुत्र–भरत और बाहुबली। दोनों शक्तिशाली। एक चक्रवर्ती और एक बलवान। बाहुबली ने देखा–भरत जा रहा है, हाथी पर चढ़ कर जा रहा है। बाहुबली पीछे आ रहे थे, सोचा–यह हाथी पर चढ़ा हुआ है, मेरी ओर देख नहीं रहा है। बाहुबली दौड़े। भरत का पैर पकड़ा। हाथी से नीचे उतारा और ऐसा आकाश में उछाल दिया जैसे बच्चा गेंद को फेंकता है। भरत नीचे गिरने लगे। इतनी ऊंचाई से गिरे तो आज दस हड्डियां टूट जाएं। वे तो वज्रऋषभनाराच संहनन वाले थे। कुछ होने की संभावना नहीं थी पर बाहुबली ने सोचा–बड़ा भाई नीचे गिरा, कुछ हो गया तो पिताजी क्या कहेंगे? बांहें फैलाकर भाई को बांहों में थाम लिया।

जिनका वज्रऋषभनाराच संहनन होता है, वह प्रवर शक्तिशाली होता है। जम्बूकुमार इस संहनन से संपन्न थे।



शरीरबल, मनोबल, भावबल–ये तीन बल हैं। इनमें पहला है शरीर-बल। यह बहुत आवश्यक है। बहुत लोग सोचते हैं–हमें तो धर्म करना है। शरीर से क्या मतलब है? जो शरीरबल को बनाए नहीं रख सकता, उसका मनोबल भी कमजोर हो जाता है। आखिर मनोबल टिकता कहां है? आत्मा कहां टिकी हुई है? चेतना कहां टिकी हुई है? इस शरीर में टिकी हुई है। वह आधार है। पात्र अच्छा नहीं है, घड़ा फूटा हुआ है, पानी कैसे टिकेगा? इस शरीर में टिकी हुई हैं हमारी सारी विशेषताएं। शरीर दुर्बल और कमजोर है तो विशेषता कहां टिकेगी?



बहुत लोग सोचते हैं–जैन धर्म में शरीर को सताने की बात कही गई है। मैं मानता हूं कि यह बड़ी भ्रांति फैल गई। जैन धर्म इस पक्ष में नहीं है कि शरीर को सताओ। शरीर को सताना अज्ञान है। जिस शरीर से हमें काम लेना है, जिस शरीर में आत्मा जैसी ताकत रहती है, उसको सताने से क्या होगा? उसे सताने में क्या लाभ है? एक भ्रांत-धारणा बन गई। शरीर को सताना नहीं है, शरीर को मजबूत बनाना है, साधना के योग्य बनाना है और इतना शक्तिशाली बनाना है कि एक व्यक्ति दस दिन तक लगातार ध्यान कर सके, सोलह दिन तक लगातार ध्यान कर सके, मन को एकाग्र कर सके, मन पर काबू कर सके।

पूज्य गुरुदेव नालंदा पधारे। कुछ प्रोफेसर आए। बातचीत शुरू हुई। प्रोफेसरों ने कहा–'आचार्यश्री! जैन धर्म बड़ा कठोर धर्म है।'

मैंने पूछा–'कठोर कैसे कह रहे हैं आप? कठोर का मतलब?'

प्रोफेसर बोले–'कितना कठोर है। साधु बनो, गुफा में चले जाओ, आहार-पानी छोड़ दो। जीवन को समाप्त कर दो–यह है जैन धर्म का मत।'

मैंने कहा–'आप प्राध्यापक हैं। नालंदा विद्यापीठ में पढ़ा रहे हैं। आपने यह कैसे समझा कि जैन धर्म ऐसा है? जैन धर्म में कहीं शरीर को सताने का, सुखाने का उपदेश नहीं है। जैन धर्म कहता है–तुम अहिंसा की साधना करो। उसमें कोई कष्ट आए तो उसे सहन कर लो, झेल लो।'

हम जो तपस्या करते हैं, उपवास करते हैं, वह शरीर को सताने के लिए नहीं, आनंद पाने के लिए है।

मैं यह मानता हूं–धर्म की साधना से आनंद का अनुभव न हो तो समझना चाहिए कि धर्म की साधना ठीक नहीं हो रही है। हर पल आनंद और प्रसन्नता का अनुभव होना चाहिए। वह नहीं है तो चिन्तन का विषय है।

जैन धर्म में शरीर को सताने की बात बिल्कुल नहीं है। केवल शरीर को साधने की बात है। हम शरीर को साध लें। भ्रांति हो गई एक शब्द से। वह शब्द है कायक्लेश। उसका अर्थ कर दिया गया–काया को कष्ट देना। उसका यह अर्थ नहीं है। उसका अर्थ है–शरीर को साधो। शरीर को इतना साधो कि तीन घंटा पद्मासन में बैठना हो तो बैठ सको। शरीर को ऐसा साधो कि एक मास खड़ा रहना हो तो रह सको। बाहुबली एक वर्ष तक खड़े रह गए। क्या कोई रह सकता है? पर उन्होंने शरीर को इतना साध लिया कि खड़े रह गए। शरीर को इतना साधो कि वर्षों तक साधना कर सको। वह कोई बाधा न डाले, सहयोगी बना रहे। इसका मतलब है कायक्लेश, काया को साधना। सुख पाना चाहते हैं और शरीर को दुःख दें, यह कभी नहीं हो सकता।

सबसे पहली आवश्यकता है शरीरबल। जम्बूकुमार को वह बल प्राप्त था। जिसमें वज्रऋषभनाराच संहनन होता है, उसका मनोबल बहुत मजबूत होता है। उसे कोई विचलित नहीं कर सकता, डिगा नहीं सकता। साथ में भावना का बल भी था। उसे तीनों बल प्राप्त थे। वह हाथी से क्या डरेगा।

अलं वज्रशरीरस्य, दंतिनो विजयेन किम्।
अनुषंगादिहाख्यातं, नातिमात्रं किमप्यहो।।

चारों ओर से यह ध्वनि गूंजने लगी–युवक! रास्ते से हट जाओ। कितना भयंकर हाथी है। सामने खड़े मत रहो। जम्बूकुमार उस ध्वनि को सुन ही नहीं रहे थे। महावीर को कितना कहा गया–इस रास्ते से मत जाओ पर महावीर ने सुना-अनसुना कर दिया। वे उसी रास्ते से चले और उस स्थान पर पहुंच गए जहां चंडकौशिक सर्प रहता था।

जम्बूकुमार हटने की बात को सुनकर भी विचलित नहीं हुए। अभय, अडोल और निडर खड़े रहे। हाथी दौड़ता-दौड़ता जैसे ही जम्बूकुमार के निकट आया, पता नहीं क्या हुआ! क्या जादू किया! मंत्र फूंका! किसने शंख बजाया अथवा शंखनाद किया? हाथी अमद बन गया। सारा मद समाप्त हो गया। मदोन्मत्त हाथी शांत हो गया। जैसे गुरु के सामने शिष्य झुकता है, प्रणिपात करता है, हाथी जम्बूकुमार के सामने वैसे ही झुक गया।



अव्यक्त भाषा में, मौन भाषा में कहने लगा–'आओ कुमार! बैठो सवारी करो, मैं तैयार हूं।' तत्काल जम्बूकुमार ने दांतों पर पैर टिकाया और हाथी पर बैठ गया।

उन्मदं विमदीकृत्य, हस्तिनं क्षणमात्रतः।
आरुरोह ततस्तूर्णं, दत्वा पादौ च दंतयोः।।

सबने आश्चर्य के साथ देखा। सैनिक स्तब्ध रह गए। उन्होंने सोचा–सामने जाकर खड़ा रहने से ऐसा होता तो हम भी चले जाते, हमें भी श्रेय मिलता। हम तो बाजी चूक गए, हार गए।

राजा को संवाद मिला–'हाथी वश में हो गया है।'

राजा ने पूछा–'किस सैनिक ने किया? कौन योद्धा था? उसे पुरस्कार दिया जाएगा।'

'महाराज! कोई सैनिक नहीं कर सका।'

'किसने किया?'

'एक अज्ञात युवक ने किया। हम उसका नाम नहीं जानते।'

'उसके पास क्या था?'

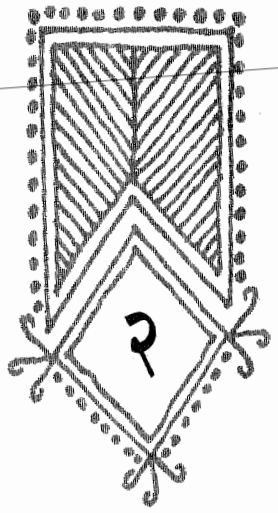
'कुछ नहीं था।'

'तो कैसे किया?'

'वह रास्ते में खड़ा हो गया। उसके पास आते ही हाथी का मद समाप्त हो गया। वह शिष्य बन गया। पापं शांतम्–सब शांत हो गया, बिल्कुल आश्चर्य घटित हो गया।'

जम्बूकुमार हाथी पर आरूढ़ है, बहुत मस्ती के साथ बैठा है। चारों ओर एक आश्चर्यपूर्ण प्रश्न खड़ा हो गया–किसने हाथी को वश में किया? कौन है वह?







एक व्यक्ति धर्म को सुनता है और एक व्यक्ति धर्म को जीता है। इन दोनों में बहुत अंतर है। एक व्यक्ति धर्म को सुनता है, बात कानों में पहुंचती है, मस्तिष्क में पहुंचती है और विस्मृति के गर्त में चली जाती है। एक व्यक्ति धर्म को जीता है, धर्म से लाभ उठाता है, धर्म के सिद्धांतों का प्रयोग करता है और अपनी शक्ति, अपना आनंद बढ़ा लेता है।

जम्बूकुमार ने धर्म को सुना नहीं, जीना शुरू कर दिया इसीलिए उसने प्रथम विजय प्राप्त की। परम विजय आगे है। किन्तु प्रथम चरण में जो विजय मिली, उससे बहुत यश मिला।

सम्राट् श्रेणिक को पता चला–उन्मत्त पट्टहस्ती वश में हो गया है। उसे एक अज्ञात युवक ने वश में किया है।

सम्राट् श्रेणिक ने कहा–हम वहां चलें, उस युवक को देखें। कर्मकरों ने कहा–वह युवक अभी हाथी पर आरूढ़ है। आपको स्वतः पता चल जाएगा।

सम्राट् श्रेणिक अपने परिवार के साथ आए, देखा–एक युवक बहुत सुंदर, छोटी अवस्था। हाथी पर आरूढ़। सर्वथा अभय। आश्चर्य हुआ। तत्काल सम्राट् बोल पड़ा–आश्चर्यकारी है कुमार का बल। इतने दुर्दान्त हाथी को इसने खेल-खेल में वश में कर लिया, ऊपर चढ़ बैठा, आराम से हस्ति का आनंद ले रहा है।

बहुत विचित्र है यह युवक। कैसे हुआ यह? सम्राट् श्रेणिक कुमार के वीर्य को देखकर विस्मित हो गया। आश्चर्यम् आश्चर्यम्–इस शब्द को अनेक बार दोहराया।

दृष्ट्वा वीर्यं कुमारस्य, भूपो विस्मयतां गतः।
स्वासनस्यार्धभागे तं, नीतिवानथ नीतिवित्।।

सम्राट् श्रेणिक वहां पहुंचा, परिषद् जुड़ गई। क्रीड़ा-यात्रा में आए हजारों लोग इकट्ठे हो गए। सम्राट् श्रेणिक सिंहासन पर बैठ गया। जम्बूकुमार को आमंत्रित किया। कुमार हाथी से नीचे उतर राजा के पास

आया। जम्बूकुमार के सामने आते ही सम्राट् श्रेणिक खड़ा हो गया। एक अनजान युवक के सामने सम्राट् खड़ा है–यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं थी। सम्राट् श्रेणिक ने अपना आधा आसन खाली कर दिया।

आधे आसन पर स्वयं बैठा, आधे आसन पर जम्बूकुमार को बिठाया। कुमार बैठ गया। न कोई हर्ष, न कोई अहंकार। सहज स्वाभाविक रूप में बहुत विनम्र मुद्रा में वह बैठा था।

श्रेणिक बोला–'कुमार! तुम धन्य हो। तुमने इस दुर्दान्त हाथी को वश में कर लिया।'

जम्बूकुमार–'सम्राट्प्रवर! कौन सा बड़ा काम किया मैंने।'

'हाथी को वश में किया है तुमने। क्या यह बड़ा काम नहीं है? जिसे हमारे वीर सैनिक नहीं कर पाए, वह काम तुमने कर दिखाया।'

'सम्राट्प्रवर! यह बिलकुल बड़ा काम नहीं है। बड़ा काम तब होगा जब मैं अपनी पांच इंद्रियों के पांचों हाथियों को वश में करूंगा। यह तो बहुत साधारण बात है। हाथी को वश में करना कौन सी बड़ी बात है? जब इंद्रियजित् बन जाऊंगा, तब मैं वास्तव में विजयी बनूंगा। परम विजय की ओर मेरा प्रस्थान होगा।'

'सम्राट्प्रवर! मैं आपको एक घटना सुनाता हूं। अतीत में एक बहुत शक्तिशाली सम्राट् हुआ है। वह आए दिन दूसरे राज्यों पर आक्रमण करता। राजाओं को पराजित कर देता और विजयी बन जाता। आसपास के सारे राजाओं को उसने जीत लिया। उसके मन में एक लालसा थी–मैं सर्वजित् बनूं, सबको जीतने वाला बनूं।



उसने बहुत सारे राजाओं को जीत लिया। कुछेक राजा बचे। एक दिन युद्ध में जा रहा था। जाने से पूर्व माता को नमस्कार किया। मां ने सामने नहीं देखा। पुत्र ने सोचा–यह क्या? मां मुझे रोज आशीर्वाद देती है। मां के आशीर्वाद से मैं सफल होता हूं। आज मां ने मुंह फेर लिया। क्या बात है? वह खड़ा रहा, बोला–'मां! मुझसे कोई अविनय हुआ है? तुम नाराज हो, रुष्ट हो? तुम्हें पता है मैं विजय के लिए जा रहा हूं। मैं चाहता हूं–तुम प्रसन्नता से मेरे सामने देखो, आशीर्वाद दो। तब मैं जाऊं।'

मां–'किसलिए जा रहे हो?'

'अमुक राजा को जीतने के लिए।'

'क्या करोगे?'

'मां! मेरा सपना है–मैं सर्वजित् बनूं, सबको जीतने वाला बनूं। दुनिया में कोई ऐसा नहीं, जिसे जीत न सकूं।'

'वत्स! कितना क्षुद्र चिंतन है तुम्हारा। क्या तुम दूसरों को जीतकर सर्वजित् बनोगे? इतने दिन मैं देखती रही। मैंने कुछ नहीं कहा। अब मुझे लग रहा है–तुम्हारे सिर पर एक भूत सवार है। तुम पागल होते जा रहे हो। तुम इस बात को छोड़ो। तलवार को नीचे रखो। लड़ाइयां बंद करो। किसी पर आक्रमण मत करो।'

'मां! मेरा सपना कैसे पूरा होगा?'

मां ने कहा–'वत्स! इंद्रियों को जीत लेगा, तब सर्वजित् बनेगा। अपनी जीभ को, आंख को, कान को जीत लेगा, ये वशीकृत हो जाएंगी, तब तुम सर्वजित् बनोगे। अन्यथा मनुष्यों को मारकर, जीत कर सर्वजित् नहीं बन सकोगे।'

इंद्रियेषु जयं कृत्वा, सर्वजित् त्वं भविष्यसि।

जम्बूकुमार ने कहा–'सम्राट्प्रवर! सर्वजित् कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा वह होता है, जो इंद्रियजयी होता है। मैंने कोई बड़ा काम नहीं किया। यह हाथी तो कुछ भी नहीं है। मैं इससे भी बड़ा काम कर सकता हूं। पर मैं मानता हूं कि यह विजय मेरी कोई बड़ी विजय नहीं है।'

श्रेणिक ने पूछा–'कुमार! तुम सामने गए कैसे? हमारे सैनिक डर कर इधर-उधर भाग रहे थे। तुम्हारे पास न कोई शस्त्र, न कोई लाठी, फिर भी तुम डरे नहीं। अभय होकर सामने खड़े हो गए। यह कैसे हुआ?'



'सम्राट्प्रवर! मैंने भगवान महावीर का एक पाठ पढ़ा है–**नो भायए नो वि य भावियप्पा**–किसी से डरो मत, किसी को डराओ मत। मैं इस पाठ को जी रहा हूं इसलिए मुझे कोई भय नहीं लगा।'

'महावीर ने कहा–**मा भेतव्वं**–डरो मत किसी से। मैंने इस पाठ को पढ़ा नहीं है, जीया है, जी रहा हूं। मुझे डर किस बात का?'

'सम्राट्प्रवर! अभी जो हाथी वश में हुआ है, उसका पहला रहस्य है अभय। मन में तनिक भी भय की रेखा नहीं। जब भय की रेखा खिंचती है, तब पचास प्रतिशत शक्ति तो उसी समय मर जाती है। जिसकी शक्ति आधी रह गई, वह क्या विजयी बनेगा? कैसे सफल होगा?'

'सम्राट्प्रवर! मैंने दूसरा प्रयोग किया मैत्री का। मैं क्यों डरता?'

'महावीर ने बतलाया–**मित्ती मे सव्वभूएसु**–सबके साथ मेरी मैत्री है। **आय तुले पयासु**–सब जीवों को अपने समान समझो।'

'मैंने हाथी को अपने समान समझा, उसे अपना मित्र बनाया। जैसे ही मैंने हाथी को देखा, मैत्री का प्रयोग शुरू कर दिया–तुम मेरे मित्र हो, मैं तुम्हारा मित्र हूं। आज हम दोनों मित्र मिल रहे हैं। हम प्रेम के साथ मिलेंगे। मेरा मैत्री का संकल्प प्रबल बना और उस संकल्प की ऊर्जा तरंगें निकलनी शुरू हो गईं। जैसे ही वे हाथी के पास पहुंचीं, हाथी का क्रोध/आवेश शांत हो गया। मैत्री का भाव प्रस्फुटित हो गया। वह मेरा मित्र

बन गया। मैं उसके ऊपर चढ़ गया। उसने मुझे अपने ऊपर बिठा लिया। जहां मित्रता होती है, वहां खतरा नहीं होता। न मेरे हाथ में शस्त्र, न अंकुश। हम दोनों मित्र बन गए और हमारा काम बन गया।'

सम्राट् श्रेणिक ने सोचा–मैं भी महावीर का शिष्य हूं। महावीर के पास जाता हूं, महावीर की देशना सुनता हूं। अब मुझे अनुभव हो रहा है कि मैं केवल धर्म को सुनता हूं और कुमार उसे जीता है।

यदि आदमी धर्म को जीना शुरू कर दे तो बहुत बड़ा परिवर्तन संभव हो सकता है किन्तु बहुत कठिन है धर्म को जीना।

सम्राट् ने कुमार का परिचय पूछा–'नाम क्या है?'

'जम्बूकुमार।'

'कहां रहते हो?'

'राजगृह में।'

'तुम्हारे पिता का नाम?'

'मेरे पिता श्रेष्ठी ऋषभदास हैं।'

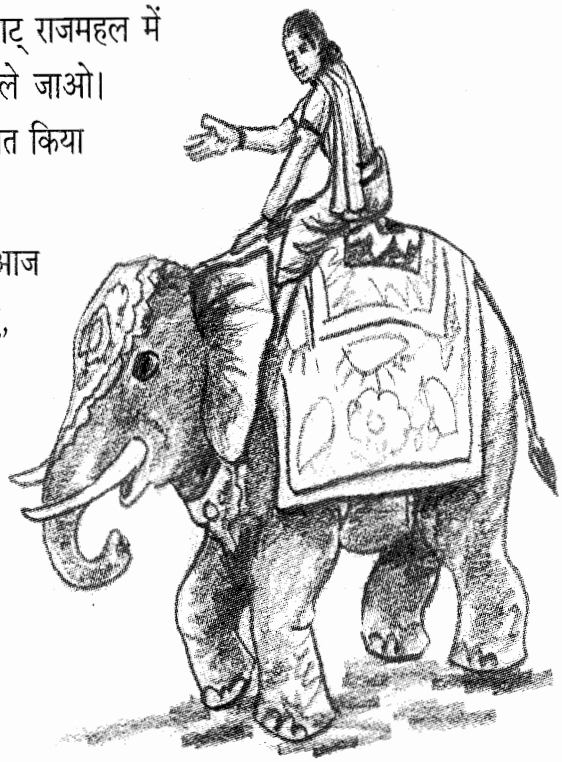
जैसे चिरपरिचित के साथ लगाव होता है, कुमार के साथ वैसी आत्मीयता जुड़ गई। जब कोई अतिशय विशेषता सामने आती है तब एक आकर्षण पैदा हो जाता है।

जम्बूकुमार ने हाथी को वश में किया, जनता अपने आप वशीभूत हो गई।

सम्राट् ने कहा–'अब हम नगर में चलेंगे। भव्य समारोह के साथ तुम्हारा नगर-प्रवेश कराएंगे।'



सम्राट् श्रेणिक, पूरा लवाजमा, चारों प्रकार की सेना, हजारों नागरिक–एक अनायोजित जुलूस बन गया। आगे-आगे जम्बूकुमार उसी पट्टहस्ती पर आरूढ़ है। पीछे सम्राट् श्रेणिक, संभ्रांत नागरिक चल रहे हैं। नगर-प्रवेश हो गया। राजमहल आया। सम्राट् राजमहल में चले गए। जम्बूकुमार से कहा–'तुम अपने घर चले जाओ। कल विशाल सभा का आयोजन होगा, उसमें स्वागत किया जाएगा।'



माता-पिता को पता चला–जम्बूकुमार ने आज एक अद्भुत काम किया है। माता-पिता आगे आए, जम्बूकुमार को समारोह के साथ घर लाए।

जहां पुत्र की सफलता होती है, वहां मां को कितना सुख होता है और पिता को कितना आनंद मिलता है इसे वे ही अनुभव कर सकते हैं, दूसरा नहीं जान सकता।

आज पूरे नगर में जम्बूकुमार की यशोगाथा हो रही है। 'जसु जसु वीर रसु जय हो'–वीर रस

का जयघोष किया जा रहा है। ऐसा लगता है–जैसे कोई महायुद्ध में विजय हुई है। उस विजय का जो उल्लास होता है, जो वीर रस के गीत गाए जाते हैं, वैसा कुछ माहौल बन गया। चारों ओर विजय गान हो रहा है।

उस उत्सव और समारोह के मध्य जम्बूकुमार माता-पिता के साथ अपने घर पहुंचा, परिवार के लोग इकट्ठे हो गए। मां बोली–'वत्स! कुशल तो हो? उस दुर्दान्त हस्तिराज को तूने वश में किया। उसके साथ कोई प्रहार हुआ होगा। दिखाओ तो जरा हाथ। कहीं कोई खरोंच तो नहीं आई है? कुछ चोटें बाहर दिखाई देती हैं, कुछ अंदरूनी होती हैं। कहीं कोई चोट तो नहीं आई है?'

कुशलं ते तनो वत्स! निघ्नन्तो वद यूथकम्।
इति केचित् कुमारं तं, स्पृशंतो मृदुपाणिना।।

मां का वात्सल्य, मां के मन की पीड़ा, साथ-साथ में हर्ष–सब अपना काम कर रहे हैं।

जम्बूकुमार बोला–'मां! चिंता मत करो। एक खपाची भी नहीं लगी। एक खरोंच भी नहीं आई। मैंने कुछ किया भी नहीं। मां! तुम तो जानती हो–जो दूसरे से लड़ता है, उसका बल क्षीण हो जाता है। जो नहीं लड़ता, उसका बल बढ़ जाता है।'

प्रसिद्ध तथ्य है। रात को कोई व्यक्ति जाता है। कभी सामने भूत मिल सकता है। उस समय भूत से लड़ो तो लड़ने वाले की शक्ति घट जाएगी, भूत की शक्ति बढ़ जाएगी। लड़ने वाला मारा जाएगा। लड़ो मत। सामने खड़े हो जाओ। डरो मत। भूत की शक्ति क्षीण हो जाएगी, सामने वाले का बाल भी बांका नहीं होगा।

'मां! मैंने हाथी पर प्रहार नहीं किया। मैंने अभय और मैत्री का प्रयोग किया, उस प्रयोग ने चमत्कार दिखाया, हाथी मेरा मित्र बन गया। उसने मुझे ऊपर चढ़ा लिया।'

'बेटा! यह हुआ कैसे? कहां तुम्हारा केले जैसा कोमल शरीर और कहां वह पहाड़ जैसा दुर्दम हाथी! तुमने उसे कैसे जीता? क्या यह सचमुच सही बात है?'–मां को भी बहुत आश्चर्य हो रहा था।

क्व ते पुत्र! वपुःसौम्यं, कदलीदलसन्निभम्।
क्व गिरीन्द्रसमो नागो, निर्जितस्तु कथं त्वया।।

पुत्र–'मां! मैंने लड़ाई कहां की? यदि लड़ाई करता तो मैं हारता और वह जीतता। लड़ाई तो हुई नहीं। मैंने तो मित्र बनाया था। मित्र बनने के बाद उसने अपनी भाषा में कहा–आओ मित्र! ऊपर चढ़ जाओ। मैं चढ़ गया। लोगों ने कहा–हाथी को जीत लिया। मैंने तो कुछ किया ही नहीं।'

मां को अभी भी विश्वास नहीं हो रहा था। एक सपना जैसा लग रहा था। कभी-कभी कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं कि आंखों से देखने पर भी भरोसा नहीं होता। आंख का काम भरोसा करना नहीं है, आंख का काम तो मात्र देखना है। जिस तंत्र का काम भरोसा करना है, उसको भरोसा नहीं होता।

जम्बूकुमार ने कहा–'मां! यह कोई बड़ी बात नहीं है, इसे तुम संपन्न करो।'

मां–'बड़ी बात कौन सी चाहते हो?'

जम्बूकुमार–'मां! अभी बताऊं?'

'हां बताओ।'

'बड़ी बात वह होगी, जिस दिन मैं परम विजयी बनूंगा, परम विजय को उपलब्ध करूंगा। मैं महावीर का शिष्य हूं। महावीर की उपासना में जाता हूं। आप सब भी जाते हैं। मैंने महावीर को समझने का प्रयत्न किया है, उनके सिद्धांत को जीने का संकल्प किया है। जिस दिन मैं महावीर का सही शिष्य बनूंगा यानी महावीर बनूंगा तब कोई बड़ी बात होगी।'

मां–'बेटा! ये सब बातें रहने दो।'

यश की बात तो मां सुनना चाहती थी। ये बातें वह सुनना नहीं चाहती थी। बात संपन्न हो गई।

जम्बूकुमार की अंतरात्मा में एक लक्ष्य बना हुआ है। हम मनुष्य के जीवन पर ध्यान दें। मनुष्य कोई भी प्रवृत्ति करता है, तो बाहर में प्रवृत्ति दिखाई देती है किन्तु भीतर में एक केन्द्रीय लक्ष्य होता है। उसकी सारी प्रवृत्तियां उसी लक्ष्य के आसपास चलती हैं। दूसरों को आश्चर्य होता है–इतना बड़ा आदमी, ऐसी प्रवृत्ति क्यों कर रहा है? इतना बड़ा आदमी, संयम क्यों कर रहा है? त्याग क्यों कर रहा है?

जम्बूकुमार ने सोचा–हाथी को वश में करके मैंने कोई बड़ी सफलता नहीं पाई है। मुझे सफलता के लिए स्वयं पर विजय पाना है। मुझे इसमें सफल होना है। मैं सफल बनूंगा। भीतर ही भीतर यह लक्ष्य पल रहा है।



राजगृह में पूरे दिन यही चर्चा रही। राजपथ, चौराहे, चौहट्टा–कहीं भी जाओ, एक ही चर्चा–आज तो जम्बूकुमार ने गजब कर दिया। जहां सारे सैनिक परास्त हो गए, वहां निहत्थे जम्बूकुमार ने हाथी को वश में कर लिया। कैसे हो गया यह? कितना बड़ा आश्चर्य है यह!

दिन बीता, रात बीती, सूर्योदय हुआ। सूर्योदय एक आश्चर्य की रश्मि लेकर सामने आया। सबने आवश्यक प्रभात-कृत्य किए।

दस बजे का समय। राज्यसभा का आयोजन। सब सामंत, सभासद आ गए। सम्राट् श्रेणिक ने जम्बूकुमार को आमंत्रित किया। राजपुरुष जम्बूकुमार के घर गए, निवेदन किया–'सम्राट्प्रवर आपको याद कर रहे हैं। आप राजसभा में पधारें।' बहुत सम्मान और उत्सव के साथ राज्यसभा में लाया गया। जम्बूकुमार न कोई मंत्री था, न सामंत था, न राजसभा का सदस्य। वह कल तक अनजाना था, आज सर्व जाना हो गया। एक दिन में एकदम प्रसिद्ध हो गया।

प्रसिद्धि विजय दिलाती है। जो प्रसिद्धि सहज अपने गुणों से मिलती है, वह अच्छी होती है। संस्कृत कवि ने लिखा–उत्तम आदमी अपने गुण से प्रसिद्ध होता है। यह अमुक का बेटा है–इस प्रकार पिता के नाम से जो प्रसिद्धि पाता है, वह मध्यम आदमी है। जो अपने मामा के नाम से प्रसिद्धि पाता है, वह अधम है। जो अपने श्वसुर के नाम से प्रसिद्ध होता है, वह अधमाधम है।

उत्तमः स्वगुणैः ख्यातः, पितृख्यातश्च मध्यमः।
अधमः मातुलैः ख्यातः, श्वश्रुख्यातोऽधमाधमः।।



यह नीति का वचन है। जम्बूकुमार अपने गुणों से प्रसिद्ध हो गया।

एक अच्छे काम से प्रसिद्धि मिले और एक गलत काम से प्रसिद्धि मिले–इन दोनों में बहुत अंतर है। हर आदमी में प्रसिद्ध होने की भावना रहती है पर जैसे तैसे प्रसिद्ध होने की बात अच्छी नहीं है।

एक युवक ने विश्वविद्यालय के गुंबद पर खड़े होकर पांच-दस छात्रों को गोलियों से भून दिया। वह पकड़ा गया। न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। उससे पूछा गया–तुमने ऐसा क्यों किया? उसने कहा–मैंने समाचार-पत्र में पढ़ा, एक छात्र ने अनेक छात्रों को गोलियों से छलनी कर दिया। उसके समाचार पूरे विश्व में छपे। वह प्रसिद्ध हो गया। मेरे दिमाग में भी प्रसिद्धि का भूत सवार हो गया और मैंने यह काम कर दिया। प्रसिद्धि की यह गलत धारणा भी बनती है पर यह वांछनीय नहीं है।

जो आदमी अपने गुणों से, अपने पुरुषार्थ और पराक्रम से प्रसिद्ध होता है, वास्तव में वह प्रसिद्धि है।

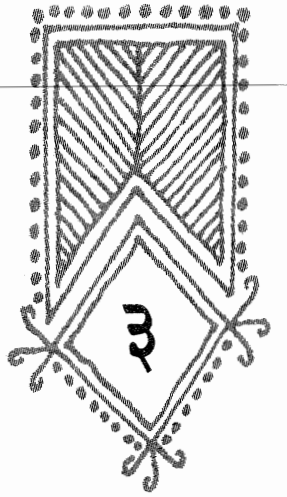
जब अणुव्रत आंदोलन का पहला अधिवेशन दिल्ली में चांदनी चौक में हुआ, बहुत शंका और संशयों के बीच हुआ। बहुत लोगों ने कहा–वहां नहीं करना चाहिए। कौन अणुव्रत को जानता है? कौन आचार्य तुलसी और तेरापंथ को जानता है? दिल्ली में उस समय श्रावक समाज के चार-पांच घर थे किन्तु अणुव्रत की विशेषता, गुरुदेव का भाग्य, कुछ ऐसा हुआ कि अमेरिका सहित अनेक विदेशी समाचार-पत्रों में जो गूंज हुई, एक दिन में जैसे सारा वातावरण बदल गया। 'टाइम', 'लाइफ' जैसे पत्रों में यह समाचार छपा–'हिन्दुस्तान का एक छोटे कद का आदमी, वह एक संकल्प के साथ आंदोलन शुरू कर रहा है कि भ्रष्टाचार को मिटाएंगे, नैतिकता को लाएंगे।'

अपनी विशेषता से जो प्रसिद्धि होती है, वह महत्त्व की होती है। जम्बूकुमार एक दिन में अपने गुणों से प्रसिद्ध हो गया। राजसभा में राजा ने उसका स्वागत किया। अपने पास अर्धासन पर बिठाया। सारी सभा चित्रवत् देख रही थी यह दृश्य।

जम्बूकुमार और सम्राट् श्रेणिक बैठे हैं, स्वागत की तैयारी हो रही है। इतने में सबका ध्यान आकाश की ओर चला गया। बैठे हैं भूमि पर। ध्यान चला गया आकाश की ओर। एक विचित्र घटना सामने आ गई। वह घटना क्या है?

ध्यान आकाश में क्यों गया?

आकाश से क्या उतरा?....सबके नेत्र विस्फारित क्यों बने....?



विश्व बहुत विशाल है। इसमें बहुत बड़ा है जीव जगत् और बहुत बड़ा है अजीव जगत्, पुद्गल-परमाणु जगत्। संयोग से अनेक घटनाएं घटित होती रहती हैं। कालचक्र के साथ-साथ घटना का चक्र भी चलता है।

आयोजन था जम्बूकुमार का स्वागत करने के लिए। जम्बूकुमार की विजय का उल्लास सबके मन में है। अचानक एक कुमार के प्रति आदर का भाव जगा है। जब आदर का भाव होता है तो वह अभिव्यक्त होना भी चाहता है। वह व्यक्त नहीं होता है तो संतोष नहीं मिलता। स्तुति करो या न करो, प्रशंसा करो या न करो, कोई फर्क नहीं पड़ता। किन्तु मनुष्य का स्वभाव है कि जो प्रशंसनीय है उसकी प्रशंसा करके ही वह सुख का अनुभव करता है।



कालिदास ने ठीक लिखा–पूज्यपूजाव्यतिक्रमः–जहां पूज्य की पूजा का व्यतिक्रम होता है, वहां अच्छा नहीं होता। जो पूजनीय है, उसकी पूजा होनी चाहिए। जो प्रशंसनीय है, उसकी प्रशंसा स्वाभाविक बात है।

एक ओर सब केन्द्रित हैं कुमार के सम्मान के लिए। वह उपक्रम शुरू हो उससे पूर्व ही सबका ध्यान आकाश की ओर चला गया। आश्चर्य के साथ सबने देखा–आकाश से एक आदमी उतर रहा है।

तत्राकस्माद् नभोमार्गाद्, आगतः खचराधिपः।
एकोप्यात्माभितेजोभिर्दिशाचक्रं विभूषयन्।।

आकाश से एक व्यक्ति उतरा। ऐसा लग रहा था–कोई व्यक्ति नहीं, प्रकाश का पुंज उतर रहा है, तेज का पुंज उतर रहा है। ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, दाएं-बाएं–दशों दिशाएं प्रभास्वर हो गईं। चारों तरफ प्रकाश फैल गया। आंखों पर भरोसा नहीं हो रहा था। यह कोई सही घटना है या सपना आ रहा है? रात नहीं है, दिन है। दिन में भी सपना आता है। आदमी को दिन में भी कभी-कभी नींद में सपना आ जाता है पर अभी तो आंखों में नींद नहीं है। आंखें खुली हैं। सब जागृत हैं। यह क्या हो गया? यह तेजःपुंज कहां से आ गया?



उसी क्षण वह व्योमचारी पुरुष नीचे उतर गया और आकाश में एक विमान स्थिर हो गया। वह विमान में आया था। उसने विमान को आकाश में स्थापित कर दिया। वर्तमान में वायुयान को आकाश में स्थिर नहीं रखा जा सकता। आकाश में क्षण भर के लिए रह सकता है, लंबे समय के लिए नहीं। उस व्यक्ति ने वायुयान को आकाश में स्थिर कर दिया, स्वयं नीचे उतर गया। सबके मन में आश्चर्य, कुतूहल। क्या हो गया? कौन आया है? क्यों आया है? अनेक प्रश्न खड़े हो गए। कैसा आश्चर्यकारी व्यक्ति है। विमान तो ऊपर खड़ा है। हमारे रथ आदि सारे यान धरती पर रहते हैं और यह विमान आकाश में अधर खड़ा है। यह बिना सोपान वीथी, सीढ़ी के नीचे कैसे उतरा? क्या कोई दिव्य देव आया है? सबके मन में आश्चर्य भरे प्रश्न। एक उत्कंठा, उत्सुकता इतनी प्रबल हो गई कि कब इस प्रश्न का समाधान मिले? कब कुतूहल का शमन हो?

व्योमचारी ने राज्यसभा में प्रवेश करते ही सम्राट् श्रेणिक को नमस्कार किया। नमस्कार कर सामने खड़ा हो गया। खड़ा होकर बोला–'मैं मनुष्य हूं। कोई देव नहीं हूं। मैं एक विद्याधर हूं। मैं अपना परिचय देना चाहता हूं। मुझे लग रहा है–सबके मन में एक कुतूहल है।'

आज अपना परिचय स्वयं देने की प्रथा है। व्यक्ति अपना परिचय स्वयं दे देता है।

मनुष्यों की दो श्रेणियां बन गईं–एक भूमि पर रहने वाले और एक त्रिविष्टप–तिब्बत में रहने वाले यानी हिमालय, विंध्याचल, मलयाचल आदि ऊंचाई वाले पहाड़ों पर रहने वाले विद्याधर। आज भी जो हिमालय, तिब्बत पर रहते हैं, उनके लिए नीचे आना बड़ा कठिन होता है। एक विकास हुआ विद्या का। वह विकास भगवान ऋषभ के समय में हो गया था। नमि और विनमि–भगवान ऋषभ के पालित पुत्र थे। ऋषभ राज-पाट छोड़ संन्यासी बन गए। ऋषभ ने संन्यासी बनने से पूर्व अपना राज्य अपने सौ पुत्रों में बांट दिया। नमि-विनमि उस समय कहीं भ्रमण के लिए गए हुए थे। उनको राज्य नहीं दिया जा सका। दीक्षा के बाद वे आए, बोले–'आपने हमें राज्य नहीं दिया। हमें राज्य देना होगा।' पीछा नहीं छोड़ा। उस समय धरणेन्द्र देव ने उन्हें हिमालय की श्रेणी पर राज्य दिया। साथ में विद्याएं भी दीं। वहां से विद्याधर वंश का प्रारंभ होता है। विद्या के द्वारा आकाश की यात्रा, अस्त्रों का निर्माण, अस्त्रों का प्रयोग, सुरक्षा। अनेक विद्याओं का विकास हुआ था। हजारों-हजारों विद्याएं साध लेते थे। इतनी चामत्कारिक कि वे विद्या के द्वारा असंभव लगने वाले काम को भी संभव बना देते।

विद्याधर बोला–'महाराज! मैं विद्याधर हूं। सहस्र शृंग-पर्वत की चोटियों पर रहता हूं। वहां महान् विद्याधर रहते हैं, जिनके पास चामत्कारिक विद्याएं हैं।

नाम्ना सहस्रशृंगोऽथ, राजते गिरिरुत्तमः।
राजन्! तत्र वसन्त्येव, महाविद्याधराः नराः।।

मैं भी अपने परिवार के साथ सहस्रशृंग पर्वत के शिखर पर रहता हूं। मेरा नाम व्योमगति है। मेरा पराक्रम ऐसा है कि उसके लिए किसी सहाय की अपेक्षा नहीं रहती।

भूधरे तत्र तिष्ठामि, सकलत्रश्चिरात्सुखम्।
नाम्ना व्योमगतिश्चाहमसहायपराक्रमः।।

दो स्थितियां हैं–एक असहाय वह होता है, जिसके कोई सहायक नहीं होता, जो दीन-हीन होता है। एक असहाय वह होता है, जिसको सहाय की अपेक्षा नहीं रहती। इतना शक्तिशाली कि दूसरे किसी सहायक की जरूरत ही नहीं। संस्कृत काव्य में सिंह के लिए कहा गया–

एकोऽहमसहायोऽहं, कृशोऽहमपरिच्छदः।
स्वप्नेऽप्येवंविधा चिन्ता, मृगेन्द्रस्य न जायते।।

वनराज सिंह अकेला जंगल में रहता है। वह कभी यह नहीं सोचता–मैं अकेला हूं, असहाय हूं। मेरा कोई सहायक नहीं है, साथी नहीं है। सबका यूथ होता है। सैकड़ों बंदर साथ रहते हैं। सैकड़ों हाथी साथ रहते हैं। सबका अपना-अपना यूथ/टोला होता है। मेरा तो कोई टोला ही नहीं है। मैं कृश हूं। सिंह शरीर से कृश होता है। कटिभाग तो बहुत कृश होता है। मेरा परिवार भी नहीं है। मृगेन्द्र को ऐसी चिन्ता स्वप्न में भी नहीं होती। जो अपने आप में शक्तिशाली होता है, उसको अपेक्षा भी नहीं, चिन्ता भी नहीं।



विद्याधर व्योमगति ने कहा–'महाराज! मैं असहाय पराक्रम हूं। मुझे किसी की सहायता की जरूरत नहीं पड़ती।'

श्रेणिक बोला–'विद्याधरवर! आपका स्वागत है। आप उच्चासन पर विराजें।' आसन खाली कर दिया। बड़े सम्मान के साथ विद्याधर को बिठाया।

सम्मान का कार्यक्रम बातचीत में बदल गया। श्रेणिक ने पूछा–'महाशय! आप यहां आए, यह बहुत अच्छा हुआ। आज हमने विद्याधर को अपनी आंखों से देखा। हमने आपके चमत्कार को भी देखा। आप यहां बैठे हैं और आपका यान आकाश में स्थिर खड़ा है। आपकी दिव्य आभा सबको चमत्कृत कर रही है पर मैं यह जानना चाहता हूं–आपके आगमन का उद्देश्य क्या है?'

व्योमगति बोला–'राजन्! मेरी बात बहुत आश्चर्यकारी है। उसे सुनकर आपको बहुत आश्चर्य होगा। आया हूं सोद्देश्य। निरुद्देश्य नहीं आया हूं पर घटना बड़ी विचित्र है। मुझे विश्वास है–उसे सुनकर आप मेरा साथ भी देंगे।'

निश्चिताद्य मया वार्ता, या चित्रास्पदकारिणी।
श्रोतव्या सा त्वया भूप! कथ्यमाना मयाऽधुना।।



असहाय भी बतला दिया और सहायता की बात भी शुरू कर दी। इस दुनिया में कोई भी आदमी सर्वथा असहाय नहीं होता। यह सापेक्ष बात है। कभी-कभी किसी को सहायता की जरूरत नहीं रहती। एक समय आता है, सहायता की अपेक्षा हो जाती है। एक व्यक्ति युवा है, जवानी है। ऐसा लगता है कि जैसे पहाड़ को भी लांघ जाए। बहुत कूदता-फांदता चलता है। उन्हीं लोगों को देखा, जब बुढ़ापा आया, एक पगथिया, एक सीढ़ी चढ़ना भी उनको पहाड़ चढ़ने जैसा लगने लगा। सब सापेक्ष होता है। कोई निरपेक्ष बात हमारे व्यवहार में नहीं होती।

विद्याधर व्योमगति ने कहा–'महाराज! एक पर्वत और है। उस पर्वत का नाम है मलयाचल। उस पर्वत के पास एक नगर है केरल। चंदन के वृक्ष मलयाचल में होते हैं। मलय–चंदन। नाम ही है मलयज।'

अस्त्यन्यतो गिरीशानो, नाम्ना वै मलयाचलः।
अस्य दक्षिणदिग्भागे, केरला पूरिहाख्यया।।

यह संभावना की जा सकती है–वर्तमान का केरल वही रहा हो। बहुत विशाल पर्वत है। ऊटी का पर्वत विशाल है। वहां और भी अनेक विशाल पर्वत हैं।

व्योमगति ने कहा–'राजन्! उस पर्वतीय नगर का शासक है मृगांक। मृगांक की पत्नी मालती मेरी बहिन है। उसने एक कन्या को जन्म दिया। कन्या इतनी सुंदर कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कन्या बड़ी हुई। पिता को चिन्ता रहती है कन्या के विवाह की। विवाह कहां करे? वर की खोज चलती रहती है। जब तक वह व्यवस्थित न हो जाए, चिन्ता बनी रहती है।'

राजा मृगांक के मन में चिन्ता थी–कन्या का परिणय कहां करे? योग मिला, कोई ज्ञानी मुनि आ गए। राजा सेवा में गया। उपासना की, धर्म सुना। सब लोग चले गए। राजा वहीं रुक गया। एकान्त में राजा ने पूछा–'महाराज! मेरा एक प्रश्न है।'

'क्या प्रश्न है राजन्!'

'व्यक्तिगत प्रश्न है।'

'क्या है?'

'आप ज्ञानी हैं। आप बताएं–मेरी लड़की का पति कौन होगा?' बड़ा अटपटा प्रश्न रख दिया।

जो विशिष्ट ज्ञानी होते हैं, उनके नियम अलग होते हैं। जो सामान्य साधु होते हैं, उनके नियम अलग। जो आगमधर अथवा विशिष्ट श्रुतधर होते हैं, उनको शास्त्र नहीं देखना पड़ता। उनके लिए कोई शास्त्र और मर्यादा की बात नहीं होती। वे स्वयं शास्त्र होते हैं, स्वयं मर्यादा होते हैं।

ज्ञानी मुनि ने उपयुक्त समय देखा तो कह दिया–तुम्हारी कन्या का पति मगध सम्राट् श्रेणिक होगा।

पुरे राजगृहे रम्ये, श्रेणिकोस्ति महीपतिः।
विशालवत्यास्त्वत्पुत्र्याः, परिणेता भविष्यति।।

सम्राट् श्रेणिक यह सुनकर स्तब्ध रह गया, सोचा–क्या यह कोई इंद्रजाल है? कहां मलयाचल कहां मगध? आज तो कोई दूरी नहीं है। इतने साधन हो गए कि कहां से कहां जाया जा सकता है। उस युग में,

ढाई हजार वर्ष पूर्व के युग में, भगवान महावीर का निर्वाण कुछ समय पहले ही हुआ था। सुधर्मा और जम्बू के युग में उतने साधन कहां थे? बैलगाड़ी, रथ या घोड़ों से जाना, हाथी से जाना। कहां मलयाचल का उन्नत प्रदेश और कहां मगध? सब कुछ विचित्र लग रहा था।

व्योमगति ने कहा–'राजन्! मेरी बहिन मालती की पुत्री का नाम है विशालवती। विशालवती का पति श्रेणिक होगा–यह संवाद मिल गया तो मेरे आने का उद्देश्य स्पष्ट हो गया। मैं उद्देश्य लेकर आया हूं, निरुद्देश्य नहीं आया हूं।'

'राजन्! राजा मृगांक विशालवती के परिणय की योजना बना रहा था। उसके विवाह का प्रस्ताव आप तक पहुंचाए, उससे पूर्व एक विचित्र घटना और घटित हो गई। राजा मृगांक चिन्तातुर हो गया।'

सम्राट् श्रेणिक–'ओह!'

'राजन्! मलयाचल से आगे है हंसद्वीप।'

जैन रामायण में उल्लेख है–हंसद्वीप दिन आठ रही, आगै चाल्या राम। भगवान राम हंसद्वीप में आठ दिन रहे। वहां से वे लंका गए। लंका पर धावा बोला।

'राजन्! उस हंसद्वीप नगर में रत्नचूल नाम का विद्याधर राज्य करता है। विद्याधर रत्नचूल को कुछ स्रोतों से पता चल गया–कन्या विशालवती बहुत सुन्दर है।'

पुराने जमाने में राजा लोग दो बातों पर ज्यादा ध्यान देते थे–सुन्दर कन्या और भूमि। अतीत का इतिहास, लड़ाइयों और युद्धों का इतिहास–स्त्रियों और भूमि को लेकर हुए संघर्ष से भरा है। जर, जोरू और जमीन–ये झगड़े के मूल हैं। धन झगड़े का मूल, स्त्री झगड़े का मूल और जमीन झगड़े का मूल। इनके लिए झंझट झगड़े होते रहते हैं। रामायण क्या है? महाभारत क्यों हुआ?

'राजन्! विद्याधर रत्नचूल ने कन्या विशालवती के साथ विवाह का प्रस्ताव भेजा। इस विवाह-प्रस्ताव को राजा मृगांक कैसे स्वीकार करता? विशिष्ट ज्ञानी मुनि के कथन का उल्लंघन करना उपयुक्त नहीं लगा।

प्रार्थयामास सोत्यर्थं, कन्यां तां कमलाननां।
मृगांको न ददौ तस्मै, मुनिवाक्यमलंघयन्।।

राजा रत्नचूल इस अस्वीकृति से आहत हुआ। छोटा राजा है, बहुत शक्तिशाली नहीं है, उसने मेरी मांग को ठुकरा दिया। यह सुनते ही नख-शिख तक ज्वाला लग गई। आवेश में बेभान हो गया। इतना दुस्साहस, इतना अहंकार! मेरी बात को भी ठुकरा दिया। मैं उसे अहंकार का मजा चखाता हूं। आवेश ही तो लड़ाई कराता है। आवेश इतना प्रबल हो गया कि तत्काल आदेश दे दिया–सेना सज्जित करो, रणभेरी बजाओ, चढ़ाई करनी है, राजा मृगांक को जीतना है।



विद्याधर रत्नचूल ने इसे अपना तिरस्कार माना। उसका रोष शतगुणित हो गया। उसने बलपूर्वक विशालवती को पाने का निश्चय किया। सेना को युद्ध करने के लिए मलयाचल की ओर कूच करने का निर्देश दिया। उसकी विशाल सेना चली तब ऐसा लगा जैसे आकाश को ढकती हुई कोई विशाल नर-पंक्ति चल रही है। जहां मृगांक का राज्य है, वहां रत्नचूल की सेना आ गई।

'राजन्! आप जानते हैं–जो बड़ा होता है, शक्तिशाली सेना होती है, वह कमजोर को दबा लेता है। राजा रत्नचूल वहां पहुंचा। उसने सारे देश को उजाड़ दिया, नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। सारे खेतों को नष्ट कर दिया। फल-फूलों से लदे वृक्ष विनष्ट हो गए। जनता परेशान है। मृगांक राजा अपने किले में बंद होकर बैठा है। इस स्थिति का मुझे पता चला। मैंने सोचा–राजा मृगांक अकेला रत्नचूल के साथ लड़ नहीं पाएगा। मुझे अपने बहनोई, अपनी बहिन, अपनी भानजी–इन सबकी सुरक्षा के लिए, सहायता के लिए जाना है। मैं वहां जा रहा हूं। जाते-जाते मैंने सोचा–जिनके लिए लड़ाई हो रही है, उनसे मिलता हुआ चला जाऊं।'

'राजन्! आपके लिए ही तो लड़ाई हो रही है। यदि आपका विकल्प नहीं होता तो यह लड़ाई क्यों होती? सब कुछ आपके लिए हो रहा है इसलिए मैं आपको उसकी सूचना तो दे दूं।'

व्योमगति ने वर्तमान विषम परिस्थिति का चित्रण करते हुए कहा–'राजन्! राजा मृगांक अब किले के भीतर नहीं रह सकता। उसे बाहर आकर लड़ाई शुरू करनी होगी। मैं वहां जा रहा हूं। युद्ध होने वाला है। भयंकर युद्ध होगा, ऐसी संभावना है।'

विद्याधर दो क्षण मौन हो गया, सोचा–श्रेणिक यह कह दे कि चलो, मैं भी साथ चलता हूं। विद्याधर यह सुनना चाहता था किन्तु सब मौन थे। ऐसी खामोशी छा गई कि कोई नहीं बोल रहा है।

विद्याधर के सामने लड़ना बड़ा मुश्किल है। एक भूधर और एक विद्याधर। भूधर है पहाड़। विद्याधर है उस पर रहने वाला। एक भूमिचर–भूमि पर चलने वाला। दोनों में मेल कहां है? एक विद्याधर अपनी विद्या से किसी अस्त्र का प्रयोग करता है तो नीचे वाला क्या करेगा? आज भी प्रक्षेपास्त्र आते हैं तो नीचे बैठा आदमी क्या कर पाता है? कोई उपाय नहीं है।

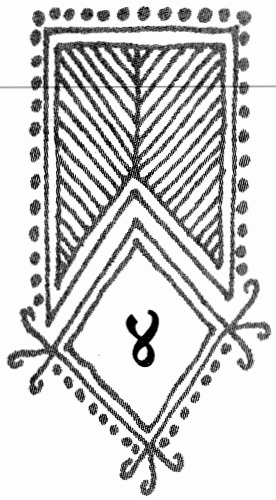
सब मौन बने हुए एक-दूसरे की ओर देख रहे हैं। सम्राट् श्रेणिक क्या कहते? विद्याधर मौन, सभासद मौन, सारी सभा मौन। सन्नाटा सा छा गया।

सम्राट् श्रेणिक कुछ विश्राम के बाद बोला–'व्योमगति! तुम विमान से चले जाओगे। हम चलेंगे अश्व, हाथी और पैदल सेना को लेकर। हमें महीनों लग जाएंगे। तब तक युद्ध पूरा हो जाएगा। हम कहां तक पहुंच पाएंगे? बहुत असमंजस की स्थिति है। क्या करें?'

सम्राट् श्रेणिक के इस कथन में एक विवशता थी, निराशा थी। मौन का साम्राज्य फिर व्याप्त हो गया।

मौन खामोशी के बीच जम्बूकुमार बोला–'महाराज! आप आज्ञा दें, मैं जाना चाहता हूं।'

अब एक नया आश्चर्य पैदा हो गया। जम्बूकुमार का प्रस्ताव चर्चा का विषय बन गया। सबके मन को यह प्रश्न आंदोलित करने लगा–जम्बूकुमार अकेला करेगा क्या? क्या यह दुस्साहस नहीं है?



हर व्यक्ति में भावना होती है और भावना का वेग भी होता है। नदी में जल होता है। कभी-कभी जल का वेग–पूर आता है तो तट भी टूटने लग जाते हैं। कार्य के लिए केवल भावना का वेग पर्याप्त नहीं है। एक संतुलन जरूरी होता है। संतुलन का बोध भगवान महावीर ने इस भाषा में दिया–कोई भी काम करना चाहो, किसी भी काम में लगना चाहो तो पहले इतनी चीजों को देख लो–अपने बल को देखो, अपने स्थाम–प्राण ऊर्जा को देखो, अपनी श्रद्धा को देखो, अपने स्वास्थ्य को देखो। क्षेत्र और काल को देखो। इन सबको देखने के बाद किसी कार्य में लगो।

यह एक महत्त्वपूर्ण पथ-दर्शन है। जो व्यक्ति इन सब चीजों की समीक्षा कर कार्य में प्रवृत्त होता है, वह पार पा जाता है। इन सबकी समीक्षा किए बिना केवल भावनावश किसी बड़े कार्य में प्रवृत्त होता है तो शायद बीच में ही रह जाता है।



अपनी शक्ति को तोलने और नियोजित करने का प्रसंग सामने था। जम्बूकुमार सारी बात ध्यान से सुन रहा था। उसने युद्ध में जाने का प्रस्ताव भी प्रस्तुत कर दिया।

श्रेणिक बोला–'विद्याधरवर! कल युद्ध होगा। जब रत्नचूल इतना शक्तिशाली है, मृगांक कमजोर है, किले में बंदी बना बैठा है, कैसे उसको जीत सकेगा? फिर क्यों लड़ेगा? लड़ना जरूरी है क्या?'

विद्याधर बोला–'महाराज! क्या इस प्रश्न का उत्तर मुझे देना पड़ेगा? आप स्वयं जानते हैं–

महतां न धनं प्राणाः किन्तु मानधनं महत्।
प्राणत्यागे यशस्तिष्ठेत्, मानत्यागे कुतो यशः।।

महाराज! आप विद्वान् हैं, नीतिज्ञ हैं। नीति का वचन है–महान् आदमी का धन प्राण नहीं होता। उनका प्राण उनके लिए धन नहीं है अथवा उनका धन उनके लिए प्राण नहीं है। सम्मान उनका धन होता है। वह है यश। कोई भी बड़ा आदमी इस भौतिक शरीर में नहीं जीता, वह यशःशरीर में जीता है। कहीं भी यश को खंडित नहीं होने देता। वह यश की सुरक्षा करता है। रत्नचूल शक्तिशाली है, मृगांक उतना शक्तिशाली नहीं है। युद्ध होगा, प्राण चला जाएगा किन्तु यश तो रह जाएगा। अगर वह सम्मान को खोकर किले में बंदी बना

बैठा रहेगा तो यश कहां रहेगा? हो सकता है–यश भी चला जाए और मृत्यु भी हो जाए। लड़ेगा तो जीते या न जीते, बचे या न बचे, पर कम से कम यश तो उसका सुरक्षित रहेगा।'

क्रमोऽयं क्षात्रधर्मस्य, सम्मुखत्वं यदाहवे।
वरं प्राणात्ययस्तत्र, नान्यथा जीवनं वरम्।।

युद्ध का भी एक सिद्धांत रहा है, कुछ धारणाएं रही हैं। गीता को पढ़ने वाला जानता है–वासुदेव कृष्ण ने युद्ध के लिए कितना प्रेरित किया था पांडवों को। उस युग में युद्ध पर कितना बल दिया गया, कितना लिखा गया। आज शांति के प्रयत्न बहुत चल रहे हैं। प्राचीनकाल में शांति शायद सहज होती थी, युद्ध के प्रयत्न बहुत चलते थे। इसीलिए बार-बार कहा गया–

जिते च लभ्यते लक्ष्मी, मृते चापि सुरांगना।
क्षणभंगुरको देह, का चिन्ता मरणे रणे।।

युद्ध में मरने की चिन्ता क्या है? यदि विजयी बने तो लक्ष्मी हाथ आ जाएगी। यदि मर गए तो सुरांगना माला लिए तैयार रहेगी। एक मान्यता रही–युद्ध में मरता है, वह स्वर्ग में जाता है। इस शरीर का क्या भरोसा? यह क्षणभंगुर है। शरीर की चिंता क्या है?

युद्ध को बहुत प्रोत्साहन दिया गया। वीरत्व को, पराक्रम को बहुत महत्त्व दिया गया।

विद्याधर बोला–'राजन्! मृगांक लड़ेगा और अपने यश की सुरक्षा के लिए लड़ेगा। जो भग्नाश हो जाते हैं, जिनकी आशा टूट जाती है, वे कभी यशस्वी नहीं रह सकते, कभी सम्मान की सुरक्षा नहीं कर सकते। इसलिए मैंने अपनी बात आपको कह दी, अब जल्दी करें। मैं ज्यादा रुक नहीं सकता। मुझे जल्दी पहुंचना है। आप आज्ञा दें, मैं जा रहा हूं।'

विद्याधर ने आज्ञा मांग ली, जाने की तैयारी कर ली। कोई नहीं बोला। श्रेणिक मौन, सारी सभा मौन। किसी ने मौन नहीं खोला। चारों ओर मौन का वातावरण था।

जम्बूकुमार राज्यसभा के सदस्य नहीं थे। पूरे युवक भी नहीं थे, नव युवा थे। उन्होंने सोचा–विद्याधर इतनी भावना लेकर आया है, खाली जा रहा है। सम्राट् श्रेणिक ने कुछ भी नहीं कहा। यह अच्छा नहीं है।

तत्काल जम्बूकुमार ने मौन खोला–

तिष्ठ तिष्ठ क्षणं यावत्, भवेत् सज्जो नराधिपः।
श्रेणिकोऽयं महासत्त्वो, निर्जिताखिलशात्रवः।।

'विद्याधर! इतनी क्या जल्दी है? जरा ठहरो। महाराज श्रेणिक अपनी सेना को तैयार कर साथ चलेगा। इतनी देर तो तुम ठहरो। तुम जानते नहीं हो–सम्राट् श्रेणिक कितना शक्तिशाली है। इसने कितने शत्रुओं को जीता है! सम्राट् श्रेणिक जाएगा तो रत्नचूल अपने आप भाग जाएगा। जरा ठहरो।'

विद्याधर बोला–'बच्चे! तुम क्या कहते हो? अभी तुम छोटे बच्चे हो। लड़ाई तो कल होने वाली है। सम्राट् श्रेणिक यहां से कब पहुंचेंगे? सौ योजन की दूरी है। पहुंचने में एक मास लग जाएगा तब तक तो सारा कार्य संपन्न हो जाएगा। कल ही युद्ध है, कल ही कुछ होने वाला है। सम्राट् कब पहुंचेंगे?



दूसरी कठिनाई यह है–आप हैं भूमिवासी और वे हैं विद्याधर, आकाशगामी। आकाशगामी के सामने भूमिचर कैसे विजय पा सकेंगे? मैं तो मात्र सूचना देने के लिए आ गया था। मैं जा रहा था, सोचा–रास्ते में राजगृह आएगा, कम से कम मैं सम्राट् श्रेणिक को सूचना तो दे दूं कि क्या हो रहा है और किसलिए हो रहा है। अब ठहरने का अवसर नहीं है।'

श्रेणिक ने सोचा–कुमार बहुत छोटा है, पर उसका विवेक प्रबुद्ध है। उसने बहुत विवेकपूर्ण बात कही। यदि हम कोई नहीं बोलते तो अच्छी बात नहीं होती। सबकी लाज कुमार ने रख ली।

श्रेणिक बोला–'विद्याधर! कुमार जो कह रहा है, वह युक्तियुक्त बात है। तुम उसका खंडन मत करो। यह ठीक कह रहा है। हम चलते हैं, चलकर विजय पाएंगे।'

विद्याधर–'महाराज! आप कह रहे हैं, वह ठीक है परन्तु ऐसा लग रहा है–

यथार्भकः करस्फालैर्ग्रहीतुं जलसंस्थितं।
प्रतीच्छतीन्दुबिम्बं हि, तथा युष्मद् प्रजल्पितम्।।

एक छोटा बच्चा है। उसे चांद बहुत प्यारा है। वह चांद को पकड़ना चाहता है। चंदा मामा पकड़ में नहीं आया। आगे-आगे चला। चलते-चलते तालाब आ गया। तालाब में देखा तो चांद पास में ही था। बच्चा चांद को पकड़ने के लिए लपका। वह प्रतिबिम्ब को क्या पकड़ेगा? ऐसा लगता है–यह छोटा दूधमुंहा किशोर है, नवयुवक है। बात बड़ी कर रहा है। पर यह क्या करेगा? कैसे होगा? संभव नहीं है। एक हास्यास्पद बात है–एक वामन जिसके पास जहाज नहीं है, कह रहा है–मैं समुद्र को पार कर जाऊंगा। समुद्र कोई बरसाती नाला या छोटी नदी नहीं है। कैसे पार करेगा?

राजन्! आपके लिए यह बड़ा प्रश्न है, जो भूमिचर हैं, वे विद्याधर का सामना कैसे कर पाएंगे?'



जम्बूकुमार बोला–'विद्याधरवर! तुम्हारी उपमाएं तो अच्छी हैं। तुम युक्ति जानते हो, बोलना भी जानते हो पर उसमें बहुत सार नहीं है। मैं छोटा हूं तो क्या हुआ?'

बालोऽहं जगतां नाथ, न मे बाला सरस्वती।
अप्राप्ते षोडशे वर्षे, वर्णयामि जगत्त्रयम्।।

भोज के सामने एक बारह-तेरह वर्ष की अवस्था का विद्वान आकर खड़ा हुआ। भोज ने कहा–'क्या यह बोलेगा? बात करेगा?'

उसने बहुत मार्मिक उत्तर दिया–'राजन्! मैं बाल हूं पर मेरी सरस्वती बाल नहीं है। सोलह वर्ष का नहीं हुआ हूं पर मैं जैसा तीन लोक वर्णन करूंगा, वैसा आपकी सभा का कोई पंडित नहीं कर पाएगा।'

जम्बूकुमार बोला–'विद्याधरवर! मैं तुम्हारी हर युक्ति का उत्तर देना चाहता हूं। तुम कहते हो–क्या प्रतिबिम्ब को पकड़ना संभव है? मैं प्रतिबिम्ब को नहीं पकडूंगा, चांद पर ही चला जाऊंगा।'

'तुम कहते हो–बिना नौका के समुद्र को कैसे तैर सकते हो, पर मैं उसे तैर कर पार कर सकता हूं। तुम भी साथ आ जाओ।'

ऐसी चुनौती दी कि विद्याधर देखता रह गया। बड़ा आश्चर्य हुआ।



क्षणान्निरुत्तरो जातः, खगो व्योमगतिस्तदा।
मूकीभूत इवातस्थौ, दर्शितुं तत्पराक्रमम्।।

श्रेणिक ने सोचा–बात उलझी हुई है। न जाएं तो भी अच्छा नहीं और जाना भी बड़ा मुश्किल है। श्रेणिक के मन में थोड़ा भय भी पैदा हो गया। विद्याधरों से लड़ना क्या संभव है? आकाश से उनका कोई एक प्रक्षेपास्त्र चलता है तो सारी सेना समाप्त हो जाती है। क्या होगा? कैसे करें?

जम्बूकुमार ने कहा–'स्वामिन्! आपके मुखारबिन्द पर सलवटें क्यों पड़ी हैं? भय की रेखाएं क्यों खिंची हैं? उदासी क्यों आई है? रत्नचूल को जीतना कोई बड़ा काम नहीं है। आपकी कृपा से सब कुछ हो जाएगा। आप मुझे आज्ञा दें।'

सब लोग आश्चर्य के साथ देख रहे हैं। श्रेणिक को विश्वास हो गया कि कुमार कोई शक्तिशाली व्यक्ति है।

श्रेणिक बोला–'विद्याधर! तुमने ठीक कहा–हम भूमिचर सेना को लेकर कल नहीं पहुंच सकते। हमें तो लंबा समय लगेगा। जम्बूकुमार अकेला युद्ध में जाने के लिए उत्सुक है। क्या इच्छा है तुम्हारी?'

विद्याधर भी असमंजस में पड़ गया, वह बोला–

श्रुत्वा चित्रास्पदं वाक्यमिदमाह खगाधिपः।
गतेनापि त्वया तत्र, कर्तव्यं किमथार्भकः।।

'जम्बूकुमार! बड़े उत्साही हो, युवक हो, जोश है। तुम यह तो बताओ–अवस्था छोटी, अकेले जाकर क्या करोगे? हत्या का दोष हमें ही तो दिलाओगे। यह उलाहना सिर पर रहेगा–एक बच्चे को ले गए और रणभूमि में काम-तमाम कर दिया। यह दोषारोपण कराना है तो भले चलो। अन्यथा तुम्हारी कोई उपयोगिता नहीं है। तुम कुछ कर नहीं पाओगे। तुम जानते हो–मृग का बच्चा अपनी मां के आस-पास बड़ी चपलता करता है, कूदता-फांदता है। वह तब तक घूमता है जब तक सिंह सामने न आ जाए। सिंह के सामने आते ही उसकी चपलता तिरोहित हो जाती है।

तावद्धत्ते स्वसद्मस्थश्चापल्यं मृगशावकः।
यच्चाभिमुखो गर्जन्, क्रुद्धो नायाति केशरी।।

कुमार! तुम अभी तो चपलता दिखा रहे हो। रणभूमि में जाओगे, उस समय बहुत कठिन काम होगा। अभी तुम्हारा अनुभव विकसित नहीं है, तुमने युद्ध देखा नहीं है। तुम छोटे बच्चे हो। तुम रहने दो।'

काफी लंबी चर्चा हुई। विद्याधर और जम्बूकुमार–दोनों में अच्छा संवाद हुआ। जम्बूकुमार बोला–'यह कोई शास्त्रार्थ का, वाद-विवाद का समय नहीं है। यह कोई अखाड़ा नहीं है, मल्ल-कुश्ती नहीं करना है। मैं जाना चाहता हूं और सम्राट् श्रेणिक मुझे भेजना चाहते हैं। तुम्हें क्या कठिनाई है मुझे ले जाने में? तुम्हें तो इतना करना है कि विमान में मुझे बिठा लो। मैं पैदल चल कर नहीं जा सकता। तुम्हारे विमान में जा सकता हूं। आगे क्या होगा, इसकी चिन्ता मत करो। अभी तुम्हारा एक ही काम है–तुम मुझे अपने विमान में ले जाओ।'

भो खगेन्द्र! विमानेस्मिन्नात्मीये मां निवेशय।
इतो नयस्व तत्राशु, यत्रास्ति रत्नचूलकः।।

सम्राट् श्रेणिक का बहुत आग्रह रहा, सबका प्रोत्साहन मिला। माता-पिता को पूछने का अवसर ही नहीं मिला। जम्बूकुमार अकेला तैयार हो गया। कोई साथ नहीं फिर भी कोई चिन्ता नहीं, कोई भय नहीं। बहुत कठिन काम है। वीरकथाओं में वीरों की बहुत सारी कथाएं लिखी गई हैं। महाभारत से लेकर आज तक अनेक युद्ध हुए, उनमें हजारों वीरों के नाम हैं। उनकी सूची में जम्बूकुमार का कहीं नाम नहीं है किन्तु जम्बूकुमार ने जो साहस किया, वैसा साहस क्या कोई कर पाता है?

सामने विद्याधरों की भयंकर सेना और उसके साथ लड़ने के लिए अकेला तैयार हो जाना–क्या कम आश्चर्यजनक है? इसका अर्थ है कि उसने महावीर के इस सिद्धांत को समझ लिया–णो जीवियाशंसा, णो मरणाशंसा–जीवन की आशंसा नहीं, मरने का भय नहीं। अपना कर्तव्य करना है। जीएं या न जीएं? मरें या न मरें? कोई चिन्ता नहीं।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

जो धीर आदमी होता है, वह न्यायपथ से विचलित नहीं होता, चाहे आज मरण हो जाए या युगान्तर के बाद। जम्बूकुमार उन विरल धीर व्यक्तियों की श्रेणी में थे। उन्होंने सोचा–जो कर्तव्यपथ है, उससे विचलित नहीं होना है। विद्याधर जिस आशा से आया है, उसके लिए जो करणीय है वह करना है। जाना है और लड़ना है। मन में इतना साहस, स्थाम, बल, पौरुष और पराक्रम। भगवान महावीर की पौरुष के शब्दों की एक सूची है–**उत्थाणे इ वा, बले इ वा, वीरिए इ वा, पुरिसकार परक्कमे इ वा**–जिसमें उत्थान है, बल है, वीर्य है, पुरुषकार और पराक्रम है, वह बड़ा काम कर सकता है। जिसमें ये सब नहीं, वह व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता।



सबसे बड़ी बात है उत्थान होना। आदमी उठता ही नहीं है। बैठ जाता है, सो जाता है, वह कभी बड़ा काम नहीं कर सकता।

जम्बूकुमार में जो उत्थान था, वह अपूर्व था। कल्पना कर सकते हैं–अकेला युवक, वह भी निहत्था, हाथ में गेडिया भी नहीं। बूढ़ा आदमी हाथ में गेडिया तो रखता है। पास में कुछ भी नहीं। फिर भी कहीं भय की कोई रेखा नहीं।

जम्बूकुमार ने कहा–'विद्याधरवर! मैं तैयार हूं।'

विद्याधर ने सोचा–सम्राट् श्रेणिक का आग्रह है। इसका प्रबल मन है। मुझे कोई भार तो है नहीं। यह विमान में बैठ जाएगा। बोला–'जम्बूकुमार! आओ, चलो।'

विद्याधर व्योमगति की स्वीकृति से जम्बूकुमार के प्रस्थान का पथ प्रशस्त हो गया। स्वागत समारोह विदाई समारोह में परिणत हो गया।

जम्बूकुमार ने सम्राट् श्रेणिक को प्रणाम किया। सभासदों का अभिवादन किया, सबसे प्रसन्न मन विदा ली। सबने साहस के पुतले के प्रति आश्चर्य के साथ मंगलभावनाएं कीं।



जम्बूकुमार पहली बार विमान में चढ़ा। यह भी नया अनुभव था। विद्याधर तो विमान में चढ़ते थे। आजकल तो वायुयान में कोई भी चढ़ सकता है। पुराने जमाने में किराए पर भी विमान चलते नहीं थे। टिकट का प्रावधान ही नहीं था। विद्याधर विमानों पर आकाश की यात्रा करते थे। कोक्कास–कुशल शिल्पी ऐसा यंत्र बनाता था, जिससे आकाश में उड़ा जा सकता था। जैन साहित्य की प्रसिद्ध कथा है–कोक्कास ने एक काठ का वायुयान तैयार किया और उसे आकाश में उड़ा दिया। सामान्यतः भूमि पर रहने वाले आदमी विमान में यात्रा नहीं करते, आकाश में नहीं उड़ते। जमीन पर ही चलते हैं।

नया अनुभव था विमान में बैठना। विमान वहां से चला। पहुंचना था सौ योजन। ज्यादा समय लगा नहीं। जहां रत्नचूल की सेना पड़ाव डाले बैठी है, चारों ओर सेना की छावनी सी बनी हुई है, वहां पहुंच गए।

भयंकर युद्ध की आशंका बनी हुई है। निर्णायक लड़ाई होने वाली है। रत्नचूल की सेना इसलिए निश्चिन्त है कि मृगांक की छोटी-सी सेना क्या करेगी?

विद्याधर ने कहा–'जम्बूकुमार! देखो कितनी बड़ी सेना है।'

जम्बूकुमार बोला–'क्या हुआ?

हस्ति स्थूलवपुः किं चांकुशवशः किं हस्तिमात्रोंकुशः,
वज्रेणाऽपि हता पतंति गिरयः किं वज्रमात्रो गिरिः।
दीपे प्रज्वलिते प्रणस्यति तमः कि दीपमात्रं तमः,
तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः।।

विद्याधरवर! वज्र कितना छोटा है किन्तु जब गिरता है तो बड़े-बड़े पहाड़ चूर-चूर हो जाते हैं। पर्वत कितना बड़ा और वज्र कितना छोटा किन्तु वह पर्वत को चकनाचूर कर देता है।

हाथी कितना भारी भरकम होता है, अंकुश कितना छोटा होता है। क्या अंकुश और हाथी की कोई तुलना है? पर छोटा-सा अंकुश मदोन्मत्त हाथी को भी वश में कर लेता है।

दीया जलता है, अंधकार भाग जाता है। दीया कितना छोटा होता है और अंधकार कितना सघन किन्तु छोटा-सा दीप उसे भगा देता है। क्या दीप और अंधकार बराबर हैं?

कहां पर्वत कहां छोटा-सा वज्र? कहां विशालकाय हाथी कहां छोटा-सा अंकुश? कहां सघन अंधकार और कहां छोटा-सा दीप?

विद्याधर महाशय! आप स्थूल पर न अटकें। शक्ति पर ध्यान दें। छोटा होने से कोई कमजोर नहीं हो जाता।'

विद्याधर व्योमगति जम्बूकुमार की बात सुन अवाक् रह गया। उसने सोचा–जम्बूकुमार नहीं बोल रहा है, कोई शक्ति बोल रही है। कुमार है बड़ा शक्तिशाली। विद्याधर व्योमगति भी आश्चर्य में डूब गया। विद्याधर का भी मनोबल बढ़ गया।

व्योमगति और जम्बूकुमार विमान से उस स्थल के परिपार्श्व में आए, जहां चारों ओर रत्नचूल की





सेना घेरा डाले हुए थी। जम्बूकुमार बोला–'विद्याधरवर! नमस्कार! अब तुम अपना काम करो। मैं अपना काम करूंगा। मैं जाता हूं युद्धस्थल में। तुम मुझे नीचे उतार दो।'

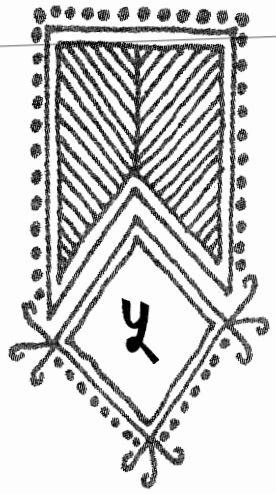
विद्याधर बोला–'क्या कहते हो? अकेले जाओगे? इतने सुकुमार! इतने सुकोमल! इतनी छोटी अवस्था और सामने इतनी बड़ी सेना!'

जम्बूकुमार बोला–'विद्याधरवर! चिन्ता मत करो, निश्चिन्त रहो। मैं क्या करता हूं, यह कल पता चल जाएगा। आज क्यों पूछते हो?'

विद्याधर ने मृदु स्वर में कहा–'कुमार! हम केरला की सीमा के पास पहुंच जाएं। उसके पश्चात् इस संदर्भ में कुछ सोचेंगे।'

विद्याधर का मन तो नहीं हो रहा है कि कुमार को भेजे पर वह उसे रोक भी नहीं पा रहा है।

कल क्या होगा?





विकास का आधार है गति। यदि गति को निकाल दें तो विज्ञान निकम्मा बन जाए, विकास का रथ रुक जाए। सब कुछ गति पर निर्भर है। जैन आगमों में भी गति के बारे में बहुत बतलाया गया। सारा परिवर्तन गति के द्वारा होता है। गति समान नहीं होती। परमाणु की गति बहुत तेज होती है। वह एक समय में नीचे के लोकांत से ऊपर के लोकांत तक चला जाता है। और भी कुछ पदार्थ हैं जिनकी गति तीव्र होती है। यह सब जानते हैं कि मन की गति तेज होती है। यहां बैठे-बैठे जहां चाहें, यात्रा कर आएं। कितनी तीव्र गति है। बाह्य में भी जो नभोयान है, आकाशगामी विमान हैं, उनकी गति तेज होती है। विद्या के द्वारा संचालित विमान की गति और अधिक तीव्र होती है। उन्हें न कहीं रुकना पड़ता, न पेट्रोल लेना पड़ता, न कहीं विश्राम करना पड़ता। बिना पेट्रोल, बिना साधन केवल विद्या के बल पर यान चलता है, तीव्र गति से चलता है।

व्योमगति विद्याधर और जम्बूकुमार विमान में द्रुतगति से चलकर केरला के आसपास आ गए। उसके बाहर के परिसर में भारी कोलाहल सुनाई दे रहा था। जम्बूकुमार ने पूछा–'विद्याधरवर! यह कोलाहल किसका है?'

व्योमगति बोला–'कुमार! यह रत्नचूल की सेना का कोलाहल है। वह केरला के चारों ओर घेरा डाले हुए है। सामने देखो–यह वही सेना है, जो मृगांक राज्य को नष्ट करने आई है, केरला के परिपार्श्व को नष्ट करने के लिए तुली हुई है। मैंने तुम्हें बताया था–एक कन्या को लेकर इतना सारा विनाश हो रहा है।'

जम्बूकुमार ने धीर गंभीर स्वर में कहा–'विद्याधरवर! विमान को रोको। मुझे नीचे उतरना है। राजा रत्नचूल के बल को देखना है।'

रक्ष रक्ष विमानान् भो!, तावद् व्योमगते क्षपात्।
यावता रत्नचूलस्य, द्रक्ष्यामि बलमुद्धतम्।।

विद्याधर बोला–'मुझे राजा मृगांक के पास जाना है। तुम यहां क्या करोगे?'

जम्बूकुमार–'मुझे यहां उतारो।'

'मैं क्या करूंगा, वह तुम्हारे सामने आ जाएगा। तुम्हें डर है कि मैं बालक हूं। तुम डरो मत। मैं वह करूंगा, जो शायद कोई कर नहीं सकेगा।'

व्योमगति–'कुमार! तुम इस नीति सूक्त को जानते हो। जो करते हैं बोलते नहीं हैं, वे उत्तम आदमी होते हैं। जो करते हैं और बोलते हैं, वे मध्यम आदमी होते हैं। जो करते कुछ नहीं, केवल बोलते हैं, वे अधम होते हैं।

कुर्वन्ति न वदन्त्येव, कुर्वन्ति च वदन्ति च।
क्रमादुत्तममध्यास्तेऽधमोऽकुर्वन् वदन्नपि।।

कुमार! क्या तुम्हें नीति का यह वचन ज्ञात नहीं है?'

नीतिकार ने मेघ को सामने रखकर कितना मार्मिक कथन किया है–बादल आकाश में आए। गर्जन करने लगे। चातक ने एकदम मुंह ऊपर कर दिया। क्योंकि चातक नीचे का पानी नहीं पीता। बादल से जो जल की बूंद गिरती है, उसका पानी पीता है। जैसे ही मेघ ने गर्जन किया, चातक एकदम ऊर्ध्वमुख हो गया। तब कवि ने कहा–

रे रे चातक! सावधानमनसा मित्रक्षणं श्रूयता
मंभोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः।
केचित् वृष्टिभिराद्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचन वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः।।



चातक! तुम भोले हो। जो भी बादल आते हैं, तुम मुंह ऊपर कर दीन वचन बोलने लग जाते हो। तुम मेरी बात सावधान होकर सुनो! सब मेघ समान नहीं होते। कुछ केवल गरजते हैं, बरसते नहीं। इतना गरजते हैं कि दूसरों के कानों को बहरा बना देते हैं। कुछ बादल ही ऐसे आते हैं, जो बरसते हैं, धरती को भिगो देते हैं। इसलिए तुम परीक्षा करो, हर किसी बादल के सामने दीन वचन मत बोलो।

व्योमगति ने कहा–'कुमार! मैंने तीन प्रकार के लोग बता दिए। तुम पहले ज्यादा मत बोलो। तुम क्या करोगे, पता चल जाएगा।'

जम्बूकुमार बोला–'मैं बहुत कम बोलता हूं पर जो बोलता हूं, वह होकर रहता है। मुझे लगता है– तुम्हारे भीतर आत्मविश्वास नहीं है। तुम कैसे विद्याधर हो? जिसमें आत्मविश्वास नहीं, संकल्प की शक्ति नहीं, दृढ़ अध्यवसाय नहीं, वह कैसे सफल होगा? मुझे ये सब प्राप्त हैं इसलिए तुम चिन्ता मत करो।'

विद्याधर जम्बूकुमार के मनोबल और आत्मविश्वास को देखकर चकित रह गया। वह जम्बूकुमार को उतरने से रोक नहीं सका। जम्बूकुमार विमान से नीचे उतर गया। उसने विद्याधर व्योमगति से कहा–'तुम्हें जहां जाना है, चले जाओ। मुझे यहीं छोड़ दो। मुझे कोई जरूरत नहीं है।'

विद्याधर ने सोचा–मैं एक नवयुवा को शत्रुओं के बीच अकेले छोड़कर कैसे चला जाऊं? कुछ हो गया तो सम्राट् श्रेणिक क्या कहेंगे? हमारे होनहार युवा नागरिक को तुम ले गए और यह दुर्दशा कर दी।

कुमार का आग्रह है–मुझे यहां छोड़ दो। मेरा मन नहीं मानता कि मैं इसे अकेला छोड़ दूं। दोनों ओर समस्या है। वह संशय की स्थिति में, दोलायमान अवस्था में आ गया। वह न तो जा पा रहा है, न कुछ बोल पा रहा है।

जम्बूकुमार ने पुनः कहा–'व्योमगति! तुम उलझ गए। तुम उलझो मत। विचार मत करो। चिन्ता की कोई बात नहीं है। तुम देखो तो सही क्या होता है!'

जम्बूकुमार ने बहुत आग्रह किया तब विद्याधर ने कहा–'जैसा ठीक लगे।'

व्योमगति विमान में उड़कर राजा मृगांक के पास चला गया। अकेला जम्बूकुमार वहां खड़ा है। इधर जंगल, उधर भयंकर विशाल सेना। पर एक रोम में भी कहीं विचलन नहीं। वह आगे बढ़ा। सेना की छावनी के पास पहुंचा। सैनिक चारों ओर पहरा दे रहे हैं। किसी से पूछा नहीं, बात नहीं की। सीधा सेना के बीच घुस गया और चलने लगा। एक अजनबी आदमी सेना में आ जाए, तो बड़ी समस्या हो जाती है। कुछ वर्ष पहले एक विमान शस्त्र गिराने के लिए देश में आ गया, पूरे देश में कोहराम मच गया, कोलाहल हो गया। कहा गया–सरकार जागरूक नहीं है। सेना में कोई आदमी ऐसे घुस जाए और सेना कुछ करे नहीं, यह कैसे संभव है?

जम्बूकुमार छिप कर नहीं घुसा, मुख्य मार्ग से सीना तानकर जा रहा है। सैनिकों ने देखा–यह कोई नया आदमी है। उसका संकल्प बल, उसकी सम्मोहिनी मुद्रा, आकर्षक व्यक्तित्व ऐसा था कि उसे देखते ही सैनिक विमुग्ध बन गए। एक सैनिक दूसरे सैनिक से कहने लगा–

अहो! देवाधिनाथोऽयं, आयातो लीलया स्वतः।
दानवोप्यहिनाथो वा, नागदेवो समागतः।।

अरे! देखो कौन आया है? आदमी तो इतना सुन्दर, मोहक हो नहीं सकता। लगता है कोई देवराज आया है अथवा कोई दानवेन्द्र आया है? यह अवश्य कोई देव है। आदमी ऐसा हो नहीं सकता। कौन आया है? क्या कामदेव स्वयं नहीं आ गया है? उसे रोकना, मनाही करना, पूछना–किसी की हिम्मत नहीं हुई। न किसी ने पूछा–कैसे जा रहे हो? न रोका। जहां प्रवेश आरक्षित होता है, वहां अनजाने आदमी को घुसने नहीं दिया जाता, उसे रोका जाता है पर रोकने की बात सब भूल गए। सब जम्बूकुमार के व्यक्तित्व और आभामंडल की चर्चा में डूब गए। कौन है–यह पूछने की किसी ने चेष्टा ही नहीं की।

द्रष्टुं वा सैन्यमस्माकमाजगाम शचीपतिः।
अथ कश्चिन् महाभागो, लक्ष्मीवान् किं वणिक्पतिः।।

एक सैनिक बोला–'हो सकता है–इंद्र स्वयं आ गए हों हमारी सेना की व्यूहरचना देखने के लिए। यह तो निश्चित है कि आज हमारी सेना ने जो व्यूहरचना की है वह बहुत जबर्दस्त है। इन्द्र के मन में भी विकल्प उठा हो कि कभी लड़ना पड़े तो व्यूहरचना कैसी की जाए?'

यह न मानें–केवल आदमी लड़ता है, देवता भी लड़ते हैं। सौधर्मेन्द्र और ईशानेन्द्र में भी कभी-कभी लड़ाई हो जाती है। पहले वैमानिक देव–सौधर्म देवलोक का इन्द्र शक्र और दूसरे देवलोक के ईशानेन्द्र में भी कभी-कभी संघर्ष हो जाता है। उनमें लड़ाई इतनी भयंकर होती है कि समाप्त नहीं होती। कोई हारता

नहीं, कोई जीतता नहीं। लड़ाई चलती रहती है। सनत्कुमार इन्द्र को पता चलता है, वह आता है और कहता है–**मा सक्का मा इसाणा**–शक्र और ईशान युद्ध को बंद करो। जब दोनों से ऊपर का वह देव आता है, उसकी बात माननी पड़ती है तब लड़ाई बंद होती है। इंद्र को भी सेना की व्यूहरचना करनी पड़ती है। हो सकता है–इस सुन्दर व्यूहरचना को देखने के लिए इन्द्र भी आ गया हो।

एक सैनिक ने कहा–'छोड़ो इस बात को। कौन इंद्र यहां आएगा? कोई विद्याधर है, रत्नचूल का सहयोग करने के लिए यहां आया होगा? अब रत्नचूल के पास जा रहा है।'

किसी ने कहा–'कोई धूर्त आदमी तो नहीं आ गया है? अपने को ठगने, धोखा देने के लिए दूसरे वेश में तो नहीं आ गया है?'

अथ कश्चिच्छलान्वेषी, धूर्त्तो वेषधरो नरः।
वावदूकश्च वाचालः, पाटवाच्चित्तरंजकः।।

नाना प्रकार के विकल्प/कल्पनाएं सैनिकों के मन में चल रही हैं पर आगे कोई नहीं बढ़ा, किसी ने रास्ता नहीं रोका, किसी ने सामने आकर यह नहीं पूछा–तुम कहां जा रहे हो?

जम्बूकुमार आगे बढ़ता गया। सेना की छावनी को पार कर राजा रत्नचूल के मुख्य कक्ष के परिपार्श्व में पहुंच गया। क्या यह संभव है कि सेना को चीर कर अकेला युवक ऐसे चला जाए? संभव नहीं है किन्तु असंभव भी नहीं है। यह एक संकल्प का प्रयोग है। जिसका संकल्प प्रबल होता है, वह ऐसा जादुई काम कर लेता है कि दूसरा आदमी कल्पना नहीं कर सकता। संकल्प का बल बहुत बड़ा होता है। संकल्प के साथ ही सम्मोहन पैदा होता है।



स्टालिन अपने समय का कठोर शासक था। एक व्यक्ति ने कुछ करतब दिखाए। स्टालिन को पता चला कि यह व्यक्ति ऐसा है, जहां चाहे जा सकता है। उसे स्टालिन के सामने लाया गया।

स्टालिन ने कहा–'तुम्हारा चमत्कार तब मानूं जब तुम मेरे पास पहुंच जाओ।'

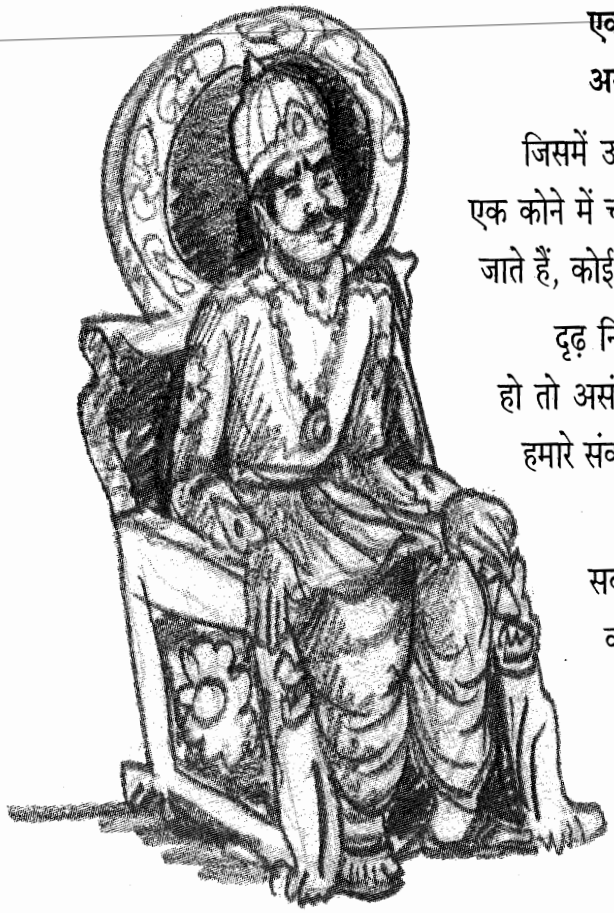
युवक ने कहा–'पहुंच सकता हूं।'

स्टालिन ने सुरक्षा की कठोर व्यवस्था की, पग-पग पर सैनिकों का पहरा लगा दिया। यह निर्देश दे दिया–कोई भी आदमी भीतर न आने पाए। किन्तु जिस व्यक्ति को पहुंचना था, वह स्टालिन के पास पहुंच गया। स्टालिन ने पूछा–'यह कैसे हुआ? यह हो नहीं सकता।'

उसने कहा–'यह आप खोज करें कि कैसे हुआ। मैं तो आ गया।'

संकल्प इतना मजबूत था कि सबको यह लगा–हमारा अधिकारी भीतर जा रहा है, सब उसे दंडवत् नमस्कार कर रहे हैं। कोई रोक नहीं पा रहा है।

संकल्प का बल बहुत बड़ा होता है। ज्ञातासूत्र में लिखा है–**णिच्छियववसियस्स एत्थ किं दुक्करं करणयाए**–जिसका निश्चय अटल होता है, जिसका व्यवसाय अटल होता है, उसके लिए ऐसा क्या है, जो दुष्कर हो, कठिन हो। उसके लिए दुष्कर कुछ भी नहीं है। निश्चय अटल है तो आदमी जो चाहे कर सकता है।



एकस्मिन् मनसः कोणे, पुरुषामुत्साहशालिनाम्।
अनायासेन सम्मांति, भुवनानि चतुर्दश।।

जिसमें उत्साह और संकल्प का बल है, उसके मन के एक कोने में चौदह लोक समा जाते हैं। बिना प्रयत्न के समा जाते हैं, कोई कठिनाई नहीं होती।

दृढ़ निश्चय, दृढ़ आस्था, दृढ़ विश्वास, दृढ़ संकल्प हो तो असंभव जैसी बात संभव बनने लग जाती है। यह हमारे संकल्प का चमत्कार है।

जम्बूकुमार ने दृढ़ संकल्प का प्रयोग किया, सब सम्मोहित हो गए। सब देखते रहे, पर किसी की हिम्मत नहीं हुई, कोई कुछ बोल नहीं सका, कोई कुछ कर नहीं सका। वह निर्विघ्न सेना की छावनी को पार कर गया। राजा रत्नचूल के पास पहुंच गया। कक्ष के भीतर हैं विद्याधरपति रत्नचूल और बाहर पहरा दे रहे हैं संतरी। वह दरवाजे पर गया, जाते ही द्वारपाल से बोला–'द्वारपाल! जाओ, राजा से कह दो। एक व्यक्ति बाहर खड़ा है, आपसे मिलना चाहता है।'

जम्बूकुमार इस प्रकार बोला, ऐसी भाषा में बोला कि द्वारपाल हतप्रभ हो गया। पुद्गलों की इतनी चामत्कारिक शक्ति होती है, एक बात ऐसी कही जाती है कि सामने वाला एकदम झुक जाता है। द्वारपाल सहम गया, तत्काल भीतर आया। रत्नचूल से बोला–'महाराज! जय हो। एक कोई आदमी आया है। अजनबी है। ऐसा आदमी मैंने आज तक देखा नहीं। बाहर खड़ा है। बहुत रोब के साथ कह रहा है कि मुझे जल्दी मिलना है। तुम आज्ञा प्राप्त करो। महाराज! है तो कोई विचित्र प्राणी। लाऊं या नहीं?'

रत्नचूल के मन में भी मिलने की इच्छा प्रबल हो गई, बोला–'उसे जल्दी भीतर लाओ।'

द्वारपाल बाहर आया, बोला–'भाई! तुम बड़े सौभाग्यशाली हो। महाराजाधिराज ने तुम्हें जल्दी बुलाया है।'

जम्बूकुमार भीतर गया। उसने अभिवादन किया, न हाथ जोड़ा, न सिर झुकाया, न मधुर शब्द बोला, एकदम खड़ा हो गया।

रत्नचूल यह देखकर विस्मित हो गया। जम्बूकुमार के चेहरे का ओज और तेज उसे मुग्ध बना रहा था। मुख की कांति विशिष्ट होने की सूचना दे रही थी–

दृष्ट्वा तं रत्नचूलोऽथ, क्षणं विस्मयमाप सः।
कथं संभावि दूतत्वमस्यकांतिमतः स्वतः।।

रत्नचूल ने पूछा–'तुम कौन हो?'

'राजन्! मैं राजा मृगांक का दूत हूं, जो आपका शत्रु है, जिसको सताने के लिए, जिसका राज्य छीनने के लिए आप आए हैं।'

रत्नचूल ने सोचा–ऐसा व्यक्ति, जो दिव्य लग रहा है, दूत तो हो नहीं सकता। रत्नचूल बोला–'तुम दूत तो नहीं लगते। सच्ची बात बताओ।'

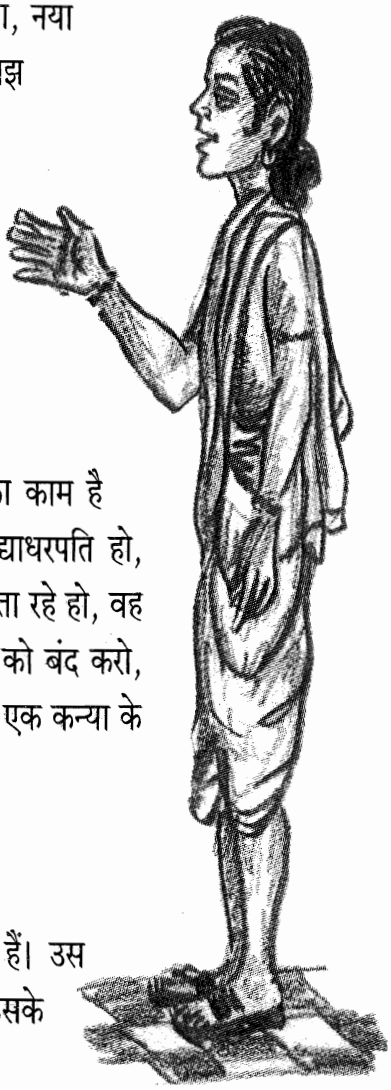
'मैं दूत बनकर आया हूं।'

'तुम दूत भी हो और व्यवहार भी नहीं जानते। विरोधी राजा का दूत भी आएगा तो नमस्कार करेगा, शिष्टाचार का पालन करेगा, अभिवादन करेगा। तुम कैसे दूत हो? तुमने न हाथ जोड़े, न सिर झुकाया, कुछ भी नहीं किया। तुम बिल्कुल अलग लग रहे हो।'

राजा रत्नचूल ने सोचा–यह कोई देव है या कोई अपूर्व मानव। लगता है हमारी परीक्षा करने के लिए आ गया है।

नूनं कश्चिदपूर्वोऽयं, देवो वा मानवोऽथवा।
परीक्षां कर्तुमायातो, मद्बलस्यापि गौरवात्।।

राजा रत्नचूल भी विकल्पों में उलझ गया। जब कोई नई घटना, नया वातावरण सामने आता है तब आदमी निर्णय नहीं कर पाता, उलझ जाता है।





रत्नचूल ने कुछ क्षण चिन्तन के पश्चात् पूछा–'कुमार! यह तो बताओ, तुम किस देश से आए हो? मेरे पास क्यों आए हो?'

'राजन्! मैं कहां से आया हूं, यह तो अभी नहीं बताऊंगा पर क्यों आया हूं इसका उत्तर देना चाहता हूं। राजन्! तुम अन्याय कर रहे हो। यह अच्छा नहीं है। मैं तुम्हें समझाने के लिए आया हूं।'

जम्बूकुमार अब दूत नहीं रहा, अवधूत बन गया। अवधूत का काम है शिक्षा देना। वह शिक्षा देने लगा–'रत्नचूल! मैं मानता हूं तुम विद्याधरपति हो, शक्तिशाली हो पर तुम जो अन्याय कर रहे हो, किसी कमजोर को सता रहे हो, वह अच्छा नहीं है। मैं यह कहने के लिए आया हूं कि तुम इस अन्याय को बंद करो, लड़ाई को बंद करो, सेना का घेरा हटा लो, तुम दुराग्रह में मत फंसो। एक कन्या के लिए इतना बड़ा संग्राम कर रहे हो, यह उपयुक्त नहीं है।'

संति योषित् सहस्राणि, सुलभानि पदे पदे।
तवानयैव किं साध्यं, नेति विद्मोऽधुना वयम्।।

'हजारों-हजारों कन्याएं, सुन्दर स्त्रियां पग-पग पर मिलती हैं। उस स्थिति में एक कन्या के लिए तुमने इतना बड़ा युद्ध शुरू कर दिया। इसके द्वारा तुम क्या सिद्ध करना चाहते हो?'

'राजा रत्नचूल! मेरी बात ध्यान से सुनो। इस युद्ध को बंद करो। तुम्हें सुख और शांति के साथ जीना है तो चुपचाप अपनी राजधानी चले जाओ। अन्यथा इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।'

रत्नचूल इतना तेज विद्याधर, सैकड़ों विद्याएं जिसे सिद्ध हैं, उसके सामने अनजान युवक सीख देने लग जाए तो कैसा लगेगा? कभी-कभी छोटा नादान बच्चा सीख देने लग जाता है तो बड़े लोग कहते हैं–तुमने जितना अन्न खाया है, उतना मैंने नमक खाया है। तुम मुझे क्या सीख देते हो?

रत्नचूल स्तब्ध हो गया। न कोई शस्त्र, न कोई अस्त्र, कुछ भी पास में नहीं, जिससे कोई डरे। किन्तु उसकी वाणी में इतना ओज था कि उसके एक-एक शब्द का रत्नचूल के सिर पर बहुत भार पड़ रहा है। यह है पुद्गल का चमत्कार। शस्त्र क्या है? पुद्गल का ही तो चमत्कार है। जिसकी भाषा वर्गणा में इस प्रकार के शक्तिशाली परमाणु पुद्गल होते हैं तो वे बिना शस्त्र भी शस्त्र बन जाते हैं। वाणी का शस्त्र जितना शक्तिशाली होता है उतना एटम बम भी नहीं होता।

इस वाक् शक्ति, वचन सिद्धि को जैन आचार्यों ने आस्यविष लब्धि कहा है। इसमें अनुग्रह-निग्रह की शक्ति होती है। आस्यविष लब्धि से संपन्न व्यक्ति एक शब्द बोलता है, कल्याण हो जाता है। एक शब्द कभी ऐसा निकल जाता है कि सामने वाला व्यक्ति घोर विपत्ति में फंस जाता है।

कुमार को ऐसी कोई शक्ति प्राप्त थी इसीलिए वह शत्रुओं के बीच अकेला खड़ा है और जो सबसे भयंकर नाग है, उसको ललकार रहा है। जो शेर अपनी गुफा में सो रहा है, उससे कह रहा है–आओ, लड़ो।

अथ चेत् बलसामर्थ्यान् मात्सर्यं वहसि ध्रुवम्।
इदमज्ञविलासोत्थं, दृश्यतेऽद्वैतवादवत्।।

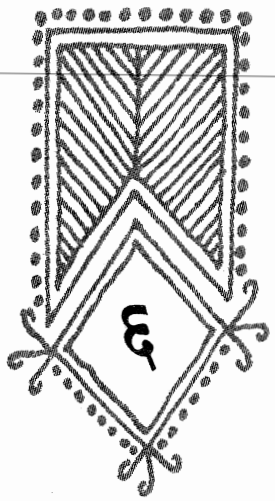
'राजन्! राजा मृगांक ने कहलाया है–यदि तुम इस आग्रह को नहीं छोड़ते हो, युद्ध को नहीं समेटते हो तो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। उतर आओ रणभूमि में। फिर देखना, तुम्हारा क्या होगा?'

रत्नचूल के कानों में जम्बूकुमार के ये शब्द कांटे जैसे चुभ रहे हैं। वह जम्बूकुमार को सुनना नहीं चाहता और मना करने की स्थिति में भी नहीं है। विचित्र असमंजस की स्थिति है।

इस हितोपदेश की क्या प्रतिक्रिया होगी?

युद्ध के बादल बिखरेंगे या सघन बनेंगे?

शांतिमय शीतल शशि का साक्षात्कार होगा या अशांति की काली कजरारी घटाओं का?



मनुष्य की मनोवृत्ति है कि वह दूसरे की शिक्षा को बहुत कम पसंद करता है। उसके भीतर एक अहं होता है और वह अहं बार-बार फुफकारता है। काला नाग जितना नहीं फुफकारता, उतना अहं फुफकारता है। दूसरे की बात को सुनने नहीं देता और उस पर सम्यक् श्रद्धा तो करने ही नहीं देता। जब अहं प्रबल होता है, अनेक समस्याएं पैदा होती हैं। औरों की बात छोड़ दें। ये जो पशु-पक्षी होते हैं, उनमें भी अहं होता है। वे दूसरे की बात सुनना पसंद नहीं करते।

प्रसिद्ध कथा है। बया ने बंदर को सीख दी–बरसात हो रही है। ठिठुराने वाली, हाड़ कंपाने वाली सर्दी में कांप रहा है। घर क्यों नहीं बना लेता?



बया ने कोई बुरी बात नहीं कही किन्तु अहं यह नहीं देखता कि बुरी बात कही जा रही है या अच्छी। अहं इतना बलवान होता है कि व्यक्ति सोचता है–मुझे कहने वाला कौन? बंदर आवेश में आ गया, छलांग लगाई और यह कहते हुए बया का कलापूर्ण घर तोड़ दिया–मैं घर बनाने में समर्थ नहीं हूं किन्तु घर तोड़ने में समर्थ हूं।

जम्बूकुमार बहुत अच्छी बात कह रहा है किन्तु रत्नचूल का अहं इतना प्रबल है कि उसे वह प्रिय नहीं लग रही है। जम्बूकुमार हितवचन कह रहा है पर उसके सिर पर चोट लग रही है, हृदय में कांटा सा चुभ रहा है। वह सोच रहा है कि यह कब बोलना बंद करे?

जम्बूकुमार ने बोलना बंद नहीं किया। उसने अपना वक्तव्य जारी रखा–'विद्याधरपति! तुम शक्तिशाली हो, जीत जाओगे। आखिर जीतने के बाद क्या होगा?'

न कोपि विजयी भूत्वा, निष्प्रत्यूहविजृम्भितः।
संसृतावत्र जीवानां, प्रत्यक्षं यमभक्षणात्।।

जीतकर भी कोई निर्विघ्न जीवन नहीं जी सकता। आज कोई जीत गया। जो हारा है, वह अथवा उसकी संतान कल फिर तुम पर आक्रमण करेगी। यह वैर का अनुबंध चलता रहेगा।

न हि वैरेण वैराणि समन्तीध कदाचन।

बुद्ध ने कहा था–'वैर से कभी वैर शांत नहीं होता। वैर मैत्री से समाप्त होता है। वैर से वैर को नहीं मिटाया जा सकता, आग से आग को नहीं बुझाया जा सकता। जल से उसे शांत किया जा सकता है।'

'विद्याधरपति! तुम जीत जाओगे तो क्या सुख से जी पाओगे? क्या यह वैर की आग तुम्हें शांति से जीने देगी? निरन्तर मन में भय बना रहेगा–मैंने इसको हराया है, वह कहीं फिर आक्रमण न कर दे। यह विकल्प बार-बार तुम्हारे मन में आता रहेगा। मैं तुम्हें आज महावीर का एक संदेश सुनाने आया हूं। तुम महावीर को जानते हो, जो तीर्थंकर हैं?'

'हां!'

'उनका संदेश है–**अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो सव्विन्दिएहिं सुसमाहिएहिं।**

आत्मा की रक्षा करो, अपनी रक्षा करो। तुम तो अभी दूसरों को सताने में लगे हुए हो। महावीर ने रक्षा का उपाय भी बताया–जब सब इंद्रियों पर हमारा नियंत्रण हो जाए तब आत्मा की सुरक्षा हो सकती है।'

'विद्याधरपति! तुम बहुत शक्तिशाली हो, विद्याधरों के प्रमुख हो, किन्तु इंद्रियजयी नहीं हो। अगर इंद्रियजयी होते तो एक कन्या के लिए इतना बड़ा युद्ध का समारंभ नहीं करते।

क्या तुम राजनीति विशारदों के इस मत को जानते हो–शासक को इंद्रियजयी होना चाहिए। जो शासक या राजा इंद्रियजयी नहीं होता, वह स्वयं नष्ट होता है, प्रजा को भी नष्ट कर देता है।

विद्याधरपति! मैंने तुम्हें महावीर का अच्छा संदेश सुनाया है, जो तुम्हारे लिए हितकर है। मैं इसी संदेश को सुनाने के लिए आया हूं। तुम इस बात पर अनुचिंतन करो–जो अपनी आत्मा की रक्षा नहीं करता, अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं करता, वह नष्ट होता है, दुःख पाता है। जो अपनी आत्मा की रक्षा करता है, इंद्रियों पर विजय पा लेता है, वह दुःखों से मुक्त हो जाता है।

विद्याधरपति! मैं तुम्हारा विरोध नहीं कर रहा हूं। मैं मानता हूं कि मेरी बात तुम्हें प्रिय नहीं लग रही है किन्तु मैं तुम्हारे हित की बात कह रहा हूं। तुम अपने हित को सामने रख कर सोचो।'

रत्नचूलखगाधीश! सद्विचारपरो भव।
बलिनोप्युत्पथारूढाः, क्षणान्नष्टाः प्रमादिनः।।

'रत्नचूल! सद्विचार को विकसित करो। लगता है तुम्हारे दिमाग में काम का असद् विचार घुस गया है, उसे तुम दूर करो। यह काम का विचार तुम्हें युद्ध में झोंक रहा है। मैं चाहता हूं–तुम अच्छा विचार करो, अच्छा सोचो। जब दिमाग में अच्छा विचार होता है तब सब ओर शांति होती है। जब दिमाग में कोई बुरा विचार घुस जाता है तब चारों ओर विनाश ही विनाश हो जाता है। तुम निषेधात्मक विचार को छोड़ो, विधेयात्मक विचार को शुरू करो। जैसे-जैसे निषेधात्मक विचार को छोड़ोगे, विधेयात्मक विचार को आगे बढ़ाओगे, यह युद्ध समाप्त हो जाएगा। तुम वस्तुतः विजयी बन जाओगे।'

जम्बूकुमार ने प्रश्न किया–'विद्याधरपति! क्या आपको यह पता है कि राजा मृगांक यह कन्या किसको देने का निश्चय कर चुका है?'

रत्नचूल–'नहीं।'

'विद्याधरवर! मृगांक इस कन्या को राजा श्रेणिक को देने का निश्चय कर चुका है। अब तुम उस पर अधिकार करना चाहते हो, उसे मांग रहे हो, क्या यह तुम्हारा न्यायोचित कार्य है? मृगांक बेचारा क्या करेगा? वह कन्या को एक बार जिसे देने का वचन दे चुका है, तुम्हें फिर कैसे देगा? तुम ठंडे दिमाग से सोचो।'

जम्बूकुमार ने एक शीतल माला पिरोई, उन वचन पुष्पों की पिरोई जो शांतिदायक हैं। विद्याधर को ऐसी गर्म लगी कि जैसे आग ही परोस रहा है। वह उबल गया, भीतर ही भीतर आकुल हो गया।

इति सूक्तिवचःपुष्पैर्गुंफितां चातिशीतलां।
मालामुष्णतरां मेने, विरहीव खगस्तदा।।

रत्नचूल बोला–'ओ बालक! अभी तुम नवयुवक हो। तुमने अपना परिचय दिया–मैं मृगांक का दूत हूं। दूत बन कर आए हो। तुम दूत का शिष्टाचार भी नहीं जानते। दूत की भांति शिष्ट बोलना भी नहीं जानते।'

दूत! मन्योऽसि रे बाल, यस्त्वं अभ्यागतो गृहे।
अवध्योऽसि ततो नान्या, गतिस्त्वादृक् शठस्य वै।।

हिन्दुस्तान के शासक ने चीन के सम्राट् के पास अपना दूत भेजा था। दूत वहां गया। चीन और भारत का पुराना संबंध था। चीन, भूटान और भारत–इनकी संस्कृतियां हजारों-हजारों वर्ष पुरानी हैं। भारत के दूत ने वहां प्रणाम किया। चीन के सम्राट् ने पूछ लिया–'मेरी क्या स्थिति है? तुम्हारा सम्राट् और मैं–दोनों में तुम क्या तुलना करते हो? क्या हम दोनों समान हैं?'

दूत बोला–'बिल्कुल नहीं। मेरा सम्राट् दूज के चांद के समान है, आप पूनम के चांद के समान।'

चीन का सम्राट् खुश हो गया।



कुमार! उस दूत ने चीन के सम्राट् को खुश कर दिया। उसने कितनी शिष्ट भाषा में अपनी बात कही। तुम छोटे बच्चे हो। पता नहीं, किसने तुम्हें दूत बना दिया! दूत का कितना गंभीर दायित्व होता है। दूत चाहे तो लड़ा देता है और चाहे तो परस्पर में समझौता करा देता है। तुम्हारा चयन ठीक नहीं हुआ। किसी ने बनाया है या तुम अपने आप बनकर आ गए? लगता है किसी ने बनाया तो नहीं है। अपने आप बन कर आ गए हो। पर मैं क्या करूं? मेरे सामने समस्या है।

तुम कहते हो–मैं दूत हूं और दूत अवध्य होता है। इसलिए मैं तुमको मार तो नहीं सकता। किन्तु तुमने जो अशिष्ट आचरण किया है, उससे ऐसा लगता है–**स्वामीकार्यविनाशकृत्**–तुम अपने स्वामी के कार्य को बिगाड़ रहे हो। मुझे इतना आवेश आ गया है कि अब तो मैं तुम्हारे स्वामी को मारकर ही दम लूंगा। यदि तुम शांतिपूर्ण बात कहते तो मैं फिर भी कुछ सोचता। तुमने तो मुझे सीख देनी शुरू कर दी। मैं कैसे तुम्हारी बात मानूं? तुम वाचाल हो, ज्यादा बोलते हो। जब समय आएगा तब पता लगेगा।'

जीरकः किमु हेमाद्रिं, भेत्तुमुत्सहते शठः।
मृगांकः श्रेणिको नालं, मामाराधयितुं युधि।।

'तुम्हारी बात सुनकर मुझे ऐसा लगा–एक जीरे का कण कहता है कि मेरु के साथ मेरी तुलना करो। जीरा बड़ा है या मेरु पर्वत? तुम कभी तो मृगांक की बात करते हो और कभी श्रेणिक की। कहां श्रेणिक कहां मृगांक और कहां मैं रत्नचूल? तुम किसके साथ तुलना कर रहे हो? क्या जीरे की मेरु के साथ तुलना कर रहे हो? तुम नहीं जानते–मैं विद्याधरों का स्वामी हूं और श्रेणिक भूमि पर रहने वाला है।'

'कुमार! हम विद्याधर आकाश मार्ग में चलने वाले हैं, वायुयान का प्रयोग करने वाले हैं। श्रेणिक भूमि पर पैर घसीटते-घसीटते चलने वाला है, पूरी चप्पल भी नहीं उठा पाता होगा। तुम कहां तुलना कर रहे हो? श्रेणिक से क्या डरा रहे हो? हमारे बल और सामर्थ्य में कोई तुलना नहीं है। अब तुम मौन हो जाओ। चले जाओ। ज्यादा रहना तुम्हारे हित में नहीं होगा।' यह कहकर रत्नचूल एकदम गंभीर बन गया।

जम्बूकुमार बोला–'रत्नचूल! मैं जो कह रहा हूं, तुम्हारे हित के लिए कह रहा हूं। पर लगता है–तुम्हारे मन में इतना मात्सर्य है, इतनी ईर्ष्या है कि उस पर एक बूंद भी अमृत की टिक नहीं पा रही है। अपने हित की बात भी तुम सुन नहीं पा रहे हो। तुम्हें यह घमंड है कि हम आकाश में उड़ने वाले हैं। आप इतना घमंड न करें। कौआ भी आकाश में उड़ता है। आकाश में उड़ने से कोई बड़ा बन जाए तो कौआ भी बड़ा बन जाएगा। कौआ आकाश में उड़ता है पर एक बाण लगता है, नीचे गिर जाता है। तुम घमंड मत करो। जब तक मेरा यह भुज-दंड तुम्हारे सिर पर नहीं आ रहा है तब तक घमंड करते हो। जब यह भुज-दंड शिर पर आएगा, आकाशगामित्व काम नहीं देगा, विमान काम नहीं देगा।'

वायसस्यापि विद्येत, वियद्गामित्वमंजसा।
सोऽपि जर्जरितो बाणैर्दृष्टो भूमौ पतन्निह।।

कुमार ने स्पष्टोक्ति कर दी। वह बात बिल्कुल शांत स्थिति में कर रहा है। न भय, न आवेश, न उद्वेग।

रत्नचूल ने सोचा–यह कुमार ऐसे नहीं मानेगा। एक बिगुल बजाई, एक संकेत किया। चारों ओर सैनिक ही सैनिक आ गए, पूछा–'किं करोमि? क्या करें? आदेश दें।'

रत्नचूल ने कहा–'इस कुमार को बाहर निकालो।'

सैनिक पास में आए, पर उसे हाथ लगाने की हिम्मत किसी की नहीं हो रही है। पता नहीं क्या हुआ, कोई हाथ आगे नहीं बढ़ा पा रहा है।

रत्नचूल ने देखा–क्या हो गया? सब स्तब्ध क्यों खड़े हैं?

एक विद्या होती है स्तंभनी विद्या। उसका प्रयोग करो, जो जहां है, वह वहीं स्तब्ध खड़ा रह जाएगा। जहां हाथ हैं, पैर हैं, सब वहीं वैसे ही रह जाएंगे। कुछ भी प्रकंपन नहीं हो सकेगा। ये जितने प्रक्षेपास्त्र, अणुअस्त्र बनाए जा रहे हैं, कोई स्तंभनी विद्या का प्रयोग करे तो सब निकम्मे हो जाएंगे। कोई चल ही नहीं पाएगा।

सैनिकों को लगा–इसके पास कोई स्तंभनी विद्या है। हमारे हाथ उठ नहीं रहे हैं।

रत्नचूल बोला–'इसको गलहत्था देकर निकालो।'

जम्बूकुमार ने कहा–'निकालने की जरूरत नहीं है। मैं जा रहा हूं। मेरे पीछे सब आ जाओ।'

सैनिक एक अजीब दृश्य देख रहे हैं। न पैर काम कर रहे हैं, न हाथ।



जम्बूकुमार ने कहा–'रत्नचूल! मैंने बहुत समझाया। मैंने सोचा था–तुम हित की बात समझ जाओगे। मुझे कोई लेना-देना नहीं है। न श्रेणिक से लेना-देना, न मृगांक से लेना-देना, न तुमसे लेना-देना। मैं जैन धर्म को जानता हूं, महावीर को जानता हूं। महावीर ने यह कहा–अनावश्यक हिंसा मत करो। मैं अनावश्यक हिंसा को टालने के लिए आया हूं। मैंने वही बात तुमको समझाने का प्रयत्न किया। किन्तु–**पयःपानं भुजंगानां, केवलं विषवर्धनम्**–सांप को दूध पिलाना जहर बढ़ाने के लिए होता है। मेरा प्रयत्न ऐसा ही हुआ। उसका कोई सार्थक परिणाम नहीं आया। राजन्! अब मैं रणभूमि में जा रहा हूं।'

यह कह कर जम्बूकुमार कक्ष से बाहर आ गया। उसके पीछे सैकड़ों सैनिक हो गए।



जम्बूकुमार युद्धभूमि में पहुंच गया। स्वामी का आदेश प्राप्त कर सैनिक पीछे-पीछे दौड़े पर कुछ कर नहीं पाए। ऐसा प्रतीत होता है–जन्म के साथ ही जम्बूकुमार में कुछ शक्तियां विकसित हो गईं। अन्यथा अकेला सामना कैसे कर पाता? उसमें कुछ शक्तियां/विद्याएं विकसित थीं। सैनिक पास में जाते हैं। वह केवल दोर्दण्ड–भुजा को उठाता है, सामने वाले सैनिक को उसका प्रहार बहुत तीक्ष्ण लगता है और वह धराशायी हो जाता है।

सब आश्चर्य में हैं। क्या बात है? यह कौन आ गया? क्या कोई दैवी-शक्ति है? चारों ओर सैनिक। बीच में जम्बूकुमार अकेला खड़ा है। सैनिक आक्रमण कर रहे हैं किन्तु उस पर कोई असर नहीं हो रहा है।

विद्याधर व्योमगति राजा मृगांक के प्रासाद में चिन्तन की मुद्रा में बैठा है। उसने सोचा–मैं जम्बूकुमार को अकेला छोड़ आया। अब स्थिति क्या है, पता करना चाहिए। अपने गुप्तचरों को बुलाया, कहा–जाओ, खोज करो। एक कुमार है अत्यंत सुन्दर। वह कहां है? किस स्थिति में है? इसकी सूचना दो।

व्योमगति का निर्देश मिलते ही गुप्तचरों ने सारी स्थिति का पता किया। वापस केरला में पहुंचे। व्योमगति को सूचना दी–'महाराज! युद्ध शुरू हो चुका है।'

व्योमगति ने विस्मय के साथ पूछा–'युद्ध किसने शुरू किया?'

'उस कुमार ने।'

व्योमगति ने कहा–'यह कैसे हो सकता है?' वह तत्काल विमान में बैठा और युद्धस्थल में पहुंचा। उसने देखा–युद्ध तो शुरू हो चुका है। अकेला कुमार अनेक सैनिकों से पराक्रम के साथ जूझ रहा है और अजेय बना हुआ है। वह थोड़ा नीचे लाया विमान को, बोला–'कुमार! आ गया हूं। अब तुम अकेले नहीं हो।'

जम्बूकुमार ने कहा–'मैं अकेला हूं ही नहीं। मेरे पास महावीर सदा रहते हैं। महावीर मेरे साथ हैं, उनकी शिक्षाएं मेरे साथ हैं। मैं महावीर की वाणी का अनुसरण कर रहा हूं। अगर मैं महावीर की वाणी को नहीं मानता तो अकेला इस सारी सेना को समाप्त कर देता। पर मैं अनावश्यक किसी को मारना नहीं चाहता। मुझ पर जो प्रहार कर रहे हैं, उससे अपनी सुरक्षा कर रहा हूं, मार नहीं रहा हूं। यह सुरक्षात्मक युद्ध है।'

विद्याधर व्योमगति ने तीक्ष्ण कृपाण जम्बूकुमार की ओर बढ़ाते हुए कहा–'कुमार! तुम्हारे हाथ में कोई शस्त्र नहीं है। तुम यह शस्त्र ले लो।'

'मुझे शस्त्र की जरूरत नहीं है। आप शस्त्र अपने पास रखो, मुझे उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैंने एक निःशस्त्रीकरण का शस्त्र ले लिया, महावीर ने जिसका प्रतिपादन किया। शस्त्र मत बनाओ, शस्त्र का प्रयोग मत करो–इस संकल्प को मैंने स्वीकार कर लिया, अब दूसरे शस्त्र की जरूरत नहीं।'

जिस व्यक्ति के हाथ में अहिंसा का शस्त्र, अभय का शस्त्र, मनोबल और आत्मबल का शस्त्र होता है, उसे दूसरा शस्त्र लेने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। शस्त्र कौन लेता है? जो डरता है, वह शस्त्र लेता है। शस्त्र का निर्माण उस व्यक्ति ने किया जिसे डर लगा। जब डर लगा, तब शस्त्र बनाया। आज भी शस्त्र का निर्माण क्यों होता है? एक राष्ट्र सोचता है–वह मुझे हरा नहीं दे। उसके पास जो शस्त्र हैं, उनसे ज्यादा तेज शस्त्र मैं बनाऊं। दूसरा भी यही सोचता है।

अत्थि सत्थं परेण परं–भगवान महावीर का वचन है–एक शस्त्र से दूसरा शस्त्र तेज है। एक डरता है तो तेज शस्त्र बना लेता है। फिर दूसरा उससे तेज बना लेता है। एक राष्ट्र के पास अणुबम है। दूसरा उससे डरता है–कहीं अणुबम का प्रयोग न कर दे। मैं भी अणुबम बनाऊं। इस भय के कारण शस्त्रों का विकास हो रहा है।

जम्बूकुमार ने कहा–'मैंने महावीर का वचन समझा है, मैं महावीर की शरण में हूं। उनके सिद्धांतों को जीने का प्रयत्न कर रहा हूं। मैं शस्त्र का प्रयोग करना नहीं चाहता। मैं शस्त्रों के प्रयोग को समाप्त करना चाहता हूं।'

'व्योमगति! तुम मेरी चिन्ता इसलिए करते हो कि मैं सम्राट् श्रेणिक की प्रजा हूं, मगध का नागरिक हूं। मेरे प्रति तुम्हारा आकर्षण भी हो गया है। पर चिन्ता की कोई जरूरत नहीं। तुम चले जाओ और अपने शस्त्र भी साथ में ले जाओ।'

व्योमगति कल्पना नहीं कर सका, सोच भी नहीं सका कि इतना अभय कोई हो सकता है? इतना पराक्रमी कोई हो सकता है?

उधर मृगांक के गुप्तचर व्योमगति से पहले मृगांक के पास पहुंच गए, बोले–'महाराज! आप बड़े भाग्यशाली हैं। आपकी विजय होगी।'

मृगांक ने सविस्मय पूछा–'क्या बात है? क्या स्थिति है? शत्रु सेना में क्या हलचल है?'

'राजन्! आप क्या पूछ रहे हैं? युद्ध शुरू हो गया है।'

'मैं भीतर बैठा तैयारी कर रहा हूं। किसने शुरू कर दिया युद्ध?'

'राजन्! एक कोई अनजाना युवक आया है। पता नहीं किसने भेजा है? ऐसा दिव्य शक्तिसंपन्न युवक है कि अकेला सब शत्रुओं के साथ जूझ रहा है, शत्रुओं को भगा रहा है। अब समय है। आप जाएं और शत्रु पर आक्रमण करें। आपकी विजय निश्चित है।'

राजा मृगांक बहुत खुश हुआ। उसने पूछा–'यह तो बताओ, आखिर वह है कौन? कहां से आया है? क्या कोई दिव्यलोक से अचानक उतर आया है?'

कालूयशोविलास का प्रसंग है। भिवानी में दीक्षा का अवसर था। विरोधी लोग दीक्षा का विरोध कर रहे थे। रात को बाजार में विरोधी लोगों ने जनसभा आयोजित की। निर्णय किया–ऐसा तेज विरोध करना है कि दीक्षा हो नहीं पाए। सभा में अचानक कोई आकर गिरा। कहां से आया? आकाश से या पाताल से? किसी को कुछ पता नहीं चला किन्तु सभा तत्काल समाप्त हो गई। कभी-कभी ऐसी भयानक घटना घटित होती है कि कोई आ जाता है।

गुप्तचर बोले–'महाराज! आप भाग्यशाली हैं। आपके भाग्य से कोई महाबलशाली उचित समय पर आ गया है। आपको अब नगर में बंद होकर रहने की जरूरत नहीं है।'



व्योमगति भी मृगांक के पास पहुंच गया। उसने भी कहा–'राजन्! अब युद्ध के मैदान में चलें।'

'व्योमगति! क्या बात है?'

'राजन्! युद्ध शुरू हो चुका है।'

'किसने किया?'

'अभी वार्ता का समय नहीं है। पहले तैयारी करो, चलो।'

तत्काल रणभेरी बजी। नगर के दरवाजे खुल गए।

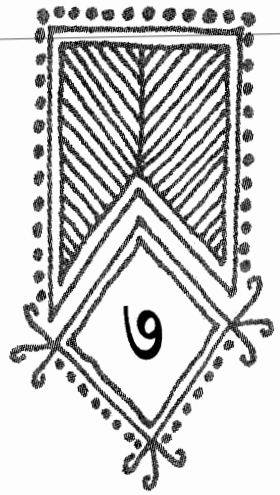
रत्नचूल ने सुना, पूछा–'यह आवाज क्या आ रही है?'

गुप्तचरों ने बताया–'महाराज! रणभेरी बज गई है। मृगांक अपनी सेना के साथ हमारी सेना पर आक्रमण करना चाहता है।'

रत्नचूल ने कहा–'इतनी हिम्मत! रत्नचूल के सामने मृगांक आएगा?'

उधर मृगांक तैयारी कर रहा है, इधर रत्नचूल का आवेश प्रबल बन रहा है।

युद्ध में दोनों मिलेंगे। परिणाम क्या होगा?





गाथा
परम विजय की

आचारांग सूत्र का एक प्रसिद्ध सूक्त है–**अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ**–अपने आप से लड़ो। दूसरों से लड़ने से तुम्हें मतलब क्या है? क्यों लड़ते हो दूसरों से?

प्रश्न हुआ–अपने आपसे क्यों लड़ें? इसका हेतु भी बतलाया गया–**अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ**–आत्मा ही मित्र है और आत्मा ही शत्रु। जब आत्मा शत्रु है तो आत्मा से लड़ो। दूसरा शत्रु व्यवहार में होता होगा किन्तु निश्चय में शत्रु अपनी आत्मा ही है। अपनी आत्मा जब दुराचार में, दुष्प्रवृत्ति में रत होती है, सचमुच शत्रु बन जाती है। जितनी शत्रुता व्यक्ति की अपनी वृत्तियां करती हैं, उतनी शत्रुता दूसरा कोई कर नहीं सकता। शत्रु कहीं बाहर रहता है, दूर रहता है, कभी कभार सामने आता है। ये दुष्प्रवृत्तियां चौबीसों घंटे साथ रहती हैं। बाहर का शत्रु उतना खतरनाक नहीं होता, जितना भीतर का शत्रु होता है।

आत्मा का बुरा विचार, बुरा भाव, बुरा आचरण–ये सब शत्रु हैं और ये ही अनिष्ट करते हैं। एक बुरा विचार आता है, स्वयं का कितना अनिष्ट हो जाता है, दूसरा उतना कर ही नहीं सकता। इसीलिए कहा गया–बाहरी शत्रुओं से लड़ने से क्या होगा? अपने भीतर जो अपना शत्रु बैठा है, उससे लड़ो, उसे भगाओ।

महावीर ने कायरता नहीं सिखाई। लड़ने की बात से रोका नहीं। मनुष्य की वृत्ति है–संघर्ष, लड़ाई और युद्ध। उसे कभी रोका नहीं जा सकता किन्तु दिशा बदल दी। जो आदमी दूसरों से लड़ता था, महावीर ने अध्यात्म की भूमिका पर कहा–'तुम दूसरों से मत लड़ो। यदि लड़ने में रस है तो अपने आप से लड़ो। बाहर के शत्रुओं से नहीं, भीतर के शत्रुओं से लड़ो।'

बाहर के शत्रुओं से लड़ना बहुत सरल है, अपने आपसे लड़ना बहुत कठिन। व्यक्ति दूसरों से लड़ाई जल्दी शुरू कर देता है। बहुत कठिन है अपनी वृत्तियों से लड़ना।

जम्बूकुमार विवेकसंपन्न है, धर्मसंपन्न है, अपने आपसे लड़ने में विश्वास करता है किन्तु प्रसंग ऐसा आ गया कि बाहर से लड़ना भी जरूरी हो गया। वह युद्ध के मैदान में है। राजा मृगांक की सेना भी सज्जित होने लगी। रणभेरी बजी। रत्नचूल को सूचना मिली–मृगांक की सेना युद्ध के लिए प्रयाण कर रही है। युद्ध के मैदान में पहुंचने के लिए तत्पर है।

ततो दुन्दुभिनिर्घोषैः, रत्नचूलोप्यनिद्रितः।
ज्वलतः क्रोधाग्निना योद्धुं, कृतांतः कोपितः किमु।।

रत्नचूल क्रोध की अग्नि से जल उठा। अग्नि बाहर से जलाती है। एक अग्नि भीतर भी बैठी है। दुनिया में जो बाहर है, वह भीतर भी है। क्रोध की आग इतनी तेज है कि वह आदमी को जला देती है। क्रोध, भय, चिन्ता, तनाव–ये सब पड़ोसी हैं, साथी हैं। सब एक-दूसरे के साथ आते हैं।

जब क्रोध, चिन्ता सताती है, आदमी जल उठता है। जलने का मतलब क्या है? वह सचमुच मरता है। एक आदमी सौ वर्ष जीने वाला है। बार-बार गुस्सा करेगा तो संभवतः पचास वर्ष में ही मर जाएगा। क्रोध से आयु बहुत क्षीण होती है। जब-जब क्रोध का उत्ताप आता है, व्यक्ति भीतर ही भीतर सूखने लग जाता है, आयु घटने लग जाती है।

गणित की भाषा में एक वैज्ञानिक ने इसका लेखा-जोखा किया। उसने कहा–'दो-चार मिनट का तेज गुस्सा नौ घंटे की आयु कम कर देता है। रोज दो-चार बार तेज गुस्सा करता चला जाए तो आयु क्यों नहीं घटेगी? सौ वर्ष जीने वाला पचास-साठ में क्यों नहीं मरेगा?'

रत्नचूल को इतना तेज गुस्सा आया, बोला–'दुर्ग में बंद हुआ बैठा था। अब इतना बल आ गया कि मेरी सेना पर आक्रमण करने आ रहा है!' रत्नचूल सहन नहीं कर सका, जल-भुन उठा। स्वयं कक्ष से बाहर आया। सेना को युद्ध का निर्देश दिया।



अथ द्वाभ्यां च सेनाभ्यामारब्धं युद्धमुल्वणम्।
हाहाकारकरं रौद्रं, कृतभीषणनिःस्वनम्।।

रत्नचूल और मृगांक–दोनों की सेनाओं में युद्ध शुरू हो गया। जम्बूकुमार अकेला नहीं रहा।

भूमि और आकाश–दोनों ओर युद्ध शुरू हो गया। विमानों में बैठे विद्याधरों का युद्ध भी प्रारंभ हो गया और पदाति-सेना का युद्ध भी प्रबल हो गया। विमान में एक ओर रत्नचूल बैठा है, दूसरी ओर व्योमगति, दोनों विद्याधर, दोनों शक्तिशाली, दोनों में तीव्र युद्ध।

आवेश में कुछ पता नहीं चलता। मदिरा का आवेश होता है, भान नहीं रहता। आवेश केवल मदिरा का ही नहीं होता, क्रोध का भी होता है। आवेश काम और लोभ का भी होता है। आवेश यक्ष और भूत पिशाच का भी होता है। अनेक प्रकार के आवेश बतलाए गए हैं। जब आदमी आवेश से आविष्ट होता है, उस समय उसकी विवेक-चेतना काम नहीं करती। मनोविज्ञान की भाषा में रीजनिंग माइण्ड निष्क्रिय बन जाता है, एनिमल ब्रेन–पाशविक मस्तिष्क सक्रिय बन जाता है। सैनिकों का पाशविक मस्तिष्क सक्रिय बन गया। एक-दूसरे पर विद्या का प्रयोग होने लगा।

उस समय जम्बूकुमार ने बाण से ऐसा प्रहार किया कि रत्नचूल का विमान टूट गया और वह नीचे आकर गिरा। रत्नचूल की सेना में हाहाकार मच गया। स्वामी नीचे गिर गए! इस ध्वनि ने सबको एक क्षण के लिए स्तंभित-सा कर दिया।

मृगांक हाथी पर चढ़ा हुआ था। महावत से उसने पूछा–'विमान से कौन गिरा है?'

महावत बोला–'जो आपको चाहिए था, वही गिरा है। आपका सज्जन रत्नचूल, जिसने युद्ध छेड़ा है, जिसने इतना विध्वंस किया है, वह आकाश से नीचे गिरा है।'

मृगांक को विस्मय हुआ–'कैसे गिरा वह?'

'महाराज! उस दिव्य कुमार की कोई विशेषता है कि वह जिधर आंख उठा लेता है, ऊपर का नीचे गिर जाता है, पाताल में चला जाता है। वह क्या है, हम समझ नहीं पा रहे हैं।'

सेना ने रत्नचूल को तत्काल संभाल लिया। परिचर्या की, उपचार किया। रत्नचूल स्वस्थ हो गया। रत्नचूल बोला–'क्या हो गया था?'

'जो होना था हो गया।'

'नहीं, ऐसे हार नहीं माननी है।'

'हाथी लाओ।' सैनिक हाथी ले आए, वह हाथी पर बैठा, पूछा–'सामने हाथी पर कौन है?'

'राजा मृगांक।'

'राजा मृगांक मुझ पर हंस रहा है। अब पता चलेगा।' रत्नचूल के स्वर में आक्रोश था।

यह बात स्वीकार करनी होगी–आवेश में आदमी जो काम कर सकता है, शांत स्थिति में वह काम नहीं कर सकता। शांत स्थिति का काम अलग है और आवेश का काम अलग। आवेश में बल इतना बढ़ता है कि कल्पना नहीं की जा सकती। आत्मबल की बात छोड़ दें, मनोबल की बात छोड़ दें। आवेग का बल भी बड़ा भयंकर होता है। नींद का भी आवेश होता है। एक नींद बतायी गयी है स्त्यानर्द्धि–उसका आवेश अर्धचक्री का बल जितना होता है। उस आवेश में, नींद में व्यक्ति उठ जाता है। उठकर जहां जाना है, वहां चला जाता है। दौड़ता-दौड़ता पचास कि.मी. भी चला जाता है। कोई दिक्कत नहीं होती। यदि चोरी करने का भाव मन में रहा तो चोरी कर, दरवाजों, तालों और तिजोरियों को तोड़कर चोरी कर लेता है। किसी की हत्या करनी है तो हत्या कर देता है। सिंह और बाघ को मार देता है। बड़े से बड़ा काम कर लेता है और वापस आकर सो जाता है। सुबह उठता है तो सब कुछ भूल जाता है। स्त्यानर्द्धि निद्रा के आवेश में ऐसा होना संभव है।

आवेश में बल बढ़ता है। युद्ध में आवेश न हो तो व्यक्ति युद्ध लड़ नहीं सकता। कोई भी शांतरस का अनुभव करने वाला लड़ भी नहीं सकता और उसमें वैसा बल भी नहीं आता।

रत्नचूल ने सोचा–अब शस्त्रों की लड़ाई से काम नहीं चलेगा। अब तो विद्या का ही प्रयोग करना है, विद्या का अस्त्र चलाना है।

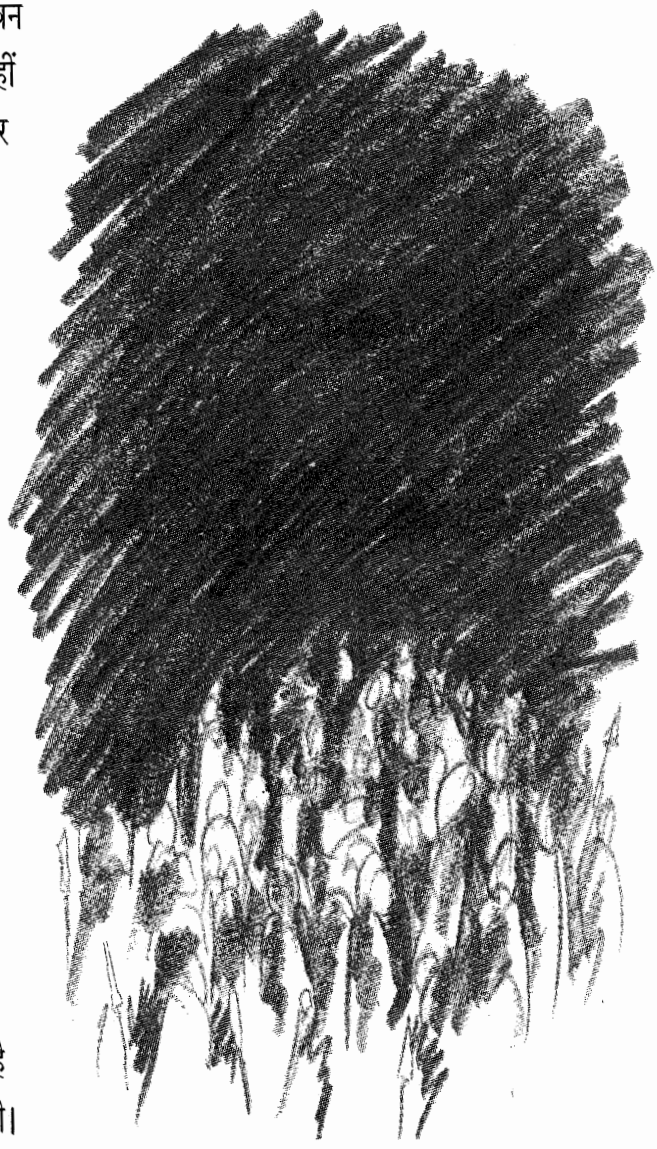
महाभारत में ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया गया। ब्रह्मास्त्र के सामने सारे शस्त्र निकम्मे हो जाते हैं। विद्या के अस्त्र के सामने शस्त्र निकम्मा हो जाता है। रत्नचूल ने विद्या के अस्त्र के प्रयोग का निश्चय कर लिया।

व्योमगति ने देखा–रत्नचूल पुनः युद्ध के मैदान में आ गया है। लड़ाई के मूड में है। अब मुझे भी सामने जाना चाहिए। राजा मृगांक का सहयोग करना चाहिए।

व्योमगति और रत्नचूल–दोनों विद्या के अधिष्ठाता फिर आमने-सामने आ गए।

रत्नचूल ने सबसे पहले 'तमिस्रा' विद्या का प्रयोग किया। मध्याह्न में बारह बजे का समय। प्रचंड धूप, प्रकाश सब कुछ था। 'तमिस्रा' विद्या का प्रयोग किया, अमावस की घोर अंधियारी रात हो गई। हाथ से हाथ दिखना बंद हो गया। कभी-कभी रात में अकस्मात् घोर अंधियारा हो जाता है। अचानक बिजली चली जाती है, कुछ क्षण के लिए ऐसा हो जाता है, जैसे अमावस की रात आ गई है। हाथ से हाथ दिखना बंद हो जाता है।

पक्ष और प्रतिपक्ष–दोनों होते हैं। अग्नि बरसाओ तो बादल तैयार हैं। अंधकार करते हैं तो प्रकाश की विद्या तैयार है। पक्ष-प्रतिपक्ष–दोनों प्रकार की विद्याएं चलती हैं। आजकल अणुशस्त्र के युग में रासायनिक शस्त्रों से युद्ध होता है। ऐसे रासायनिक कीटाणु बरसाते हैं कि सैनिक बीमार हो जाते हैं। उससे भी आगे रश्मियों का शस्त्र बनाने की तैयारियां हो रही हैं। कुछ भी करने की जरूरत नहीं। एक किरण का विकिरण करो, सामने वाली सेना बिल्कुल पागल बन जाएगी, शून्य बन जाएगी। उसे स्मृति नहीं रहेगी कि क्या हो रहा है? हथियार नीचे गिर जाएंगे।





आजकल ऐसे प्रयत्न हो रहे हैं। पुराने जमाने में भी बहुत होते थे। जिन्होंने रामायण और महाभारत सुना है, पढ़ा है, वे जानते हैं कि युद्ध में विद्याओं का कितना प्रयोग हुआ था! महाभारत काल में कितनी विद्याएं थीं! हिन्दुस्तान बहुत समृद्ध देश था, विद्या का बहुत विकास हुआ था। आज कहते हैं हिन्दुस्तान विकसित नहीं है। पांच हजार वर्ष पहले यहां इतना विकास था कि कल्पना नहीं की जा सकती किन्तु उस महायुद्ध में विद्या के बड़े-बड़े जानकार, अनुभवी समाप्त हो गए। एक प्रकार से हिन्दुस्तान का विकास भी अवरुद्ध हो गया। जब-जब बड़े युद्ध होते हैं, इतना विनाश होता है कि सैकड़ों-हजारों वर्षों तक पूर्ति नहीं होती।

रत्नचूल ने अंधकार का प्रयोग किया। व्योमगति ने आकाश में सूरज उगा दिया। आज के वैज्ञानिक भी ऐसी कल्पना कर रहे हैं कि आकाश में ऐसा उपग्रह स्थापित कर दें कि रात कभी पड़े ही नहीं। यह चिन्तन चल रहा है। यह कोई असंभव बात नहीं है। आजकल असंभव जैसा कुछ रहा नहीं।

पुराने जमाने में एक गुरांसा/यति ने चांद को आकाश में खड़ा कर दिया था। बहुत प्रसिद्ध घटना है। चेले से किसी बहिन ने पूछा–'आज तिथि क्या है?'

चेले ने कहा–'पूर्णिमा है।'

बहिन ने कहा–'क्या आज अमावस नहीं है?'

चेले ने कहा–'आज पूनम ही है।'

शिष्य ने आग्रह भी कर लिया। उपाश्रय में आया; गुरु से पूछा–'गुरुदेव! आज तिथि क्या है?'

गुरु बोले–'आज अमावस है।'

चेला–'मैं तो पूनम कह आया।'

गुरु–'वापस जाओ, बता दो कि आज अमावस है। मैंने भूल से पूनम कह दिया।'

'गुरुदेव! मैं आपका चेला, फिर ऐसी भूल सुधार करूंगा? मैं तो नहीं जा सकता।'

'वत्स! इसमें आपत्ति क्या है? छद्मस्थ हैं। भूल हो सकती है, भूल हो गई।'

चेले ने कहा–'गुरुदेव! ऐसा नहीं हो सकता। मैं अपनी बात बदल नहीं सकता। मैं आपका चेला बना हूं। आप इतने शक्तिशाली हैं। आपको कुछ करना पड़ेगा।'

चेले ने बहुत आग्रह किया, गुरु ने सोचा–भोला है, इसकी बात रख दूंगा।

गुरु ने कहा–'जाओ, कह दो, पूनम है।'

चेला–'गुरुदेव! बहिन कहेगी, पूनम का लक्षण है–चांद दिखाई देता है।'

गुरु–'तुम कह देना, चांद दिख जाएगा।'

चेला वापस गया, कह दिया–'गुरुजी को पूछ आया हूं आज पूनम है।'

बहिन–'पूनम को तो चांद का दर्शन होता है।'

चेला–'तुम चांद को आकाश में देख लेना।'

गुरु मंत्रविद् और विद्याधर थे। गुरु ने ऐसा प्रयोग किया कि आकाश में चांद दिखा दिया।

विद्या बल से चांद दिखाया जा सकता है, सूरज दिखाया जा सकता है। यंत्र बल से भी दिखाया जा सकता है। परमाणुओं का विचित्र संसार है, इतने विचित्र परिवर्तन होते हैं कि कल्पना नहीं की जा सकती।

ई-मेल और फैक्स कितना विचित्र है। एक पन्ना लिखा कहीं कोलकाता में और दो मिनट बाद वही पन्ना पहुंच गया लाडनूं में। वहां लिखा और यहां हूबहू उतर गया। अक्षर कौन लाया? अक्षर प्रकंपन बनते हैं और वे प्रकंपन यहां आकर फिर अक्षर बन जाते हैं। प्रकंपनों का विचित्र सिद्धांत है।



श्रुतज्ञान के दो प्रकार हैं–अक्षर श्रुत और अनक्षर श्रुत। आचार्य मलयगिरि ने नंदी वृत्ति में इनका बहुत सुन्दर वर्णन किया है। उन्होंने लिखा–एकेन्द्रिय जीवों में भी श्रुतज्ञान होता है। पुराने आचार्यों ने इसे युक्ति से समझाया। आज तो प्रत्यक्ष समझाया जा रहा है। टमाटर के सैकड़ों पौधे। एक टमाटर के पौधे पर कीड़ा लगा। वह पत्ता खा गया। पौधा नष्ट होने लगा। इस पौधे ने टमाटर के शेष सब पौधों को यह सूचना भेज दी कि कीड़ा लग गया है। सावधान हो जाओ। सब टमाटर के पौधों ने अपनी सुरक्षा की तैयार कर ली। ऐसी सुरक्षा की कि कीड़ा आगे नहीं बढ़ सका। सब बच गए। एक सूचना ने सबको सुरक्षा का अवसर दे दिया।

यह बात एक कहानी-सी लगती है किन्तु आज तो यह प्रत्यक्ष प्रयोग से प्रमाणित है कि वनस्पतिकाय के जीव प्रकंपनों से बातचीत करते हैं, सूचना भेज देते हैं। आदमी बोलता है अक्षरात्मक भाषा। वे अनक्षर भाषा बोलते हैं।

अनक्षर-श्रुत से बात हो जाती है। देवता भी बात करते हैं तो क्या अ, आ, ई वर्णमाला का प्रयोग करते हैं? इन शब्दों में बात करते हैं? क्या वह इनकी भाषा है? वे प्रकंपनों से बात करते हैं और समझ जाते हैं।

हम लोग भी प्रकंपन को ज्यादा काम लेते हैं पर जानते नहीं हैं। मैं बोल रहा हूं, आप मेरी बात सुन रहे हैं। प्रज्ञापना सूत्र कहता है–'आप मेरे शब्दों को बिल्कुल नहीं सुन रहे।' क्या यह बात जंचती है? किन्तु हम प्रकंपन के सिद्धांत पर जाएं तो ज्ञात होगा–मैं जो बोल रहा हूं, वे भाषा वर्गणा के पुद्गल लोक में फैल गए। वे भाषा वर्गणा के पुद्गल जिन पुद्गलों को आघात देते हैं, वासित करते हैं, उन पुद्गलों को आप सुन रहे हैं। यदि आप सम-श्रेणी में बैठे हैं तो मिश्र शब्द सुनते हैं। मूल शब्द के साथ दूसरे शब्दों का मिश्रण सुन रहे हैं। अगर कोई तिरछा बैठा है, विश्रेणी में है तो वह मिश्रण भी नहीं सुन रहा है, कोरे प्रकंपनों को सुन रहा है। प्रकंपनों का सिद्धांत बड़ा रहस्यपूर्ण है।

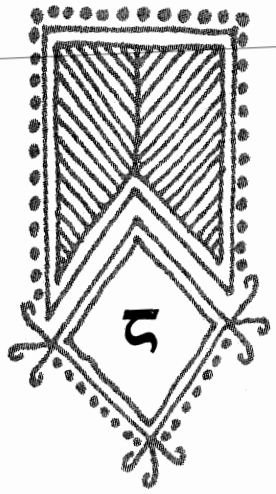


आजकल कुछ प्रयोग यंत्र के स्तर पर होने लगे हैं। जैसे लेजर किरण का प्रयोग है। आंखों का ऑपरेशन करना है, शस्त्र की जरूरत नहीं, किरण से ही सारा काम हो जाएगा। ऐसे प्राणिक ऑपरेशन भी करते हैं। पेट का ऑपरेशन किया, गांठ निकाल दी। न चीरा दिया, न घाव हुआ। कुछ भी नहीं।

हमारा जगत् चमत्कार का जगत् है। परमाणुओं के इतने बड़े चमत्कार हैं, रहस्य विद्या के इतने चमत्कार हैं कि हम उन्हें नहीं जानते। विद्याधर होते हैं, वे और ज्यादा शक्तिशाली होते हैं, उन्हें अनेक विद्याएं सिद्ध होती हैं।

रत्नचूल और मृगांक में प्रारंभ हुए विद्या युद्ध में अंधकार और प्रकाश की स्थिति आ गई।

अब कौन-सा नया प्रयोग होगा और क्या होगा उसका परिणाम?





हम अर्हत् को नमस्कार करते हैं और इसलिए करते हैं कि वे वीतराग हैं। दुनिया के सब मनुष्यों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–सराग और वीतराग। वीतराग हो गया, नमस्कार चरितार्थ हो गया। सराग वीतराग को नमस्कार करता है। हजारों-हजारों वर्षों का इतिहास साक्षी है कि त्याग के सामने भोग झुकता रहा है, वीतराग के सामने राग नीचे बैठता रहा है।

हमारी आत्मा की मूल शक्ति है वीतरागता और त्याग। यह आत्मा का स्वभाव है। राग, भोग, असंयम–ये सारे द्वंद्व, संघर्ष, लड़ाई-झगड़े के मूल हैं। आज तक दो वीतराग कभी नहीं लड़े। सरागी दो मिलते हैं और नहीं लड़ते हैं–यह बड़ा कठिन है। साथ में रहना शुरू करते हैं और कुछ ही दिनों में लड़ाई शुरू हो जाती है। कुछ तो पहले दिन ही लड़ना शुरू कर देते हैं। जैसे-जैसे समय बीतता है लड़ाई बढ़ती चली जाती है। यह प्रकृति है–जहां-जहां व्यक्ति आत्मा के मूल स्वभाव से दूर होता है वहां लड़ाई-झगड़ा स्वाभाविक बन जाता है। जब-जब हम अपनी आत्मा के स्वभाव में रहते हैं कोई लड़ाई नहीं, कोई झगड़ा नहीं, कोई संघर्ष नहीं, कुछ भी नहीं होता। जहां विषमता है वहां संकल्प-विकल्प पैदा होगा। संकल्प-विकल्प पैदा होगा तो संशय होगा, झगड़ा शुरू हो जायेगा।

उत्तराध्ययन सूत्र में बहुत सुन्दर बात कही गई है–**एवं ससंकप्प-विकप्पणासो, संजायए समयमुवट्ठियस्स।** विषमता में संकल्प-विकल्प पैदा होता है। पिता ने पांती की और विषमता रख दी। एक पुत्र को ज्यादा दे दिया और एक को कम। संकल्प-विकल्प शुरू हुआ और लड़ाई की नींव पड़ गई। जहां भी विषमता है वहां लड़ाई अनिवार्य बन जाती है। जहां समता आ गई, वहां संकल्प-विकल्प का नाश हो जाता है, संकल्प-विकल्प कोई रहता ही नहीं। कोई आवश्यकता ही नहीं होती।

एक व्यक्ति ने पूछा–दो आदमी मिलते हैं, बातचीत शुरू हो जाती है। यह बातचीत क्यों होती है?' समता नहीं है इसलिए बातचीत होती है। मन में विषमता है, संकल्प-विकल्प है इसलिए बातचीत शुरू हो जाती है। समता में रहने वाले दो आदमी मिलें, बैठें तो बातचीत नहीं होती।

जहां समता है वहां कोई विषय ही नहीं बनता बातचीत करने का। जहां विषमता है, वहां वार्तालाप के अनेक विषय प्रस्तुत हो जाते हैं। व्यक्ति अपने साथ घटित प्रसंग की चर्चा करते हुए कहता है–'देखो, उसने मेरे साथ ऐसा किया। वह ऐसा काम कर रहा था। उसने वैसा किया। तुम नहीं जानते–वह कैसा आदमी है।' बातों का अंत ही नहीं आता। अनादि और अनन्त होता है वार्तालाप।

आज ही एक व्यक्ति ने पूछा–जब दो केवली मिलते हैं तो बात करते हैं? मैंने कहा–केवली क्या बात करेगा? कोई बात शेष नहीं है। बात है ही नहीं तो करेंगे क्या? प्रश्न पूछेंगे तो उत्तर दे देंगे। बात का तो कोई अवकाश ही नहीं है।

संघर्ष, झगड़ा, बहुत बातें, लड़ाइयां, कुतूहल–सब सराग अवस्था में पैदा होते हैं। ये सब राग-द्वेष के परिणाम हैं। यह चक्र बराबर चलता रहता है।

जम्बूकुमार वर्तमान में वीतराग नहीं हैं, सराग हैं इसीलिए युद्ध के मैदान में हैं, लड़ रहे हैं। युद्ध में पूरा विवेक कर रहे हैं पर आखिर लड़ाई तो लड़ाई है। प्राण से मार नहीं रहे हैं पर सता तो अवश्य रहे हैं।

माया-युद्ध–विद्या का युद्ध तीव्र होता चला गया। रत्नचूल ने घोर अंधकार कर दिया तो मृगांक ने प्रकाश कर दिया। आकाश साफ हो गया। कुछ क्षण बीते। देखते ही देखते एकदम घनघोर घटा उमड़ आई, काली कजरारी घटा उमड़ आई, चारों तरफ बादल गरजने लगे, बिजली कौंधने लगी। बड़ा भयंकर रूप बना। सबने देखा–अब तो बस युद्ध-स्थल खाली हो जायेगा, कोई टिक नहीं पायेगा।

विद्याधर व्योमगति ने तत्काल प्रतिकूल पवन का प्रयोग किया और आकाश फिर साफ हो गया।

विद्या के युद्ध में एक क्षण में तो चीज बनती है और एक क्षण में नष्ट हो जाती है। कभी आंधी, कभी धूल–अनेक प्रकार के विद्या अस्त्रों का प्रयोग चला। लम्बे समय तक चलता रहा। रत्नचूल ने दावानल का प्रयोग किया, आग लगा दी, व्योमगति ने मेघ बरसा दिया। कृत्रिम मेघ से आज भी वर्षा की जाती है। विद्याधर तो कृत्रिम मेघ बरसाते ही थे।



जम्बूकुमार ने सोचा–यह रत्नचूल ऐसे मानने वाला नहीं है। शक्तिशाली विद्याधर है, बहुत विद्याएं हैं। लम्बे समय चलता रहेगा युद्ध। लंबे समय क्यों चलायें? जम्बूकुमार ने रत्नचूल के मुकुट को लक्ष्य कर बाण का प्रयोग किया। जम्बूकुमार इस बात का ध्यान रखते थे कि किसी की हत्या न हो जाए। बाण का ऐसा प्रयोग किया कि रत्नचूल का मुकुट जर्जर होकर नीचे गिर गया। इस आकस्मिक प्रहार से रत्नचूल हतप्रभ हो गया। वह स्थिर और संतुलित नहीं रह सका, मुकुट के साथ वह भी नीचे गिर पड़ा। जैसे ही रत्नचूल नीचे गिरा, मृगांक और व्योमगति का मुख हर्ष से विकस्वर हो गया।

राजा मृगांक ने इस तथ्य की पुष्टि करने के लिए सैनिकों से पूछा–'अरे! यह नीचे कौन आकर गिरा है?'

सैनिक बोले–'स्वामी! जिसको आप गिराना चाहते थे, वह पुनः गिर गया है।'

'अरे! कौन?'

'वही, जो आपका शत्रु है।'

'कौन शत्रु?'

'रत्नचूल।'

'क्या रत्नचूल गिर गया है?'

'हां महाराज!'

'किसने गिराया?'

'स्वामी! दूसरा कौन हो सकता है उसे गिराने वाला?'

'कौन है वह?'

'जम्बूकुमार।'

मृगांक शत्रु के मान-मर्दन से बहुत खुश हुआ।

युद्ध में और क्या होता है? शत्रु को पीड़ा पहुंचती है, शत्रु गिरता है तो दूसरे को खुशी होती है।

जैसे ही रत्नचूल गिरा, जम्बूकुमार ने सोचा–यह तो फिर खड़ा होकर लड़ाई शुरू कर देगा। अच्छा नहीं होगा।

जम्बूकुमार तत्काल आगे बढ़ा, उसने अपने भुज-पंजर में रत्नचूल को दबोच लिया। जैसे पिंजड़ा बन गया। वज्रकाय शरीर बड़ा शक्तिशाली होता है! आज तो कोई उदाहरण सामने नहीं है। हमने बचपन में ऐसे लोगों को देखा है, जिनका इतना मजबूत शरीर था कि हाथ पकड़ लेते तो ऐसा अनुभव करते जैसे सण्डासी में ही दे दिया। इधर-उधर हिलने का प्रसंग ही नहीं रहता। हठयोग में शरीर को वज्र बनाने की विधियां हैं। प्रसिद्ध योगी गोरखनाथ हुए हैं, जिनका मत भी चलता है–गोरक्ष पंथ। गोरखनाथ सिद्धपुरुष थे। उन्होंने बड़ी साधना की थी। गोरक्ष पद्धति उनका एक ग्रंथ है। गोरखनाथ ने प्राणायाम, आसन तथा कुछ प्रयोग के द्वारा शरीर को ऐसा वज्र बना लिया कि उस पर तलवार का प्रहार करो, तलवार टूट जायेगी, शरीर का कुछ नहीं बिगड़ेगा। गोली चलाओ, गोली टकराकर वापस आ जायेगी, पर उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा। उसका नाम है–'वज्रकाय सिद्धि'। शरीर को बिल्कुल वज्र बना लिया जाता है।

जम्बूकुमार को वज्रकाय सिद्धि की जरूरत नहीं थी। वह स्वयं वज्रऋषभनाराचसंहनन से युक्त था, वज्रकाय बना हुआ था। उसने रत्नचूल को पकड़ा तो रत्नचूल मूर्च्छा में चला गया। ऐसा अनुभव हुआ जैसे कोई पिजड़े में पंछी को डाल दिया है। जैसे ही रत्नचूल बंदी बना, सेना में खलबली मच गई।

गाढं स निगृहीतस्तु, दौर्मनस्यं गतो भृशम्।
बद्धेस्मिन् सैनिकास्तस्य, नेशुः सर्वे दिशोदिशम्।।

सेना चारों तरफ भाग गई, थोड़ी देर में युद्धस्थल खाली हो गया। जो युद्ध भयंकर लग रहा था, जिस विद्याधर के बल पर युद्ध की विभीषिका बनी हुई थी, उसको पकड़ा और युद्ध समाप्त हो गया। सेनापति जब भागता है, सब भाग जाते हैं। दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र में बतलाया है–मोह नष्ट होता है तो घाति कर्म नष्ट हो जाते हैं। सेनापति भागता है तो सारी सेना भाग जाती है।

देखते-देखते मैदान खाली हो गया, सब अपने प्राण बचा कर भाग गए। बंदी बना हुआ अकेला रत्नचूल किंकर्तव्यविमूढ़ जैसा हो गया। मृगांक की सेना से घिरा हुआ वह चारों तरफ देख रहा है–कोई भी सहायक नहीं है।

जम्बूकुमार ने व्योमगति से कहा–'बोलो, अब क्या करना है?'

व्योमगति ने जम्बूकुमार के बल को वर्धापित करते हुए कहा–'कुमार! अब क्या करना है? लड़ाई का मूल था रत्नचूल, वह बंदी बन गया। सेना भाग गई। अब करना कुछ नहीं है।'

'फिर भी कुछ तो करना है।'

'हां, पहले एक बार राजा मृगांक से मिल लें।'

व्योमगति ने सैनिकों को आदेश दिया–'बंदी रत्नचूल का पूरा ध्यान रखो। इसको लेकर मृगांक के पास चलो।'

एक ओर हाहाकार, दूसरी ओर जय-जयकार। जहां राग-द्वेष है, वहां और क्या होता है? यह जय-जयकार भी कोई बहुत काम का नहीं होता। वस्तुतः जो जय अपने भीतर होती है, वही अच्छी होती है। बाहरी जय के पीछे तो हार जुड़ी रहती है। पता नहीं है कब जीत हार में बदल जाए। यह राग और द्वेष का मार्ग ऐसा विकट मार्ग है, जहां जय-पराजय–दोनों स्थितियां बराबर चलती रहती हैं।

रत्नचूल में कितना अहंकार था, कितना दर्प था और किस प्रकार उसने जम्बूकुमार की अवहेलना और अवमानना की थी! कितना अहंकारपूर्ण बोला था! वह अब जम्बूकुमार को देखकर सोच रहा है–मैंने तो समझा था कि यह छोटा बच्चा है, नवयुवक है। अगर मुझे यह पता होता कि यह युवक इतना शक्तिशाली है तो मैं इसका तिरस्कार नहीं करता, इसे पहले अपना बना लेता। पर उस समय तो अहंकार प्रबल था। जब अहंकार प्रबल होता है तब कोई किसी को अपना बना नहीं पाता।



दुनिया में कोई तोड़ने वाला है तो वह है अहंकार। अहंकार सबको तोड़ देता है, दूसरों से अलग-थलग कर देता है। अब चिंतन से क्या हो? सैनिक रत्नचूल को लेकर मृगांक के सामने आए। वे राजा मृगांक का जय-जयकार कर रहे हैं और रत्नचूल के हृदय में शूलें चुभ रही हैं। मृगांक एक छोटा शासक, छोटा राजा, छोटा विद्याधर और रत्नचूल के सामने उसकी जय-जयकार हो–यह उसे कैसे सहन होता पर वह कर कुछ नहीं सकता था। विकट स्थिति बन गई।

तुष्टो मृगांकविद्याभृच्चक्रे जयजयावरम्।
सर्वे विद्याधरास्तत्र शंसुर्जंबूकुमारकम्।।

एक ओर सिंहासन पर राजा मृगांक बैठा है, एक ओर बंदी रत्नचूल को बिठा दिया। सब लोग इकट्ठे हो गये।

मृगांक राजा आश्चर्य और हर्ष से आप्लावित है। अनेक प्रश्न उसके मन में उछल रहे हैं। एक साथ उसने अनेक प्रश्न प्रस्तुत कर दिए–'यह कैसे हुआ? रत्नचूल को किसने पराजित किया? किसने बंदी बनाया? कौन है वह?'



सब बोले–'आपको अभी पता नहीं। रत्नचूल को बंदी बनाने वाला दूसरा कोई नहीं हो सकता। वह कुमार है, जो सामने खड़ा है, नाम है जम्बूकुमार। इसने बनाया है बंदी।'

चारों तरफ प्रशंसा होने लगी। सैनिक कह रहे हैं–अगर यह नहीं होता तो हमारी जीत कभी नहीं होती। इस एक नवयुवक ने पता नहीं क्या जादू किया, कमाल का काम किया। छोटी सी हमारी सेना, हम छोटे विद्याधर किंतु एक कुमार ने ऐसा पौरुष भरा, ऐसी ऊर्जा दी, ऐसा प्राण संचार किया कि हम जीत गये और यह बड़ा राजा हार गया।

मृगांक अपने आसन से उठा, कुमार के पास गया। जम्बूकुमार का आलिंगन किया, हाथ पकड़ा, सिंहासन के समीप लाया और अपने सिंहासन पर बिठा दिया। बिठाकर मृगांक ने कहा–'कुमार! मैं आपको नहीं जानता, आप मुझे नहीं जानते। हम अपरिचित हैं। मैं अपना भाग्य और सौभाग्य ही मानता हूं कि आप आये और आपने मेरा सहयोग किया।

महाप्राज्ञ! तुम धन्य हो। तुमने आज क्षात्र धर्म का जो उत्कर्ष दिखाया है, वह विलक्षण है, अदृष्ट और अपूर्व है। पर यह कैसे हुआ? मेरा मन अभी विस्मय से भरा है।'

धन्योऽसि एवं महाप्राज्ञ! रूपनिर्जितमन्मथ।
क्षात्रधर्मस्य चौन्नत्यमद्य जातं त्वया कृतम्।।

विद्याधर व्योमगति आगे आया, बोला–'आप क्या बात कर रहे हैं? क्या पूछना चाहते हैं? कुमार नहीं बतायेगा, मैं बताऊंगा। मैं लाया हूं कुमार को और आपके सहयोग के लिए लाया हूं। मैं मगध, राजगृह नगर में गया, सम्राट् श्रेणिक से मिला। मैंने सारी समस्या बताई। उस समय यह कुमार सभा में उपस्थित था। मैंने कहा–बड़ा भयंकर युद्ध होने वाला है। किसी की हिम्मत नहीं हुई। इस नवयुवक ने साहस बटोरा और कहा–मैं चलूंगा। मेरे मन में भी विकल्प था कि यह अकेला युवक क्या करेगा? कहीं कुछ हो गया तो सम्राट् श्रेणिक हमें और बदनाम करेगा। मन में बड़ा संशय था। लाना नहीं चाहता था पर जम्बूकुमार का इतना आग्रह रहा कि मैं चलूंगा। मैं ले आया इसे। युद्धस्थल में इसको उतारा। उतारने के बाद क्या हुआ, यह सबकी आंखों के सामने है। इस एक युवक के कारण हमारी सारी स्थिति बदल गई। अन्यथा न जाने क्या होता? कहा नहीं जा सकता।'

व्योमगति ने कहा–'रत्नचूल ने मुझे भी आहत कर दिया और मृगांक को भी आहत कर दिया। हम सब आहत हो गए। केवल जम्बूकुमार अनाहत है, यह अनाहत-नाद बना हुआ है। यह कभी आहत नहीं हुआ और बराबर जूझता रहा।'

व्योमगति विद्याधर बोला–'राजन्! अगर आपको शांति से जीना है तो इस कुमार के साथ प्रीति करो। इसको अपना बनाओ, इसके साथ प्रेम बढ़ाओ तो आप शांति से रह सकेंगे। आपको कोई खतरा नहीं रहेगा। अगर ऐसा नहीं किया तो हो सकता है कि रत्नचूल अथवा उसके वंशज कभी बाद में भी आप पर आक्रमण कर दें।'

व्योमगतिश्च सानंदात्, कारयामास तत्क्षणम्।
प्रीतिवर्धनमत्यंतं, जम्बूस्वामिमृगांकयोः।।

व्योमगति ने राजा मृगांक और जम्बूकुमार में प्रीति संबंध जुड़ाया। राजनीति में यह कहा भी जाता है–न कोपि कस्यचिद् मित्रं, न कोऽपि कस्यचिद् रिपुः–न कोई किसी का मित्र होता है और न कोई किसी का शत्रु। जब जैसा अवसर होता है, व्यक्ति वैसा बन जाता है। अवसर होता है तो भयंकर विरोधी भी मित्र बन जाता है।

दूसरा महायुद्ध हुआ। उसमें एक ओर मित्रसेना थी दूसरी ओर जर्मन-रूस की सेना थी। रूस और जर्मनी में प्रगाढ़ संबंध था। मित्र सेना में अमेरिका, ब्रिटेन आदि थे किंतु ऐसा कोई चक्र चलाया कि जर्मनी और रूस, जो साथ लड़ रहे थे, परस्पर विरोधी बन गये। जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया। जो रूस के शत्रु थे अमेरिका आदि, वे उसके मित्र बन गए।

सामाजिक जीवन में भी देखें। कोई किसी का स्थायी मित्र अथवा शत्रु नहीं होता। जब तक अपना स्वार्थ सधता है तब तक सब मित्र बने रहते हैं। स्वार्थ सधता है तो शत्रु भी मित्र बन जाता है। स्वार्थ का विघटन होता है तो गाढ़ मित्र भी शत्रु बन जाता है। बहुत लोग आते हैं, कहते हैं–हमने तो उस पर इतना भरोसा किया, उसे अपना माना और उसने ऐसा धोखा दिया। बहुत दुःख हो रहा है।



मैंने कहा–तुम्हारे लिए दुःख भोगना बचा है तो भोगो अन्यथा छोड़ो इस जंजाल को। यह इस दुनिया का स्वभाव है। तुम किसी को अपना मत मानो। अपना मानो तो केवल अपनी आत्मा को ही मानो।

अभी कुछ क्षण पूर्व एक व्यक्ति ने दर्शन किए, पूछा–'महाप्रज्ञश्री! बार-बार यह कहा जाता है कि भीतर देखो। भीतर है कौन? आदमी तो कोई नहीं बैठा है भीतर। हां, कभी भूख लगती है तो यह कह देते हैं चूहे लड़ रहे हैं पर चूहे भीतर होते तो नहीं हैं।'

मैंने कहा–'भीतर कोई नहीं है। न कोई आदमी बैठा है न कोई भूत बैठा है, न कोई चूहा बैठा है। भीतर है अपनी आत्मा, अपनी चेतना। वह भीतर बैठी है। चाहे उसको अपना प्रभु कहो, अपना सब कुछ कहो, वह भीतर है। उसको देख लें तब कोई खतरा नहीं है। कभी धोखा नहीं होगा, कभी छलना नहीं होगी, कभी ठगाई नहीं होगी, कभी पछतावा भी नहीं होगा।' जो भीतर नहीं, बाहर रहता है, उसके साथ सब कुछ हो सकता है। रागात्मक जगत् में कुछ भी असंभव नहीं है। हम रागात्मक जगत् की प्रकृति को समझें और फिर जीयें तो कठिनाइयां कम होंगी। राग-द्वेषात्मक जगत् की प्रकृति को समझे बिना जीना चाहते हैं, जीते हैं तो पग-पग पर कठिनाइयों का होना संभव है। समाज का जीवन व्यावहारिक जीवन है। इसमें रागात्मकता के बिना काम भी नहीं चलता।

व्योमगति ने कहा–'राजन्! अगर आपको शांति से जीना है और शक्ति के साथ जीना है तो जम्बूकुमार

को अपना गाढ़ मित्र बना लो, प्रीति कर लो, आप शांति से जी सकेंगे। आपको कोई खतरा नहीं होगा।' व्योमगति ने मध्यस्थ का काम किया। जम्बूकुमार और व्योमगति में प्रगाढ़ मैत्री संबंध स्थापित किये।

युद्धस्थल में घोषणा की गई–राजा मृगांक की विजय हो गई है। रत्नचूल पराजित हो गया है।

व्योमगति ने उदात्त स्वर में कहा–'यह जम्बूकुमार की विजय है। जम्बूकुमार जीत गया है और जम्बूकुमार के कारण हम भी जीत गये हैं। इस विजय का सारा श्रेय जम्बूकुमार को है।'

जयो लब्धः कुमारेण, जानुलंबितबाहुना।

युद्धभूमि संस्तव की भूमि बन गई, प्रशंसा की भूमि बन गई। चारों तरफ जम्बूकुमार की जय-जयकार और प्रशंसा होने लगी। जम्बूकुमार बहुत रस नहीं ले रहा था क्योंकि वह जन्म से ही कोई विलक्षण व्यक्ति था। इतना अद्भुत बल, अद्भुत व्यक्तित्व किंतु इतना ही अंतरंग में अद्भुत अनासक्त और विरक्त। सरागता के समुद्र में जैसे कोई वीतरागता का द्वीप बन गया। मृगांक, व्योमगति और अन्य विद्याधरों ने जम्बूकुमार की भूरि-भूरि प्रशंसा की, गुणगान किया, उच्च आसन पर बिठाया। कार्य सम्पन्न हो गया।

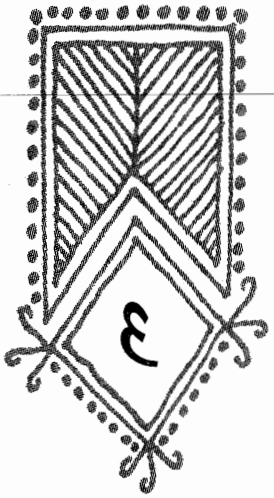
व्योमगति ने कहा–'जम्बूकुमार! चलें अब केरला नगरी में।'

जम्बूकुमार ने कहा–'व्योमगति! अब मुझे यहां नहीं रहना है। जो काम करना था, मैंने कर दिया। अब मुझे वापस राजगृह जाना है, सम्राट् श्रेणिक और माता-पिता के पास जाना है, बहुत दिन हो गये, अब तुम तैयारी करो। मुझे वहां पहुंचा दो।'

व्योमगति बोला–'कुमार! पहुंचाने में कोई विलम्ब नहीं होगा, हम शीघ्र पहुंच जायेंगे। परन्तु एक बात पर ध्यान दें। सम्राट् श्रेणिक ने राजगृह से राजा मृगांक की सहायता के लिये सदल-बल प्रस्थान कर दिया था। पहले यह पता लगाना चाहिए कि सम्राट् श्रेणिक कहां पहुंचा है? इसलिए अभी तो आप विश्राम करें। आप बहुत थके हैं। काफी श्रम किया है, इतना भुजदण्ड का प्रयोग किया है। आप थोड़ा विश्राम करें।'

जम्बूकुमार ने कहा–'जैसी तुम्हारी इच्छा। पर मुझे कोई थकान नहीं है। न कोई आराम करने की जरूरत है। तुम एक काम करो, पता लगाओ कि सम्राट् श्रेणिक कहां पहुंचे हैं?'

एक ओर सम्राट् श्रेणिक की खोज का उपक्रम शुरू हो रहा है तो दूसरी ओर यह प्रश्न उभर रहा है–बंदी रत्नचूल का क्या होगा? क्या उसके बंधन टूटेंगे? क्या वह मुक्त गगन में शांति का उच्छ्वास ले सकेगा?





जीवन का हर दिन नया होता है। काल कभी पुराना होता ही नहीं है। जिसको बिल्कुल ताजा-फ्रेश या सद्यस्क कहते हैं, वह है काल। न पीछे न आगे, केवल वर्तमान का क्षण। वर्तमान का हर क्षण नया होता है पर एक जनवरी को नया दिन माना जाता है, चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को नया दिन मान लिया जाता है। गुजरात में नया वर्ष लगता है दीपावली को। अलग-अलग संवत् चलते हैं, अलग-अलग वर्ष आते हैं और अलग-अलग नया दिन आता है किंतु जो व्यक्ति समय का मूल्य आंकता है, उसके लिए सदा नया दिन है। जो समय का मूल्यांकन नहीं करता, उसके लिए नया दिन कभी उगता ही नहीं है, सूरज नया उगता ही नहीं है।

सबसे बड़ी बात है समय का मूल्यांकन। समय के मूल्यांकन का अर्थ है–आत्मा का मूल्यांकन। समय का एक अर्थ है काल। समय का एक अर्थ है आत्मा। आत्मा का मूल्यांकन करना बहुत कठिन बात है। मूल्यांकन भी यथार्थ होना चाहिए। न प्रशंसा और न निंदा। जहां प्रशंसा ज्यादा होती है और मिथ्यावाद आ जाता है वहां प्रशंसा भी अनर्थकर बन जाती है।

भगवान महावीर ने बार-बार निषेध किया–प्रशंसा की इच्छा मत करो। यह निषेध क्यों किया? इसीलिए कि प्रशंसा भी कभी-कभी अनर्थकर बन जाती है। निंदा बुरी है तो प्रशंसा भी कुछ अर्थों में उससे कम बुरी नहीं है। वह बड़ा अनर्थ पैदा करती है। साधना है सम रहना। न निंदा, न प्रशंसा। न निंदा में हीनभावना, न प्रशंसा में उत्कर्ष की भावना। सम रहना सबसे बड़ी बात है। प्रशंसा में आदमी बह जाता है तो करने वाला, कराने वाला और सुनने वाला–तीनों के लिए समस्या होती है। किंतु मनुष्य की मनोवृत्ति है कि वह प्रशंसा चाहता है।

पौराणिक कहानी है। एक मूर्तिकार इतना कुशल था कि उसने अपने जैसी पांच-सात मूर्तियां बना लीं। सोचा–जब यमराज आएगा तो किसको उठाकर ले जाएगा? पता ही नहीं चलेगा। आएगा, खाली हाथ लौट जाएगा। मूर्तियां व्यवस्थित रख दीं। उसे पता चला–मौत आने वाली है, यमराज आने वाला है। उन

मूर्तियों के बीच एक मूर्ति और बैठ गई। यमराज आया, देखा, सचमुच संशय में पड़ गया–किसको उठाऊं? सब समान हैं, ले जाऊं किसको? कुछ समझ नहीं सका, उलझ गया। आखिर एक उपाय खोजा, युक्ति ढूंढी–आदमी की कमजोरी है प्रशंसा सुनना। यह सबसे बड़ी दुर्बलता है।

यमराज बोला–'कितना कमाल का कलाकार है। कैसी बढ़िया मूर्तियां बनाई हैं? हर मूर्ति सजीव लगती है। पता ही नहीं चलता कि कौन जीवित है, कौन केवल मूर्ति है? दुर्लभ है ऐसा कलाकार।' पांच-सात शब्द ऐसे प्रशंसा में कहे कि कलाकार उनमें उलझ गया। वह भूल गया यमराज को, मौत को। बोल उठा–'यह क्या देखते हो? इससे बढ़िया बना सकता हूं?'

'मैं तुम्हें ही खोज रहा था। आ जाओ।' प्रशंसा से यमराज का काम सरल हो गया।

भोजनोपरान्त विश्राम के बाद राजसभा जुड़ी। सर्वत्र विजय का उल्लास था। व्योमगति, मृगांक और जम्बूकुमार राजसभा में बैठे हैं। पास में रत्नचूल बंदी बना बैठा है। लोग जुड़ते हैं तो बातचीत स्वाभाविक है। सौ-पचास आदमी एक साथ बैठें और सब मौन रहें–संभव नहीं है। कोई चर्चा शुरू हो जाती है। व्योमगति खड़ा हुआ, बोला–'महाराज मृगांक! इस परिषद् में बहुत सभासद बैठे हैं। मैं सबके सामने एक सचाई प्रकट करना चाहता हूं।'

राजा मृगांक ने कहा–'क्या सचाई प्रस्तुत करना चाहते हो?'

व्योमगति ने जम्बूकुमार की ओर उन्मुख होते हुए कहा–'जम्बूकुमार! आपने हमें विजय उपलब्ध करा दी। आपके कारण हम जीते। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आपने पौरुष दिखाया किंतु इस अवधि में राजा मृगांक ने भी अपने पौरुष का प्रदर्शन किया है। बड़ा अच्छा पौरुष दिखाया है।'

रत्नचूल, जो बंदी बना बैठा था, मौन नहीं रह सका, बोला–'व्योमगति! कितना झूठ बोलते हो! कोरे नमक की रोटी सेक रहे हो, थोड़ा बहुत आटा भी डालो। तुम कहते हो–मृगांक ने अपना पौरुष दिखाया। यह कितनी मिथ्या बात है। इतना बड़ा झूठ तुम मेरे सामने बोल रहे हो!'

रत्नचूल बंदी था पर उसका आवेश बंदी नहीं था। शरीर तो बंदी बन गया, पर आवेश कभी बंदी नहीं होता। भयंकर क्रोध में आ गया। आंखें रक्तिम हो गईं, लाल डोरे पड़ गये, भृकुटि तन गई।

रत्नचूल बोला–'इतना बड़ा झूठ मत बोलो। मैं हार गया, उसका मुझे इतना दुःख नहीं है। किंतु तुम मिथ्या अहंकार का प्रदर्शन करते हो, उसका मुझे बहुत दुःख हो रहा है।'

न तत् पराजयान्नूनं, दुःखमाप खगाधिपः।
यन्मृषाहंकृतेस्तत्र, मृगांकबलशंसनात्।।

रत्नचूल दृष्टांत की भाषा में बोला–'व्योमगति! एक बात सुनो। एक आदमी दूसरे आदमी से बोला–आज तो बाजार में एक बरात देखी थी। पूछा–किसकी? उत्तर मिला–बांझ के बेटे की। उसके सिर पर मैंने बढ़िया सेहरा भी देखा। वह सेहरा किससे बना हुआ था? आकाश कुसुम से बना हुआ था।

व्योमगति! न तो आकाश के फूल होता और न सेहरा बनता, न बांझ के बेटा होता और न उसकी बरात होती। ऐसी झूठ बात तुम मत बोलो। यह ठीक नहीं है और मैं इस बात को सहन नहीं करता।'

जम्बूकुमार के शौर्य की प्रशंसा करते हुए रत्नचूल ने व्योमगति के कथन का प्रतिवाद किया–'व्योमगति! मैं मानता हूं–यह कुमार, सचमुच बलवान, वीर, शक्तिशाली योद्धा है। इसने पराजय दे दी किंतु यदि कोरा मृगांक होता तो पता चलता कि वीर कैसा होता है? वीर कौन होता है?'

जम्बूस्वामिकुमारेण, केवलं निर्जितो बलः।
अजय्येऽपि मदीयोऽयं, प्रचंडभुजविक्रमात्।।

रत्नचूल ने चुनौती भरे स्वर में कहा–'व्योमगति! अगर तुमने जो कहा, वह सही है तो चलो एक बार फिर हम मैदान में आ जायें। जम्बूकुमार नहीं रहेगा। मैं, मृगांक और हमारे कुछ सैनिक! फिर परीक्षा कर लो कि मृगांक कितना बलवान् है? क्या करता है? कितना पौरुष दिखाता है? यह मेरी शर्त है। या तो इसको मानो या तुम अपनी बात को वापस लो।'

गौरवं किंच चेदस्ति, युष्मदादिषु साम्प्रतम्।
नष्टं न किंचिदद्यापि, विद्यमानतयावयोः।।

कोई अपनी बात को वापस लेना नहीं चाहता। कोई प्रस्ताव भी लाते हैं तो वापस लेना पसंद नहीं करते। बहुत कम लोग ले पाते हैं। वापस लेना कठिन है।

बात तन गई। मृगांक भी आवेश में आ गया, बोला–'मेरी प्रशंसा को यह सहन नहीं कर सका तो इसको मैं भी अपना पौरुष दिखाऊंगा। रत्नचूल! तुम विलंब मत करो। युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।'

अधुनैव महायुद्धमावयोरुचितं पुनः।
विलंबं मा कार्षीः क्षोभात्, पिनद्धो भवसंगरे।।



रत्नचूल ने सोचा–यह छोटा-सा विद्याधर मेरे सामने इतनी डींग हांक रहा है। अब इसको पता चलेगा कि रत्नचूल की वीरता के सामने वह क्या है?

जम्बूकुमार ने सोचा–मैं मृगांक को समझा दूं कि युद्ध में मत जाओ और इस प्रस्ताव को स्वीकार मत करो, समाप्त कर दो। फिर सोचा–मैं यह कहूंगा कि मृगांक तुम मत लड़ो तो लोगों को यह लगेगा कि यह कमजोर है इसलिए कुमार ने इसको रोक दिया। इसकी लघुता लगेगी, हलकापन लगेगा इसलिए इसे रोकना ठीक नहीं है।

क्या रत्नचूल को रोकूं, यह कहूं–रत्नचूल! अब रहने दो! क्यों लड़ते हो। जो होना था हो गया। उसको रोकूं तो उसका बड़प्पन लगेगा। रत्नचूल शक्तिशाली है इसलिए उसे रोक रहा है कि कहीं यह मृगांक को मार न दे।

वारयामि मृगांकं चेद्, तद्बलस्यापि लाघवम्।
रत्नचूले निषिद्धेस्मिन्, अवश्यं स्यात्तद् गौरवम्।।

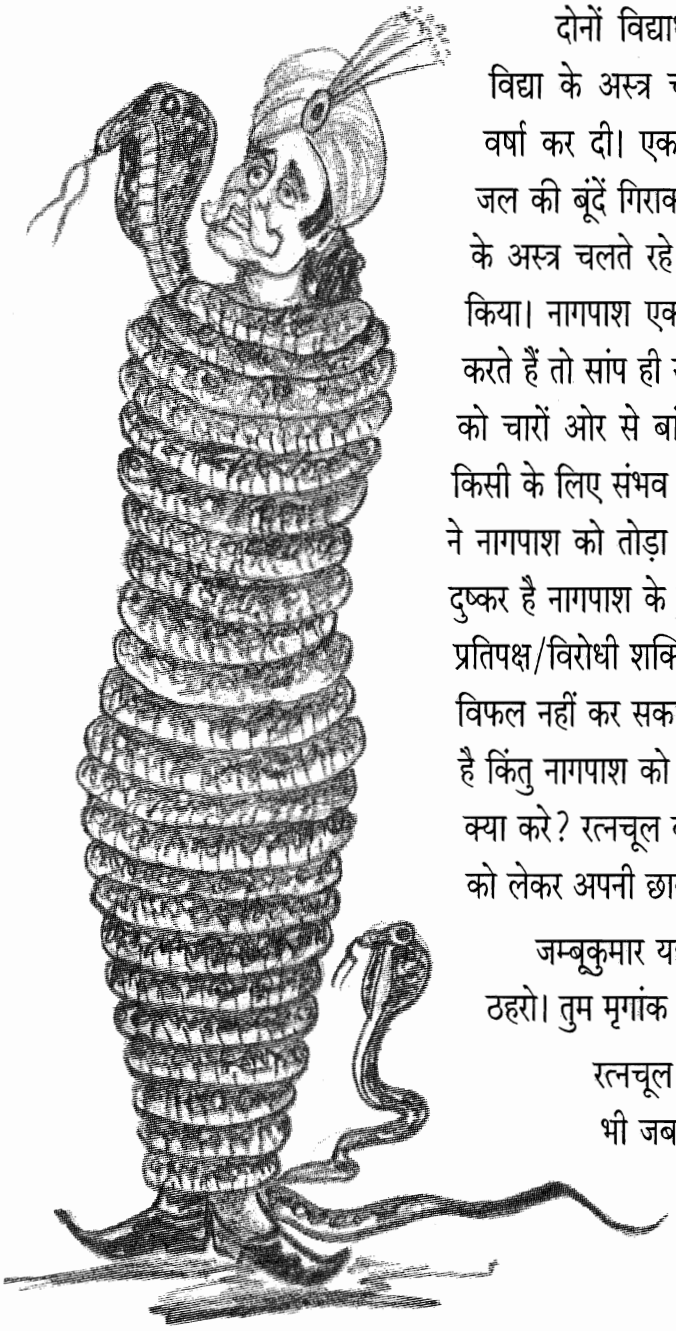
एक ओर लाघव, दूसरी ओर गौरव। मैं दोनों को रोक नहीं सकता। जम्बूकुमार ने कहा–'जैसी आपकी इच्छा।' जम्बूकुमार मौन हो गये। न समर्थन किया और न निषेध।

जम्बूकुमार ने देखा–दोनों में संघर्ष को रोकना संभव नहीं है। वह आगे बढ़ा। उसने रत्नचूल के बंधन खोल दिए।

रत्नचूल और मृगांक दोनों आमने-सामने खड़े हो गये। दोनों ने जम्बूकुमार को प्रणाम किया। कुमार अवस्था में छोटा था, राजा भी नहीं था। वे तो राजा थे, विद्याधर थे। किंतु अवस्था क्या कहती है? राजा होने न होने से क्या अन्तर आता है? **'बलं प्रमाणम् न वयः प्रमाणम्'**–बल प्रमाण होता है शक्ति प्रमाण होती है, अवस्था नहीं। जम्बूकुमार इतना शक्तिशाली था कि दोनों ने सिर झुकाकर नमस्कार किया, कहा–'कुमार! आप मध्यस्थ रहना, तटस्थ रहना, हम युद्धभूमि में जा रहे हैं।'

जम्बूकुमार भी साथ में वासुदेव बनकर गया। महाभारत में वासुदेव कृष्ण युद्ध में नहीं उतरे किंतु सारथि बनकर युद्धभूमि में रहे। जम्बूकुमार ने सोचा–'क्या होता है, देखता हूं।'

एक ओर अहंकार है, जो पराजय से फिर पैदा हुआ है तो दूसरी ओर विजयोन्माद है। अहंकार और उन्माद बड़ा भयंकर होता है। कोई अनर्थ न हो जाए, इस दृष्टि से जम्बूकुमार जागरूक बना हुआ था।



दोनों विद्याधरों ने पुनः माया-युद्ध शुरू कर दिया। विद्या के अस्त्र चलाये। एक ने अंधड़ चलाया, दूसरे ने वर्षा कर दी। एक ने अग्नि का प्रकोप किया तो दूसरे ने जल की बूंदें गिराकर अग्नि को बुझा दिया। घंटों तक विद्या के अस्त्र चलते रहे। अंत में रत्नचूल ने नागपाश का प्रयोग किया। नागपाश एक मंत्रजनित विद्या है। जब उसका प्रयोग करते हैं तो सांप ही सांप निकलते हैं और भयंकर सांप व्यक्ति को चारों ओर से बांध लेते हैं। उस नागपाश को काटना हर किसी के लिए संभव नहीं है। रामायण का प्रसंग है कि हनुमान ने नागपाश को तोड़ा था पर हर कोई तोड़ नहीं सकता। बहुत दुष्कर है नागपाश के बंधन को तोड़ना। मृगांक के पास उसका प्रतिपक्ष/विरोधी शक्ति नहीं थी। मृगांक नागपाश के प्रयोग को विफल नहीं कर सका। आदमी लौह की बेड़ी को तोड़ सकता है किंतु नागपाश को तोड़ नहीं सकता। मृगांक बंध गया। अब क्या करे? रत्नचूल बड़ा खुश हुआ। वह बंधन से बद्ध मृगांक को लेकर अपनी छावनी की ओर जाने लगा।

जम्बूकुमार यह देखते ही आगे बढ़ा, बोला–'रत्नचूल! ठहरो। तुम मृगांक को ले जा नहीं सकते।'

रत्नचूल जम्बूकुमार के पौरुष को जानता था फिर भी जब क्रोध और अहंकार का आवेश होता है, आदमी भूल जाता है। इतना भूल जाता है कि कुछ भी याद नहीं रहता। अगर आवेश नहीं होता तो मनुष्य की स्मरण-

शक्ति बहुत बढ़ जाती, उसका ज्ञान और विवेक बहुत बढ़ जाता किंतु एक आवेश के कारण बहुत सारी शक्तियां नष्ट हो जाती हैं।

बड़ा कठिन काम है अहंकार का। जम्बूकुमार की बात को सुन रत्नचूल और अधिक आवेश में आ गया, बोला–'तुम कौन हो रोकने वाले? यह मेरे बंधन में आ गया। मैंने इसको बांध दिया। अब तुम क्यों रोकते हो?'

जम्बूकुमार ने रत्नचूल का पथ रोकते हुए कहा–'रत्नचूल! मेरे रहते हुए तुम मृगांक को नहीं ले जा सकते। तुम्हारा यह दुस्साहस सफल नहीं होगा।

रे रे मूढ़! क्व यासि त्वं, नीत्वैनं मृगलाञ्छनम्।
मयि विद्यति भूपीठे, को हि द्रष्टुमतिक्षमः।।

रत्नचूल! सांप के सिर में मणि होती है पर क्या कोई समझदार आदमी सांप के सिर पर हाथ डालेगा? मणि निकालने का प्रयत्न करेगा?'

रत्नचूल ने स्पष्ट स्वर में कहा–'यह मृगांक मेरे हाथ में आ गया अब तुम इसे छुड़ाना चाहते हो? रखना चाहते हो? कुमार! ऐसा मत करो, मुझे ले जाने दो।'

जम्बूकुमार ने कहा–'यह हो नहीं सकता। मैं यहां हूं। मैं अन्याय नहीं करने दूंगा, ले जाने नहीं दूंगा। यह महान् आश्चर्य है कि मेरा अतिक्रमण कर इसे ले जाते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आ रही है। रत्नचूल! तुम कितना ही प्रयत्न करो। तुम मृगांक को ले जा नहीं सकते।'

रत्नचूल आवेश में अतीत को भूल गया, बोला–'कुमार! अगर इतना अहंकार है तो तुम भी युद्ध के लिए आ जाओ।'

आदमी एक बार जीत जाता है तो पुरानी बात को भूल जाता है। रत्नचूल बोला–'मृगांक के साथ इतने तुम जुड़े हुए हो तो आओ, तुम भी आ जाओ। अभी तो मौका है, लड़ाई हो रही है।'

जम्बूकुमार ने कहा–'मैं तैयार हूं।'

मृगांक और रत्नचूल की लड़ाई समाप्त हुई। जम्बूकुमार और रत्नचूल की लड़ाई शुरू हो गई।

रत्नचूल ने सोचा–सबसे अच्छा अस्त्र है नागपाश। इस अस्त्र का प्रयोग करूं और जम्बूकुमार को भी बंदी बना लूं। एक ओर मृगांक दूसरी ओर जम्बूकुमार–दोनों नागपाश से बंध जायेंगे, आपस में बैठे-बैठे बातें करते रहेंगे।

रत्नचूल ने तत्काल विद्या का प्रयोग किया, भयंकर नागपाश प्रस्तुत हुआ। जम्बूकुमार को गारुडी विद्या सिद्ध थी। उसने गारुडी विद्या का प्रयोग किया। जब गारुडी विद्या आती है, नाग का पता ही नहीं लगता। नाग कहीं गायब हो गया।

मुमोच रत्नचूलोऽसौ, नागास्त्रं स्वामिनं प्रति।
न्यक्कृतं तत्कुमारेण, गारुडास्त्रेण तत्क्षणात्।।

जम्बूकुमार बंदी नहीं बना। उसके मन में थोड़ा-सा आवेश भी आ गया, सोचा–'कैसा कृतघ्न राजा है? इतना हो गया फिर भी अहंकार नहीं छूट रहा है। मुझ पर भी मारक प्रयोग कर रहा है।'

जम्बूकुमार दौड़ा और फिर से रत्नचूल को ऐसा भुजदण्ड में बांध लिया कि छूटने का अवकाश ही नहीं रहा।

यह बात आश्चर्यकारी लगती है कि इतना जल्दी क्या कोई उपकार को भूल जाता है? दुनिया के इतिहास को देखें। ऐसे लोग हुए हैं कि किसी ने पहले क्षण में उपकार किया, दूसरे क्षण में पहचानना नहीं चाहते कि कौन है यह? प्रसिद्ध कहानी है–भाई आया गरीब अवस्था में। पूछा बहन से–यह कौन है? बहन ने कहा–मैं तो नहीं जानती। कोई घर में रहने वाला नौकर होगा।

उपकार को भी भूल जाते हैं। समाचार-पत्र में पढ़ा–अमुक व्यक्ति ने अमुक के साथ ऐसा किया? उससे पूछा गया–आप उसको जानते हैं। उत्तर दिया–नहीं, मैंने उसका नाम ही नहीं सुना। बड़े-बड़े लोग भूल जाते हैं उपकार को। कठिनाई में सहयोग देने वाले को भी भूल जाते हैं। थोड़ा-सा सुख का क्षण आया, विकट दुःख को भी भूल जाते हैं।

रत्नचूल जम्बूकुमार के बल को जानता था–कुमार बलवान है, अद्वितीय पुरुष है। किंतु जाना अनजाना हो गया। सारी घटना को भूल गया। मुक्त रत्नचूल दूसरी बार फिर वज्र-पंजर में आ गया, बंदी बन गया। युद्ध समाप्त हो गया।

जम्बूकुमार ने मृगांक को भी नागपाश से मुक्त कर दिया। राजा मृगांक, व्योमगति, जम्बूकुमार आदि राजसभा में आ गए। रत्नचूल बंदी बना बैठा है।

जम्बूकुमार ने चिंतन किया–मैं कहां आ गया? मैं नहीं जानता था कि यह केरला कहां है? मैं मृगांक को भी नहीं जानता था, रत्नचूल को भी नहीं जानता था। मेरा लक्ष्य तो दूसरा था। मैं अपनी शक्ति के विकास के मार्ग पर, आत्मा की खोज के मार्ग पर चल रहा था पर अनायास सम्राट् श्रेणिक के प्रति मन में भावना जागी। मैंने इस बात को स्वीकार कर लिया, यहां आ गया, लड़ाई के मैदान में फंस गया।

जम्बूकुमार ने अपना आत्मालोचन किया, विहंगावलोकन किया। युद्धभूमि में आकर मैंने कोई ऐसा काम तो नहीं किया है जो काम नहीं करना चाहिए था? कुछ तो हुआ है। मैंने किसी को नहीं मारा, किसी की हत्या नहीं की फिर भी मन को तो दुःखाया है, भावना को तो चोट पहुंचाई है। सबसे ज्यादा रत्नचूल को व्यथित एवं प्रताड़ित किया है। अब क्या करना चाहिए?

जम्बूकुमार की चिन्तनधारा आगे बढ़ी–एक काम हो गया। रत्नचूल की पराजय हो गई। मृगांक को मैंने विजयी बना दिया, किंतु क्या मृगांक सदा विजयी बना रहेगा? क्या रत्नचूल प्रतिशोध नहीं लेगा? मैं कहां-कहां आऊंगा? कब आऊंगा? जल डालकर इस आग को शांत कर देना चाहिए।

यह चिंतन बहुत स्वस्थ चिंतन है। भयंकर युद्ध के बाद अगर कोई मैत्री करा दे तो शांति का युग शुरू हो सकता है। उस समय कोई मैत्री न करा सके तो वैर का अनुबंध चलता रहता है। आचार्य भिक्षु ने लिखा–**मित्र सूं मित्रपणो चाले, वैरी सू वैरीपणो चालतो जावे।**

वैर का अनुबंध होता है। एक व्यक्ति वैर का उसी जन्म में बदला लेना चाहता है और उस जन्म में न ले सके तो अगले जन्म में फिर बदला लेना चाहता है। यह चलता रहता है वैर का अनुबंध। लड़का जन्मा।

जन्मते ही बीमार। दो-चार वर्ष जीया और एक दिन मरने की तैयारी कर ली। मरते समय बोला–'अब मैं जा रहा हूं। मैंने अपना बदला ले लिया है। तुमने मेरे पचास हजार रुपये अपने अधिकार में ले लिये थे। वह पचास हजार रुपया पूरा हो गया। बदला चुक गया। अब मैं जा रहा हूं।'

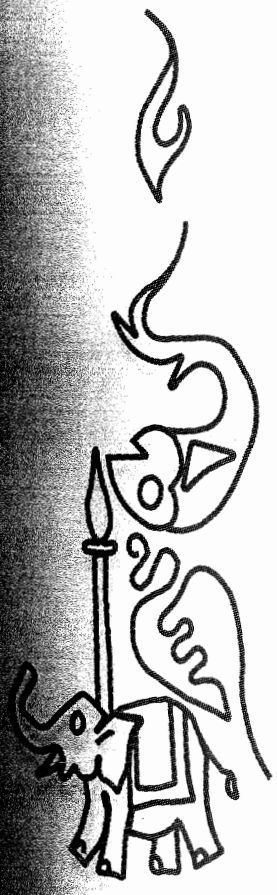
ऐसी न जाने कितनी घटनाएं आती हैं। कोई पिशाच, भूत अथवा प्रेत बनकर किसी को सताता है। पूछने पर वह कहता है–'मैं पूर्वजन्म का बदला ले रहा हूं।'

बदला लिया जाता है। यह वैर की परम्परा समाप्त नहीं होती। जो समझदार आदमी होता है वह वैर को शांत कर देता है। जम्बूकुमार ने सोचा–वैर को शान्त कर देना चाहिए, शान्ति का संदेश देना चाहिए।

दूसरा महायुद्ध पूरा हुआ। वह बड़ा भयंकर युद्ध था। कितना विकराल था, कितनी विकट स्थितियां थीं। जिन्होंने देखा है उस समय को, वे जानते हैं कि किस प्रकार की स्थितियां बनी थीं। पूज्य गुरुदेव ने उस समय एक संदेश दिया–'अशांत विश्व को शांति का संदेश'। वह ब्रिटिश सरकार और संबद्ध लोगों के पास पहुंचा। संदेश बहुत अच्छा लगा। अमेरिका की एक यूनिवर्सिटी ने उसे अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया। महात्मा गांधी ने उस संदेश पर अपनी टिप्पणी लिखी–'कितना अच्छा होता कि इस महापुरुष के द्वारा सुझाये गये इन नौ नियमों का विश्व पालन करता।'

अशांति के समय कोई शांति का संदेश देने वाला होता है तो शांति का पथ प्रशस्त होता है। जम्बूकुमार ने सोचा–अब मैं इस दावानल के बीच नहीं रहना चाहता, किंतु जाते-जाते मुझे एक काम कर देना चाहिए, इन दोनों का वैर मिटा देना चाहिए।

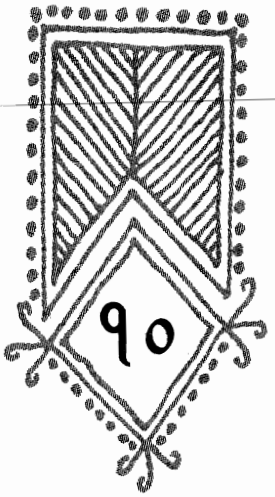
जम्बूकुमार ने संकल्प किया–मृगांक और रत्नचूल दोनों में वैर-विरोध समाप्त कर, मैत्री स्थापित करनी है।



इस संकल्प के साथ एक ओर जम्बूकुमार मैत्री स्थापना का अभिक्रम शुरू कर रहा है, दूसरी ओर सम्राट् श्रेणिक की खोज की बात भी चल रही है।

क्या सफल होगा मैत्री स्थापना का प्रयत्न?

और कब मिलेंगे सम्राट् श्रेणिक?





कोमलता और कठोरता, दंडनीति और सामनीति–इनका यथासमय उपयोग होता है।

जम्बूकुमार ने सोचा–मैं राजगृह चला जाऊंगा। रत्नचूल और मृगांक को यहीं रहना है। रत्नचूल शक्तिशाली है। मृगांक उसकी तुलना में कमजोर है। यह वैर का अनुबंध चलता रहेगा। मैंने महावीर से उपशम और मैत्री का पाठ पढ़ा है। मुझे उसका उपयोग करना चाहिए, वैर-विरोध को मिटाना चाहिए। आवेश का उपशम हो, कलह उपशांत बने, वैर-विरोध मिटे। उपशम के सिवाय इसको मिटाने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। मुझे जाने से पहले दोनों को मित्र बना देना चाहिए।

चिंतन का कितना अंतर होता है? एक व्यक्ति वैर-विरोध को बढ़ा देता है और एक मिटा देता है। जम्बूकुमार सम्यग्दर्शन से संपन्न था इसलिए हर बात सम्यग्दर्शन के आधार पर सोचता था। जैसा दृष्टिकोण होता है वैसा चिंतन होता है। दर्शन के बिना चिंतन चलता नहीं है। मिथ्यादर्शन मिथ्या चिंतन, सम्यग्दर्शन सम्यग्चिंतन।

राजसभा में जम्बूकुमार के शौर्य और पराक्रम का अभिनंदन हुआ। राजा मृगांक, विद्याधर व्योमगति ने जम्बूकुमार की सोत्साह वर्धापना की। पूरे राज्य की ओर से आभार व्यक्त किया।

जम्बूकुमार ने कहा–'मेरा एक कार्य पूरा हो गया। एक कार्य अभी शेष है। युद्ध समाप्त हो गया है, किन्तु वैर-विरोध का भाव समाप्त नहीं हुआ है। मेरा अभिनंदन सार्थक तब होगा जब वैर-विरोध की आग बुझेगी, मैत्री की सरिता प्रवाहित होगी।'

जम्बूकुमार ने मैत्री की पृष्ठभूमि निर्मित करते हुए कहा–'मैत्री समान धरातल पर होती है। एक सामने बंदी बना बैठा रहे और एक सिंहासन पर आसीन रहे तो मैत्री का वातावरण नहीं बन सकता। मैं चाहता

हूं–रत्नचूल बंदी न रहे, शत्रु न रहे, अच्छा मित्र बने।'–यह कहते हुए जम्बूकुमार आगे बढ़ा, उसने रत्नचूल के बंधन खोल दिए।

जम्बूकुमार ने कहा–'विद्याधरपति रत्नचूल! आप बहुत शक्तिशाली हैं। बहुत विद्याएं आपके पास हैं। यह तो कुछ घटना घटित होनी थी, हो गया। आप यह न मानें कि आप पराजित हो गये। हार-जीत तो भाग्य और अवसर की बात है। किन्तु इस प्रसंग में आपके पौरुष और विद्या कौशल का साक्षात्कार हुआ।'

अपि च कोमलालापैः, सूक्तिसंदर्भगर्भितैः।
खगं संतोषयामास, कुमारो मारगौरवः।।

हीनभावना को मिटाये बिना वैर मिटता नहीं है। किसी भी व्यक्ति में हीनभावना भरो, वह आधा मर जायेगा और आधा प्रतिकार करने में लग जायेगा। उसके मन की आग बुझती नहीं है, ज्वाला प्रज्वलित रहती है।

जम्बूकुमार कुशल था। उसने हीनभावना को दूर किया और कहा–'आपने बड़ा काम किया है। जो कुछ हुआ वह हो गया। अब आप चिंता न करें। मेरा एक प्रस्ताव है, अगर आप स्वीकार करें।'

रत्नचूल ने सारी बात सुनी, वह प्रसन्न हो गया। हर आदमी अपनी श्लाघा से प्रसन्न होता है। इससे हीनभावना भी दूर होती है।

रत्नचूल बोला–'कुमार! मैं आपके प्रस्ताव को स्वीकार करूंगा।'

जम्बूकुमार ने कहा–'जय और पराजय तो युद्ध में होती रहती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि शक्तिशाली हार जाता है और कमजोर जीत जाता है। पासा कैसे पलटता है और कैसे पड़ता है, कहा नहीं जा सकता इसलिए आप कोई चिंता न करें, मन में विषाद न करें। आप प्रसन्न रहें।'



जयपराजयौ स्यातां, कुर्वतो युद्धमाहवे।
विषादं खग! मा कार्षीः, धर्मः पुंसो निसर्गतः।।

रत्नचूल के मन में थोड़ा संतोष उभरा, प्रसन्नता भी बढ़ी। जब अनुकूल वचन मिलता है, अनुकूल पवन मिलता है, बादल गहरा जाते हैं। यह बहुत स्वाभाविक है। बादल झुक गये, घटाएं गहरा गयीं, चेहरा भी खिल उठा।

जम्बूकुमार ने भावपूर्ण स्वर में कहा–'जहां वैर-विरोध का वातावरण होता है, वहां न शांति रहती है, न विकास होता है। आप शांति और विकास चाहते हैं इसलिए आप और मृगांक में जो यह विरोध है, वह समाप्त हो जाना चाहिए। यह मेरा प्रस्ताव है।'

विद्याधर रत्नचूल ने इस बात का समर्थन किया–'कुमार! आपकी भावना उत्तम है।'

जम्बूकुमार–'मैं चाहता हूं–मेरी यह भावना सफल बने।'

रत्नचूल बोला–'आपके किसी भी उपयुक्त प्रस्ताव को हम स्वीकार करेंगे।'

मृगांक ने भी सहमति के स्वर में कहा–'आपकी भावना की सफलता हमारा सौभाग्य होगा।'

जम्बूकुमार ने दोनों को संबोधित करते हुए कहा–'आप जरा चिंतन करें कि विरोध कभी था नहीं। केवल इस कन्या को लेकर विरोध हुआ है।'

रत्नचूल और मृगांक एक साथ एक स्वर में बोले–'हां, कुमार! इससे पूर्व हमारे संबंध बहुत मधुर रहे हैं।'

जम्बूकुमार बोला–'विद्याधरपति रत्नचूल! मैं एक बात आपसे कहना चाहता हूं और वह बात मैंने महावीर से सीखी है।'

'कुमार! महावीर से आपने क्या सीखा है?'

जम्बूकुमार–'जितनी आपदाएं हैं उन सब आपदाओं का मार्ग है इंद्रियों का असंयम। इंद्रियों को खुला छोड़ दो, कान, जीभ, स्पर्श–इनका मुक्त भोग करो, सब आपदाएं बिना बुलाए आ जाएंगी। निमंत्रण पत्र देने की जरूरत ही नहीं रहेगी।'

आपदां कथितः पंथाः, इंद्रियाणामसंयमः।
तज्जयः संपदां मार्गः, यदिष्टं तेन गम्यताम्।।

'विद्याधरपति! आप इंद्रियों को जीत लें। यह संपदा का मार्ग है। आपको पता है–महावीर बल का प्रयोग नहीं करते, जबर्दस्ती नहीं मनवाते। उन्होंने यह सचाई प्रस्तुत कर दी–यह आपदा का मार्ग है और यह संपदा का मार्ग। इसके साथ हर व्यक्ति को स्वतंत्रता दे दी कि जो मार्ग अच्छा लगे, उसे चुन लो। अगर आपदा में जीना है तो मार्ग चुनो इंद्रियों की उच्छृंखलता का। यदि संपदा में जीना है तो उनकी विजय का मार्ग चुनो।'

'विद्याधराधीश! मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप इंद्रियों की उच्छृंखलता का मार्ग छोड़ें। एक कन्या के लिए आपने इतना बड़ा समारंभ कर दिया। इस पर जरा नियंत्रण करें। इस बात को मन से निकाल दें तो मैं समझता हूं कि सब कुछ ठीक हो जायेगा।'

जम्बूकुमार के इस हितोपदेश ने रत्नचूल के मन को प्रभावित किया। उसने अनुभव किया–इंद्रिय के असंयम के कारण कितना बड़ा युद्ध हो गया। विजय भी नहीं मिली, कन्या भी नहीं मिली और अब मिलने की संभावना भी नहीं है।

व्यक्ति पहले नहीं सीखता। घटना से सीख लेता है। जो घटित हुआ, उसका मन पर गहरा असर हुआ। जम्बूकुमार की बात बहुत तथ्यपूर्ण और हितकर लगी।

रत्नचूल बोला–'कुमार! मैं संकल्प करता हूं कि मैं विशालवती के लिए कोई चिंतन नहीं करूंगा। मैं इस कामना को छोड़ता हूं।'

जम्बूकुमार ने इस शुभ संकल्प की वर्धापना करते हुए कहा–'बहुत अच्छा, साधुवाद।'

जम्बूकुमार राजा मृगांक की ओर उन्मुख होते हुए बोला–'महाराज मृगांक! अब आपका भी कोई वैर-विरोध नहीं रहना चाहिए। यह बात मन से निकाल दें कि रत्नचूल आपका शत्रु है। वह आपका शत्रु नहीं है, पड़ोसी है, आपके पास रहने वाला है। आप दोनों में मित्रता होनी चाहिए। अगर आप दोनों में वैर-विरोध चलेगा तो बेचारे हजारों-लाखों नागरिक दुःखी बने रहेंगे, लड़ाइयां होती रहेंगी। जब लड़ाई होती है तब

धन-धान्य सबकी बरबादी होती है, महंगाई बढ़ जाती है। खाने को मिलता नहीं है, खेती होती नहीं है। सब लोग निकम्मे हो जाते हैं। यह अच्छा नहीं है।'

'महाराज मृगांक! आप यह न मानें कि आपकी विजय हुई है और रत्नचूल की हार हुई है। आपसे यह अधिक शक्तिशाली है। यह जय-विजय की तो एक घटना घटित हो गई पर अब आप न अहंकार करें और न विद्वेष का भाव रखें।'

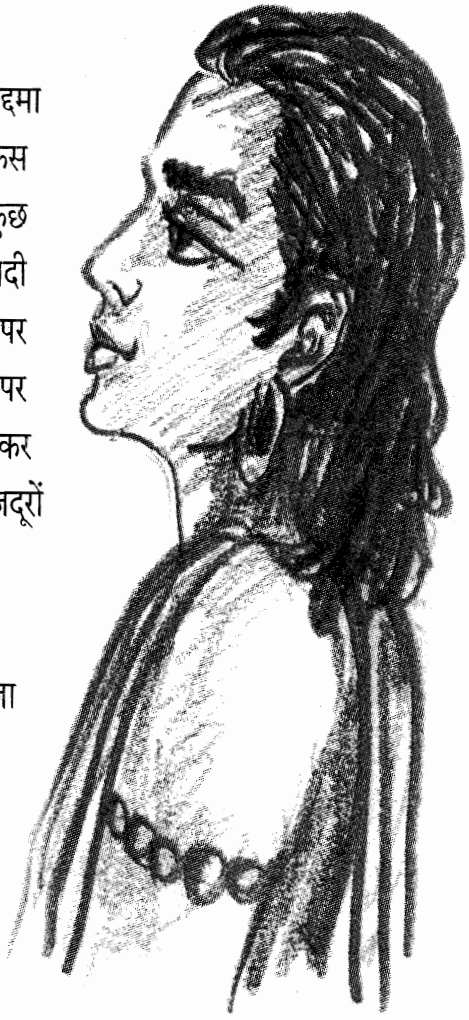
इस प्रकार का समन्वयचेता मिलता है तो वैर-विरोध का दावानल अपने आप बुझ जाता है। समस्या यह है–लड़ाने-भिड़ाने वाले ज्यादा मिलते हैं। मैत्री, प्रेम का संबंध स्थापित करने वाले लोग बहुत कम मिलते हैं।

सौराष्ट्र की घटना है। दो सगे भाई, दोनों बहुत संपन्न। दोनों की दो कोठियां। एक की कोठी में उगा हुआ था सुपारी का पेड़ और वह दूसरे की कोठी में झुका हुआ था। पेड़ पर जो सुपारियां लगतीं, वे दूसरी कोठी में गिरतीं, वहीं तोड़ी जातीं।

भाई बोला–'भाई! यह तो ठीक नहीं है। पेड़ तो मेरी कोठी में है और सुपारियां तुम तोड़ लेते हो। बंद करो इसको। सुपारी मत तोड़ो।'

उसने कहा–'मैं क्या करूं? उगा तुम्हारी कोठी में है और झुक गया है मेरी कोठी में। बच्चे कैसे नहीं तोड़ेंगे?'





छोटी-सी बात को लेकर झगड़ा शुरू हो गया, मुकद्दमा कर दिया। पहुंच गये हाईकोर्ट तक। न्यायाधीश के सामने केस आया। न्यायाधीश ने सोचा–बात कुछ भी नहीं है। इस नाकुछ सी चीज के लिए इतना लड़ रहे हैं। न्यायाधीश समन्वयवादी था। वह कोरा फैसला देने वाला नहीं था, कानून के आधार पर समन्वय में विश्वास करता था। उसने कहा–एक दिन मैं मौके पर जाकर देखूंगा कि स्थिति क्या है? न्यायाधीश ने जानकारी कर ली, सारी व्यवस्था कर ली। दोनों भाइयों के घर पहुंचा। मजदूरों को बुलाया और मिनटों में ही पेड़ को उखाड़कर फेंक दिया।

दोनों भाई एक साथ बोले–'यह क्या किया आपने?'

न्यायाधीश–'इसका यही फैसला देना था मुझे। यही रास्ता था झगड़ा समाप्त करने का। अब न पेड़ रहेगा, न सुपारियां तोड़ेंगे और न हाईकोर्ट में पहुंचने की जरूरत होगी।'

कोई-कोई व्यक्ति ऐसा समन्वयवादी होता है जो झगड़े की जड़ को उखाड़ना चाहता है। वह जड़ का उन्मूलन कर देता है और मैत्री स्थापित करवा देता है।

प्रायः लड़ाई बड़ी बात को लेकर नहीं होती। आज तक का इतिहास देखें। छोटी-छोटी घटना को लेकर महायुद्ध हुए हैं। चाहे महाभारत को पढ़ें, रामायण को देखें और चाहे इस शताब्दी के महायुद्ध को। छोटी बातों को लेकर ये महायुद्ध हुए हैं। महायुद्ध ही नहीं, घर-परिवार में सामान्य चीज को लेकर वैमनस्य के बीज की बुआई हो जाती है।



दो भाइयों में संपत्ति का पूरा बंटवारा हो गया। केवल एक बढ़िया आदमकद शीशा बचा। शीशे को तो तोड़ें कैसे? दो टुकड़े तो होते नहीं। एक भाई कहता है–मैं रखूंगा। दूसरा भाई कहता है–मैं रखूंगा। शीशे को लेकर झगड़ा हो गया। सोचा–झगड़ा कैसे मिटे? पिता के जो मित्र हैं, उनको बुलाएं। वे हमारे लिए पूज्य हैं, वे जो कहेंगे, मान लेंगे। उन्हें बुलाया, वे आए, सारी बात सुनी। उन्होंने कहा–'शीशा लाकर रखो, देखता हूं।' शीशा लाकर रखा गया। थोड़ी देर देखा। पीछे गए और सहसा ऐसा धक्का दिया कि शीशा नीचे गिर गया। टूट कर चूर-चूर हो गया। दोनों भाई बोले–'आपने यह क्या किया? आप तो बुजुर्ग हैं, पिता के स्थान पर हैं। आपने यह क्या किया?'

उसने कहा–'मैं इस शीशे को टूटा हुआ देख सकता हूं किन्तु तुम्हारे घर और पारस्परिक प्रेम को टूटा हुआ नहीं देख सकता।'

ऐसे लोग होते हैं जो लड़ाना नहीं चाहते, समन्वय करा देते हैं। जम्बूकुमार आत्मज्ञ था, उसका कषाय उपशांत था। उसने परस्पर समन्वय कराने का प्रयत्न किया और उसमें सफल हो गया।

रत्नचूल और मृगांक दोनों परस्पर गले मिले। दोनों ने यह प्रण कर लिया–'हम मैत्री का निर्वाह करेंगे, कभी परस्पर नहीं लड़ेंगे।' संधि, समझौता और समन्वय हो गया।

जम्बूकुमार के मन में जो संकल्प था, वह कृतार्थ हो गया। जम्बूकुमार बोला–'विद्याधरपति रत्नचूल! अब आप स्वतंत्र हैं, बंदी नहीं हैं। अब आप दोनों भाई बन गये हैं। जब चाहे अपनी राजधानी जा सकते हैं।'

गच्छ गच्छ यथास्थानं, स्वसद्मन्यपि निर्भयात्।
वेष्टितश्च परीवारैः, स्वीयैः स्वीयसुखाप्तये।।

जम्बूकुमार ने यथाशीघ्र प्रस्थान की भावना व्यक्त करते हुए कहा–'हम भी राजगृह की ओर जाना चाहते हैं। महाराज श्रेणिक से मिलना चाहते हैं।'

रत्नचूल ने कहा–'कुमार! यदि आप आज्ञा दें तो मैं भी सम्राट् श्रेणिक को देखना चाहता हूं। मेरी इच्छा है कि मैं श्रेणिक से मिलूं, साक्षात्कार करूं। क्या आप मुझे ले जाना चाहेंगे?'

जम्बूकुमार ने उत्साह और उल्लास व्यक्त करते हुए कहा–'विद्याधरपति! आपका स्वागत है। आपसे मिलकर सम्राट् श्रेणिक को प्रसन्नता होगी।'

सारा वातावरण बदल गया। जब आवेश का वातावरण होता है, चिंतन दूसरे प्रकार का होता है, सारा ध्यान वैर-विरोध में, एक-दूसरे को मारने में लगता है। जब वैर-विरोध मिट जाता है, मैत्री हो जाती है तब स्थिति बिल्कुल भिन्न हो जाती है पर यह काम बहुत कठिन है। आदमी के दिमाग में एक ऐसी रूढ़ धारणा होती है कि सहसा उसको तोड़ना संभव नहीं होता।

मेवाड़ की घटना है। पूज्य गुरुदेव एक गांव में पधारे। वहां किसी भाई ने बताया–'गुरुदेव! यहां के एक प्रमुख श्रावक हैं, भाई-भाई में इतना विरोध है कि आपस में बोलते तक नहीं हैं। काम में बड़ी बाधा आती है।'

गुरुदेव ने बात की, कहा–'श्रावकजी! अब इस लड़ाई-झगड़े को समाप्त करो, भाइयों में ऐसा संघर्ष शोभा नहीं देता।'

वह भाई बोला–'गुरुदेव! यह तो नहीं होगा।'

गुरुदेव ने कहा–'पक्के श्रावक हो। गांव का उत्तरदायित्व रखते हो, सब कुछ करते हो और यह नहीं कर सकते?'

'गुरुदेव! सब कुछ होता है पर यह तो नहीं होगा।'

'कैसी बात करते हो? गुरु की बात पर ध्यान नहीं देते?'

'ध्यान क्या, आप कहें तो धूप में खड़ा-खड़ा सूख जाऊं पर भाई से तो खमतखामणा नहीं करूंगा।'



आवेश का काम जटिल होता है। नहीं मानी बात, चला गया। जाने के बाद कुछ आवेश शांत हुआ, सोचा–आज तो ठीक नहीं हुआ। गुरुदेव ने इतना कहा और मैंने आशातना कर दी, अविनय किया। मन बदला, दिमाग भी ठंडा हुआ, वापस आया, बोला–'गुरुदेव! मैंने बहुत अविनय और आशातना की। आपके आदेश को नहीं माना। अब आप जब चाहें, भाई को बुला लें। मैं भाई से खमतखामणा कर लूंगा।'

खमतखामणा का बहुत महत्त्व है। जैन लोग संवत्सरी पर्व मनाते हैं। यह मैत्री का महान् पर्व है, मन की गांठों को खोलने का पर्व है। मन की गांठ को खोलना जटिल होता है। वह खुल जाती है तो सारा वातावरण बदल जाता है, प्रेम उमड़ पड़ता है। जम्बूकुमार ने मन की गांठें खोल दीं। मृगांक और रत्नचूल–दोनों में प्रेम संबंध स्थापित करवा दिया।

जम्बूकुमार ने कहा–'राजा मृगांक! राजा रत्नचूल! विद्याधर व्योमगति! अब शीघ्र प्रस्थान करना है।'

रत्नचूल, मृगांक और व्योमगति, सबने कहा–बिल्कुल ठीक है, हम भी साथ चलेंगे पर अभी पता नहीं है कि सम्राट् श्रेणिक कहां हैं? पहले उनका पता तो चले।

जम्बूकुमार बोला–सम्राट् श्रेणिक का पता लगाने में समय क्यों गंवाएं? पता क्या करना है? हम उसी रास्ते से चलें। कहीं न कहीं सम्राट् श्रेणिक मिल जाएंगे। जब राजगृह से प्रस्थान कर दिया है और यहां आ रहे हैं तो रास्ते में अवश्य मिलेंगे।'

जम्बूकुमार का यह प्रस्ताव सबको उचित लगा। खोज की बात समाप्त हो गई। शीघ्र प्रस्थान का निर्णय हो गया और....

अनेक विमान सज्जित हो गए। एक विमान में रत्नचूल और उसका परिवार था। एक विमान में मृगांक का परिवार, कन्या विशालवती थी। उन्होंने विवाहोचित सामग्री और उपहार भी ले लिए।

व्योमगति ने कहा–'जम्बूकुमार! आपको तो मेरे विमान में ही बैठना है। मैं ही आपको लाया था और मैं ही आपको पहुंचाना चाहता हूं।'

जम्बूकुमार ने व्योमगति के अनुरोध को स्वीकार कर लिया।

सबने एक साथ प्रस्थान किया। विमानों का एक काफिला सा चल पड़ा। वे चले जा रहे हैं आकाश मार्ग से और ध्यान है नीचे पृथ्वी की ओर। इसलिए कि सबके मन में श्रेणिक से मिलने का उत्साह है। दो घंटे चलने के बाद एक पर्वत आया। नाम था कुरलाचल। उस पर्वत पर काफी कोलाहल सुनाई दिया।

जम्बूकुमार ने नीचे झांका, बोला–'व्योमगति! नीचे इतना कोलाहल क्यों हो रहा है?'

व्योमगति ने कहा–'हां कोलाहल तो हो रहा है। काफी आदमी इकट्ठे भी हो रहे हैं।'

जम्बूकुमार बोला–'ध्यान से देखो कि कौन है? कहां जा रहे हैं?'

व्योमगति ने विमान को नीचे लिया। ध्यान से देखने लगे।

उसी समय सम्राट् श्रेणिक रथ से बाहर आए। पर्वत की अधित्यका पर चढ़े। एक चट्टान पर विश्राम के लिए बैठे, पर्वतीय सुषमा को निहारने लगे। जम्बूकुमार सम्राट् श्रेणिक को देखते ही हर्षोत्फुल्ल हो उठा, चट्टान की ओर संकेत करते हुए बोला–'व्योमगति! देखो, सम्राट् श्रेणिक सामने हैं।'

व्योमगति की दृष्टि तत्काल चट्टान पर केन्द्रित हो गई–'अरे! सम्राट् श्रेणिक अकेले चट्टान पर बैठे हुए हैं। प्रकृति के सौन्दर्य को देखने में लीन हैं।'

जम्बूकुमार बोला–'व्योमगति! विमान को नीचे उतारो।'

राजा मृगांक और राजा रत्नचूल ने उनका अनुसरण किया।

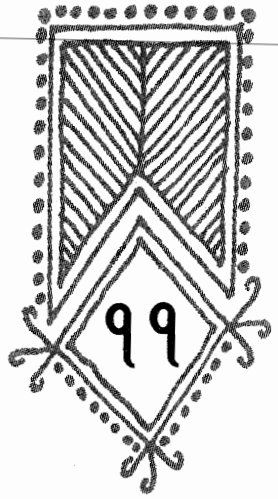
प्रकृति के सौन्दर्य में लीन सम्राट् श्रेणिक का ध्यान भी आकाश की ओर गया–अरे! ये विमान कहां से आ रहे हैं? कौन हैं इनमें? क्या कोई विद्याधर युद्ध के लिए आ रहे हैं?

दूसरे ही क्षण सम्राट् ने देखा–विमान इसी पर्वतीय अधित्यका पर उतर रहे हैं।

जम्बूकुमार सम्राट् श्रेणिक को देख रहा है किन्तु सम्राट् श्रेणिक जम्बूकुमार को नहीं देख पा रहे हैं।

एक ओर उत्साह और उल्लास मूर्त बन रहा है तो दूसरी ओर कुतूहल और जिज्ञासा के साथ अज्ञात भय का प्रकंपन है।

मिलन का क्षण कितना विलक्षण होगा? और जम्बूकुमार का अगला कदम क्या होगा?



भगवान महावीर ने एक महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया–**अप्पणा सच्चमेसेज्जा**–स्वयं सत्य खोजो। दूसरों ने जो सत्य खोजा है, उसे सुनो, पढ़ो, चिंतन करो, मनन करो किंतु तुम आगे तभी बढ़ पाओगे जब स्वयं उस सत्य को खोज लोगे। फिर वह सत्य पराया नहीं, तुम्हारा अपना बन जाएगा। जब तक सत्य अपना नहीं बनता, पराया रहता है तब तक व्यक्ति खतरे से मुक्त नहीं होता, एक भय बना रहता है।

राजा घोड़ों का बड़ा शौकीन था। एक बार बहुत बढ़िया घोड़े आए। राजा ने कहा–'घोड़े खरीदूंगा किंतु पहले परीक्षा करूंगा।'

चार राजकुमार थे, चारों को बुलाया, कहा–'ये चार घोड़े ले जाओ, परीक्षा करो। परीक्षा के लिए एक सप्ताह का समय है।'

एक सप्ताह बाद राजकुमारों से पूछा–'बोलो, घोड़े कैसे हैं?'

पहला राजकुमार बोला–'बिल्कुल काम के नहीं हैं।'

राजा ने प्रतिप्रश्न किया–'क्यों?'

'पिताजी! इतने निकम्मे हैं कि चढ़ने ही नहीं देते। मैं ऊपर चढ़ा और गिरा दिया। फिर चढ़ा, फिर गिरा दिया। ऐसे घोड़े हमें नहीं चाहिए।'

दूसरे और तीसरे राजकुमार का भी वही उत्तर रहा।

छोटे राजकुमार ने कहा–'पिताश्री! घोड़े बहुत बढ़िया हैं। ऐसे घोड़े बहुत कम आते हैं।'

तीन भाइयों का एक स्वर और छोटे भाई का अलग स्वर।

राजा ने कहा–'यह कैसे? तीन कुमार कह रहे हैं–घोड़े खराब हैं और तुम कह रहे हो–बहुत अच्छे हैं। क्या तुम्हें घोड़े ने गिराया नहीं?'

'नहीं!'

'इनको क्यों गिराया?'

'महाराज! ये सीधे घोड़े पर चढ़ गये। सीधा चढ़ेगा तो गिरायेगा। पहले अपना बनाओ, फिर चढ़ो, कोई नहीं गिरायेगा। अपना तो बनाया नहीं और सीधे तपाक से ऊपर चढ़ गये तो वह और क्या करेगा? पिताश्री! मैंने तीन-चार दिन तक घोड़ों को खूब सहलाया, प्रेम किया, अपना बना लिया फिर ऊपर चढ़ा। घोड़े ने मुझे बहुत सम्मान दिया, मेरे हर निर्देश का पालन किया।'

कितनी मर्म की बात है–सत्य को अपना बनाओ। जब तक अपना नहीं बनाओगे तब तक तुम्हारे लिए बहुत उपयोगी नहीं बनेगा। सत्य अपना कब हो सकता है? जब हम इंद्रिय चेतना से थोड़ा ऊपर उठ जाएं, इष्ट और अनिष्ट की भावना से ऊपर उठ जाएं तब सत्य अपना बनता है। इष्ट क्या है? अनिष्ट क्या है? प्रिय क्या है? अप्रिय क्या है? जब तक यही चिन्तन का चक्र चलता है, उससे ऊपर उठा नहीं जाता, तब तक सत्य नहीं मिलता। सारा संसार इष्ट और अनिष्ट का संसार है। इष्ट मिलता है, बड़ा हर्ष होता है। अनिष्ट मिलता है, बड़ा दुःख होता है। इष्ट का वियोग होता है तो बड़ा दुःख होता है। अनिष्ट का वियोग होता है तो सुख होता है। यह सारा आर्त्तध्यान का चक्र चल रहा है।

केरला से चले तीनों विमान कुरलाचल पर रुके। राजा रत्नचूल, राजा मृगांक, विद्याधर व्योमगति के साथ जम्बूकुमार नीचे उतरा।

व्योमगति और जम्बूकुमार के कदम सम्राट् श्रेणिक की ओर बढ़े। जम्बूकुमार और व्योमगति को देख सम्राट् श्रेणिक का मुख हर्ष से विकस्वर हो गया। वह अपने आसन से खड़ा हुआ। जम्बूकुमार और व्योमगति के सामने गया, सम्मान किया।

श्रेणिकोऽपि ततस्तूर्णं, समुत्थाय निजासनात्।
आलिलिंग कुमारं तमुत्सुकः परमादरात्।।

सम्राट् श्रेणिक सबसे पहले जम्बूकुमार से मिला। जम्बूकुमार ने विनत भाव से प्रणाम किया। श्रेणिक ने उसे भावविभोर होकर गले लगाया। श्रेणिक बोला–'जम्बूकुमार! तुम्हें देखकर मेरा मन प्रसन्न हो गया। मुझे बड़ा हर्ष है कि तुम सकुशल आ गये। बोलो, कैसा रहा प्रवास?'

साधु साधु मया दृष्टो, यच्चिरादपि भो भवन्!
त्वयि दृष्टे महान् हर्षो, जातो मे हृदि संप्रति।।

जम्बूकुमार बोला–'सम्राट्! मैं क्या कहूं? ये सब आपको सब कुछ बताने और धन्यवाद देने के लिए ही आए हैं।'

व्योमगति आगे आया, उसने कहा–'मेरा नाम व्योमगति है। मुझे आप पहचान गये। मैं आपकी सभा में आया था। कुमार को विमान में बिठाकर ले गया था। मेरा परिचय तो आपको ज्ञात है।'

श्रेणिक बोला–'हां, व्योमगति! मैं आपको देखते ही पहचान गया।'

'सम्राट्! मैं सबसे पहले आपको आगंतुकों का परिचय करवाना चाहता हूं।'

जम्बूकुमार की ओर इशारा करते हुए व्योमगति ने कहा–'यह आपके नगर का नागरिक है। इनका जो परिचय आप जानते हैं, वह देने की मुझे कोई जरूरत नहीं। जो परिचय ज्ञात नहीं है, वह मैं बाद में दूंगा।'

'सम्राट्! यह राजा मृगांक मेरा बहनोई है और वह इसकी कन्या है विशालवती।'

राजा मृगांक श्रेणिक से मिलने के लिए आगे बढ़ा। श्रेणिक ने साभिवादन राजा मृगांक का सम्मान किया। कन्या विशालवती ने श्रेणिक के चरणों का स्पर्श किया।

व्योमगति ने मिलन क्षण को वर्धापित करते हुए कहा–'सम्राट् श्रेणिक! राजा मृगांक अपने वचन को पूरा करने के लिए आया है। वह अपनी एकाकी कन्या विशालवती आपको समर्पित करना चाहता है। इसकी भावना का सम्मान आपको करना है।'

व्योमगति रत्नचूल की ओर उन्मुख होते हुए बोला–'यह रत्नचूल है, विद्याधरों का स्वामी। शक्तिशाली और तेजस्वी शासक। इसके साथ हमारा युद्ध था।'

एस रत्नशिखो नाम्ना, ख्यातो विद्याधराग्रणी।
निर्जितो यः कुमारेण, दुर्जयो महतामपि।।

श्रेणिक ने साश्चर्य पूछा–'क्या युद्ध समाप्त हो गया?'

'सम्राट्! युद्ध समाप्त हुआ है तभी तो हम आये हैं।'

'ओह!'

'युद्ध ही समाप्त नहीं हुआ है, हमने मैत्री का संबंध भी स्थापित कर लिया है। आज तक जो हमारा विरोधी था, शत्रु था, अब हमारा मित्र बन गया है।'

श्रेणिक के मन में एक जिज्ञासा हुई, कौतूहल हुआ। सम्राट् ने पूछा–'व्योमगति! युद्ध कैसे शुरू हुआ, कैसे सम्पन्न हुआ, क्या-क्या स्थिति बनी?'



'सम्राट्! युद्ध का सारा वृत्त जम्बूकुमार के पीछे घूम रहा है।'

कैसे युद्ध का आरंभ हुआ? कैसे युद्ध का अंत हुआ और जम्बूकुमार की क्या भूमिका रही? जम्बूकुमार ने क्या-क्या किया? अथ से इति तक पूरा घटनाचक्र व्योमगति ने सम्राट् श्रेणिक को बताया।

श्रेणिक के मन में अतिशय आह्लाद हो रहा था–मेरे एक युवक नागरिक ने इतना पौरुष दिखाया, इतना पराक्रम का प्रदर्शन किया। मेरे पास ऐसे योद्धा और नागरिक हैं, मुझे कोई चिंता नहीं है।

श्रुत्वेदं तन्मुखाद्राजा, स लेभे निर्वृतिं परां।
यथा चंद्रोदये सिन्धुर्वृद्धिमाप सहांभसा।।

श्रेणिक ने कहा–'सब बहुत अच्छा हुआ। जम्बूकुमार ने हमारे राज्य के गौरव को शतगुणित कर दिया। यह सचमुच साधुवादार्ह है।'

'राजन्! यह केवल आपके राज्य का ही गौरव नहीं है। हम सबके लिए एक आदर्श....'

'यह प्रशस्ति-पाठ रहने दो'–जम्बूकुमार व्योमगति का कथन पूरा होने से पूर्व ही बोल उठा–'आप जिस उद्देश्य से आए हैं, उसकी ओर ध्यान दो। जो करणीय है, उसके बारे में सोचो।'

'अब क्या करना है?' श्रेणिक ने पूछा।

'राजा मृगांक की प्रतिज्ञा थी–कन्या विशालवती का सम्राट् श्रेणिक के साथ विवाह करना है।'–व्योमगति ने मृगांक की प्रतिज्ञा को प्रस्तुति दी।

'ओह!'–सम्राट् श्रेणिक ने भाव भरे स्वर में कहा।

'सम्राट् श्रेणिक! उस प्रतिज्ञा की सफलता में एक अवरोध आ गया, युद्ध की स्थिति बन गई।'

'हां!'

'और अब वह अवरोध समाप्त हो गया इसलिए स्वयं मृगांक सपरिवार यहां आया है।'

'सम्राट् श्रेणिक! मैं यथाशीघ्र यह कार्य करना चाहता हूं।'–राजा मृगांक भावुक स्वर में बोला।

'राजा मृगांक! आप अभी आए हैं। कुछ विश्राम कर लें।'

'श्रेणिकवर! आपका साक्षात्कार होते ही मन प्रसन्न हो गया। एक क्षत्रिय के लिए प्राणों से भी अधिक मूल्य वचन का होता है।'

'हां!'

'जब तक वह पूरा नहीं होता, उसे चैन नहीं मिलता।'

'सम्राट्! ऐसा मान लीजिए–मृगांक कन्या को साथ ले आपकी अगवानी में आए हैं और आप बरात लेकर आए हैं।'–व्योमगति ने उल्लसित स्वर में कहा।



'मेरा वचन सफल तब होगा जब कन्या विशालवती आपको सौंप दूंगा।'–राजा मृगांक ने कन्या-समर्पण का प्रस्ताव दोहराया।

'सबसे पहले यही अपेक्षित है कि विशालवती और सम्राट् श्रेणिक का विवाह हो जाये।'–जम्बूकुमार ने मृगांक के प्रस्ताव का समर्थन किया।

न कोई मुहूर्त देखा, न कोई नक्षत्र। जहां भाग्य प्रबल होता है वहां मुहूर्त साथ में चलता है, नक्षत्र भी साथ में चलते हैं। जहां भाग्य कमजोर होता है, वे भी पीछे हट जाते हैं। अभी तो जम्बूकुमार का भाग्य-सितारा इतना तेज है कि जम्बूकुमार के आस-पास जो कुछ भी हो रहा है, सबके मन को आह्लाद और शुभ सुकून दे रहा है।

प्राचीनकाल में विवाह की प्रथाएं जटिल भी थीं और सरल भी। प्राचीनकाल में स्वयंवर भी होता था। न माता को चिंता, न पिता को चिंता। कन्या के लिए चयन का अवकाश। स्वयंवर का आयोजन होता, उस स्वयंवर में अनेक राजा आते। सबका परिचय प्रस्तुत होता। परिचय के बाद कन्या का मन जिसके प्रति आकृष्ट होता, वह उसको वरमाला पहना देती।

विवाह संपन्न हो जाता। न कोई भोज, न कोई सगाई की रस्म। जिसे चाहा, उसके गले में वरमाला पहनाई। अपने जीवन-साथी के चयन की यह प्रथा बहुत प्रतिष्ठित रही है।



समय-समय पर विवाह की प्रथाएं बदलती रही हैं। अब भी कुछ बदल रही हैं। विवाह के साथ दहेज का प्रश्न भी जुड़ गया है। कहीं-कहीं तो मनुष्य गौण और पदार्थ प्रमुख हो गया है। ऐसा लगता है–आदमी की दृष्टि कन्या पर नहीं, पदार्थ पर है। कन्या से भी अधिक मूल्य हो गया है पदार्थ का। एक सामान्य आदमी के लिए अपनी कन्या का विवाह बहुत जटिल बन गया है। जो जीवन मिलन का प्रसंग था, वह प्रदर्शन का प्रसंग बन गया इसीलिए आज दहेज, तलाक आदि अनेक समस्याएं और विकृतियां समाज में बढ़ रही हैं।

जम्बूकुमार के अनुरोध पर वहीं कुरलाचल पर्वत पर विवाह का आयोजन हो गया। कन्या विशालवती ने राजा मृगांक के संकेत पर सम्राट् श्रेणिक के गले में वरमाला पहना दी। विद्याधर रत्नचूल, राजा मृगांक, विद्याधर व्योमगति और जम्बूकुमार ने इस मंगल क्षण की वर्धापना की।

जिस लक्ष्य को लेकर व्योमगति सम्राट् श्रेणिक की सभा में आया था, वह कार्य सम्पन्न हो गया।

विद्याधर और भूमिचर के बीच यह पहला स्नेह संबंध था। इसने विद्याधरों और भूमिचरों के बीच नव आत्मीय संबंधों का श्रीगणेश कर दिया।



श्रेणिक ने विद्याधरपति मृगांक और विद्याधरपति रत्नचूल–दोनों को बहुत सम्मान दिया। सम्मान के पश्चात् कहा–'आपको साथ में रहना है, साथ में जीना है इसलिए अब आपस में वैर-विरोध नहीं रहना चाहिए। जम्बूकुमार ने मैत्री का जो अनुबंध कराया है, वह निरंतर पुष्ट बनता रहे।'

रत्नचूल और मृगांक ने श्रेणिक की बात स्वीकार करते हुए कहा– 'सम्राट्! मैत्री संबंधों के विस्तार में ही राजा और प्रजा का हित है। आप हमारे आत्मीय बन गए हैं। आपके मैत्री-भाव की स्मृति हमें सदा रहेगी।'

व्योमगति की ओर उन्मुख होते हुए सम्राट् श्रेणिक ने कहा–'व्योमगति! तुमने बहुत उत्तम काम किया है। तुम नहीं होते तो यह काम नहीं होता।'

व्योमगति बोला–'मैं क्या? महाराज! जम्बूकुमार नहीं होते तो यह काम नहीं होता।'

'व्योमगति! जम्बूकुमार ने किया है पर तुम निमित्त बने हो, तुम्हें साधुवाद।'

व्योमगति, मृगांक और रत्नचूल जम्बूकुमार से मिले, बोले–'कुमार! आपने जो काम किया है, हम उसके प्रति कितनी कृतज्ञता ज्ञापित करें, कितना साधुवाद दें। अब हम जा रहे हैं और जाते समय आपका आशीर्वाद लेना चाहते हैं।'

आश्चर्य की बात है–आशीर्वाद देता है बड़ी अवस्था वाला किन्तु मांगा जा रहा है छोटी अवस्था वाले से। बड़ी-छोटी अवस्था का क्या? जिसकी विशेषताएं बोलने लग जाती हैं, वह छोटा भी आशीर्वाद देने के योग्य बन जाता है।

जम्बूकुमार ने कहा–'आपका समझौता हो गया, सब कुछ ठीक हो गया। मैं आपको महावीर की उस वाणी का पुनः स्मरण कराना चाहता हूं–**मित्ती मे सव्वभूएसु**–सब जीवों के साथ मेरी मैत्री है। **वेरं मज्झ न केणइ**–किसी के साथ मेरा वैर-विरोध नहीं है।'

सबके साथ मैत्री-भाव प्रकट होता है तब पता लगता है कि हमारे भीतर कितना सुख है, कितना आनन्द है। जब कभी द्वेष का भाव, शत्रुता का भाव मन में आता है, सबसे पहले मस्तिष्क में खिंचाव होता है, तनाव होता है। ऐसा तनाव होता है कि कभी-कभी तो दर्दशामक गोलियां लेने पर भी मिटता नहीं है। द्वेष का तनाव, अप्रियता का तनाव, शत्रुता का तनाव बड़ा खतरनाक होता है। उस तनाव में कभी तो हाई ब्लडप्रेशर हो जाता है और कभी कुछ और।

जम्बूकुमार बोला–'आप इस बात को याद रखेंगे कि मैत्री बनी रहे। जीवन-व्यवहार की शुद्धि के लिए जम्बूकुमार ने जो उपदेश दिया, उसका बिम्ब इस श्लोक में है–

सत्त्वेसु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेसु जीवेसु कृपापरत्वं।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव!।।

विद्याधरपति! यह श्लोक एक मंत्र है। प्रातःकाल उठकर रोज इसका स्मरण करना, ध्यान करना। अध्यात्म का यह मंत्र मैं आपको बता रहा हूं, जिसके आधार पर हमारा सारा व्यवहार अच्छा बन जाता है।'

उसका पहला सूत्र है–सब जीवों के साथ मेरी मैत्री है। किसी के साथ मेरा वैर-विरोध नहीं है।

दूसरा सूत्र है–गुणिषु प्रमोदम्–गुणीजनों के प्रति प्रमोद की भावना। ईर्ष्या नहीं, किसी के प्रति जलन नहीं किन्तु प्रमोद की भावना। सामने वाले व्यक्ति में विशेषता है, गुण है, उसे सहर्ष स्वीकार करो तो तुम्हारी आत्मा भी प्रसन्न होगी। जलन करोगे तो उसका कुछ बिगड़ेगा या नहीं, तुम्हारा तो शरीर भी जलने लग जायेगा। जिसमें जलन पैदा हो गई, ईर्ष्या पैदा हो गई, वह स्वयं जलने लग जाता है।

प्रसिद्ध कथा है। पड़ोसी के घर बिलौना होता। पास में रहने वाली बुढ़िया रोज छाछ लाती। एक दिन किसी ने कह दिया–तुम्हें तो पड़ोस अच्छा मिला है, रोज छाछ मिल जाती है। बुढ़िया बोली–'तुम जानते नहीं हो। जब सुबह-सुबह बिलौना होता है तो ऐसा लगता है–वह मटके में नहीं, मेरी आंतों में होता है।'

पूज्य गुरुदेव ने कालूयशोविलास में बहुत सुन्दर लिखा–

जै माटै खाटे नहीं आयुर्वेद इलाज।
तंत्र मंत्र बूटी जड़ी, निवड़ी सब निष्काज।।

यह जलन और ईर्ष्या ऐसी है, जिसके लिए कोई आयुर्वेदिक इलाज, कोई ऐलोपैथिक दवा या इंजेक्शन नहीं है।

यह पर-सुख की दुर्बलता की जो व्यथा है, उसकी ऐसी अद्भुत कथा है कि कोई उपाय दुनिया में नहीं है।

परसुख दुर्बलता व्यथा, अद्भुत कथा कहाय।

जम्बूकुमार ने कहा–'महाराज! आपका व्यवहार प्रमोद-भावनापूर्ण होना चाहिए। एक-दूसरे की विशेषता को देखकर जलना नहीं है किन्तु प्रसन्न रहना है और गुण को ग्रहण करना है। गुण चाहे कहीं भी हो, किसी व्यक्ति में हो–उसका अनुमोदन और वर्धापन करें।

तीसरा सूत्र है–जो प्राणी कष्ट पा रहे हैं, उनके प्रति करुणा का भाव, कृपा का भाव होना चाहिए। दयापूर्ण व्यवहार हो, क्रूरतापूर्ण नहीं।

चौथा सूत्र है मध्यस्थ भाव। कुछ ऐसे लोग हैं जो कुछ कहने पर भी मानते नहीं हैं, समझते ही नहीं हैं। कब तक क्रोध करोगे? वहां तटस्थ बन जाओ। आपका ऐसा व्यवहार रहे तो मैं समझता हूं आपके लिए बहुत कल्याणकारी बनेगा, आप बहुत प्रसन्न रहेंगे।'

रत्नचूल और मृगांक दोनों ने कहा–'कुमार! आपने बहुत हित की बात कही है। हम परस्पर मैत्रीभाव बनाये रखेंगे। कभी ईर्ष्या, द्वेष का व्यवहार नहीं होगा।'

प्रस्थान का समय। सम्राट् श्रेणिक, जम्बूकुमार आदि विमान तक विदा देने के लिए आए। परस्पर गले मिले। शुभ भविष्य की मंगलकामनाएं कीं। पुनः मिलन की आशंसा व्यक्त की।....स्नेह और सौहार्दमय माहौल में तीनों विद्याधर अपने विमान में आरूढ़ हुए, आकाश में उड़ चले।



व्योमगति, मृगांक, रत्नचूल–सब अपने-अपने नगर की ओर चले गए। जम्बूकुमार का संग उनसे छूट गया। श्रेणिक के साथ वह कुरलाचल पर ठहर गया। सम्राट् श्रेणिक जिस लड़ाई में भाग लेने के लिए जा रहा था वह सम्पन्न हो गई तो आगे बढ़ने की बात भी समाप्त हो गई। श्रेणिक ने आदेश दिया– चलो, राजगृह के लिए पुनः प्रस्थान करो।

सम्राट् श्रेणिक, विशाल सेना और जम्बूकुमार–सब साथ में चले। विमान तो था नहीं कि बस उड़े और पहुंच जाएं। रथ, हाथी, घोड़े अपनी गति से चलते थे पर ऐसा लगता है–उस समय मनुष्य के पैरों की गति में भी तीव्रता थी। अब वाहन का प्रयोग हो गया इसलिए किसी को पैरों को ताकतवर बनाने की जरूरत नहीं लगती। अतीत में गति को तीव्र बनाने के प्रयोग चलते थे। तंत्रशास्त्र में गति की तीव्रता के प्रयोग हैं। अमुक-अमुक प्रयोग करने से मनुष्य बहुत तेज चल सकता है। अमुक जड़ी, अमुक औषधि, अमुक विद्या का प्रयोग करो, गति में वेग आ जायेगा।

उज्जयिनी का राजा चण्डप्रद्योत बड़ा शक्तिशाली था। उसका एक दूत था लौहजंघ। उसकी जंघा लोहे जैसी मजबूत थी। वह रात में सौ योजन चला जाता था। यह कोई गप्प नहीं है, एक तथ्य है। सौ योजन–४०० कोस यानी ८०० मील के आस-पास। १०००-१२०० कि.मी. एक रात में चला जाता। शायद रेल भी नहीं चलती है इतनी तेज। उज्जयिनी से चलता, राजगृह पहुंचता और वापस रात को उज्जयिनी पहुंच जाता। इतनी तेज गति थी। तेज गति के साधन भी थे, प्रयोग भी थे। आजकल के धावक दौड़ते हैं। उनसे

भी न जाने कितनी तेज गति उनकी हो जाती थी। उस समय साधन कम थे, अपने पैरों पर भरोसा करना होता था इसलिए उसके विकास का प्रयत्न होता था। अब साधन ज्यादा हो गये, पैरों की चिंता कहां है?

हाथी भी बहुत तेज चलता है, घोड़े भी बहुत तेज चलते हैं। हाथी की गति तो बहुत तीव्र होती है, इतना भारी शरीर है पर दौड़ता है तो कहते हैं सांप को भी पीछे छोड़ देता है। सांप की गति बड़ी तेज होती है पर हाथी सांप से भी आगे निकल जाता है।

सम्राट् श्रेणिक आदि सब तेज गति से चले और चलते-चलते शीघ्र राजगृह के परिपार्श्व में पहुंच गये।

श्रेणिक ने कहा–'कल शुभ मुहूर्त में राजगृह में प्रवेश होगा। यह सामान्य आगमन नहीं है, यह विजय-यात्रा का भव्य समारोह के साथ प्रवेश है। इसमें जम्बूकुमार अग्रणी रहेगा। आज सम्राट् श्रेणिक नहीं, जम्बूकुमार विजयी होकर आया है। उसने इतना बड़ा काम किया है। यह विजय यात्रा जम्बूकुमार की है।'

श्रेणिक ने अधिकारियों को बुलाया, कहा–'जाओ, पूरे राजगृह में घोषणा कर दो–कल विजय यात्रा संपन्न कर जम्बूकुमार आ रहा है। सम्राट् श्रेणिक उसके साथ रहेंगे।'

जिसमें शक्ति होती है, जिसमें विशेषता होती है, वह अपने आप आगे आ जाता है।

'जम्बूकुमार महान् विजय के पश्चात् राजगृह में आ रहा है। उसका भव्य प्रवेश है। सम्राट् श्रेणिक भी उसके साथ रहेंगे। एक अलौकिक दृश्य होगा'– पूरे नगर में पटह वादन के साथ यह घोषणा हो गई।

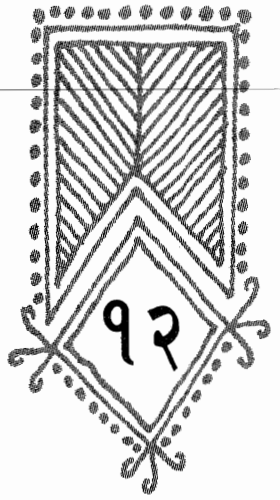
लोगों के मन में जिज्ञासा जाग गई। सम्राट् श्रेणिक को सब जानते थे। जम्बूकुमार को सब नहीं जानते थे। राजगृह बहुत बड़ा नगर था। आस-पास के लोग, मोहल्ले के लोग जानते थे, और भी कुछ लोग जानते थे पर सब लोग जम्बूकुमार को कैसे जानते?

जम्बूकुमार के सम्मान-पूर्वक प्रवेश की सूचना से वातावरण में विस्मय और जिज्ञासा का ज्वार आ गया–कौन है जम्बूकुमार?

क्या वही जम्बूकुमार है, जिसने पट्टहस्ती को वश में किया था? उसने कहां विजय प्राप्त की है?

क्या वह कोई अलौकिक व्यक्ति है?

जिस व्यक्ति का सर्व शक्तिसंपन्न सम्राट् सम्मान कर रहा है, कैसा विलक्षण है वह पुरुष?



जब कोई विशिष्ट घटना घटित होती है तब अनेक प्रश्न खड़े हो जाते हैं। अनेक प्रकार के लोग, अनेक प्रकार के चिन्तन और अनेक प्रकार की जिज्ञासाएं।

प्रभात का समय। अंधकार समाप्त। सूर्योदय हो गया। प्रकाश फैल गया। सारी प्रवृत्तियां चालू हो गईं। प्राचीनकाल में रात का समय निवृत्ति का समय होता था। वर्तमान युग में तो लोग रात्रि में बहुत देर तक काम करते हैं। रात्रि में दो-ढाई बजे तक कार्य चलता रहता है। प्राचीनकाल में रात को लोग प्रायः घूमते भी नहीं थे। जो रात को घूमता, वह निशाचर कहलाता। निशाचर या तो राक्षस, भूत या रात को घूमने वाला। रात को केवल वे घूमते जो प्रहरी का काम करते थे या चोर। किंतु अब सारी स्थिति बदल गई है। अब निशाचर और दिनचर की भेदरेखा भी शायद नहीं रही। न वह निवृत्ति की स्थिति रही। अधिकांश लोग रात को ही खाते हैं और रात को ही काम चलता है। प्राचीनकाल में गृहस्थ भी रात को कम खाते थे। भोजन का समय सूर्यास्त के पूर्व रहता था। रात्रिभोजन का वर्जन स्वास्थ्य और साधना–दोनों दृष्टियों से उपयुक्त माना गया है।



प्रभात और अरुणिम प्रकाश के साथ सम्राट् श्रेणिक और जम्बूकुमार का नगर प्रवेश। हजारों-हजारों लोगों में एक प्रबल उत्सुकता। सब लोग जम्बूकुमार से परिचित होना चाहते हैं। महाराज श्रेणिक हाथी पर आरूढ़ हैं और जम्बूकुमार भी। शेष सब गौण हैं, केवल सम्राट् श्रेणिक और जम्बूकुमार–ये दो जन आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं। आज सम्राट् श्रेणिक से भी अधिक आकर्षण और चर्चा का विषय जम्बूकुमार है।

भव्य नगर-प्रवेश के क्षणों में पटहवादक यह घोषणा करते जा रहे हैं–आज जम्बूकुमार विजय-यात्रा से आया है। उसने सम्राट् श्रेणिक के लिए युद्ध किया। वे शक्तिशाली एवं विद्यासंपन्न विद्याधरों के साथ युद्ध में विजय प्राप्त कर लौट आये हैं।

इस उदात्त घोषणा एवं गीत-नृत्य समारंभ के साथ प्रवेश हुआ। जिज्ञासा एवं आश्चर्यमिश्रित दृष्टि से लोगों ने जम्बूकुमार को देखा। स्थान-स्थान पर साश्चर्य यह प्रश्न पूछा जा रहा है–यह तेजस्वी नवयुवक कौन है? कहां का रहने वाला है?

उत्तर मिलता है–'अरे! क्या तुम इसे नहीं जानते? यह इसी राजगृह का निवासी है।'

'किसका बेटा है?'

'ऋषभदत्त का पुत्र है।'

पुत्र शक्तिशाली होता है तो माता-पिता, परिवार सब साथ जुड़ जाते हैं।

श्वेताम्बर परम्परा और दिगम्बर परम्परा में नामों में थोड़ा अंतर है। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार जम्बूकुमार ऋषभदत्त का पुत्र है। उसकी मां का नाम है धारिणी।[1]

जम्बूकुमार के आकर्षक, भव्य आभामंडल को देख जनता चित्रित रह गई–अरे! यह तो वही जम्बूकुमार है जिसने हाथी को वश में किया था।

एक संभ्रांत नागरिक ने कहा–'इस युवक ने गजब कर दिया। शक्तिशाली विद्याधर को जीतना कितना दुष्कर है? एक भूमिचर ने विद्याधर पर विजय प्राप्त कर नया इतिहास रचा है।'

'धन्य हैं वे माता-पिता जिन्होंने इस पुत्र-रत्न को जन्म दिया है। यह उस कुल का किरीट है। इसने अपने कुल और नगर का नाम रोशन कर दिया है।' एक युवक ने अपने हृदय के उद्‌गार व्यक्त किए।

'यह किसी व्यक्ति का नहीं, पौरुष की प्रतिमा का सम्मान है। इसने अपने अतुलनीय पराक्रम से अपना अवर्णनीय कीर्तिस्तंभ रच दिया है।' एक सहृदय कवि ने काव्यात्मक शैली में कहा।

सबके मुख पर यही यशोगाथा मुखर है–इसने राजगृह का गौरव समुन्नत किया है, महान् विजय का वरण किया है इसीलिए सम्राट् श्रेणिक स्वयं इसका वर्धापन कर रहे हैं।

एक अपूर्व उल्लास जनता में जाग गया। जम्बूकुमार जनता की आंखों का तारा बन गया।

जयनादों और जयघोषों के बीच जम्बूकुमार राजभवन पहुंचा। सम्राट् श्रेणिक ने राजप्रासाद के मुख्य द्वार पर जम्बूकुमार का अंतःपुर के साथ स्वागत किया, अनेक उपहार समर्पित किए।

जम्बूकुमार को सम्माननीय राजकीय अतिथि के रूप में राजप्रासाद से मंगलभाव से विदाई दी। हाथी के ओहदे पर राजकीय सम्मान के साथ श्रेष्ठीप्रासाद में पहुंचाया।

माता-पिता ने पुत्र के विजयोत्सव को परिवार के भाग्योदय के रूप में देखा।

यह वृत्त जम्बूकुमार के जीवन का एक महान् अध्याय बन गया।

अनेक दिनों तक जम्बूकुमार राजगृह नगर में वार्तालाप का केन्द्र बिन्दु बना रहा।....शनैः-शनैः वार्ता के ये स्वर मंद होते चले गए।

सम्राट् श्रेणिक, प्रजाजन एवं जम्बूकुमार आदि सभी जन सामान्य जीवनचर्या के अनुसार रहने लगे। संस्कृत व्याकरण में एक सूत्र आता है पूर्ववत्–सब कुछ पहले की तरह। नया कुछ भी नहीं। उत्सव सम्पन्न, कौतूहल सम्पन्न, जिज्ञासा सम्पन्न।

जो घटना घटित होती है, वह सम्पन्न हो जाती है, पर अनेक प्रश्न छोड़ जाती है। एक दिन जम्बूकुमार अपने प्रासाद में बैठा था। उसके मन में एक प्रश्न उठा–मैंने सफलता पाई है। यह निश्चित है कि सफलता पुण्योदय से मिलती है। भाग्य बलवान् होता है, सफलता मिलती है। बिना भाग्य के बहुत सारी बातें नहीं होतीं। भाग्य प्रबल होता है तो कार्य सध जाते हैं। भाग्य दुर्बल है तो होने वाले काम भी रुक जाते हैं।

जो जन्मकुण्डली को देखते हैं या हाथ की रेखा को देखते हैं वे इस बात पर ज्यादा ध्यान देते हैं कि इस जातक का भाग्य कैसा है? भाग्य बलवान् है या निर्बल? यदि भाग्य बलवान् है तो दूसरे ग्रह भी उसका

१. पंडित राजमल्ल विरचित 'जंबूस्वामिचरितम्' में पिता का नाम अर्हद्दास और मां का नाम जिनमती है।

सहयोग कर देते हैं। जम्बूकुमार ने सोचा–मैंने जो सफलता पाई है वह पुण्य कर्म के विपाक से पाई है। पर यह पुण्य मैंने कब अर्जित किया था? मैंने इस जन्म में तो किया नहीं? कब अर्जित किया?

जम्बूकुमार ने मन में एक प्रश्न पैदा हो गया। जब कोई बड़ा प्रश्न पैदा हो जाता है तब आदमी उसी चिंतन में लग जाता है।

अथ जम्बूकुमारेण, चिन्तितं निजमानसे।
कुतः पुण्योदयादेतन्, मया लब्धं यशोधनम्।।

साधनाकाल में साधक बहुत बार यह प्रश्न पूछता है–मैं कौन हूं? अनेक प्रसंगों में अपने आपसे भी यह प्रश्न पूछा जाता है–मैं कौन हूं?

दूसरा प्रश्न है–**कुतः समायातः**–मैं कहां से आया हूं?

तीसरा प्रश्न होता है–किस कर्म के विपाक से मैं सफल हुआ हूं?

ये तीन यक्ष प्रश्न जम्बूकुमार के सामने प्रस्तुत हो गये–

कोऽहं कुतः समायातः कस्मात् पुण्यविपाकतः।

मैं कौन हूं? यह अद्भुत प्रश्न है। आप लोगों ने भी शायद किसी दूसरे से नहीं, अपने आप से पूछा होगा। कोई भी आदमी सोचता है तो यह प्रश्न जरूर पूछता है कि मैं कौन हूं। अपने आपको जानने के लिए, पहचानने के लिए अपने आपसे यह प्रश्न पूछना बहुत जरूरी है। जो व्यक्ति यह प्रश्न नहीं पूछता, वह सदा अंधेरे में रहता है। उसके घर में कभी दीवाली नहीं आती। सदा दीवाली उसी के घर में आती है, जो यह प्रश्न स्वयं से पूछता है और उसके समाधान के लिए सचेष्ट रहता है।

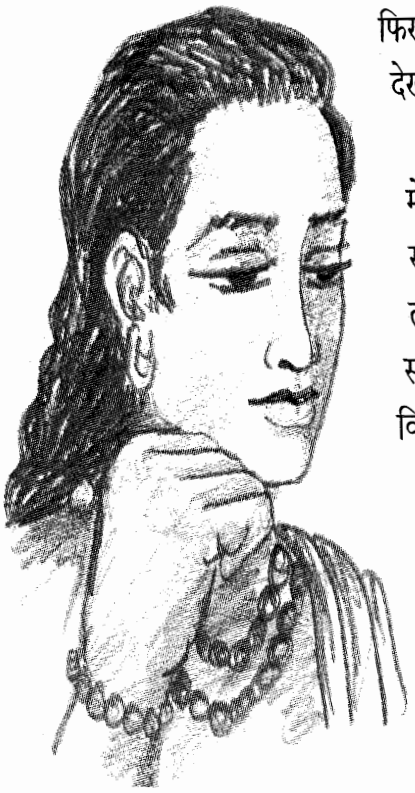


ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसके मस्तिष्क में यह प्रश्न नहीं उभरता कि 'मैं कौन हूं।' जो व्यक्ति अहंकार और ममकार–इन दो में उलझा रहता है वह कभी यह नहीं पूछता–मैं कौन हूं। अहंकार इतना प्रबल होता है कि पूछने ही नहीं देता। 'मैं विद्वान् हूं', 'मैं धनी हूं', 'मैं शासक हूं'–ये सारी धारणाएं इतनी रूढ़ जमी रहती हैं कि 'मैं कौन हूं' यह असली प्रश्न सामने आता ही नहीं है। हमारी सारी पहचान बाहरी बन जाती है, भीतर की पहचान समाप्त हो जाती है। बाहर में इतने आवरण आ गए कि भीतर में क्या है, यह दिखाई नहीं देता। कोई यह पूछता ही नहीं है कि मैं कौन हूं? 'मैं सुखी हूं', 'मैं दुःखी हूं', 'मैं पिता हूं', 'मैं पुत्र हूं' आदि-आदि प्रश्नों में इतना व्यामोह पैदा हो जाता है कि असली प्रश्न सामने नहीं आता किंतु जब कोई विशेष प्रसंग बनता है, तब यह प्रश्न उभरकर सामने आ जाता है।

आज जम्बूकुमार के सामने यह प्रश्न आ गया–'मैं कौन हूं।'

यह प्रश्न उसे एकदम आकुल-व्याकुल कर रहा है, एक बेचैनी और छटपटाहट पैदा कर रहा है।

दूसरा प्रश्न उठा–मैं कहां से आया हूं? हर व्यक्ति के मन में अपने पूर्वजन्म को जानने की इच्छा रहती है। प्रेक्षाध्यान के शिविर में कुछ प्रयोग कराये जाते हैं तब अनेक लोग जिज्ञासा लेकर आते हैं कि मैं कहां से आया हूं? मैं पूर्वजन्म में क्या था? इसमें बड़ी रुचि रहती है। बड़ा आकर्षण है यह जानने का कि मैं कहां से आया हूं। प्राचीनकाल में यह प्रयोग बहुत चलता था। भगवान महावीर स्वयं यह प्रयोग कराते थे। कोई भी आता, कहीं विचलन की समस्या होती उसे पूर्वजन्म की स्मृति करा देते। जब पूर्वजन्म की स्मृति होती तब



फिर उपदेश की ज्यादा जरूरत नहीं रहती। अपने पूर्वजन्म को साक्षात् देखता है तो आदमी अपने आप बदल जाता है।

मेघकुमार ने अपने पूर्वजन्म–मेरुप्रभ हाथी के भव को देखा, मेघकुमार बदल गया। भगवान महावीर ने उपदेश नहीं दिया, ज्यादा समझाने का प्रयत्न नहीं किया, केवल इतना ही कहा–'मेघकुमार! तूने हाथी के भव में कितना कष्ट सहा था। अब मनुष्य के भव में सम्राट् श्रेणिक के घर में जन्मा। राजकुमार बना और थोड़े से कष्ट में विचलित हो गया?' केवल संकेत भर किया।

मेघकुमार ने अपना हाथी का भव देखा, उस हाथी को देखा जिसका भारी भरकम डील-डौल है, अति स्थूल शरीर है, वह उस जंगल में खड़ा है, जहां चारों ओर दावानल सुलग रहा है। कुछ भूभाग ही ऐसा है, जो सुरक्षित है। उसमें चारों तरफ पशु भरे हैं, कहीं इंच भर भी स्थान खाली नहीं है। वह हाथी अपना पैर ऊंचा करता है। एक खरगोश नीचे आकर बैठ जाता है। उस हाथी ने इसलिए नीचे पैर नहीं रखा कि खरगोश मर जायेगा। वह ढाई दिन तक इसी प्रकार रहा। आखिर दावानल बुझा। सब पशु बाहर निकले। खरगोश भी चला गया। हाथी ने पैर नीचे रखने का प्रयत्न किया पर रखे कैसे? इतने लंबे समय तक पैर को ऊपर रख लिया, वह अकड़ गया। पैर नीचे रखना संभव नहीं रहा। हाथी अपने शरीर को संभाल नहीं सका, नीचे लुढ़क पड़ा।

अपनी उस स्थिति को मेघकुमार ने अपनी आंखों से देखा–वह हाथी मैं ही था और मैंने ही पैर को ऊंचा रखा था। मैंने कितना कष्ट सहन किया था। आज कहां है वह कष्ट?

जो मेघकुमार वापस घर जाने की तैयारी में आया था, वह अपने पूर्वजन्म को देखते ही बदल गया, बोला–'भंते! अब मैं साधु जीवन जीना चाहता हूं। साधु जीवन में रहूंगा। कष्ट से नहीं घबराऊंगा।'

जब-जब पूर्वजन्म का चित्र सामने आता है, आदमी की सारी भावना बदल जाती है।

जम्बूकुमार के मन में यही प्रश्न उठा–मैं पूर्वजन्म को जान लूं। मैं कहां से आया हूं? वहां मैंने क्या किया था? महावीर के इस सिद्धांत को मैंने समझा है–अच्छे कर्म का फल अच्छा होता है, बुरे कर्म का फल बुरा होता है।

सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णा फला, दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णा फला–इस सिद्धांत को मैं मानता हूं। इस सिद्धांत के अनुसार यह स्पष्ट है–मैंने कोई अच्छा कर्म किया है। मध्यकालीन साहित्यकारों और कवियों ने इस सिद्धांत को बहुत आगे बढ़ा दिया, बहुत अतिरेक भी कर दिया। यह ठीक है–अच्छे कर्म का फल अच्छा होता है पर अच्छा भी क्या मिलता है, उसकी भी एक सीमा है। यह नहीं कि सब कुछ मिल जाता है। यह बाहर का जितना संयोग मिलता है पुण्योदय से मिलता है। किंतु जहां अतिरेक होता है वहां यह भी मान्य हो गया कि सब कुछ धर्म से होता है। धर्म को ऐसी कामधेनु बना दिया कि जो चाहो मांग लो, सब कुछ मिल जायेगा।

उपाध्याय विनयविजयजी ने लिखा, वह विचित्र सा लगता है–

प्राज्यं राज्यं सुभगदयिता नंदनानंदनानां, रम्यं रूपं सरसकविता चातुरी सुस्वरत्वम्।
नीरोगत्वं गुणपरिचयः सज्जनत्वं सुबुद्धिः, किन्नु ब्रूमः फलपरिणतिः धर्मकल्पद्रुमस्य।।

धर्म एक कल्पवृक्ष है। उसके फलों का क्या बताएं? विशाल राज्य, सुंदर स्त्री, अच्छा पुत्र, सुन्दर रूप, सरस कविता, चातुर्य, अच्छा स्वर, नीरोगता, गुण-परिचय, सज्जनता, सुबुद्धि–ये सब धर्म कल्पवृक्ष के फल हैं। इतने फल तो बता दिए, फिर कहा–और क्या-क्या बताएं?

धर्म कल्पवृक्ष का कौन सा फल अच्छा नहीं लगता? एक चिन्तनशील आदमी को भ्रम हो जाता है कि क्या धर्म का यही काम है? बड़ी उलझन पैदा हो जाती है। कुछ दिन पहले एक युवक आया। मैंने कहा–'क्या धर्म की आराधना करते हो?'

युवक ने सीधा उत्तर दिया–'धर्म में बड़ी कन्फ्यूजन है। मैं धर्म का नाम लेता हूं तो कन्फ्यूज हो जाता हूं।'

मैंने कहा–'इतनी क्या कन्फ्यूजन है?'

युवक बोला–'बड़ी कन्फ्यूजन है। कभी तो कहते हैं माला फेरो, कभी कहते हैं लक्ष्मीजी की पूजा करो। कभी कहते हैं–अमुक देवी-देवता के पास जाओ। अब किस-किस को मानें? कहां-कहां जाएं? क्या करें?'

मैंने कहा–'कन्फ्यूजन इसीलिए है कि तुमने कभी धर्म को समझने का प्रयत्न ही नहीं किया। धर्म का मुख्य फल है–निर्जरा। धर्म का मुख्य फल है–संवर। आश्रव का निरोध, इच्छा का निरोध, प्रवृत्ति का निरोध और पुराने संस्कारों का शोधन–यह धर्म का फल है और जो कुछ मिलता है, वह धर्म का मुख्य फल नहीं है, प्रासंगिक फल हो सकता है।'



फल दो प्रकार का होता है एक मुख्य फल और एक गौण फल। लोग खेती करते हैं। किसलिए करते हैं? बाजरी, गेहूं, चावल आदि अनाज के लिए। यह खेती का मुख्य फल है। आचार्य सोमदेव ने बहुत सुंदर लिखा है–

यद्भक्तेः फलमर्हदादि पदवी, मुख्यं कृषेः शस्यवत्।
चक्रित्वत्रिदशेन्द्रतादि तृणवत्, प्रासंगिकं गीयते।।

जैसे कृषि का मुख्य फल है धान्य की उत्पत्ति और उसका प्रासंगिक फल है तृण आदि का मिलना। वैसे ही भक्ति का मुख्य फल है अर्हत् आदि पदवी की प्राप्ति और उसका प्रासंगिक फल है चक्रवर्तित्व, इन्द्रत्व आदि का प्राप्त होना।

संवर से धर्म होता है, निर्जरा से धर्म होता है, उसके साथ पुण्य का बंध भी होता है। राज्य आदि सारे पुण्य के फल हैं, न कि धर्म के फल। अच्छा योग मिला, अच्छी सम्पदा मिली, सारा अच्छा वातावरण मिला, सफलता मिली–यह सारा भाग्य का, पुण्य का फल है न कि धर्म का फल किन्तु जहां भेद नहीं करते हैं वहां सबको एक मिला देते हैं।

आचार्य भिक्षु ने बहुत स्पष्ट लिखा–गेहूं की खेती की, गेहूं हुआ और साथ में खाखला भी हुआ। यह

भूसी, चारा खेती के साथ होता है पर खेती का मुख्य फल क्या है? खेती का मुख्य फल है अनाज। उसके साथ पलाल, तूरी, चारा सब कुछ होता है। हम दोनों को एक न मानें।

जम्बूकुमार का यह चिन्तन उपयुक्त था। उसने यह नहीं सोचा–मैं जो सफल हुआ हूं वह धर्म से हुआ हूं। उसने यह सोचा–मैंने जो कुछ पाया, कर्म के विपाक से पाया। मैंने कौनसा कर्म किया, जिसके विपाक से मैं सफल बना? मैं श्रेष्ठी के घर में आया, सर्वत्र विजय मिली। अपूर्व सम्मान मिला। प्रचुर यश मिला।

चौथा प्रश्न यह किया जा सकता है–मैं कहां हूं? क्या मैं लाडनूं में हूं, राजस्थान में हूं? हिन्दुस्तान में हूं? यह बाह्य दुनिया से जुड़ा प्रश्न है। भीतरी दुनिया से जुड़ा प्रश्न है–क्या मैं शरीर में हूं? आत्मा में हूं? मैं शरीर में हूं तो मेरी चेतना कहां है? जो व्यक्ति यह प्रश्न पूछता है, उसे समाधान मिल जाता है।

प्रेक्षाध्यान शिविर में साधक को यह प्रयोग कराया जाता है कि आप देखें, आपकी चेतना कहां है? क्या नाभि के आसपास केन्द्रित है या मस्तिष्क के आसपास केन्द्रित है? जर्मनी के एक प्रोफेसर का यही प्रश्न रहा–'आप जो प्रयोग करवाते हैं, यह मुझे बताइये कि मैं कहां हूं?' मैंने कहा–'आपकी सारी बातचीत से लगता है कि आपकी चेतना मस्तिष्क के परिपार्श्व में है।'

चेतना नाभि के आस-पास होगी तो एक अलग प्रकार का व्यक्तित्व होगा। चेतना मस्तिष्क के परिपार्श्व में होगी तो एक अलग प्रकार का व्यक्तित्व होगा। नाभि पर केन्द्रित चेतना का ऊर्ध्वारोहण होता है तो सारा व्यक्तित्व बदल जाता है, आचरण, व्यवहार और चिंतन बदल जाता है। हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि यह वही व्यक्ति है। यह सोचा भी नहीं जा सकता। महर्षि वाल्मीकि क्या था और क्या हो गया? नाभि के आसपास रहने वाली उसकी चेतना कहां पहुंच गई? अंगुलिमाल नृशंस हत्यारा था। उसकी चेतना नाभि से नीचे रहती थी। जब अंगुलिमाल प्रतिबुद्ध हुआ, उसकी चेतना का ऊर्ध्वारोहण हो गया।

अर्जुनमालाकार रोज सात प्राणियों की हत्या करता था। छह पुरुष और एक स्त्री प्रतिदिन मारने का संकल्प था। एक आदमी उपवास का व्रत लेता है, एक आदमी सामायिक का व्रत लेता है किन्तु अर्जुनमालाकार का व्रत था सात लोगों की हत्या। कुछ लोगों का यह संकल्प होता है–माला फेरे बिना मैं मुंह में पानी भी नहीं डालता, सामायिक किये बिना भोजन-पानी नहीं लेता। अर्जुनमालाकार का संकल्प यह था–सात आदमियों को मारे बिना मुंह में अन्न जल नहीं लेना। वही अर्जुनमालाकार भगवान महावीर की शरण में गया और साधु बन गया। उसकी चेतना का रूपान्तरण हो गया। नाभि केन्द्रित चेतना का मस्तिष्क में प्रवेश हो गया।

जम्बूकुमार के मन में तीन प्रश्न थे–मैं कौन हूं? मैं कहां से आया हूं? यह किस कर्म का विपाक है? उसके मन में चौथा प्रश्न नहीं था। किन्तु वर्तमान संदर्भ में चौथा प्रश्न भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

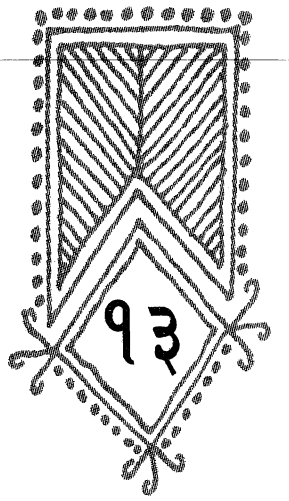
इन प्रश्नों का समाधान उसे पाना है पर कौन दे समाधान? समाधान के लिए जरूरी है गुरु की खोज। जम्बूकुमार इस खोज में है कि कोई गुरु मिल जायें और इन अज्ञात रहस्य भरे प्रश्नों का समाधान प्राप्त हो जाए।

ये प्रश्न जम्बूकुमार के अंतःकरण को निरंतर आंदोलित कर रहे हैं, उद्वेलित कर रहे हैं।

इस आंदोलन और उद्वेलन का परिणाम क्या होगा?

जीवन से जुड़े इन यक्ष प्रश्नों का समाधान होगा या ये अनसुलझे ही रह जाएंगे?

क्या किसी ज्ञानी गुरु का योग मिलेगा?





उर्वरा भूमि, वर्षा ऋतु, अच्छी वृष्टि और फिर बीज वपन। इस स्थिति में कृषि की संभावना रहती है। सबसे पहले उर्वरा भूमि की जरूरत है। ऊसर भूमि में बीज बोया नहीं जाता। यदि कोई बो देता है तो उगता नहीं है।

जम्बूकुमार की हृत्-भूमि उर्वरा बन गई। उसे जो होना है उसके लिए भूमि तैयार हो गई। जब भूमिका बन जाती है तब आगे का काम सरल हो जाता है।

मन में जब कभी एक प्रश्न पैदा हो जाता है और उसकी खोज शुरू होती है तो अपने आप चरण आगे बढ़ते हैं और एक नई दिशा का उद्घाटन हो जाता है।

इस प्रश्न ने जम्बूकुमार के मन को आंदोलित कर दिया–मैंने क्या किया था?

जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।

खोज हो, मन में तड़प हो तो गुरु मिलता है। जिस कंठ में तड़प ही न हो, प्यास ही न लगे उस कंठ को पानी पिलाने का कोई अर्थ नहीं होता। पानी अच्छा वहां लगता है जहां कंठ में प्यास है। जहां प्यास है वहां कहीं ना कहीं से पानी मिल ही जाता है।

जम्बूकुमार एक दिन वन भ्रमण के लिए गया। राजगृह नगर के बाह्यवर्ती उद्यान में वह चंक्रमण कर रहा था। सहसा उसकी दृष्टि एक ध्यानलीन मुनि की ओर गई–अरे! अशोक वृक्ष के नीचे कोई महामुनि ध्यान में लीन हैं। कितना दिव्य है इनका आभामंडल और प्रभामंडल। जम्बूकुमार के चरण थम गए। उसने मुनि को वंदना की, उनकी सन्निधि में आसीन हो गया।

अर्ध घटिका बीती। महामुनि का ध्यान संपन्न हुआ। जम्बूकुमार ने पुनः वंदना की।

महामुनि ने प्रश्नायित दृष्टि से देखते हुए पूछा–'वत्स! तुम कौन हो? इस निर्जन वन में कैसे आए हो?

जम्बूकुमार ने कहा–'महामुनि! मैं राजगृह का निवासी हूं। मेरा नाम जम्बूकुमार है। मैं वनभ्रमण के लिए आया था। मैंने आपको देखा तो एक चिरपालित जिज्ञासा के समाधान की भावना तीव्र बन गई।'

'तुम क्या चाहते हो?'

'महामुनि! मैं अपना पूर्वभव जानना चाहता हूं। पिछले जन्म में मैं क्या था? मैंने क्या किया था, यह मैं जानना चाहता हूं।'

भो मुने! कृपया किंचिद्, ब्रूहि मे संशयच्छिदे।
जन्मांतरस्य वृत्तांतं, ज्ञातुमिच्छामि त्वन्मुखात्।।

आज यह विषय परामनोविज्ञान का है। परामनोविज्ञान यानी पूर्वजन्म की खोज। पूर्वजन्म की शोध आज चल रही है–व्यक्ति पिछले जन्म में क्या था? जो आज मनुष्य है, वह पहले क्या था? कैसा था उसका जीवन? क्या उसके सुख और दुःख का कारण-बीज अतीत में है?

एक छोटी सी लड़की अनेक बार आती है, वह कहती है–मैं पिछले जन्म में चूरू में सुराणा परिवार में जन्मी थी। चूरू के प्रसिद्ध तत्वज्ञ और श्रद्धालु श्रावक हुकुमचंदजी सुराणा के घर मेरा जन्म हुआ था।

एक बहिन आई, उसने कहा–मैं पिछले जन्म में एक राजपूत की लड़की थी। वहां से मरने के बाद सामने जो घर है उसी में मैंने जन्म लिया है। मेरे पूर्वजन्म के माता-पिता और वर्तमान माता-पिता आमने सामने रहते हैं।

आज इस विषय पर बहुत काम हो रहा है। काफी काम आगे बढ़ा है। अनेक वर्ष पहले समाचार-पत्र में पढ़ा था–सोवियत संघ में वैज्ञानिकों ने इस दिशा में बहुत अनुसंधान किया, खोज काफी आगे बढ़ गई।

वैज्ञानिक लक्ष्य के निकट पहुंच गए। किन्तु तत्कालीन साम्यवादी शासन में उस अन्वेषण को रोक दिया गया। उन्हें यह आशंका हो गई–यदि पूर्वजन्म सिद्ध हो गया तो क्या होगा? क्या द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का आधार ही समाप्त नहीं हो जाएगा?

यह अनुसंधान का एक बड़ा विषय है। आज वैज्ञानिक यांत्रिक संसाधनों और सूक्ष्म उपकरणों से इस दिशा में खोज कर रहे हैं। प्राचीन युग में खोज की ज्यादा जरूरत नहीं थी। ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञानी मुनि विद्यमान थे, जो जातिस्मृतिज्ञान के द्रष्टा और प्रयोक्ता थे। उनके पास जो व्यक्ति जाता, वह अपनी जिज्ञासा का समाधान पा लेता।

जम्बूकुमार ने मुनि से अपना पूर्वजन्म पूछा और मुनि ने उसके प्रश्न को समाहित कर दिया।

ध्यानलीन महामुनि ने कहा–'जम्बूकुमार! मैं तुम्हारे चार जन्मों को अभी साक्षात् देख रहा हूं।'

'महामुनि! मैं अपने चारों जन्मों को जानना चाहता हूं। आपकी कृपा से मेरी चाह सफल बनेगी। मैं धन्य और कृतार्थ बनूंगा।'–जम्बूकुमार ने भाव भरे स्वर में कहा।

'जम्बूकुमार! चार जन्मों में तुम दो बार मनुष्य बने और दो बार देव रूप में उत्पन्न हुए।'

'महामुनि! मैं पहले मनुष्य बना या देव?'

'जम्बूकुमार! तुम्हारा पहला जन्म मनुष्य का है। तुम्हारा नाम था भावदेव। तुम्हारे छोटे भाई का नाम था भवदेव।'

जैन साहित्य में भावदेव-नांगला का प्रसिद्ध आख्यान है। साधु-साध्वियां उसे पढ़ते हैं, व्याख्यान सुनाते हैं।

महामुनि ने कहा–'मनुष्य-आयु का भोग कर तुमने समाधिमरण का वरण किया। तुम सनत्कुमार देव बने। देवलोक से च्युत होकर शिवकुमार बना और फिर ब्रह्मलोक में देवता बने। इस पांचवें भव में जम्बूकुमार के रूप में उत्पन्न हुए हो।'

मुनि ने कहा–'तूने संयम की आराधना की, साधना इतनी प्रबल हुई कि तुम्हारे संस्कार काफी क्षीण हो चुके हैं। भावदेव के जन्म में तो संस्कार ने सताया था, एक बार विचलित भी हो गए थे किन्तु फिर संभल गए। उसके पश्चात् जो साधना की, वह विशुद्ध बनती गई।'

किसी भी व्यक्ति के जीवन में, साधना में अनेक उतार-चढ़ाव आते हैं। कोई साधक यह मान लें कि मैं सिद्ध हो गया तो यह भ्रांति है। इस भ्रांति में रहने वाला आगे नहीं बढ़ता, पीछे हट जाता है।

बहुत कठिन है अठारह पाप का त्याग। बहुत कठिन है सामायिक की साधना। अठारह पाप सावद्य योग हैं। उसकी परिज्ञा सरल नहीं है। आदमी असत्य में भी रस लेता है, वासना में भी रस लेता है, निंदा, चुगली, कलह, झगड़ा–इनमें भी रस लेता है। रात-दिन दिमाग उसी में रहता है। बहुत लोग कहते हैं–हमारा विकास नहीं होता? मैंने कहा–विकास कैसे हो? तुम्हारा दिमाग तो इन सब में लगा हुआ है। विकास होगा कैसे?



जिसकी आत्मा जागृत हो जाती है, चारित्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम प्रबल हो जाता है, चारित्र में रति आ जाती है, वह आत्मरति हो जाता है, आत्मा में रमण करता है, आत्मा को देखने लग जाता है।

आचारांग का प्रसिद्ध सूक्त है–**जे अणण्णदंसी से अणण्णारामे**–जो अनन्यदर्शी है, वह दूसरे को नहीं देखता, केवल आत्मा को देखता है, वह अनन्य में रमण करने लग जाता है। जो अनन्य में रमण करता है, वह अनन्य को देखता है। चरित्र मोह का क्षयोपशम जब इतना प्रबल हो जाता है, तब चिंतन की धारा बदल जाती है।

कपिल का क्षयोपशम पक गया था। क्षयोपशम पका तो चिन्तन की धारा बदल गई। जो कपिल किसी के मोह-पाश में फंसा हुआ था, लोभ लालच के कारण रात्रि में घूम रहा था वही कपिल जब धारा बदली तो तन्मय होकर गा उठा।

अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुःखपउराए।
किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं दोग्गइं न गच्छेज्जा।।

कहां वह याचना का स्वर और कहां यह खोज का दृष्टिकोण? कौनसा वह कर्म है, कौन सा वह आचरण है जिससे मैं दुर्गति में न जाऊं? जब यह चिंतन जागता है, सुगति दूर नहीं रहती। 'मैं दुर्गति में

न जाऊं, मेरी दुर्गति न हो'–यह चिंतन बहुत विरल आत्माओं में, पवित्र आत्माओं में प्रस्फुरित होता है। अन्यथा दिमाग प्रिय-अप्रिय व्यवहार में उलझा रहता है, दिन-रात गुना भाग में लगा रहता है। यह प्रश्न जिसके मन में जाग जाता है, वह विलक्षण बन जाता है। श्रावक-श्राविका ही नहीं, साधु-साध्वियों के लिए बड़ा दुर्लभ है यह चिन्तन।

क्या हम अपने आपसे यह पूछते हैं–'वह कौन सा कर्म है, जिसे प्राप्त कर मैं दुर्गति में न जाऊं, मेरी दुर्गति न हो।' यह चिन्तन तब जगता है जब यह अनुभूति होती है–यह संसार अध्रुव है, अशाश्वत है।

संसार एक प्रवाह है। व्यक्ति आता है, चला जाता है। जो आज से १०० वर्ष पहले था, पता नहीं वह आज कहां है? कितने लोग शतायु होते हैं? १५० वर्ष का मनुष्य तो पूरे हिन्दुस्तान में भी कोई मुश्किल से मिलेगा? इस समूची दुनिया में १२५-१५० वर्ष का आदमी कोई विरल ही हो सकता है। एक प्रवाह चल रहा है। व्यक्ति आता है, कुछ वर्ष जीता है और चला जाता है। किन्तु जब व्यक्ति आता है, जीवनयापन करता है, उस समय एक ऐसा नशा रहता है कि व्यक्ति सोचता ही नहीं है–मुझे भी जाना है।

एक बार हम लोग दिल्ली में थे। एक प्रसिद्ध उद्योगपति का लड़का बहुत बार आता था। उससे बातचीत की। उसने कहा–'मैं एक प्रश्न आपसे पूछना चाहता हूं।'

मैंने कहा–'बोलो, क्या प्रश्न है तुम्हारा?'

'मेरा प्रश्न यह है कि हम लोग इतने बड़े-बड़े कारखाने लगा रहे हैं। चार हजार करोड़ का कारखाना, आठ हजार करोड़, दस हजार करोड़ की फैक्ट्री, आखिर क्या होगा?'

मैंने कहा–'जो सारी दुनिया का हुआ है, वही तुम्हारा होगा। नया कुछ नहीं होगा। आखिर अंतिम शरण जो है, वह सबकी एक है। श्मशानं शरणं गच्छामि–अंतिम शरण है श्मशान।' फिर भी आदमी में एक ऐसा नशा रहता है कि वह सोचता नहीं है।

बहुत सुंदर कहा गया–**दुःखपउराए**–इस संसार में प्रचुर दुःख है। दुःख की कोई कमी नहीं है। शारीरिक दुःख, मानसिक दुःख, भावनात्मक दुःख–दुःख पर दुःख आते रहते हैं। इन दिनों एक स्थिति बनी–वृद्धा मां जीवित है, युवा पुत्र का स्वर्गवास हो गया। मां का मन आंदोलित हो गया। वह पुत्र के वियोग में शोक-विह्वल हो गई। कुछ समय पश्चात् दूसरे पुत्र ने भी चिर विदाई ले ली। मां के दुःख का कोई माप हो सकता है? इस संसार में एक के बाद एक दुःख आते रहते हैं।

कुछ दिन पहले एक परिवार आया, परिवार के सदस्यों ने अपने दुःख की गाथा कही–'आचार्यश्री! बूढ़ा बाप तो जीवित है और युवा पुत्र चला गया।'

मैंने कहा–'कौनसी आश्चर्य की बात है। यह संयोग-वियोग की दुनिया है। इसमें सब कुछ हो सकता है। न हो तो आश्चर्य है। हो तो कोई आश्चर्य नहीं।' एक संस्कृत कवि ने कितना सटीक लिखा है–

उद्घाटितनवद्वारे, पंजरे विहगोनिलः।
यत्तिष्ठति तदाश्चर्यं, प्रयाणे विस्मयः कुतः।।

यह शरीर रूपी पिंजरा, जिसके एक नहीं, नौ दरवाजे उद्घाटित हैं। पिंजरा एक, दरवाजे नौ। दरवाजा

हमेशा खुला रहता है, कभी बंद नहीं किया जाता। उस पिंजरे में, जिसके नौ दरवाजे खुले हैं, एक श्वास का पक्षी बैठा है। वह चला जाए, उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। किन्तु वह टिक रहा है, यह आश्चर्य की बात है।

पिंजरे के नौ दरवाजे खोलकर पक्षी को बंद रखना क्या आश्चर्य नहीं है?

इस दुःख बहुल स्थिति का अनुभव करना और यह सोचना कितना महत्त्वपूर्ण है–वह कौन सा कर्म है जिससे मेरी दुर्गति न हो!

मुनि ने कहा–'जम्बूकुमार! तुमने मनुष्य के दोनों भवों में साधना की। एक बार स्खलित भी हुए किंतु पुनः अच्छी साधना कर ली। उस अच्छी साधना से तुम पुरुषोत्तम बन गए।'

रथनेमि और राजीमती का विश्रुत प्रसंग है। रथनेमि एक बार विचलित हुए, फिर संभले। संभलने के बाद ऐसी साधना की, सूत्रकार कहते हैं–वे पुरुषोत्तम बन गये।

जैन साहित्य में भगवान महावीर और सम्राट् श्रेणिक का एक संवाद उपलब्ध होता है। वह संवाद उस समय का है जिस समय जम्बूकुमार का जन्म नहीं हुआ था। भगवान महावीर राजगृह में समवसृत थे।

सम्राट् श्रेणिक भगवान महावीर के दर्शनार्थ आए। भगवान का प्रवचन सुना, धर्म देशना सुनी। देशना के अंत में सम्राट् श्रेणिक ने अंतिम केवली के संदर्भ में एक प्रश्न पूछा।

ऐसा प्रतीत होता है–प्राचीनकाल में धर्म देशना के अंत में कुछ प्रश्न भी पूछे जाते थे, जिज्ञासाएं भी होती थीं। यह अच्छा क्रम है। कोरा प्रवचन सुना, चले गये। मन में कोई संशय हुआ, संदेह हुआ, जिज्ञासा हुई और उसका समाधान नहीं हुआ तो कुछ कमी रह जाती है। यह सुन्दर क्रम है–आधा घंटा प्रवचन हो और १०-२० मिनिट प्रश्नोत्तर के लिए रखा जाए। किंतु अनेक बार ऐसा होता है कि प्रश्न पूछने वाले भी नहीं मिलते। किसी के मन में प्रश्न जागता ही नहीं है तो जिज्ञासा-समाधान का क्रम कैसे चले?



श्रेणिक ने देशना के बाद एक प्रश्न पूछा भगवान महावीर से–'भंते! आप केवली हैं। आपके बहुत सारे साधु भी केवली हैं। यह केवलज्ञान की परम्परा चल रही है। मैं जानना चाहता हूं कि यह केवलज्ञान की परम्परा कब तक चलेगी? अंतिम केवली कौन होगा?'

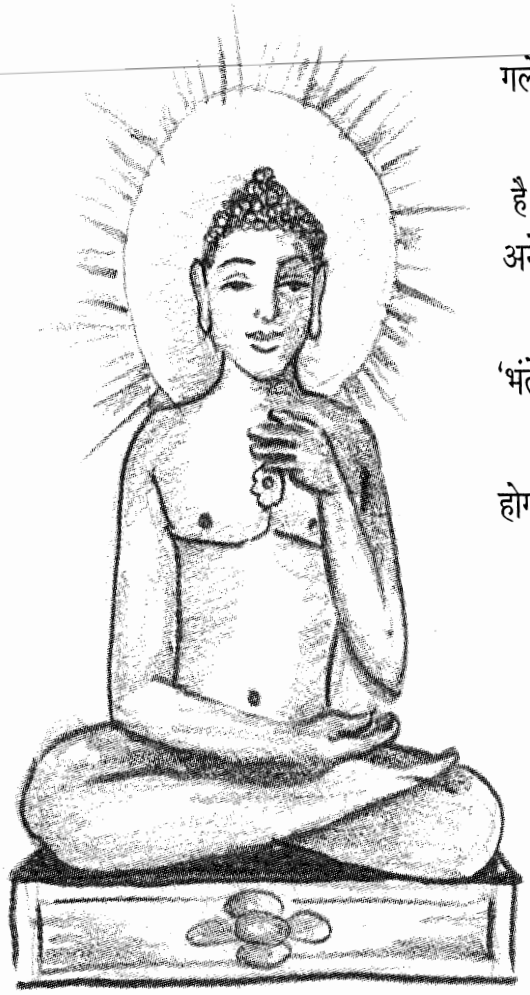
श्रेणिक ने यह प्रश्न क्यों पूछा? इसका कोई कारण उपलब्ध नहीं है। प्रश्नकर्ता स्वतंत्र होता है। जो चाहे, पूछ सकता है। उत्तर देने वाला परतंत्र होता है, बंधा हुआ होता है। जो प्रश्न पूछा जा रहा है, उसी का उत्तर देना होता है पर पूछने वाले पर यह बंदिश नहीं होती, यह नियम नहीं होता। यह उसकी स्वतंत्रता है कि मन में आए, वह पूछ ले। इसलिए कभी-कभी ऊटपटांग और विचित्र प्रश्न भी प्रस्तुत हो जाते हैं।

एक बार पूज्य गुरुदेव का भरतपुर में प्रवास था। रात्रि में प्रवचन हुआ। प्रवचन के बाद गुरुदेव ने कहा–मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ) संस्कृत में आशु कविता करेंगे। कोई समस्या देना चाहें तो दे सकते हैं। एक विद्वान् खड़ा हुआ, बोला–'मेरी एक समस्या है, उसे पूरा करें।'

'विद्वत्वर! समस्या क्या है?'

विद्वान् बोला–'समस्या यह है–मच्छर के गले में हाथियों का यूथ घुस गया है।'

मशकगलकरंध्रे हस्तियूथं प्रविष्टं।



कहां विशालकाय हाथियों का समूह, कहां मच्छर के गले का छिद्र?

समस्या रखने वाला, प्रश्न करने वाला स्वतंत्र होता है। उत्तर देने वाले को तो उसके पीछे चलना पड़ता है। अनेक बार ऐसे प्रश्न आते हैं, जो बड़े जटिल होते हैं।

श्रेणिक के मन में प्रश्न आया और उसने पूछ लिया–'भंते! अंतिम केवली कौन होगा?'

भगवान महावीर ने कहा–'जम्बूकुमार अंतिम केवली होगा।'

'भंते! वह कहां का निवासी है?'

'श्रेणिक! अभी वह इस मनुष्य लोक में नहीं है।'

'तो कहां है वह?'

'देवलोक में।'

'वह कहां उत्पन्न होगा?'

'इसी राजगृह नगर में।'

'भंते! क्या मेरे ही घर में पैदा होगा?'

'नहीं, तुम्हारे घर में उत्पन्न नहीं होगा।'

'तो कहां होगा?'

'एक श्रेष्ठी के घर में उत्पन्न होगा और उसका नाम होगा जम्बूकुमार। वह अंतिम केवली बनेगा।'

'भंते! उसने ऐसी क्या साधना की है अथवा करेगा, जिससे वह केवली बनेगा?'

भगवान महावीर ने प्रस्तुत संदर्भ में जम्बूकुमार के इन चार भवों का वर्णन किया।

जम्बूकुमार के चार भवों की बात श्वेताम्बर और दिगम्बर–दोनों परम्पराओं में समान है। दो मनुष्य भव–भावदेव और शिवकुमार का भव। दो देवभव–सनत्कुमार और ब्रह्मदेव का भाव।

जम्बूकुमार को भगवान महावीर और सम्राट् श्रेणिक का यह संवाद ज्ञात नहीं था किन्तु उसे अपने पूर्वजन्म का पता लग गया। उसके ये प्रश्न समाहित हो गए–मैं कौन हूं? मैं कहां से आया हूं और मैंने क्या किया था? उसे यह ज्ञात हो गया कि मैंने पूर्वजन्म में सुकृत किया था इसीलिए मैं देव बना। देवलोक से मनुष्य भव में आया हूं।

कहा जाता है–कोई मनुष्य मरता है और स्वर्ग में उत्पन्न होता है तो अंतर्मुहूर्त में पूरा युवा बन जाता है। क्या आप कल्पना कर सकते हैं? आज शंकर बाजरा होता है, आम जल्दी पक जाता है। पहले कहा जाता था–आम का वृक्ष बारह वर्ष में फलता है। वर्तमान में वह एक वर्ष में फलवान हो जाता है।

देवता भी अंतर्मुहूर्त में युवा बन जाता है। देवियां-देव सब आते हैं, पूछते हैं–किं दच्चा, किम् भोच्चा, किं वा सुकडं कयं–आपने क्या सुपात्र दान दिया था? आपने क्या सुकृत का आचरण किया था? आपने क्या सुकृत की साधना की थी, जिससे आप यहां उत्पन्न हुए हैं?

यह प्रश्न एक समाधान भी देता है। देवता अपने अतीत में लौटता है और अपनी साधना का स्वयं साक्षात् करता है।

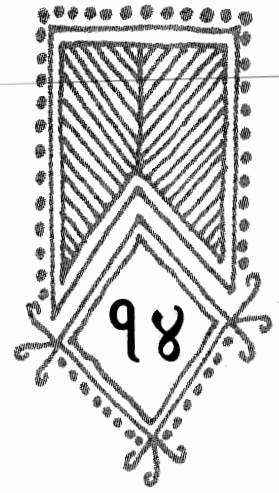


जम्बूकुमार को पूर्वजन्मों का ज्ञान हुआ और उसका मानस बदल गया। भूमि उर्वरा बन गई। वह यह जान गया–मैं जिस परम्परा से आ रहा हूं और मैंने जो सुकृत की आराधना की है, उस परम्परा को अब विच्छिन्न नहीं होने देना है। वह परंपरा अविच्छिन्न चले। एक जन्म में साधु बना, दूसरे में साधु बना। मध्य में स्वर्ग में चला गया। यह मेरा मनुष्य का तीसरा जन्म है। इस जन्म में भी उसी परम्परा को अविच्छिन्न रखना है। मन में एक संकल्प जाग गया। उर्वरा ही नहीं बनी, वर्षा भी बरस गई, बीज की बुवाई भी हो गई।

क्या उस बीज को सिंचन मिलेगा?

क्या वह वटवृक्ष बनेगा?....







सौ आदमी बैठे हैं। उनको देखो तो लगेगा–बिल्कुल शांति से बैठे हैं। पर उनके भीतर क्या हो रहा है? मन क्या सोच रहा है? भाव क्या हैं? क्या उसका हमें पता लगता है? बाहर का रूप तो एक सा लगता है किन्तु भीतर में हर व्यक्ति अलग-अलग है। अनेक व्यक्तियों में नहीं, एक व्यक्ति में भी द्वंद्व होता है।

हमारे भीतर औदयिक भाव और क्षायोपशमिक भाव–दोनों की प्रणालियां हैं। दो नाले बह रहे हैं–एक औदयिक भाव का, कर्म के उदय का। दूसरा क्षायोपशमिक भाव का। मनोविज्ञान की भाषा में एक है विधेयात्मक भावधारा, दूसरी है निषेधात्मक भावधारा। एक ही आदमी अलग-अलग प्रकार से सोचता है। कभी उसके मन में आता है कि आत्मा का कल्याण करो। चलते-चलते मन में कभी भय, वासना आदि का संवेग भी आ जाता है, बुरा विचार भी आ जाता है। ऐसा क्यों होता है? यह खंडित या द्वंद्वात्मक व्यक्तित्व है। दोनों प्रकार की विचारधाराएं एक ही मनुष्य में उत्पन्न होती रहती हैं–कभी अच्छी आ जाती है और कभी बुरी भी आ जाती है।

भीतर का जगत् बड़ा विचित्र होता है। उसे समझना बहुत आवश्यक भी है। धर्म का सबसे बड़ा काम यह है कि भीतर के जगत् की पहचान कराई जा सके। अपने भीतरी जगत् को हम देख सकें, पहचान सकें।

जम्बूकुमार भीतर के जगत् में यात्रायित हो गया। उसने सोचा–मैंने सफलता को देखा और सफलता के पीछे छिपे हुए पुण्य को देखा। पुण्य सफलता दिला रहा है। मैंने उस भाग्य को देखा, जो सफलता की पृष्ठभूमि का सृजन कर रहा है। पूर्वजन्म को देखा, उस पर चिंतन किया तो लगा–सफलता का हेतु है पूर्वकृत पुण्य या भाग्य। जिसकी जन्मकुण्डली में भाग्य तेज होता है, ज्योतिषी भी कहते हैं–इसको कोई चिंता नहीं है, इसका भाग्य बड़ा प्रबल है। यह सर्वत्र सफल होगा, कहीं विफलता नहीं मिलेगी। भाग्य कमजोर होता है तो कितना ही बुद्धिमान हो, पैर लड़खड़ा जाते हैं। सफल नहीं होता। ऐसे लोगों को देखा है, जो बहुत होशियार और चतुर थे किन्तु भाग्य की रेखा प्रबल नहीं थी। वे सोचते, बड़ी कल्पना करते पर होता कुछ भी नहीं।

जम्बूकुमार ने यह जान लिया–मेरा भाग्य भी प्रबल था और पूर्वजन्म भी अच्छा रहा। अब मुझे क्या करना चाहिए? मैंने कर्मबंध के रहस्य को भी समझ लिया। मेरा जीवन सफल कैसे बने? जीवन का विकास कैसे हो? मुझे इस बारे में चिंतन करना है।

एक अन्तर्द्वंद्व चल रहा है, विचारों का मंथन हो रहा है। बिना मंथन के कोई नई चीज नहीं निकलती। पौराणिक कथा में कहा जाता है–समुद्र का मंथन किया तो रत्न निकले। दही का मंथन करें तो नवनीत निकलता है। मंथन के बिना नवनीत नहीं मिलता।

जम्बूकुमार के दिमाग में एक मंथन चल रहा है, आलोडन-विलोडन हो रहा है, एक प्रकार का बिलोना हो रहा है।

माता-पिता सोच रहे हैं–हमारा पुत्र इतना शक्तिशाली है, हमें यह पता ही नहीं था। हमने यह कल्पना ही नहीं की थी कि उसमें इतना असीम बल है। पूरे मगध में, राजगृह में जम्बूकुमार प्रख्यात हो गया है। अब जम्बूकुमार के लिए हमें सोचना चाहिए। अब तक हमने अपना कर्तव्य नहीं निभाया। माता-पिता का पहला कर्तव्य होता है–पुत्र को पढ़ाना। वह कार्य तो हमने कर लिया।

आजकल माता-पिता पुत्र-पुत्रियों की पढ़ाई के बारे में जितना सोचते हैं, पहले कभी नहीं सोचते थे। पुराने जमाने में कन्या को पढ़ाने का प्रश्न ही नहीं था। पुत्रों को भी कम पढ़ाते थे इसीलिए संस्कृत कवियों को लिखना पड़ा–

माता शत्रु पिता वैरी, याभ्यां बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये, हंसमध्ये बको यथा।।

वह माता शत्रु है और पिता वैरी है, जिन्होंने अपने पुत्र को नहीं पढ़ाया। क्योंकि अनपढ़ आदमी सभा में जाता है, बीस-तीस लोगों के बीच बैठता है तो शोभित नहीं होता। जैसे हंसों के बीच बगुला शोभित नहीं होता वैसे ही अनपढ़ व्यक्ति सभ्यजनों में शोभित नहीं होता।



माता-पिता ने सोचा–हमने जम्बूकुमार को पढ़ाया, संस्कारी बनाया। एक कर्तव्य पूरा हो गया।

हमारा दूसरा कर्तव्य है–परिणय, विवाह करें, इसको स्वावलंबी बनाएं।

माता-पिता इस चिंता में हैं कि जम्बूकुमार का विवाह कहां करें? और कैसे करें?

एक ओर जम्बूकुमार के मस्तिष्क में परम विजय का संकल्प पल रहा है।

दूसरी ओर माता-पिता के मस्तिष्क में विवाह की बात चल रही है।

तीसरी ओर जम्बूकुमार की ख्याति से अभिभूत अनेक परिवारों ने नए सपने संजोने शुरू कर दिए। सैकड़ों-सैकड़ों परिवारों में एक चर्चा शुरू हो गई। एक धनाढ्य ने सोचा–पुत्री बड़ी हो गई, विवाह करना है। वर की खोज में थे। अब जम्बूकुमार से बढ़िया वर कौन मिले? इतना शक्तिशाली और इतना महिमामय कुमार है, सब दृष्टियों से अच्छा है। हम प्रयत्न करें कि जम्बूकुमार के साथ शादी हो जाये। चारों ओर से निमंत्रण आने लग गए। आजकल कोई मैनेजमेंट का कोर्स करता है, कोई इंजीनियरिंग करता है, जैसे ही रिजल्ट आते हैं, पता चलता है कि प्रथम आया है तो बड़ी-बड़ी कम्पनियों के ऑफर आने लग जाते हैं। अध्ययन पूरा होने से पहले जॉब मिल जाता है।

जहां प्रसिद्धि होती है वहां ध्यान चला जाता है। तीन जगत् बन गये–एक जम्बूकुमार का अपना जगत्, एक माता-पिता का जगत् और एक राजगृह का जगत्। तीनों में एक स्पंदन है, एक हलचल है।

जम्बूकुमार का यात्रा पथ भिन्न है। वह भोग से त्याग की ओर जाने की बात सोच रहा है। माता-पिता उसे भोग में ले जाने की बात सोच रहे हैं। राजगृह के अनेक लोग अपना संबंध स्थापित करने की बात सोच रहे हैं। जम्बूकुमार के मन में क्या है, यह माता-पिता नहीं जानते। माता-पिता के मन में क्या है, इसे दूसरे लोग नहीं जानते। किसी के मन की बात जानना बड़ा मुश्किल होता है।

सम्राट् श्रेणिक ने एक गांव के लोगों को बुलाया, कहा–'यह बूढ़ा हाथी है, इसे ले जाओ। खिलाओ पिलाओ। सब तरह से ध्यान रखो।'

'महाराज! ले जायेंगे।'

'पर मेरी शर्त यह है कि इसके मरने की सूचना मत देना।'

सब स्तब्ध रह गये, सोचा–कैसे पूरा करें इस शर्त को, फिर भी आदेश था इसलिए ले गए। हाथी मरणासन्न था। दो-चार दिन में मर गया। सब घबराये। इकट्ठे हुए, सोचा–क्या करें।

राजा के मन में क्या बात है, कोई नहीं समझ पा रहा है। इनके मन में क्या बीत रही है, इसे राजा नहीं समझ पा रहा है। सब चिंतातुर बने हुए थे। उन्होंने बुद्धिमान रोहक को बुलाया। रोहक ने कहा–'आप क्यों चिंता कर रहे है?'

'रोहक! बहुत चिंता की बात है। सम्राट् का आदेश है कि रोज मुझे हाथी के सुखद समाचार दो। जो मुझे आकर यह कहेगा कि हाथी मर गया, उसे मरना पड़ेगा, उसको फांसी की सजा मिलेगी। अब हम क्या कहें? सम्राट् को यदि कहें कि हाथी ठीक है तो मुसीबत। यह कह दें कि हाथी मर गया तो सम्राट् मार डालेगा कहने वाले को।'

रोहक ने कहा–'यह बहुत छोटी बात है। क्यों चिंता करते हो। सब सुख से रोटी खाओ। मैं सम्राट् के पास जा रहा हूं।' रोहक सम्राट् के पास गया, नमस्कार किया।

सम्राट् ने पूछा–'कहां से आये हो। क्यों आये हो?'

रोहक बोला–'मैं अमुक गांव से आया हूं। हाथी का समाचार देने आया हूं।'

'बोलो, हाथी कैसे है?'

'बहुत अच्छा है।'

'क्या खिला रहे हो?'

'आज तो ऐसा हो गया कि वह खा नहीं रहा है। हम तो खिलाना चाहते हैं पर वह खा नहीं रहा है। पानी भी नहीं पी रहा है।'

'क्या वह खड़ा होता है।'

'नहीं, खड़ा भी नहीं होता।'

'सांस तो ले रहा है?'

'सांस भी नहीं ले रहा है।'

'तो क्या मर गया?'

'यह आप जानें, हम क्या कहें?'

अपना-अपना अलग चिंतन होता है। राजा क्या कहलवाना चाहता था, यह गांव वाले नहीं जानते। किंतु रोहक को ज्ञात था कि राजा क्या कर रहा है। चिन्तन का अपना अपना स्तर होता है। सबका चिन्तन समान नहीं होता। आकृति और प्रकृति भी समान नहीं होती।

जम्बूकुमार एक व्यक्ति है किन्तु उसके संदर्भ में तीन तरह की बातें चल रही हैं। अनेक संभ्रांत परिवारों ने अपनी कन्या जम्बूकुमार को सौंपने का मन बना लिया। उन्होंने अपनी योजना बनानी भी शुरू कर दी। सोचा–हम ऋषभदत्त के पास कैसे जाएं और अपना प्रस्ताव रखें?

माता-पिता योजना बना रहे हैं कि जम्बूकुमार के लिए कन्या को हम कैसे खोजें?

जम्बूकुमार की अपनी योजना है, वह सोच रहा है–अब मुझे सत्य की खोज में लगना है, आत्मा की खोज में लगना है, आत्मा के निकट जाना है। मैंने यह समझ लिया है कि सत्य का सार कोई है तो वह आत्मा है।

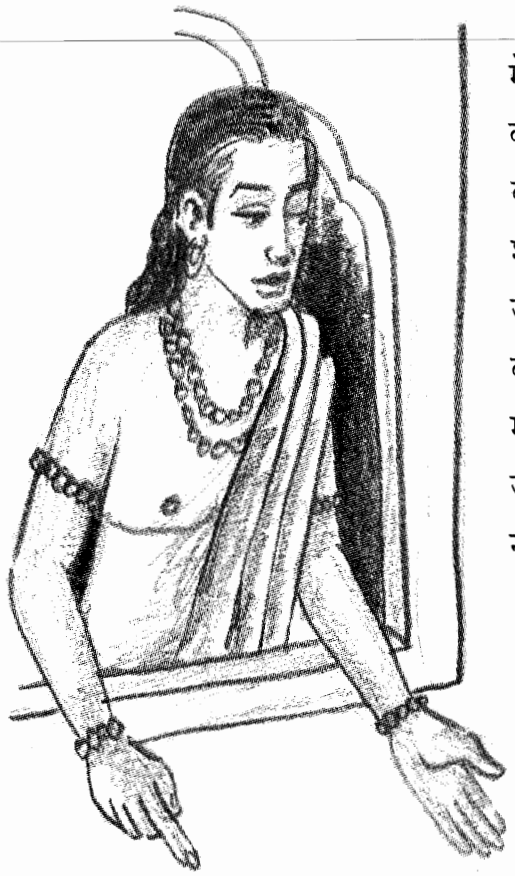
एक एव भगवानयमात्मा, ज्ञानदर्शनतरंगसरंगः।
सर्वमन्यदुपकल्पितमेतद्, व्याकुलीकरणमेव ममत्वम्।।



एक आत्मा ही अपनी है–इस सचाई को भूलना नहीं है। शेष सारा व्यवहार है। सारे संबंध क्षणिक हैं, स्थापित किये गये हैं, जोड़े गये हैं। जो जुड़ता है, वह टूट भी जाता है। जो नहीं जुड़ता, वह अनादि होता है। अनादि कभी जुड़ता नहीं है किंतु जो सादि होता है, आदि सहित होता है, वह जुड़ता है टूट जाता है। मिलता है बिखर जाता है। इसीलिए अनेक संतों, विद्वानों ने कहा–नदी नाव संयोग–नदी नाव का योग है। नदी के तट पर नौका आती थी तब सैकड़ों लोग मिलते थे। आज नदी नाव के स्थान पर रेलवे स्टेशन या हवाई अड्डा है। लोग वहां मिलते हैं और वापस चले जाते हैं।

यह दुनिया संबंधों की दुनिया है किंतु सचाई यह है–आत्मा अकेली है, अकेला आया है अकेला जाना है। यह वास्तविकता है। यह आत्मा एक महासमुद्र है और इसमें तरंगें भी हैं। ज्ञान-दर्शन की तरंग, अपनी चेतना का उपयोग–ये उर्मियां हैं जो उठती रहती हैं। शेष सब उपकल्पित हैं। हमनें उन्हें अपना मान रखा है, वस्तुतः वे सब अपने नहीं हैं।

वस्तु या व्यक्ति के साथ एक कल्पना कर ली और ममकार को जोड़ दिया। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति का, एक व्यक्ति से वस्तु का जो संबंध होता है उसका धागा है ममत्व। चेतना में से एक तरंग निकलती है–'यह मेरा है।' यह ममत्व का धागा निकला, उसको बांध दिया फिर यह मति बन जाती है–मेरा शरीर, मेरा घर, मेरा परिवार, मेरा धर्म, मेरा समाज, मेरा राष्ट्र–आगे से आगे बढ़ते चलो, चलते चलो। यह ममत्व विस्तार देता है। वस्तुतः मेरा कितना है? आत्मा तो अकेली है। ममत्व उसको बहुरूप बना देता है। नाना रूप हो जाते हैं। यह संबंधों का विस्तार ममत्व के कारण होता है।



जम्बूकुमार का चिंतन संबंध से असंबंध की दिशा में केन्द्रित हो रहा है। उसके चिंतन में वैराग्य को पुष्ट करने वाले उन्मेष आ रहे हैं–'मैंने इस सचाई का अनुभव कर लिया है कि संबंध शाश्वत नहीं है। संयोग भी शाश्वत नहीं है। जो आज है वह कल नहीं था। मैं पिछले जन्म में भावदेव था तब यह मकान मेरा नहीं था। मैं यहां का निवासी नहीं था। ये माता-पिता भी मेरे नहीं थे। मेरे माता-पिता उस समय कहां थे, यह भी पता नहीं। पिछले जन्म में जो मेरे माता-पिता थे, वे आज मेरे नहीं हैं। पता नहीं कि आज वे कहां हैं? इस जन्म में मेरे माता-पिता दूसरे बन गये हैं। जो पूर्वजन्म में मेरे थे, वे आज मेरे नहीं हैं। जो आज मेरे हैं, वे पूर्वजन्म में मेरे नहीं थे।

संबंध शाश्वत और स्थायी कहां हैं? जो आज है, वह कल नहीं था। जो कल था, वह आज नहीं है। कितने संबंध बनते हैं, बिगड़ते हैं। एक जन्म में भी संबंध टूट जाते हैं तो लोगों को अटपटा लगता है। मन में चिन्तन होता है कि कितना अच्छा संबंध था, टूट गया। यदि पूर्वजन्म को देखें तो प्रश्न होगा–क्या दुनिया का कोई कोना ऐसा है, जहां इस प्राणी ने जन्म-मरण न किया हो। भीष्म ने यह इच्छा व्यक्त की थी–मेरे शरीर का दाह-संस्कार वहां करना, जहां किसी का दाह-संस्कार नहीं हुआ है। वैसा स्थान निश्चित कर लिया। दाह संस्कार की तैयारियां हो गईं। कहा जाता है कि उस समय आकाशवाणी हुई–

अत्र भीष्मशतं दग्धं, पांडवानां शतत्रयम्।
द्रोणाचार्यसहस्रं तु, कुरु संख्या न विद्यते।।

जिस स्थान पर दाह संस्कार कर रहे हो, वहां पहले सौ भीष्मों का दाह-संस्कार हो चुका है। तीन सौ पांडवों और हजारों द्रोणाचार्यों का दाह संस्कार हो चुका है। कौरवों की कोई संख्या ही नहीं है।

अनंत काल में जीव ने जितने संबंध बनाये हैं, क्या उनकी कोई सीमा है? कभी किसी को माता बनाया, कभी किसी को पिता बनाया। कभी कोई पत्नी बन गई, कभी कोई पति बन गया। कभी बेटा बन गया, कभी कोई भगिनी और भागिनेय बन गया।

सर्वे पितृभ्रातृपितृव्यमात्री, पुत्रांगजास्त्रीभगिनीस्नुषात्वम्।
जीवाः प्रपन्ना बहुशस्तदेतत्, कुटुम्बमेवेति परो न कश्चित्।।

जब हम व्यवहार के जगत् में जीते हैं तब वर्तमान का लेखा-जोखा हमारे सामने रहता है। अगर हम अतीत में जाएं, पूर्वजन्म की शृंखला में चले जाएं और वहां संबंधों के संसार का साक्षात्कार करें तो मनुष्य का मस्तिष्क चकरा जाए। संबंध इतने जटिल और गुंथे हुए हैं, जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

इसीलिए प्राचीन व्याख्यानों में भवान्तरों अथवा जन्मान्तरों का उल्लेख मिलता है। जन्मान्तर और भवान्तर का ज्ञान होता है तो चेतना बदल जाती है।

कितना विचित्र है संसार, संबंधों का मायाजाल। जम्बूकुमार के मन में इसे लेकर एक अन्तर्द्वन्द्व चल रहा है। इसी चिन्तन और अंतर्द्वन्द्व में संध्या का समय हो गया। रात्रि में भी यही चिन्तनधारा बनी रही। रात्रि में इस संकल्प के साथ सोया–मुझे आत्मोपलब्धि करना है, आत्मा को पाना है।

जम्बूकुमार प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही जागृत हो गया। ब्रह्ममुहूर्त में जागना बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। यह जीवन से जुड़ा एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है–आदमी सोये तो कैसे सोये और जागे तो कैसे जागे? सोने से पहले आस्थावान व्यक्ति अपने इष्ट का स्मरण करता है। यदि कोई जैन श्रावक है तो नवकार मंत्र का स्मरण करके सोता है। कोई व्यक्ति अपने गुरु का स्मरण करके सोता है, कोई लोगस्स का पाठ करके सोता है। जिसको रात्रि में स्वप्न बहुत आते हैं अथवा बुरे सपने आते हैं वह सात लोगस्स का ध्यान करके सोये तो स्वप्न की समस्या न रहे। सोने का एक क्रम होता है। जो साधना में आगे जाना चाहता है, वह कायोत्सर्ग करके सोता है। यदि किसी को नींद नहीं आती है तो वह उज्जायी प्राणायाम करके सोता है।

जागने की भी प्रशस्त विधियां हैं। एक समझदार व्यक्ति देखेगा कि जागते ही सबसे पहला विचार कौनसा आया? क्या अच्छा विचार आया? बुरा विचार आया? काम का विचार आया अथवा निकम्मा विचार आया? अगर उस पर जागरूक रहता है तो बहुत अच्छा विकास कर लेता है। जागरूकता का दूसरा बिन्दु है–उठने के बाद क्या करना चाहिए? लोग उठते ही अपनी अंगुलियां देखते हैं, हाथ को देखते हैं, हाथों को मुंह पर रगड़ते हैं। कहा गया–





कराग्रे वसति लक्ष्मी, करमध्ये सरस्वती।

हाथों की अंगुलियों में लक्ष्मी बसती है, इसलिए हाथ को देखते हैं, मुंह पर हाथ फेरते हैं। जिन व्यक्तियों में अध्यात्म के प्रति आस्था है, वे अपने इष्ट का स्मरण करते हैं, वीतराग का स्मरण करते हैं, नमस्कार महामंत्र और भक्तामर स्तोत्र का पाठ करते हैं। यह सारी उठने से जुड़ी प्रक्रिया है।

जम्बूकुमार उठा, उठते ही पहला विचार यही आया–मैं आत्मा का साक्षात्कार कैसे करूं? कैसे मैं सत्य को उपलब्ध करूं? इस चिंतन और विचार में मग्न हो गया।

सूर्योदय होने वाला था। प्रभात का समय। चारों तरफ नगर में मंगलपाठक मुनादी कर रहे हैं। जम्बूकुमार के कानों से वे स्वर टकराए। उसने गवाक्ष से नीचे देखा–सूर्योदय के साथ ही कोई हलचल हो रही है। लोगों का आवागमन शुरू हो गया है। एक

ही दिशा में जनता का प्रवाह चल रहा है। जम्बूकुमार ने एक व्यक्ति को आमंत्रित किया, पूछा–'आज क्या बात है? इतनी जल्दी लोग कहां जा रहे हैं?'

वह बोला–'क्या आपको पता नहीं है? आज राजगृह में एक बड़े आचार्य आ रहे हैं।'

'कौन आ रहे हैं?'

'भगवान महावीर के पट्टधर शिष्य सुधर्मा स्वामी आ रहे हैं इसलिए सब लोग तैयारी में लगे हैं। सबकी भावना है–जल्दी तैयार होकर आचार्य सुधर्मा का दर्शन करें। उनका प्रवचन सुनें। इसीलिए हजारों-हजारों लोगों की गति उसी दिशा में हो रही है।'

जम्बूकुमार को इस सूचना से असीम तोष मिला। जैसे कोई गर्म से तपा हुआ आदमी हो, एकदम कोई ठंडा वृक्ष आ जाये, ठंडी शीतल छाया मिल जाये, ऐसी शांति की अनुभूति होने लगी।

जम्बूकुमार ने सोचा–सुधर्मा स्वामी मेरे गुरु हैं। उनका आगमन मेरे लिए श्रेयस्कर है। सचमुच मेरा भाग्योदय हो रहा है। आज रात्रि में मैंने सोचा–मैं आत्मोपलब्धि करूं और प्रातः उसका रास्ता मिल गया। अब मुझे कहीं जाना ही नहीं पड़ेगा।

अनेक बार हम सोचते हैं कि अमुक व्यक्ति से बात करनी है या कुछ काम है। वह व्यक्ति कभी दो घंटा बाद आ जाता है, कभी एक घंटा में आ जाता है।

जिसके मन में जो कल्पना हो और वह कल्पना पूरी हो तो उसे बड़ा आनन्द का अनुभव होता है।

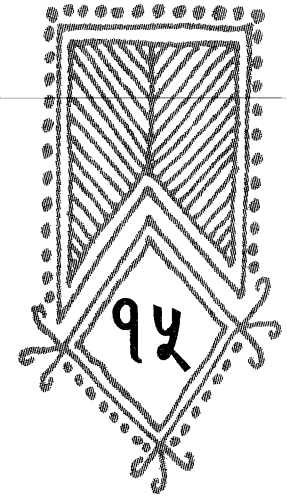
जम्बूकुमार ने सोचा–सुधर्मा आ रहे हैं, मेरा भाग्योदय हो रहा है, सारे विघ्न समाप्त हो रहे हैं।

सूचना देने वाले आदमी को सम्मानपूर्वक विदा किया। उसने निश्चय किया–मुझे भी जल्दी तैयार होना है और सुधर्मा स्वामी के पास जाना है। उनकी उपासना करना है, प्रवचन सुनना है।

इस निश्चय ने उसके हृदय में उत्साह और उल्लास का संचार किया।

इस उत्साह और उल्लास का परिणाम क्या होगा?

क्या जम्बूकुमार का संकल्प फलेगा?





राग और वैराग्य। समाज राग के बिना नहीं चलता और शांति वैराग्य के बिना नहीं मिलती। जीवन चलाने के लिए राग और जीवन को शांतिमय बनाने के लिए वैराग्य। कभी-कभी निमित्त पाकर वैराग्य का उदय होता है। जिनके क्षयोपशम प्रबल होता है, उनमें अंतःप्रेरणा से भी वैराग्य जाग जाता है। जम्बूकुमार का क्षयोपशम प्रबल था, पवित्र आत्मा थी और बहुत कम कर्म शेष थे इसलिए यह भावना प्रबल बनी–कैसे मैं अपने आपको जान सकूं, अपने आपको देख सकूं।

भावना की प्रबलता के साथ ही यह संवाद मिला–आचार्य सुधर्मा आए हैं। अंतःप्रेरणा हुई–मुझे भी जाना है। वह तैयार हुआ। मां के पास आया, आकर बोला–'मां! आज सुधर्मा स्वामी नगर में पधारे हैं। मुझे दर्शन करना है।'

मां ने कहा–'बहुत अच्छी बात है। बहुत अच्छा सोचा तुमने। वे हमारे गुरु हैं। गुरु-दर्शन के लिए तुम्हें जाना ही चाहिए।'

जम्बूकुमार वहां पहुंचा। हजारों-हजारों लोग इकट्ठे हो गए।

राजगृह भगवान महावीर का प्रमुख विहार क्षेत्र था। महारानी चेलना दृढ़धर्मिणी श्राविका थी। उसने श्रेणिक को भी अपने विचारों में ढाल लिया। महामंत्री अभयकुमार जैन श्रावक था। हजारों-हजारों लोग भगवान के प्रति गहरी आस्था और श्रद्धा रखते थे।

भगवान महावीर का निर्वाण हो गया। सुधर्मा पट्टधर बन गये। भगवान महावीर के पट्टधर शिष्य आर्य सुधर्मा का आगमन जनता में बहुत उत्साह और श्रद्धा का संचार करने वाला बना। हजारों लोग सुधर्मा के दर्शनार्थ आए। परिषद् जुड़ी। जम्बूकुमार सामने बैठा है। सुधर्मा का ध्यान भी उसकी ओर केन्द्रित हो गया। उन्हें भी योग्य शिष्य की जरूरत थी। हर आचार्य को योग्य शिष्य की जरूरत रहती है। ऐसे तो बहुत शिष्य होते हैं पर एक ऐसे योग्य शिष्य की विशेष अपेक्षा रहती है जो आचार्य के दायित्व को संभाल

सके, विशाल संघ का सम्यक् संचालन कर सके। गुरुदेव तुलसी ने अनेक बार मुझे कहा–आचार्य बनते ही एक चिंता या चिंतन शुरू हो जाता है कि जो दायित्व मुझे मिला है उस दायित्व का निर्वाह कर सके, ऐसा व्यक्ति कौन हो सकता है? आचार्य के लिए सबसे बड़ा चिंतन का यही विषय रहता है। परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए, परम्परा को स्वस्थ रखने के लिए बहुत आवश्यक है–योग्य व्यक्ति की खोज।

सुधर्मा भी योग्य व्यक्ति की खोज कर रहे थे। अनायास जम्बूकुमार सामने आ गया।

आचार्य सुधर्मा ने धर्म देशना दी और विशेष लक्ष्य के साथ दी। उनका लक्ष्य रहा–जम्बूकुमार में वैराग्य का जो बीज उप्त है, वह प्रस्फुटित हो जाए।

श्रेणिक ने भगवान महावीर से जब यह प्रश्न पूछा था–अंतिम केवली कौन होगा? महावीर ने कहा–जम्बूकुमार नाम का युवक होगा। उस समय सुधर्मा भगवान महावीर की उपासना में आसीन थे। जम्बूकुमार सुधर्मा से अज्ञात नहीं था। सुधर्मा इस बात को जानते थे–राजगृह में रहने वाला जम्बूकुमार ही मेरा पट्ट शिष्य होगा, वही अंतिम केवली होगा।

सामने अवस्थित जम्बूकुमार के आभामंडल ने आर्य सुधर्मा को आकृष्ट किया। उन्होंने निश्चय किया–'आज जम्बूकुमार को लक्ष्य कर उपदेश देना है, जिससे उसमें वैराग्य जागे, वह मुनि बने और विकास करे।'

धर्म की देशना सत्य की देशना है, यथार्थ की देशना है। सत्य की बात एक अर्थ में थोड़ी कड़वी भी होती है, लोक व्यवहार से भिन्न भी होती है। जहां लोक-व्यवहार है वहां रागात्मक, राग को बढ़ाने वाली बात कही जाती है। जहां धर्म की देशना है वहां वैराग्य को बढ़ाने वाला उपदेश होगा। वैराग्य बढ़ेगा तो लोक व्यवहार में कुछ अन्तर आयेगा ही।

आचार्य भिक्षु का एक मार्मिक दृष्टांत है। एक सेठ के दो पत्नियां थीं। प्राचीनकाल में बहुपत्नी प्रथा मान्य थी। सेठ मर गया। एक पत्नी, जो मात्र लौकिक दृष्टिकोण वाली थी, रोने लगी, विलाप करने लगी। वह बहुत दिखावा करती। ऐसा लगता कि जैसे सारा शोक उसी को हुआ है। दूसरी पत्नी समझदार थी, धार्मिक थी, तत्त्व को जानती थी। उसने सोचा–यह संसार का स्वरूप है। संबंध होता है, बिछुड़ता है। संयोग होता है, वियोग होता है। वह समता में रही और सामायिक लेकर बैठ गई। अब लोग आते हैं, देखते हैं–एक तो रो रही है, विलाप कर रही है। दूसरी शांत बैठी है। लोगों ने कहा–'देखो, यह पतिव्रता नारी है। पति चला गया, कितना दुःख हुआ है। दूसरी पत्नी तो शांत बैठी है, लगता है–इसको कोई दुःख ही नहीं है।' जो विलाप कर रही है, उसकी प्रशंसा हो रही है और जो शांत है, समभाव में है, उसकी निंदा हो रही है।

इसका कारण क्या है? जहां लौकिक दृष्टि है वहां लोक-व्यवहार देखा जाता है, तत्त्व नहीं देखा जाता। जो व्यक्ति तत्त्व को जानता है, वह लोक-व्यवहार को गौण भी कर देता है। धर्म की बात लोक-व्यवहार से भिन्न होती है। लौकिक व्यवहार में राग बढ़ाने वाली चर्चा होती है और धार्मिक भूमिका में वैराग्यवर्धक। वहां कहा जाता है–

कस्त्वं कुत आयातः का ते माता कस्ते तातः



तू कौन है? कहां से आया है? कौन तेरी मां है? कौन तेरा पिता है? सारा संसार झूठा है, बादल की छाया है। यह संसार हटवाड़ा का मेला है। संसार के प्रतिकूल उपदेश दिया जाता है। संबंध को जोड़ने वाला नहीं, संबंधों को तोड़ने का उपदेश दिया जाता है। समस्या यह है–संसार में रहने वाला सामाजिक प्राणी किस बात को माने? संसार सच है–इसको माने या संसार झूठा है–इसको माने? संसार बादल की छाया है–इसको सच माने? संसार मोहक माया है–इसको सच माने? बाजार में जाओ तो संसार मोहक माया है और सुधर्मा सभा में आओ तो संसार बादल की छाया है। दोनों अपने-अपने स्थान पर उपयुक्त हैं। क्योंकि जीवन चलाना है तो बाजार की बात भी माननी पड़ती है और जीवन को अच्छा बनाना है तो बादल की छाया को भी मानना होगा, उसके बिना जीवन अच्छा बनेगा नहीं।

जब कोई व्यक्ति साधु के पास जाता है तो साधु त्याग की बात कहता है, छोड़ने का उपदेश देता है। जब बाजार में जाता है, दुकानों में सजी हुई मनहर वस्तुओं को देखता है तो त्याग की बात काफूर हो जाती है। वह भोग में उलझ जाता है। मनुष्य ही नहीं, पशु भी अपनी प्रिय वस्तु को देख दिग्भ्रमित हो जाता है। संस्कृत कवि ने लिखा–गहरी वर्षा हुई। नदी बह रही है। दोनों तरफ सघन हरियाली है, एक गाय वहां चली गई। इधर भी हरियाली, उधर भी हरियाली। गाय सोचती है–पहले इसको खाऊं या उसको खाऊं। वह एकदम मूढ़ बन जाती है। उसे चारों तरफ मोहकता ही मोहकता लगती है। मोह की स्थिति में आदमी भी दिग्मूढ़ बन जाता है। वह मोह के जाल में फंस जाता है। केवल मोह का वातावरण रहे तो दुःखों का कहीं पार नहीं आता। मोह के साथ निर्मोह की बात सुनने को मिलती है तो थोड़ा सोचने का मौका मिलता है और आदमी दुःखों से छुटकारा पाता है।



सुधर्मा स्वामी ने लक्ष्यपूर्वक एक विशेष धर्म देशना शुरू की–'देखो, संसार को समझो, सचाई को समझो। सत्य क्या है–इसे समझो। नींद में सपना आया। जो सपना आया, वह सच है या जागरण के बाद जो अनुभव कर रहे हो, वह सच है। मोह स्वप्न की सी भ्रांति देता है। स्वप्न में आदमी एक कल्पना करता है, देखता है और जागने पर कुछ भी नहीं। वैसे ही राग में आदमी एक प्रकार की कल्पना करता है, वैराग्य आता है तो लगता है–यह कुछ भी नहीं है।'

प्राचीन संस्कृत-प्राकृत साहित्य में स्वप्न से संबद्ध अनेक कथाएं विश्रुत हैं–पुजारी का सपना, भिखारी का सपना, जनक का सपना। संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी में सपने पर विशाल साहित्य रचा गया है। अगर सपने के पंख लग जाते तो आदमी उड़ान भर लेता। पर आज तक भी सपनों के पंख नहीं लगे, इसलिए स्वप्न को छोड़ो, यथार्थ को समझो और चेतो। पुराने संत उपदेश की ढालों में यही गाते थे–

'चेत चतुर नर कह तनै सतगुरु किस विध तू ललचाना है।

मानव! तुम चेतो। तू क्यों ललचा रहा है? क्यों मूढ़ बन रहा है? मूढ़ मत बनो। जो जीवन मिला है, उसे प्रमाद में मत गंवाओ। अपनी आत्मा का हित साधन करो।'

आचार्य सुधर्मा ने धर्म का मर्म समझाया–प्रेय और श्रेय–दो तत्त्व सामने हैं। एक प्रेय–प्रिय लगता है। चीनी मीठी लगती है, प्रेय है। गुड़ मीठा लगता है, प्रेय है। चीनी को छोड़ना श्रेय है। नीम कड़वा लगता है किंतु वह श्रेय है, हितकर है। प्रेय और श्रेय का विवेक करो। केवल प्रिय लगता है इसलिए उसको बहुत मूल्य मत दो। हित क्या है, इसका अनुचिन्तन करो।

आचार्य सुधर्मा ने वैराग्य भाव के विकास की अभिप्रेरणा देते हुए कहा–यदि तुम अभय रहना चाहते हो, भय से मुक्त होना चाहते हो तो वैराग्य के सिवाय कोई उपाय नहीं है। केवल वैराग्य ही ऐसा तत्त्व है, जहां कोई भय नहीं है। अन्यथा सर्वत्र भय है।

भोगे रोगभयं कुले च्युति भयं वित्ते नृपालाद् भयम्,
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जरायाः भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतांतात् भयम्,
सर्वं वस्तु भयान्वितं जगदहो वैराग्यमेवाऽभयम्।।

भोग में रोग का भय है। भोग के साथ रोग लगा हुआ है। बहुत सारे रोग भोग के कारण होते हैं। रसनेन्द्रिय का भोग बहुत रोग पैदा करता है। अन्य इंद्रियों के भोग भी रोग पैदा करते हैं।

सुकरात से पूछा गया–मनुष्य को संभोग कितनी बार करना चाहिए?

उसने कहा–जीवन में एक बार।

'यह संभव नहीं हो तो....'

'वर्ष में एक बार।'

'यह भी संभव न हो तो....'

'महीने में एक बार।'

'यह भी संभव न हो तो....'

सुकरात ने मार्मिक शब्दों में कहा–'कफन सिरहाने रख लो, फिर चाहे जैसा करो।'

भोग के साथ रोग का अनुबंध जैसा है।

कुले च्युति भयम्–व्यक्ति को कुल का गौरव होता है। मेरा कुल बहुत बड़ा है किंतु पता नहीं वह कब समाप्त हो जाए, भय लगा रहता है।

वित्ते नृपालाद् भयम्–व्यक्ति सोचता है–मेरे पास बहुत धन है पर उसे राजा का भय सताता रहता है। आजकल इनकमटैक्स के अधिकारियों का भय रहता है। धन के सरंक्षण की इतनी चिन्ता होती है कि शायद आज के उद्योगपति अभय की नींद तो कम ही ले पाते होंगे। हमेशा छिपाने की बात, संग्रह करने की बात लगी रहती है। निरंतर एक चिंतन, एक तनाव मन में बना रहता है।

धन के भागीदार भी बहुत हैं। कोई भी अकेला आदमी भोग नहीं सकता धन को। धन के साथ न जाने कितने भागीदार जुड़े हुए हैं।

दायादाः स्पृहयन्ति तस्करगणाः मुष्णन्ति भूमिभूजो।
गृह्णन्ति छलमाकलय्य हुतभुग् भष्मीकरोति क्षणात्।।
अंभः प्लावयते क्षितौ विनिहितं यक्षा हरन्ते हठात्।
दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं धिग् बह्वधीनं धनम्।।

पहला भागीदार है संतान। बच्चा जन्मा और खाता खुल गया, भागीदार बन गया। कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि संतान नहीं है तो भी जबर्दस्ती भागीदार बन जाते हैं, अपना अधिकार जताने लग जाते हैं। न जाने कितने केस-मुकद्दमे भी चलते हैं इस भागीदारी को लेकर।

चोर भी कहते हैं–तुम्हारा अकेले का अधिकार नहीं है, हमारा भी अधिकार है। एक भाई ने बताया–क्रिकेट का मैच चलता है तो टी. वी. की मांग बढ़ जाती है। एक दिन में दस लाख रुपये आये। सोचा–रात को कहां ले जाएंगे? वहीं छोड़ कर घर चले गए। रात को चोर घुस गए। यह मानकर चलना चाहिए–धन में चोरों और डकैतों का भी हिस्सा बना हुआ है।

भूमिभुग्–राजा और शासक का भी हिस्सा है।

हुतभुग्–अग्नि का भी हिस्सा है। समाचार-पत्र पढ़ने वाले जानते हैं–कभी-कभी आग लग जाती है तो करोड़ों का माल स्वाहा हो जाता है। जंगल में आग लगती है, कितना नुकसान होता है। अग्नि को भी बलि चाहिए।

अंभः–पानी का भी हिस्सा है। कभी-कभी ऐसी बाढ़ आती है कि करोड़ों-अरबों का नुकसान हो जाता है।

यक्षों का भी हिस्सा है। भूमि में गढ़ी हुई संपत्ति को यक्ष भी ले जाते हैं।

यदि संतान व्यसनी और आचरणहीन है, दुराचार में फंस जाती है तो वह सब कुछ स्वाहा कर देती है।

इस प्रकार इस धन पर कितनों का अधिकार है!



मौने दैन्यभयम्–व्यक्ति सोचता है–ज्यादा बोलना अच्छा नहीं है। बार-बार लड़ाई-झगड़ा होता है तो मौन कर लेता है। दूसरा कहता है–देखो, कितना कायर है, दीन है। कहां तो यह शेर की तरह गूंजता है कहां यह बोलना ही नहीं जानता, एक शब्द भी वापस नहीं कहता।

बले रिपुभयम्–बहुत बल का विकास है तो सामने कोई न कोई शत्रु बन जायेगा, पक्ष के साथ प्रतिपक्ष प्रस्तुत हो जाएगा।

रूपे जरायाः भयम्–रूपवान है, बड़ा सुन्दर लगता है। वहां क्या भय है? भय है जरा, बुढ़ापा। जिसे पचास वर्ष पहले देखा, उसे पचास वर्ष बाद देखो, मन वितृष्णा से भर जाएगा। व्यक्ति देखना भी पसन्द नहीं करेगा। यह जरा का भय चलता रहता है।

शास्त्रे वादभयम्–व्यक्ति शास्त्र का जानकार है, शास्त्रज्ञ है। वहां वाद का भय छिपा हुआ है। प्रतिवादी ऐसे तर्क उपस्थित करता है कि उत्तर देना कठिन हो जाए। प्राचीनकाल में शास्त्रार्थ बहुत चलता था। जहां कोई नया शास्त्रज्ञ आ जाता, वहां वाद-प्रतिवाद का अखाड़ा जम जाता और बड़ी समस्या पैदा होती।

गुणे खलभयम्–गुण अच्छा है पर गुण में भी खल–दुष्ट आदमियों का भय है। दुर्जन व्यक्ति गुण में भी अवगुण निकाल देगा, न जाने क्या-क्या बुराई करेगा?

काये कृतान्तात् भयम्–शरीर बहुत हट्टा-कट्टा है पर वहां भी यमराज का भय है। यमराज पीछे खड़ा है।



अभय कौन है? प्रत्येक वस्तु के साथ भय जुड़ा हुआ है। केवल वैराग्य एक ऐसा तत्त्व है, जहां कोई भय नहीं है। जहां वैराग्य प्रबल है, वहां धन, शरीर, रूप आदि किसी का भय नहीं होता।

एक आदमी किसी तांत्रिक के पास गया, जाकर बोला–कोई प्रेत सता रहा है। उससे कैसे मुक्ति मिले? तांत्रिक ने ताबीज बनाकर हाथ पर बांध दिया, कहा–अब कोई नहीं सतायेगा। दस-बीस दिन बाद फिर आया। तांत्रिक ने पूछा–'बोलो, कोई डर तो नहीं लग रहा है?'

उसने कहा–'वह डर तो कम हो गया पर एक नया डर शुरू हो गया।'

'कौन-सा डर शुरू हो गया?'

'हमेशा यह डर रहता है कि कहीं यह ताबीज खो न जाए।'

एक भय मिटता है, दूसरा नया भय पैदा हो जाता है। केवल वैराग्य ही है जो अभय होता है।

जम्बूकुमार ने वैराग्य को उद्दीप्त करने वाली धर्म देशना सुनी। उसका मन पहले से ही विरक्त था। अब वह वैराग्य से सराबोर हो गया। उसका यह निश्चय प्रबल हो गया–मुझे मुनि बनना है।

सुधर्मा की धर्मदेशना संपन्न हुई। परिषद् नगर को लौट गई। जनाकीर्ण उद्यान प्रायः जनशून्य हो गया। उद्यान में सुधर्मा साधनालीन हो, उससे पूर्व जम्बूकुमार आर्य सुधर्मा की निकट सन्निधि में प्रस्तुत हुआ, विनम्र वंदना के साथ बोला–'भंते! मैं मुनि बनना चाहता हूं।'

सुधर्मा ने कहा–'जम्बूकुमार! कहां तुम्हारी यौवन अवस्था! कितना कोमल है तुम्हारा शरीर! कहां यह दुर्धर निर्ग्रन्थ दीक्षा? वह महान् व्यक्तियों के लिए भी दुष्कर है। क्या तुम उस पथ पर चल सकोगे?'

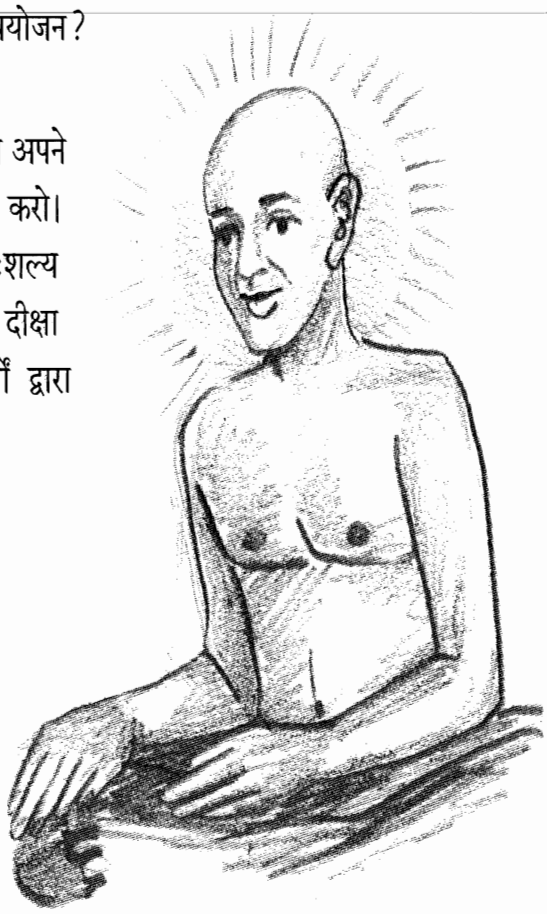
अवस्थेयं क्व ते वत्स! वयो लीलानुसारिणी।
क्वेदं दीक्षाश्रमं सौम्य! दुर्द्धरं महतामपि।।

जम्बूकुमार ने अपना संकल्प दोहराया–'भंते! मेरा निश्चय अटल है। मेरे लिए यह पथ दुष्कर नहीं है। आपकी अनुज्ञा और अनुग्रह से मैं इस महान् पथ पर सफलता से चरण-न्यास कर सकूंगा।'

प्रसादं कुरु मे दीक्षां, देहि नैर्ग्रंथ्यलक्षणाम्।
निस्पृहस्य तु भोगेभ्यः, सस्पृहस्यात्मदर्शने।।

सुधर्मा ने परामर्श देते हुए कहा–'वत्स! यदि तुम्हारी तीव्र उत्कंठा है तो तुम एक बार अपने घर जाओ।'

जम्बूकुमार–'भंते! मुझे अपने घर से अब क्या प्रयोजन? मैं वहां क्या करूं?'



'वत्स! अपने बंधुजनों को आमंत्रित करो। उनको अपने संकल्प की अवगति दो। उनके चित्त को समाहित करो। प्रसन्नमना स्वीकृति लो। परस्पर क्षमायाचना कर निःशल्य बनो। उसके पश्चात् कर्म को क्षय करने वाली निर्ग्रन्थ दीक्षा स्वीकार करो। अर्हत् शासन में यह क्रम पूर्वाचार्यों द्वारा सम्मत है।'

अथ चेत् सर्वथोत्कंठा, वर्तते तव चेतसि।
एकशः स्वगृहे गत्वा, कुरु कृत्यं मयोदितम्।।
बंधुवर्गं समाहूय, समापृच्छ्याथ गौरवात्।
समाधानतया कृत्वा, क्षंतव्यं च परस्परम्।।
पश्चात् गृहाण नैर्ग्रन्थीं, दीक्षां कर्मक्षयंकराम्।
एषः क्रमः समाम्नायात्, स्वीकृतः पूर्वसूरिभिः।।

जम्बूकुमार ने सुधर्मा स्वामी के इस परामर्श को शिरोधार्य किया।

सुधर्मा स्वामी ने कहा–'जम्बूकुमार! तुम घर जा रहे हो तो एक संकल्प स्वीकार कर लो–तुम आजीवन ब्रह्मचारी रहोगे।'

जम्बूकुमार ने सहमति व्यक्त करते हुए कहा–'भंते! आप इस संकल्प को स्वीकार करवा दें।'

यह संकल्प दिला कर सुधर्मा ने चोटी पकड़ ली। जो गुरु होता है, वह चोटी पकड़ना जानता है।

सुधर्मा ने कहा–'ब्रह्मचर्य का बड़ा महत्त्व है। देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर–सब ब्रह्मचारी को नमस्कार करते हैं–

देवदाणवगंधव्वा, जक्ख रक्खस्स किन्नरा।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति ते।।'

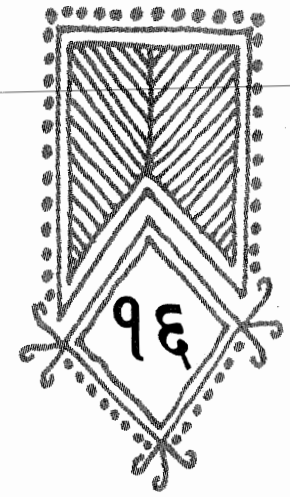


जम्बूकुमार संकल्पबद्ध हो गया। मुनि बनने की भावना उदग्र बन गई। भावना की सफलता का अगला चरण है–परिवारजनों की सहमति प्राप्त करना। वह सुधर्मा स्वामी को विनम्रभाव से वंदना कर अपने प्रासाद की ओर प्रस्थित हुआ।

प्रासाद की ओर लौटते समय एक ऐसी घटना घटित हुई, जिससे वह क्षण भर के लिए स्तब्ध हो गया।

क्या है वह घटना? उसका क्या प्रभाव हुआ जम्बूकुमार के मानस पर?

क्या वह वैराग्य को पोषण देगी?





व्यक्ति कोई भी बड़ा काम करता है तो उससे पहले एक संकल्प करता है। वह संकल्प उसे सिद्धि की ओर ले जाता है। जम्बूकुमार ने दीक्षा के महान् पथ पर प्रस्थान से पूर्व एक संकल्प किया। उसने ब्रह्मचर्य का व्रत स्वीकार कर लिया।

जो वैरागी बनते हैं, दीक्षा लेना चाहते हैं वे सबसे पहले एक-दो चीज का त्याग करते हैं। पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी ने कालूगणी के सामने दीक्षा की भावना प्रस्तुत की, प्रवचन-सभा में सबसे पहले खड़े होकर अचानक कहा–'मुझे दो संकल्प दिला दो–१. मैं व्यापारार्थ प्रदेश नहीं जाऊंगा, २. मैं शादी नहीं करूंगा।' इन संकल्पों ने एक वातावरण का निर्माण कर दिया।

संकल्प कार्य को सिद्धि तक ले जाते हैं। जम्बूकुमार संकल्प-बद्ध हो गया। वह सुधर्मा को नमस्कार कर उद्यान से बाहर आया। राजगृह के प्रवेश द्वार के पास पहुंचा। जैसे ही वह मुख्य-द्वार के पास पहुंचा, अकस्मात् द्वार का एक बड़ा हिस्सा गिर गया। वह जम्बूकुमार के परिपार्श्व में गिरा। जम्बूकुमार बाल-बाल बचा। अगर थोड़ा सा अन्तर होता तो जम्बूकुमार की दीक्षा और समाधि–सब कुछ यहीं हो जाता।

इस आकस्मिक घटना से जम्बूकुमार का मन और अधिक संवेग से भर गया। उसने सोचा–यह भी कोई प्रेरणा है कि मैं बच गया। अगर एक क्षण का भी, एक इंच का भी अंतर होता तो पता नहीं क्या होता? वैराग्य के संवेग की प्रबलता का एक और निमित्त बन गया। जम्बूकुमार इस चिंतन में लीन हो गया–मृत्यु का कोई पता नहीं लगता। यह जो घटना हुई है और मौत टली है–यह एक प्रेरणा है, सूचना है। अब मुझे और अधिक जागरूक बनना है। पता नहीं कब क्या हो जाए? जब मौत आती है, व्यक्ति कहीं भी चला जाए, कोई नहीं बचा सकता। उपाध्याय विनयविजयजी ने बहुत सुन्दर लिखा है–

प्रविशति वज्रमये यदि सदने तृणमथ घटयति वदने,
तदपि न मुंचति हत! समवर्ती निर्दयपौरुषनर्ती।
विनय! विधीयतां रे, श्री जिनधर्मशरणम्।
अनुसंधीयतां रे शुचितरचरणस्मरणम्।।

आदमी सोचता है कि मैं ऐसा वज्र का पिंजरा बना लूंगा, मौत उसको भेद नहीं पाएगी। वज्र के पिंजरे को कोई भेद नहीं सकता। वज्र सबको समाप्त कर देता है। इंद्र का वज्र जब बड़े-बड़े पहाड़ पर गिरता है तब पर्वत चूर-चूर हो जाते हैं। इतनी मजबूत धातु है वज्र। व्यक्ति सोचता है–मैं वज्र के पिंजरे में बैठ जाऊंगा। मौत आयेगी तो खाली हाथ चली जायेगी किन्तु ऐसा होता नहीं है। वज्र के पिंजरे में बैठा हुआ आदमी भी मौत को लौटा नहीं सकता।

एक आदमी सोचता है–जब मौत आयेगी, मैं गाय बन जाऊंगा। मैं मुंह में तृण डाल कर कहूंगा–मैं तेरी गाय हूं। गाय को कोई नहीं मारेगा। किन्तु काल उसको भी नहीं छोड़ता क्योंकि वह समवर्ती है, सबके साथ समान व्यवहार करता है। निर्दय पौरुष बन नाच रहा है, किसी की बात नहीं सुनता।

कुछ लोग सोचते हैं कि मैं विद्या की साधना कर लूं। जब मौत आयेगी तो विद्या का ऐसा प्रयोग करूंगा कि मौत भाग जायेगी। कोई कितनी ही साधना कर ले, मौत को चुनौती नहीं दे सकता। न मंत्र काम देता, न विद्या काम देती और न कोई औषधि का सेवन काम देता।

राजर्षि भर्तृहरि की घटना विश्रुत है। भर्तृहरि के सामने दुर्लभ आम का फल आया। तपस्वी ने कहा–यह आम आप खा लें, अमर बन जाएंगे। वह आम महारानी, महावत और वेश्या के हाथों में होता हुआ पुनः राजा भर्तृहरि के पास पहुंच गया। इस घटना से वैराग्य का संवेग तीव्र बन गया।

न आम देने वाला अमर बना और न आम खाने वाला अमर बना। कोई अमर बना नहीं। कितनी औषधि खा लें, कोई अमर नहीं बनता। आज अनेक वैज्ञानिक इस खोज में लगे हुए हैं कि आदमी को अमर बना दें, वह मरे नहीं। आदमी को अमर बनाने का 'जीन' खोज करने वाले स्वयं मर रहे हैं।



आज विज्ञान के क्षेत्र में दो खोजें चल रही हैं–एक तो जरेन्टोलॉजी– बुढ़ापा न आये, आदमी बूढ़ा न बने। दूसरी खोज है–आदमी मरे नहीं। उसके लिए अनेक प्रक्रियाएं अपना रहे हैं। शीतीकरण की, हिमकरण की प्रक्रिया के द्वारा आदमी को जीते जी जमा दें, फिर ५-१० हजार वर्ष बाद जब चाहें तब उसको फिर से जीवित कर दें। अनेक प्रक्रियाएं चल रही हैं पर कोई भी अमर बना नहीं, बनेगा भी नहीं। और तो क्या? देवताओं का नाम है अमर। वे भी मर जाते हैं।

सुरमनुत्तरसुराऽवधि यदति मेदुरम्।
कालतस्तदपि न कलयति विरामम्।।

देवताओं की इतनी लंबी अवधि है, वह भी समाप्त होती है। कोई बचता नहीं है। कुछ लोग देवता को वश में करने की बात सोचते हैं। क्या देवता अमरता का वरदान दे सकता है? देवता तो स्वयं मरता है, वह क्या बचा पायेगा?

आयुर्वेद में सबसे बड़ा उपाय माना है रसायन–**यद् जराव्याधिविनाशनम् तद् रसायनम्**–जो जरा और व्याधि को नष्ट करता है उसका नाम है रसायन। च्यवन ऋषि ने च्यवनप्राश रसायन बनाया था। आज भी बहुत लोग शक्ति संवर्धन के लिए च्यवनप्राश खाते हैं। न च्यवन ऋषि अमर बने और न च्यवनप्राश खाने वाले अमर बने।

जम्बूकुमार के मन में एक आंदोलन शुरू हो गया–आज यदि वह दीवार इधर गिर जाती तो क्या होता? मन में इतना प्रबल संवेग जागा, एक उद्वेलन हो गया–अब तो मुझे अवश्य ही मुनि बनना है। सुधर्मा स्वामी से संकल्प लेकर आया था, वह संकल्प अब प्रबल संवेग बन गया। निमित्त मिलते हैं तब संवेग प्रबल हो जाता है।

एक भाई आया, बोला–'आचार्यश्री! स्थिति ऐसी आई कि बचने की कोई आशा नहीं रही। उस भीषण दुर्घटना में बच गया तो मन में संकल्प आया–मुझे कोई न कोई बड़ा काम करना है, किसी काम में लगना है।'

हर आदमी के मन में किसी अप्रत्याशित घटना के बाद एक नई प्रेरणा जागती है। जम्बूकुमार के मन में एक प्रबल प्रेरणा जागृत हो गई। संदेह, आंदोलन, हलचल, संकल्प और प्रेरणा–सबको साथ लेकर उसने घर में प्रवेश किया।

मां ने पूछा–'जम्बूकुमार! सुधर्मा स्वामी के दर्शन हो गये?'

'हां मां! बहुत अच्छी तरह से हो गए।'

'तुमने प्रवचन सुना?'

'हां मां!'

'कैसा लगा प्रवचन?'



'मां! बहुत अच्छा लगा।'

'वत्स! प्रवचन का सार क्या है?'

'मां! प्रवचन सुनना और उसका निष्कर्ष निकालना, सार निकालना बहुत सार्थक होता है। मैंने सार भी निकाला है, निष्कर्ष भी निकाला है। मैंने दही को बिलोया है, मथा है। उसमें से नवनीत निकाला है।'

'तुमने क्या सार निकाला?'

'मां! अभी मैं सार के चिन्तन में ही चल रहा हूं। क्या तुम उसका सार जानना चाहती हो?'

'हां! मैं तुम्हारे मुख से गुरु के अमृत वचनों का सार सुनना चाहती हूं।'

'मां! सुधर्मा स्वामी ने जो उपदेश दिया, संदेश दिया, उसका सार यह है–असारे खलु संसारे सारं संयम-साधनम्–असार संसार में संयम की साधना ही सार है। यह सार मैंने पाया है।'

प्राचीन युग में एक समस्या दी गई–असारे खलु संसारे किं सारं विद्यतेऽधुना? न जाने कितने लोगों ने इस समस्या को पूरा किया, पर संयम की बात सामने नहीं आई। कहा गया–असार संसार में भोग सार है–असारे खलु संसारे सारं सारंगलोचना। असार संसार में मिठाई खाना सार है–असारे खलु संसारे सारं सुस्वादुभोजनम्। आदि आदि बहुत सार प्रस्तुत किये गये। अपनी दृष्टि से निष्कर्ष निकाला जाता है और आदमी मानता है कि बस जीवन का सार यही है।

मैंने एक भाई से कहा–'तुम बीमार हो। शुगर की बीमारी है। मिठाई बहुत खाते हो। छोड़ दो, अच्छा नहीं है। आहार का संयम होगा, त्याग होगा और साथ-साथ स्वास्थ्य में भी लाभ होगा।'

दो-चार मिनिट वह सोचता रहा, सोचकर बोला–'महाराज! आप ही तो हमें उपदेश देते हैं कि जीवन नश्वर है। एक दिन सबको मरना है। यदि मिठाई खाते-खाते दो-चार वर्ष पहले मर जाऊंगा तो क्या बिगड़ेगा? मिठाई छोड़कर चार वर्ष अधिक जीऊंगा तो क्या भला होगा?'

'सार' की मीमांसा की बुद्धि अपनी-अपनी होती है। एक परिवार आया, भाई ने कहा–'मेरी पत्नी बहुत बीमार रहती है। आप कोई जप बताएं।' मैंने कहा–'जप तो बाद में, पहले यह बताओ–आहार का संयम करती है या नहीं। आहार का संयम है तो जप भी काम देगा और आहार का संयम नहीं है तो जप भी काम नहीं देगा।'

आयुर्वेद में स्वास्थ्य के संदर्भ में कहा गया–यदि पथ्य भोजन है तो दवा लेने से मतलब क्या? अगर कुपथ्य भोजन करते हो तो दवा लेने से मतलब क्या?

यदि सुपथ्यं किमौषधसेवनेन? यदि कुपथ्यं किमौषधसेवनेन?



उस समय एक मुनिजी मेरे पास बैठे थे। वे बोले–इस बहिन के पिताजी कहते थे–वणिक् जाति का व्यक्ति अगर आमरस और बादाम की कतली खाते-खाते मर जाए तो कोई चिंता की बात नहीं।

मैंने कहा–'यह चिन्तन का कोण है तो फिर दवा की भी जरूरत नहीं और जप की भी जरूरत नहीं।'

हमें धारणा को भी बदलना होगा कि आखिर सार क्या है? इस असार संसार में इस असार शरीर से क्या सार निकाला जा सकता है?

जम्बूकुमार ने कहा–'मां! मैंने सार को समझ लिया। इस असार संसार में संयम की साधना करना ही सार है।'

मां ने कहा–'बेटा! यह बहुत अच्छी बात है। बहुत अच्छा सार निकाला है तुमने। वे धन्य हैं, जो संयम की साधना करते हैं।'

मां यह कैसे सोच पाती कि जम्बूकुमार स्वयं ही साधना करने वाला है। अभी तक तो वैराग्य की बात ही चल रही है। मां ने जम्बूकुमार के कथ्य का समर्थन किया–'बेटा! इस दुनिया में त्याग ही सार है, संयम ही सार है। इस शरीर से जितनी संयम की साधना हो जाये, जितना त्याग और व्रत हो जाए, जितनी तपस्या हो जाये, वह श्रेयस्कर है। यह सात धातु का पुतला, हाड़-मांस का पुतला, इसका सार यही है। उसके सिवाय तो भीतर असार ही असार पड़ा है। संयम ही सार है।'

मां और बेटा, दोनों बड़ी वैराग्य की बातें करने लगे। जम्बूकुमार तो अभी नई शिक्षा लेकर आया। मां तत्त्व की जानकार श्राविका।

मां बोली–'बेटा! तूने तो एक दिन में बहुत सार निकाल लिया, इतना तत्त्व समझ लिया। यह बहुत अच्छा हुआ कि तुम्हारे मन में धर्म के प्रति रुचि जाग गई।'

मां को संतोष मिला। जब व्यक्ति में धर्म की रुचि जागती है, बहुत सारी बुराइयां मिट जाती हैं। अभी-अभी हम प्रवचन में आ रहे थे, आने से पहले एक समझदार चिंतनशील श्राविका ने कहा–'आज की समस्या पर भी ध्यान देना चाहिए।'

मैंने पूछा–'क्या समस्या है?'

'महाराज! आज तीन बड़ी समस्याएं समाज के सामने विकराल रूप में आ रही हैं। पहली समस्या है–शादी में बहुत आडम्बर होता है। यह उचित नहीं है। विवाह सादगी से होना चाहिए। किन्तु अहंकार इतना प्रबल हो गया है कि हर आदमी प्रदर्शन करना चाहता है। ऐसा लगता है कि धन के उपयोग का सबसे बड़ा क्षेत्र यही बचा है।'

एक भाई ने बताया–मैंने शादी में इतने आइटम किये कि एक आदमी खा भी नहीं सकता और चख भी नहीं सकता। उसने काफी बखान किया।

इस तरह कोई व्यक्ति धन का प्रदर्शन करता है, धन का अहंकार करता है तो उसके प्रति कोई उदात्त भावना नहीं जागती। बात करने का मन भी नहीं होता। मैं उदासीन भाव से सुनता रहा और वह मुग्धभाव से बोलता चला गया। बहुत कुछ कहने के बाद वह मौन हुआ।

मैंने पूछा–'तुमने इतना सब तो किया, साथ में एक हॉस्पिटल बनाया या नहीं?'

वह यह सुनकर चौंका, विस्मय के साथ बोला–'हॉस्पिटल क्यों?'

मैंने कहा–'व्यक्ति इतना खायेगा तो बीमार अवश्य पड़ेगा फिर वह कहां-कहां भागेगा?'

पहली समस्या है–शादी के समय होने वाला प्रदर्शन।

दूसरी समस्या है–तलाक। थोड़ा सा मूड बिगड़ा, थोड़ी-सी अनबन हुई और तलाक। यह भयंकर बीमारी बन गई है तलाक। एक समय था–शादी को कहते थे पाणिग्रहण। जिसका हाथ पकड़ लिया, उसका साथ जीवनभर निभाना है। एक वह संकल्प था जीवनभर निभाने का और एक आज की स्थिति है।

गुजरात के महाराज जयसिंह के पिता जल्दी चल बसे। बादशाह ने देखा–अच्छा अवसर है। उसने बालक जयसिंह को बुला लिया। पिता सदा टक्कर लेते रहे, बादशाह के अधीन नहीं बने। बादशाह ने पास बिठाया, बिठाकर हाथ पकड़ा और कहा–'जयसिंह! बोलो अब तुम मेरे पास में आ गये हो, अब क्या होगा?' जयसिंह बहुत होशियार थे, बोले–'जहांपनाह! अब क्या होगा? पति अपनी स्त्री का एक हाथ पकड़ता है तो उसे भी वह जीवनभर निभाता है। आपने तो मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये। अब मुझे क्या चिंता है?'

आज यह तलाक की समस्या भयंकर बन रही है। साथ रहने का संकल्प और संबंध तिनके जैसा हो गया है। टूट जाये तो कोई चिन्ता की बात नहीं।

तीसरी समस्या है–नशे की। आज के युवक जर्दा, शराब, पान-पराग और हेरोइन तक के नशे में जा रहे हैं। नशे में सारी चेतना नष्ट हो रही है।

एक युवा श्रावक नशे में पड़ गया। पत्नी भी बहुत अच्छी श्राविका। वह पत्नी से कहता है–तुम भी शराब पीओ। वह कहती है–मैं नहीं पीऊंगी। पति विवश करता है और वह नहीं मानती है तो पिटाई शुरू कर देता है। पत्नी दुःखी हो गई। उसने वेदना भरा एक पत्र लिखा गुरुदेव के नाम। अपनी समस्या प्रस्तुत की–'गुरुदेव! मैं क्या करूं? मेरी यह स्थिति बन गई। मैं शराब पी नहीं सकती और मेरी यह हालत हो रही है।' ये भयंकर स्थितियां हैं। इन पर अगर सामाजिक स्तर पर चिंतन नहीं हुआ तो समाज चिन्तनीय दशा में चला जाएगा। इसलिए आवश्यकता है कि इन सब पर चिंतन किया जाए, बार-बार सोचा जाए, कुछ अंकुश लगाया जाए।

संयम का संस्कार एक अंकुश है। जिन लोगों में संयम का, धर्म का संस्कार है वे बच जाते हैं। पर जो लोग यह समझते हैं कि धर्म हमारे लिए जरूरी नहीं, साधु-संतों के पास जाना भी जरूरी नहीं, हम अपने आपको स्वतंत्र अनुभव करते हैं, स्वतंत्र रहते हैं। न परिवार का अंकुश, न समाज का अंकुश, न धर्म का अंकुश–यह निरंकुश मदोन्मत्त हाथी स्वयं का अनर्थ करता है और दूसरों के लिए भी हानिकर होता है।

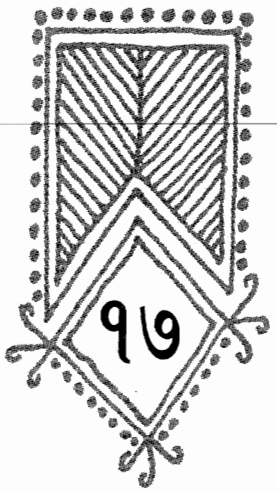
जहां असंयम की चेतना है, भोगवादी मानसिकता है वहां ये स्थितियां बनती हैं। ये निरर्थक आडंबर, तलाक और व्यसन–धर्म और संयम के संस्कारों के क्षरण के परिणाम हैं।

इस स्थिति में जम्बूकुमार का जो चिंतन चल रहा है, उसे सुनकर मां को बहुत खुशी हुई। उसने सोचा–जम्बूकुमार के संस्कार कितने अच्छे हैं। यह कितनी त्याग और वैराग्य की बात कर रहा है, किस प्रकार सचाई को समझ रहा है। भाग्य से ही इस प्रकार का संस्कारी पुत्र मिलता है।



इस प्रकार प्रसादपूर्ण वातावरण में मां और पुत्र के मध्य रहस्यमयी वार्ता चल रही है। जब रहस्य खुलेगा, तब मां का क्या होगा?

क्या मां जम्बूकुमार के संकल्प का स्वागत करेगी या उसके संकल्प को शिथिल बनाने का प्रयत्न?





क्षायोपशमिक भाव अलग-अलग प्रकार का होता है और औदयिक भाव भी अलग-अलग प्रकार का होता है। जिस व्यक्ति में मोहनीय कर्म का क्षायोपशमिक भाव प्रबल होता है उसका दृष्टिकोण बदल जाता है। उसे चीनी मीठी भी नहीं लगती, फीकी भी नहीं लगती और कड़वी भी नहीं लगती। वह इंद्रिय चेतना से ऊपर उठ जाता है। जहां इंद्रियातीत चेतना की अनुभूति हो जाती है, वहां स्वाद बदल जाते हैं, रस बदल जाते हैं। जिस व्यक्ति में मोह का प्रबल उदय है, वह उसकी बात को समझ ही नहीं सकता। उसे लगता है दुनिया में सार है तो धन है, परिवार है, संपदा है, सत्ता है, अधिकार है। यह नहीं मिला तो कुछ भी नहीं मिला। जिस व्यक्ति में क्षायोपशमिक भाव प्रबल है, उसे लगता है कि सार है तो केवल चेतना है।

दो दिशाएं हैं–एक है पदार्थ की दिशा और एक है चेतना की दिशा। पदार्थ की दिशा में पदार्थ ही प्रिय लगता है। सारे तर्क पदार्थ को सिद्ध करने में, पदार्थ को पाने में लगते हैं। जिसने पदार्थ को नहीं भोगा, उसका जीवन व्यर्थ चला गया। यह चिन्तन उस भूमिका का चिंतन है, उस चेतना का चिंतन है जो चेतना औदयिक भाव से प्रभावित है, किन्तु जब वही चेतना क्षायोपशमिक भाव से प्रभावित होती है, चिंतन बदल जाता है। बहुत लोग पूछते हैं–हम दीक्षा क्यों लें? इस प्रश्न का क्या उत्तर दें? प्राचीन युग में एक घड़ाघड़ाया उत्तर रहा है–'संसार खारो लागै।' 'संसार लाय है।' यह एक रटारटाया उत्तर था। यह बात ठीक है कि संसार खारा भी है, लाय भी है किन्तु जिसका मोहोदय प्रबल है, वह कहेगा–लाय कहां है? आज तो जहां लाय (अग्नि) लगती है वहां दमकलें आ जाती हैं, उसे बुझा देती हैं। खारा कहां है? क्या भोगों में सुख नहीं है? मिठास नहीं है?

मानना चाहिए–भीतर में जो कुछ हो रहा है, जो रासायनिक प्रक्रियाएं चल रही हैं, जिस प्रकार का कर्म का विपाक अथवा क्षायोपशमिक भाव होता है वैसा चिंतन बन जाता है। बहुत लोगों ने मुझसे पूछा–आपने दीक्षा क्यों ली? मैंने कहा–कोई नियति थी, दीक्षा ले ली। इसके सिवाय कोई उत्तर नहीं दे सकता।

इन दिनों एक किशोर उपासना में आया हुआ है। वह वैरागी है, दीक्षा लेना चाहता है, उसका नाम है यशवंत (वर्तमान मुनि जम्बूकुमार)। वह चेन्नई का निवासी है। उससे कोई पूछे कि तुम वैरागी क्यों बने? वह क्या उत्तर देगा? उससे कहा गया–दोपहर में धूप में पढ़ने के लिए आते हो, इतना कष्ट भी सहते हो। चेन्नई में रहने वाला राजस्थान की सर्दी गर्मी को सहन कर ले, क्या यह कठिन बात नहीं है? वहां तो सर्दी है ही नहीं। पूज्य गुरुदेव ने दक्षिण भारत की यात्रा की। मर्यादा महोत्सव था चिदम्बरम् में। सर्दी के मौसम में एक सूती पछेवड़ी से अधिक ओढ़ने की जरूरत कभी नहीं हुई। यदि किसी को यह संकल्प लेना हो कि बिना वस्त्र सर्दी में रहना है तो वहां कोई भी रह सकता है। न एलवान की जरूरत और न ऊनी कंबल की जरूरत। वहां रहने वाला एक छोटा बच्चा राजस्थान की सर्दी और गर्मी में रह जाए, यह बहुत कठिन है। किन्तु जब चेतना बदलती है तब न सर्दी बाधा देती है, न गर्मी बाधा देती है। मूल प्रश्न है चेतना का। सब उस पर निर्भर हैं।

जम्बूकुमार की चेतना आत्मोन्मुखी बन गई। वह बोला–'मां! मैंने बहुत अच्छी-अच्छी बातें सुनी।'

मां ने कहा–'बेटा! बहुत अच्छी बात है।'

'मां! मैंने यह भी सुना कि व्यक्ति साधना करके आत्मस्थ बन सकता है।'

'हां, बेटा।'

'मां! और जो आत्मस्थ हो जाता है, आत्मा को पा लेता है वह केवली बन जाता है।'

जम्बूकुमार अब तक परोक्ष की बात कर रहा था, परस्मैपद की बात कर रहा था, आत्मनेपद की बात नहीं कर रहा था। व्याकरण के दो शब्द हैं परस्मैपद और आत्मनेपद। परस्मैपद यानी दूसरे के लिए। आत्मनेपद यानी अपने लिए।



मां ने समर्थन किया, कहा–'हां बेटा! जो आत्मा की साधना करते हैं वे आत्मा को पा लेते हैं, आत्मा को देख लेते हैं और केवली भी बन जाते हैं। क्या तुम्हें पता नहीं, भगवान महावीर भी केवली थे, गौतम स्वामी केवली थे!'

'मां! क्या बहुत बड़ा होता है केवलज्ञान?'

'हां, इतना बड़ा होता है कि कहा नहीं जा सकता।'

केवलज्ञान का परिमाण कितना है–'सव्वागासपदेसं सव्वागासपदेसेहिं अणंतगुणियं पज्जवक्खरं निप्फज्जई।'–लोकाकाश और अलोकाकाश। अनंत आकाश को अनंत आकाश से गुणा करें। आकाश के एक-एक प्रदेश पर अनंत पर्याय और उसको अनंत से गुणा करो–उसके जितने पर्याय बनते हैं, उतना बड़ा है केवलज्ञान।

मां ने कहा–'बेटा, केवली बहुत बड़ा होता है, उससे बड़ा कोई ज्ञानी नहीं होता।'

जम्बूकुमार के स्वर में परिवर्तन आया, वह परस्मैपद से आत्मनेपद की भाषा में आया, बोला–'मां! मैं भी आत्मा को देखना चाहता हूं!'

मां का सिर थोड़ा-सा ठनका। जहां भी आत्मा को देखने की बात आती है वहां मोह आगे आ जाता है।



मां ने कहा–'कैसे देखोगे?'

'केवली बनकर देखूंगा।'

'केवली कैसे बनोगे?'

'मां! मैं मुनि बनूंगा, साधना करूंगा।'

मुनि बनने की बात सुनते ही मां एकदम मूर्च्छा जैसी स्थिति में आ गई। डॉक्टर ऑपरेशन करते हैं तब पहले एनेस्थेसिया का प्रयोग करते हैं, शून्य बना देते हैं, जिससे पीड़ा न हो। जम्बूकुमार के शब्दों ने एनेस्थेसिया का प्रयोग कर दिया, मां कुछ क्षण के लिए स्तब्ध और अवाक् हो गई। वह भाव विह्वल स्वर में बोली–'बेटा! क्या बात कह रहा है? तुम साधु बनोगे?'

'पुत्र! यह मेरे लिए वज्र संपात जैसा निष्ठुर वचन है। तुमने अचानक यह क्या सोचा?'

अहो पुत्र! किमाख्यातं, वज्रसंपातनिष्ठुरं।
कारणं किमकस्मात् स्यादत्र कार्यनिदर्शने।।

'मां! आपने ही अभी कहा था–आत्मा को देखना बहुत अच्छा है। अगर मैं आत्मा को देखूं, केवली बनूं तो तुम्हें क्या कठिनाई है? तुम्हें तो खुशी होनी चाहिए।'

मां की आंखें छलछला आईं, गला भर आया। भर्राए स्वर में बोली–'नहीं, यह बात छोड़ो। तू इकलौता बेटा है। तू जानता नहीं है, अभी तक समझता नहीं है।'

पुत्र कितना ही समझदार हो पर माता-पिता उसे बच्चा ही समझते हैं। मां बोली–'जात! तुम्हें अभी तक अनुभव नहीं है। अभी तू क्या जानता है? देख, तू एक ही बेटा है। हमने तुम्हें पाला, पोसा, बड़ा किया। इसलिए किया कि बुढ़ापे में हमारी सेवा करे। बुढ़ापा तो आया नहीं, उससे पहले ही जाने की बात कर रहा है। हमारी सारी आशा पर हिमपात, पाला पड़ जाएगा। ऐसा हो नहीं सकता। तुम यह बात छोड़ दो। तुमने जो तत्त्वज्ञान सुना है वह बहुत अच्छी बात है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम गृहत्यागी बन जाओ।'

मां ने धन-वैभव का उपभोग करने की प्रेरणा देते हुए कहा–'जात! तेरे पिता ने कितना धन संचय किया है। आसत्त-कुलवंश–सातवीं पीढ़ी तक भी कोई कमाने की जरूरत नहीं है। खूब खाओ, पीओ, मौज करो।' उस अपार धन को तुम भोगो, काम में लो। बेटा! यह मिनख जनम बार-बार नहीं मिलेगा।'

पुत्र पिता धन संचियो, तिण धन रो घणो विस्तार।
सात पीढ़ी खाता खरचता, तो ही न आवै पार।।

ते धन खाओ पीओ बिलसलो सुख भोगवो संसार।
लाहो ल्यो मिनख रा भवतणो, नहीं पामसौ बार बार।।

आस्तिक और नास्तिक–दोनों इस तर्क का प्रयोग करते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में एक पूरा प्रकरण है नास्तिकवाद का। नास्तिक विचारधारा वाला व्यक्ति, जो आत्मा को नहीं मानता, कहता है–कौन जानता है परलोक को? किसने देखा है परलोक? परलोक है या नहीं? मरने के बाद कौन नरक में जायेगा और कौन स्वर्ग में? यह किसने जाना और देखा है?

अभी तो ये काम मेरे हाथ में हैं, हस्तगत हैं। आगे कुछ मिलेगा, यह कोरी कल्पना है। यह जो मनुष्य का जन्म मिला है, इसमें जितना सुख भोगना है, जितना आराम करना है, कर लो क्योंकि मनुष्य जन्म बार-बार नहीं मिलेगा।

हत्थागया इमे कामा कालिया जे अणागया।
को जाणइ परे लोए अत्थि वा नत्थि वा पुणो?

किसी साधु के पास जाओ, वह कहेगा–'भाई! त्याग करो, तपस्या करो। मनुष्य का जन्म मिला है। यह मनुष्य का जन्म बार-बार नहीं मिलेगा।'

आस्तिक और नास्तिक दोनों का तर्क एक ही है–मनुष्य का जन्म बार-बार नहीं मिलेगा। एक कहता है–जितना भोगना है, उतना भोग कर लो। एक कहता है–जितना त्याग करना है, उतना त्याग कर लो।



जम्बूकुमार ने कहा–'मां! इस धन में बहुत लोगों का सीर है। यह धन किसी क्षण नष्ट हो सकता है। जब मनुष्य मरता है तब उसके साथ एक तार भी नहीं जाता। इसलिए आप इस धन-वैभव के जाल में उलझने की प्रेरणा न दें। मुझे दीक्षा के लिए अनुमति दें।'



हिवै जम्बू कहै सुणो मातजी, धन में घणा रो सीर...।
वले सिड़े गले विणसे विले हुवे, असासतो अनंत असार।
तिण कारण इणमें राचू नहीं, लेसूं संजम भार।।
बले परभव जाता जीव नें, साथे ने आवे इक तार,
कृपा करी दो मौने आगन्यां, मत करो ढील लिगार।।

मां समझदार श्राविका थी, तत्त्व की जानकार थी किन्तु जब मोह का बादल आता है, चेतना का सूर्य उसमें एक बार ढक जाता है, छिप जाता है। उसका पता नहीं चलता।

जब भृगुपुत्रों ने दीक्षा की बात कही, तब भृगु ने यही तर्क दिया था–बेटा! आगे कुछ भी नहीं है। जो धन और ऐश्वर्य मिला है, इसका भोग करो।

यह मोह से उपजा हुआ तर्क है। जब मोह की चेतना प्रबल होती है तब तर्क एक प्रकार का होता है और जब मोह की चेतना विलीन होती है तब तर्क दूसरे प्रकार का बन जाता है। मां की मोह चेतना प्रबल हो गई, उसने कहा–'बेटा! तुम दीक्षा की बात छोड़ दो। यह संभव नहीं है।'

हम तेरापंथ के इतिहास को देखें। दीक्षा के संदर्भ में कितने मोहक घटनाचक्र सामने आये। महासती सरदारांजी का जीवन पढ़ें तो लगेगा–ऐसा संग्राम हुआ है, ऐसा संघर्ष हुआ है कि जिसे पढ़ कर रोमांच हो जाए। एक ओर प्रवर क्षायोपशमिक चेतना, दूसरी ओर प्रबल मोहोदय की चेतना। दोनों का भारी संघर्ष चला। महासती सरदारांजी ने दिल को दहलाने वाले कष्ट सहन किए। और भी अनेक वैरागी बने, किसी को खोड़े में डाल दिया, किसी को कमरे में बंद कर दिया। बड़ी कठिनाइयां प्रस्तुत की गईं।

'महामोहविडम्बनेयं'–मोह के कारण सब कुछ होता है। मूल समस्या मोह की है। सारा संसार किस आधार पर चल रहा है? मोह के आधार पर ही चल रहा है। माता के मन में प्रबल मोह की चेतना जाग गई। मां ने कहा–'बेटा! तुम नहीं जानते कि तुम्हारे पिता की कितनी प्रतिष्ठा है। तुम यह भी नहीं जानते कि मेरे मन में तुम्हारे प्रति कितना स्नेह है। क्या तुम्हारे हृदय में करुणा नहीं है? क्या तुमने यह नहीं सोचा कि ऐसी बात कहकर मैं मां के दिल को कितना दुःखाऊंगा? मां को कितनी पीड़ा होगी? तुम्हारे भीतर करुणा ही नहीं है तो तुम क्या साधु बनोगे? तुम कितने कठोर हो? इतना कठोर आदमी साधु नहीं बन सकता।'

मां ने कहा–'भगवान महावीर ने भी मां को दुःख नहीं पहुंचाया। जब वे गर्भ में आए, तब यह संकल्प कर लिया–मां को मेरे प्रति मोह बहुत है इसलिए जब तक माता-पिता जीवित रहेंगे तब तक मैं साधु नहीं बनूंगा। क्या तुम महावीर से बड़े हो? महावीर बड़े या तुम?'

'वत्स! तुम्हारी इच्छा है तो तुम भले ही साधु बन जाना पर एक संकल्प तुम ले लो–जब तक माता-पिता जीवित हैं तब तक मैं साधुपन की बात नहीं करूंगा।'

मां ने तर्क बहुत सुन्दर दिया–महावीर का आदर्श सामने है। सूत्रकार कहते हैं–'जं आइण्णं तं समायरे'–हमारे पूर्वजों ने जो आचरण किया, उसका अनुसरण करो। जब महावीर ने ऐसा आचरण किया है, तब तुम भी उसका अनुगमन करो। बस आज से इस चर्चा को समाप्त कर दो और यह संकल्प ले लो–जब तक माता-पिता जीवित हैं तब तक मैं साधु नहीं बनूंगा।

जम्बूकुमार ने सोचा–मैंने अपनी भावना मां के सामने रख दी लेकिन काम बड़ा कठिन है। यह मनुष्य की मोहात्मक चेतना है कि वह स्वयं भी त्याग मार्ग की ओर जाना नहीं चाहती और जो जाना चाहता है उसको रोकना चाहती है, भोग में अपना साथी बनाना चाहती है। यह एक स्वाभाविक प्रकृति है।

मां ने कहा–'तुम दीक्षा की बात को छोड़ दो। हम जब संसार में न रहें तब तुम मुनि बन जाना।'

हिवडां तो बैठो रहे घर मझे, आपणो वंश बधार।
म्हें बूढा हुवां काल गयां पछे, लीजे संजम भार।।

जम्बूकुमार बोला–'मां! मैं तो छोटा हूं, कम जानता हूं। आप तो बड़े हैं, अनुभवी हैं। पर मैंने भी महावीर का एक वचन सुना है। मैं भी जानता हूं महावीर की वाणी को। मां! महावीर की वाणी तो यह है–

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वत्थि पलायणं।
जो जाणे न मरिस्सामि, सोऊ कंखे सुए सिया।।

एक व्यक्ति यह सोचता है–मौत के साथ मेरी मित्रता है, इसलिए मुझे नहीं सताएगी। वह आदमी यह सोच सकता है कि मैं साधना अभी नहीं, बाद में करूंगा। जो व्यक्ति यह सोचता है–जब मौत आयेगी तब द्वार से निकलकर इतना तेज भाग जाऊंगा कि मौत मुझे पकड़ ही नहीं पाएगी। वह आदमी सोच सकता है–मैं साधना बाद में करूंगा। जो यह सोचता है–मैं तो कभी मरूंगा नहीं। मरने वाले दूसरे हैं। वह व्यक्ति यह सोच सकता है–मैं साधना बाद में करूंगा।

मौत से मैत्री, मौत से पलायन की शक्ति, अमरता का विश्वास–ये तीन बातें होती हैं तो आदमी आगे की बात सोचता है। किन्तु न तो मेरी मौत के साथ मित्रता है, न मैं मौत से तेज दौड़ना जानता हूं और न मैं अमर हूं। इसलिए मैं आगे की बात कैसे करूं?

युधिष्ठिर के पास कोई याचक आया, बोला–'महाराज! मुझे आप कुछ दें।'

युधिष्ठिर ने कहा–'आज नहीं, कल आना। कल दूंगा।'

भीम ने यह सुना, वह बाहर गया और नगाड़े बजाने का निर्देश दे दिया। नगाड़े बजने लगे।

युधिष्ठिर ने पूछा–'आज नगाड़े किसलिए बज रहे हैं?'

उत्तर मिला–'भीम के आदेश से बज रहे हैं।'

युधिष्ठिर ने भीम को बुलाया, पूछा–'नगाड़े क्यों बज रहे हैं?'

उसने कहा–'आज तो बहुत खुशी का दिन है।'

'किस बात की खुशी है?'

'खुशी इस बात की है कि हमारे भाई धर्मराज युधिष्ठिर अमर बन गये।'

'किसने कहा–मैं अमर बन गया?'

'अभी आपने ही तो कहा था–आज नहीं, कल दान दूंगा। इसका मतलब है कि आज तो आप अमर बन गये। आपको पता चल गया कि आज तो मैं नहीं मरूंगा।'



आज ही एक परिवार आया फतेहपुर का। इकचालीस वर्ष का युवक अचानक चला गया, हार्ट फेल हो गया। बीमारियों की रफ्तार भी बढ़ी है, हार्ट फेल होने की रफ्तार भी बढ़ी है। इस अवस्था में कौन कह सकता है कि मैं कल करूंगा या आगे करूंगा? वर्तमान क्षण पर तो हमारा अधिकार है, आगे के क्षण पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। इसलिए यह अनुभव की वाणी है–जो करना है वह इसी क्षण में कर लो।

आचारांग सूत्र का एक मर्मस्पर्शी वचन है–**'इणमेव खणं वियाणिया।'** यही क्षण मूल्यवान है, इस क्षण का मूल्य आंको। वर्तमान क्षण में तुम क्या कर रहे हो? वर्तमान का क्षण तुम्हारे हाथ में है, उस पर तुम्हारा अधिकार है। उससे आगे की बात मत सोचो।

एक पुरानी कहानी है। एक सेठ इतना लोभी था कि हर क्षण धंधे में लगा रहता था। एक कथावाचक

बार-बार आता और कहता–'सेठ साहब! थोड़ी धर्म की बात सुन लो।' सेठ कहता–'मुझे फुरसत नहीं है। अभी एक लड़की की शादी करनी है। वह हो जाए फिर मैं तुम्हारी बात सुनूंगा।'

लड़की का विवाह हो गया। कथावाचक ने कहा–'सेठ साहब! अब तो धर्म की बात सुनो।'

सेठ ने कहा–'अभी नहीं, एक काम और बाकी है। अभी लड़के को दुकान में बिठाना है, होशियार करना है। वह हो जायेगा फिर सुनूंगा।' एक के बाद एक बहाना आता गया, कभी धर्म की कथा नहीं सुनी। वह एक दिन का समय भी नहीं निकाल सका और एक समय ऐसा आया कि सेठ मर गया। उसकी अर्थी सजी। उसे श्मशान घाट ले जाया जा रहा था। श्मशान-यात्रा में बीच का बासा लेते हैं, वहां अर्थी को रखा। उस समय कथावाचक आया, बोला–'सब हट जाओ। मैं सेठ साहब को कथा सुनाना चाहता हूं।' लोग बोले–'कितने मूर्ख हो। आदमी तो मर गया, अब किसको कथा सुनाओगे?'

कथावाचक ने कहा–'भाई! क्या करूं। जीते जी तो इसको समय नहीं था। अब यह बीच का बासा अच्छा समय है। अब मैं इसको कथा सुनाना चाहता हूं।'

'मां! कल का क्या भरोसा? हो सकता है कि काल आपसे पहले मुझे ले जाए।'

हिवै जम्बूकुमार कहे मात ने, मोनें खबर न कोय।
कदा थां पहली हो माता मो भणी, काल झपट ले जाय।।

'मां! कल को किसने देखा है? कल के भरोसे आज श्रेयस पथ से विमुख क्यों बनूं?'

मां! मेरा तो यह संकल्प दृढ़ है कि मुझे मुनि बनना है, आत्मा को देखना है, केवली बनना है।'

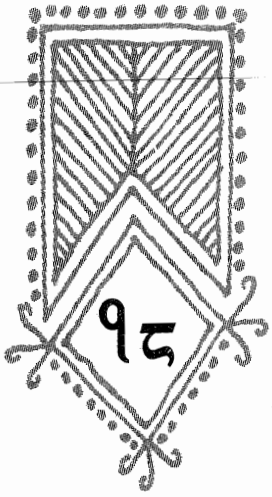
जिसको जो होना होता है, वह भावना पहले ही जाग जाती है। जम्बूकुमार को केवली होना था, उसके मन में यह ललक पैदा हो गई–मुझे आत्मा का साक्षात्कार करना है।

आत्मा को मानना एक बात है, आत्मा को जानना दूसरी बात है और आत्मा को साक्षात् देखना तीसरी बात है। तीनों भूमिकाएं अलग-अलग बन जाती हैं।

जम्बूकुमार के मन में एक गहरी प्यास है आत्मा को देखने की। मां के मन में प्यास है बुढ़ापे में सेवा की। दोनों की प्यास अलग-अलग है।

किसकी प्यास बुझेगी?

जम्बूकुमार की या माता धारिणी की?



अपना-अपना दृष्टिकोण और अपना-अपना चिंतन होता है। एक व्यक्ति स्वार्थ की भावना से कुछ करना चाहता है। दूसरा, जो स्वार्थ से ऊपर उठ गया, वह उससे भिन्न कुछ करना चाहता है। सब लोग न एक प्रकार से सोचते हैं और न एक प्रकार का कार्य करते हैं। हर कार्य और चिंतन के पीछे एक अंतःप्रेरणा होती है। जैसी भीतर की प्रेरणा होती है, व्यक्ति वैसा ही सोचता है और वैसा ही कार्य करता है। माता की प्रेरणा दूसरे प्रकार की थी और पुत्र की प्रेरणा भिन्न प्रकार की। दोनों में कहीं सामंजस्य नहीं हो रहा था।

जम्बूकुमार की माता ने सोचा–मैं स्वार्थ की बात करूंगी तो यह नहीं मानेगा। अब तो कोई दूसरा उपाय करना चाहिए।



हर आदमी मनोवैज्ञानिक ढंग से काम करना चाहता है जिससे दूसरा उसकी बात को स्वीकार कर ले।

मां ने एक उपाय खोजा और कहा–'बेटा! तू कहता है कि मैं साधु बनूंगा। तुमने अभी जाना ही नहीं कि साधुपन क्या होता है? अगर तू यह समझ लेता तो ऐसी भोलेपन की बात कभी नहीं करता। मैंने तो समझा था कि तू होशियार हो गया, समझदार हो गया किन्तु लगता है–अभी तुम भोले ही हो। जो भोला होता है वह बात को सम्यक् समझ नहीं पाता। सुधर्मा स्वामी ने कुछ और कहा है और तूने कुछ और समझ लिया है। जो भोला होता है वह समझ भी कैसे सकता है?'

सास ने बहू से कहा–अंधियारा हो रहा है। पोल में दीया जला दो। बहू ने दीया जलाया। भीतर पति सो रहा था। सर्दी का मौसम था। सोड़ (शॉल) ओढ़ी हुई थी। बहू भीतर गई। पति की ओढ़ी हुई 'सोड़' पर जलता हुआ दीया रख दिया। सोड़ जल गई। पति चिल्लाया। तत्काल सोड़ को दूर फेंका। उसने कहा–अरे! यह क्या किया? क्या मुझे मारना था? पुत्र की चीख-पुकार सुनकर मां कमरे में आई। सोड़ को जला हुआ देख वह स्तब्ध रह गई। उसने बहू से कहा–'अरे! तुमने दीया कहां जलाया?'

बहू–'सासजी! जहां आपने कहा था।'

सास–'मैंने तो यह कहा था कि तुम मुख्य द्वार पर दीप जला दो।'

मैं तो भोली यूं कह्यो तू पोल में दीवलो जोल।

बहू–सासजी! मैंने तो यह सुना कि सोड़ में दीया जला दो।

मैं तो सासूजी यूं सांभल्यौ तू सोड में दीवलो जोल।

कुछ कहा जाता है और कुछ समझ लिया जाता है।

मां ने कहा–'बेटा! तू ठीक से नहीं समझ पाया। सुधर्मा स्वामी ने यह कहा होगा–जो समर्थ हो जाता है, शक्तिशाली होता है वह मुनि बन सकता है। उन्होंने यह नहीं कहा कि तू मुनि बन जा। ऐसा वे कहें, यह संभव ही नहीं है।

जात! प्रासाद में तुम सुकोमल मखमली शय्या पर सोते हो। साधु को धरती पर सोना होता है।

जात! आज तुम भोजन करते हो तो कनक कचोले–सोने के कटोरे में भोजन मिलता है। सोने की थाली, सोने की कटोरियां और स्वादिष्ट भोजन। जब साधु बनोगे तो सोने की थाल नहीं मिलेगी, काठ की पात्री मिलेगी। कितना कठिन है इन काष्ठ के पात्रों में भोजन।'

सुकोमल सेज्जा छोड़ने रे हां, धरणी करणो संथार। मेरे नंदना।
कनक कचोला परहरे रे हां, काछलियां व्यवहार। मेरे नंदना।

उस युग में शायद पात्रों पर रंग-रोगन नहीं किया जाता था। आज साधु-साध्वियां बहुत सुन्दर पात्री बना देते हैं। उस युग में काष्ठपात्र लाते और अलसी का तेल चुपड़कर काम में ले लेते। कहां रोगन था, कहां हिंगलू था, कहां सफेदा था। कहां सुन्दर पात्र थे और कौन उन पर सुन्दर नामांकन और चित्रांकन करते थे।

मां ने कहा–'जात! क्या इन काष्ठपात्रों में आहार करना तुम्हारे लिए संभव है?'

'जात! क्या तुमने यह समझ रखा है कि यह साधुपन कोई नानी का घर है। जब मन हुआ, वहां गए और दही रोटी खा ली। आज तो वहां कहां दही है और कहां रोटियां? प्राचीन युग में ननिहाल के साथ दही-रोटी का संबंध जुड़ा हुआ था। संभवतः आज ननिहाल में भी दही-रोटी नहीं मिलती। आज तो इडली-डोसा, पाव-भाजी, पिज्जा-बर्गर न जाने कितने फास्ट फूड हैं, जिन्होंने दही-रोटी का स्थान ले लिया है और जो स्वास्थ्य को भी बहुत नुकसान पहुंचाते हैं।

मां ने कहा–'साधुपन कोई नानी का घर नहीं है, जहां जाकर दही-रोटियां खा लो।'

'जात! क्या साधु जीवन इतना सरल है कि तू यहां से जाकर तत्काल साधु बन जाएगा। तुम कितने भोलेपन की बात कर रहे हो। क्या तूने कभी किसी साधु को लोच कराते देखा है? तुम पहले साधु बनने की बात छोड़ दो। एक बार तुम केश लोच देख लो। मेरा विश्वास है–एक बार केश लोच देख लोगे तो स्वयं ही साधुपन की बात छोड़ दोगे। फिर कहोगे–मैं साधु नहीं बनूंगा।'

'जात! तुम्हारी अवस्था बढ़ी है पर अनुभव नहीं बढ़ा है। क्या तुम्हें पता नहीं है कि साधु जीवन में कितने परीषह आते हैं। एक दो नहीं, बाईस परीषह सहन करने होते हैं। घर में तो सुबह भूख लगती है और तत्काल प्रातराश मिल जाता है। यहां पता ही नहीं कि भोजन कब मिलेगा? सूर्योदय के साथ आहार नहीं मिलेगा, नवकारसी से पहले आहार नहीं मिलेगा, प्रहर से पहले आहार नहीं मिलेगा।'

उस युग में सामान्यतः यह परंपरा थी कि साधु एक बार भोजन करते और वह भी मध्याह्न में–**एगभत्तं च भोयणं।**

मां ने कहा–'जात! चाहे कितनी गर्मी हो, सुबह तुम्हें प्रातराश नहीं मिलेगा। भूख-प्यास, परीषहों को सहन करना कितना कठिन है? क्या तुमने बाईस परीषहों को समझ लिया, जो साधुपन की बात कर रहे हो?'

'जात! तुमने यह कैसे सोच लिया कि मैं साधु बनूंगा? साधु जीवन एक कठोर शरीर वाले के लिए तो संभव है। जिसका शरीर मजबूत है, वह साधु जीवन के कष्टों को सहन कर सकता है। तुम्हारा शरीर इतना कोमल है कि इस शरीर से तुम साधु जीवन को पाल नहीं सकते। जात! तू साधु बनना चाहता है, यह अच्छी बात है किन्तु पहले गंभीरता से सोच-विचार करो।'

यह सब कौन बोल रहा है? हम स्थूल भाषा में कहेंगे–जम्बूकुमार की मां बोल रही है। वास्तव में मां नहीं, मोह बोल रहा है। मां समझदार श्राविका थी। धर्म की धोरण थी, धर्मानुरागिणी थी। किन्तु जब मोह का उदय हो जाता है तब भाषा मोह से भावित हो जाती है। मोहाकुल मां का स्वर संयम-पथ में अवरोध बन रहा है–

जम्बू! कह्यो मान ले जाया! मत लै संजम भार।
संजम मार्ग दोहिलो जम्बू! चालणो खांडे री धार।
नदी किनारे रूंखड़ो जम्बू! जद कद होवे छार।।

मां ने कहा–'बेटा! संयम जीवन दुष्कर है। यह तलवार की धार पर चलना है।'

'बेटा! यह जीवन नदी के किनारे का रूंखड़ा है, वृक्ष है। यह रूंखड़ा कब गिर जाए, इसका कोई पता नहीं चलता। ऐसी स्थिति में तुम साधुपन की बात छोड़ दो।'



मां ने इस प्रकार बहुत बातें कही किंतु जम्बूकुमार के मानस में कोई प्रकंपन नहीं हुआ। उसका निश्चय अटल बना रहा। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा–'मां! जो कायर आदमी होता है वह संयम के कठिन मार्ग से घबराता है। जो शूरवीर हैं, उनके लिए यह मार्ग कठिन नहीं है। मैं शूरवीर बन कर संयम जीवन का पालन करूंगा। मां! यदि मैंने तुम्हारा स्तनपान किया है तो शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करूंगा।'

मां निःश्वास छोड़ती हुई बोली–'बेटा! आज मैंने समझ लिया है कि जम्बूकुमार जैसा जिद्दी लड़का कोई नहीं है। इतना आग्रही है कि एक बात भी नहीं सुनता। मैं जो भी बात कहती हूं, तू उसे काट देता है। मैं नहीं जानती थी कि तू इतना हाजिरजवाब है। कहीं मुझे टिकने ही नहीं देता।'

हिव माता सुणे वले, इम कहे रे हां, तू ग्रही न छोड़े टेक।
मैं विविध वचन कह्या घणा रे हां, तिण थे नहीं मानी एक।।

'पुत्र! अब मैं तुम्हें अंतिम बात कह रही हूं–अगर तू मुझे मां मान रहा है और तू यह समझ रहा है कि यह मेरी मां है तो मेरी एक बात तुम्हें माननी होगी। वह बात यह है कि मेरे मन में बहुत दिनों से एक लालसा, आशा और प्यास थी कि मैं पुत्र को परणाऊंगी, बहुएं लाऊंगी और मेरी सेवा होगी।'

तोनें परणावण तणी रे हां, म्हारै हूंस घणी मन मांहि। मेरे नंदना।
ओ पूर मनोरथ म्हांरो रे हां, मोनें साले नहीं मन मांहि। मेरे नंदना।

'जम्बू! अगर तू मुझे मां मानता है तो मेरी इस आशा को पूर्ण कर। अन्यथा तू जाने और तेरा काम जाने।' मां ने बहुत कड़वी बात कह दी। जम्बूकुमार विनीत था, उसने सोचा–अब क्या करूं? मैं असमंजस और दुविधा की स्थिति में फंस गया। मां के इस कथन पर वह सोचने के लिए विवश बन गया।

एक अंतर्द्वन्द्व शुरू हो गया–मुझे क्या करना चाहिए? एक ओर मुझे साधु बनना है, दूसरी ओर मां विवाह की बात कह रही है। स्थिति यह है कि मैं ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर आया हूं। मां की बात न मानूं तो मां को बहुत आघात पहुंचेगा, बहुत दुःख होगा। यदि मां की बात मान कर विवाह करूं तो मेरे व्रत का क्या होगा? मेरा संकल्प कैसे सिद्ध होगा?

जम्बूकुमार सहसा कुछ निर्णय नहीं कर सका किन्तु मां के ममत्व भरे इन वचनों ने जम्बूकुमार के अंतःकरण को आंदोलित कर दिया।

एक अनुश्रुत कथा है। किसी क्रूर पुत्र ने प्रबल आवेश के क्षणों में मां का वध कर दिया और उसका कलेजा निकाल लिया। वह कलेजे को लेकर जा रहा था। आगे ऊबड़-खाबड़ जमीन आ गई। अंधेरा भी था। कलेजा बोल उठा–'बेटा! आगे गिर जायेगा, सावधान रह।' बेटे ने सोचा–'अनर्थ हो गया। मैंने तो सोचा था कि मां मेरी विरोधी है, शत्रु है और यह तो मेरी इतनी चिंता करती है।' वह उसी क्षण बिलख उठा, रोने लग गया। उसे अपना अपराध-बोध शल्य की तरह चुभने लगा। जब मां की ममता सामने आती है तब पाषाण हृदय भी पिघल जाता है।

शिकारी जंगल में शिकार के लिए गया। उसने एक हरिणी को देखा। निशाना साध लिया। तीर चलाने के लिए समुद्यत हुआ। हरिणी ने शिकारी से अनुरोध किया–'तुम कुछ क्षण ठहरो। बाण मत चलाओ।'

शिकारी ने साश्चर्य पूछा–'मैं बाण को क्यों न चलाऊं?'

हरिणी भावपूर्ण स्वर में बोली–'पहले मेरी बात सुनो–

आदाय मांसमखिलं स्तनवर्जितांगाद्, मां मुंच वागुरिक! यामि कुरु प्रसादम्।
अद्यापि सस्यकवलग्रहणादभिज्ञाः, मन्मार्गवीक्षणपरा शिशवो मदीयाः।।

तुम मेरे शरीर का सारा मांस ले लो। केवल दो स्तनों को छोड़ दो। मुझ पर कृपा करो, यह तुम्हारा बड़ा प्रसाद होगा। क्योंकि मेरे बच्चे इतने छोटे हैं कि वे अभी घास खाना भी नहीं जानते। वे मेरे स्तनों के दूध पर निर्भर हैं। वे अभी भूखे हैं, दूध पीने की प्रतीक्षा में हैं। यदि उनको दूध नहीं मिला तो वे तड़प जाएंगे।'

मां के ममता भरे इन शब्दों को सुनकर शिकारी को दया आई, उसने तीर पुनः अपने तरकश में रख लिया।

मां की ममता इतनी विचित्र होती है। विनीत पुत्र उसका मूल्यांकन करता है। कोई-कोई ऐसा अविनीत होता है जो मां के प्रति क्रूर व्यवहार करता है। कुछ दिन पहले एक परिवार आया, किसी ने कहा–'यह पुत्र अपनी मां को गाली देता है।' विनीत पुत्र ऐसा सोच भी नहीं सकता, कल्पना भी नहीं कर सकता। पर इस दुनिया में अकल्पित क्या है? असंभव क्या है?

मुनि जीवन के प्रारंभिक वर्षों की घटना है। पूज्य गुरुदेव का सरदारशहर में प्रवास था। श्री समवसरण के पीछे खेजड़े का वृक्ष है। मैं प्रयोजनवश वहां खेजड़े के वृक्ष से कुछ दूर बैठा था। एक भाई आया, बोला–'महाराज! आप उस युवक को समझाएं।'

मैंने पूछा–'क्यों, क्या बात है?'

'मुनिश्री! वह मां का बड़ा अविनीत है, बहुत दुःख देता है।'

वह युवक आया, मैंने बातचीत की। मैंने पूछा–'मां के साथ ऐसा व्यवहार क्यों करते हो? जिस मां ने पाला-पोसा, बड़ा किया, इतना सब कुछ किया, उसके साथ ऐसा व्यवहार?'

उसने जो उत्तर दिया, वैसा उत्तर मैंने कभी नहीं सुना। वह तत्काल खेजड़े की ओर अंगुली कर बोला–'इस खेजड़े के वृक्ष को किसने पाला है? सब अपनी-अपनी नियति से बड़े होते हैं।'

मैंने कहा–'चिन्तन का यह कोण है तब बात करने की जरूरत ही नहीं है।'

कोई कोई ऐसा अविनीत होता होगा। अन्यथा मां के प्रति और मां की ममता के प्रति सब प्रणत होते हैं।

जम्बूकुमार का मन भी थोड़ा पसीज गया। जम्बूकुमार अपनी दुविधा प्रस्तुत करता, उससे पूर्व पिता सेठ ऋषभदत्त भी आ गये।

मां-पुत्र को गंभीर वार्तालाप में लीन देख कर बोले–'आज मां बेटा क्या वार्ता कर रहे हैं?'

मां ने कहा–'हम क्या कर रहे हैं, यह बात सुनोगे तो पता चलेगा।'

'बात क्या है?'

'जम्बूकुमार कह रहा है कि मैं साधु बनूंगा।'



एकदम ऋषभदत्त का सिर ठनक गया–क्या, साधु बनेगा? सारा वातावरण फिर मूर्च्छामय बन गया। ऋषभदत्त बोला–'जम्बू! साधुपन की बात कर रहे हो। क्या तुम्हें पता नहीं है कि हमारे सामने समस्या क्या है? तुम तो बाहर गए हुए थे, इधर-उधर घूम रहे थे और मैंने तुम्हारे लिए अनेक अनुबंध कर लिए। उनका क्या होगा? क्या सारे किये कराये पर पानी फेरना चाहता है? मेरी भी प्रतिष्ठा है, समाज में इज्जत है, शान है, मैं राजगृह का मुख्य श्रेष्ठी हूं। मैंने जो वचन दिए हैं, उनका क्या होगा?'

'पिताश्री! आपने क्या वचन दिया है?'

'जम्बू! मैंने तेरी सगाई कर दी है। एक जगह नहीं, आठ जगह विवाह का अनुबंध कर दिया है।'

प्राचीन युग में सगाई, संबंध होता तो लड़के, लड़कियों को पूछने की जरूरत नहीं होती थी। माता-पिता जैसा उपयुक्त समझते वैसा निर्णय कर लेते। आजकल युग बदल गया। आज तो लड़का लड़की–दोनों अपने अपने ढंग से सोचते हैं, अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेना पसंद करते हैं।

श्रेष्ठी ऋषभदत्त ने कहा–'मैंने आठ कन्याओं के साथ सगाई कर दी है। वे प्रतिष्ठित परिवारों की हैं। आज तू कहता है कि मैं साधु बनूंगा तो मेरा क्या होगा? जम्बू! क्या बिना सोचे समझे इस प्रकार की बात करना उपयुक्त है? अगर साधु ही बनना था तो पहले ही बता देता।

अब तो तुम्हें यह सोचना चाहिए–कैसे घर को संभालना है? कैसे दुकान को संभालना है? कैसे कामकाज करना है? इतना बड़ा व्यापार, व्यवसाय है, इसका कैसे संचालन करना है? जो संबंध स्थापित किये हैं उन संबंधों को कैसे निभाना है?'

'जात! सामाजिक जीवन संबंधों का जीवन होता है, संयोग का जीवन होता है। मुनि जीवन और गृहस्थ जीवन में अन्तर क्या है? क्या तुम्हें यह ज्ञात नहीं है? महावीर का स्पष्ट वचन है–सामाजिक जीवन संबंधों का जीवन है।'

सामाजिक जीवन के तीन लक्षण हैं–संबंध अथवा संयोग, घर और रसोई। यह है सामाजिक जीवन।

साधु का जीवन इससे सर्वथा उलटा होता है। उसके कोई घर नहीं होता। वह अनगार होता है। घर-घर जाता है, भिक्षा से जीवन यात्रा का निर्वाह करता है। कोई संबंध नहीं, रिश्ते नाते नहीं। संजोगा विप्पमुक्कस्स–वह संयोग से मुक्त होता है। संयमी साधक के ये तीन लक्षण हैं।'

'जम्बूकुमार! तुम संयोग स्थापित करो, घर को चलाओ, घर में रहो और रसोई का भोग करो। इस दीक्षा और वैराग्य की बात को छोड़ दो।'

'जम्बू! तुम इतने विनीत हो फिर भी मां की बात को नहीं मानते? यह अच्छा नहीं है। तुम्हें उत्तराध्ययन का पहला अध्ययन पढ़ लेना चाहिए, जिससे विनय का महत्त्व समझ में आए।'



पिता ने जोश, रोष और अधिकार की भाषा में जो कहा, उससे वातावरण में ऊष्मा और तनाव भर गया। जब भी मन के प्रतिकूल कोई बात होती है, मन की जो धारणा है या मोह है उस पर चोट होती है तो सचमुच वातावरण तनाव से भर जाता है।

सेठ ऋषभदत्त ने कहा–'जम्बू! अब बोलो क्या कहना चाहते हो। तुम्हारा क्या वक्तव्य है? क्या कथ्य है और क्या प्रतिपाद्य है? क्या माता-पिता की बात मानोगे? क्या विनीतता का परिचय दोगे?'

मां ने करुणार्द्र स्वर में कहा–'यदि तुम हमें माता-पिता मानते हो तो तुम्हें हमारी यह इच्छा पूरी करनी होगी।'

हिव कह्यो करे एक मांहरो रे हां, पछे लीजै संजम भार।
जो माता पिता कर लेखवो रे हां परणे आठोंइ नार। मेरे नंदना।

माता और पिता–दोनों का स्वर एक हो गया। जम्बूकुमार अकेला रह गया। वे दो मिल बावन वीर हो गये।

जम्बूकुमार ने अंतर्द्वन्द्व से निकलना चाहा तो उलझन सामने आ गई। उसने चिन्तन किया–अब कुछ सोचना तो

पड़ेगा। क्या करूं? इधर माता-पिता का आग्रह, उधर मेरे मन की चाह और संकल्प। मुझे मुनि बनना है, आत्मा का दर्शन करना है और मुझे केवली बनना है। मैं केवलज्ञान की आराधना करना चाहता हूं जो मुनि बने बिना संभव नहीं। घर-गृहस्थी के झंझट में इस चाह और संकल्प का सफल होना संभव नहीं है क्योंकि जहां घर है, संबंध है वहां आदमी मुक्त रह नहीं सकता। कभी इधर जाओ, कभी उधर जाओ। जब तक घर का संबंध है, आदमी संबंध मुक्त नहीं हो सकता। अनेक भाई-बहिन मुमुक्षु बन कर संस्था में प्रवेश कर लेते हैं पर घर का संबंध नहीं टूटता। अनेक बार चाहे-अनचाहे घूमना ही पड़ता है। एक भाई आया, बोला–'आचार्यश्री! मुमुक्षु बहन को लेने आए हैं?'

मैंने पूछा–'अभी क्यों? अभी तो अध्ययन चल रहा है।'

भाई बोला–'हमारे घर में शादी का बड़ा उत्सव है। सब परिवारजन आ रहे हैं इसलिए मुमुक्षु बहन को ले जाना चाहते हैं।'

संबंध टूटता नहीं है। ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक श्रावक, जिसे श्रमण तुल्य, साधु तुल्य कहा गया है, वह पूरा जीवन साधु का सा जीता है फिर भी वह गृहस्थ है, उसे गृहस्थ की सारी क्रिया लग रही है। उसका प्रियता का संबंध छूटा नहीं है। उसके सारा कारोबार चल रहा है।

पूछा गया–'ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक श्रावक, जो श्रमणभूत है, क्या उसके क्रिया लग रही है?'

कहा गया–'लग रही है।'

'क्यों लग रही है?'

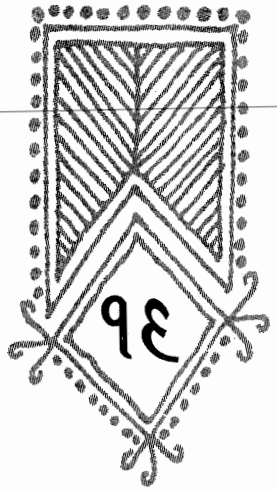
'**पेज्जबंधण अव्वोच्छिन्ने**–जो प्रेम का बंधन है, वह विच्छिन्न नहीं हुआ है।'



गृहस्थ गृहस्थ होता है और साधु साधु। साधु बने बिना मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान संभव नहीं है। पचीस बोल सीखने वाले पांच ज्ञान को जानते हैं–१. मतिज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्यवज्ञान, ५. केवलज्ञान। मति, श्रुत–दोनों प्राप्त हो जाते हैं। अवधिज्ञान भी किसी विशिष्ट साधनाशील श्रावक को हो जाता है। आनन्द श्रावक जब धर्म जागरण कर रहा था, धर्म प्रज्ञप्ति की साधना कर रहा था, उसे अवधिज्ञान पैदा हो गया पर गृहस्थ को मनःपर्यवज्ञान नहीं होता। मनःपर्यवज्ञान अप्रमत्त साधु के ही हो सकता है। साधु जीवन की अप्रमत्त भाव से साधना किये बिना और क्षपक श्रेणी में गये बिना केवलज्ञान भी नहीं होता इसलिए मुनि बनना तो अनिवार्य है।

जम्बूकुमार के मन में एक विचित्र अंतर्द्वन्द्व उभर आया–एक ओर मुनि बनना, केवली बनना मेरे मन की चाह है, संकल्प है। दूसरी ओर माता-पिता का विवाह के लिए इतना आग्रह। मैं क्या करूं? अब तो कोई बीच का रास्ता निकालना होगा। कहीं-कहीं समन्वय करना होता है, बीच का रास्ता निकालना होता है।

वह मध्यमार्ग क्या होगा? क्या वह समन्वय-सूत्र माता-पिता को संतुष्ट कर सकेगा? जम्बूकुमार के अभिनिष्क्रमण में साधक बनेगा?



अंतर्द्वन्द्व से बाहर आना बहुत बड़ी समस्या है। कुछ उलझनें ऐसी होती हैं कि इधर जाएं तो समस्या, उधर जाएं तो भी समस्या। बीच में कहां रहें? क्या करें? बड़ी कठिनाई होती है। आचारांग सूत्र का एक प्रसिद्ध सूत्र है–**'नो हव्वाए नो पाराए'**–न इधर का न उधर का। जम्बूकुमार भी अभी इसी अंतर्द्वन्द्व को भोग रहा है।

उसने सोचा–माता का इतना आग्रह। मां यह अंतिम बात कह रही है–अगर तू मेरे को मां मानता है तो मेरी बात मान। अब मैं कैसे कहूं कि मैं तुम्हें मां नहीं मानता। एक ओर मां की बात भी माननी है, दूसरी ओर मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत स्वीकार कर लिया है। मैं विवाह कैसे कर सकता हूं?

इस स्थिति में कोई निर्णय लेना बहुत जटिल काम है किंतु मनुष्य का मस्तिष्क बहुत शक्तिशाली है। जिसका मस्तिष्क पवित्र होता है, निर्मल होता है, जिसके मस्तिष्क में बुरे विचार और बुरे भाव नहीं होते, जिसका क्षायोपशमिक भाव प्रबल होता है वह सही निर्णय ले लेता है। वह गंभीर उलझन में से भी निकल जाता है।

साधारण व्यक्ति ऐसा कर नहीं पाता। जम्बूकुमार का मस्तिष्क भावी केवलज्ञानी का मस्तिष्क है, इसलिए उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। उसने चिंतन किया और एक निष्कर्ष पर पहुंच गया।

जम्बूकुमार बोला–'माता-पिता! मैं आपको व्यथित करना नहीं चाहता, दुःखी बनाना नहीं चाहता। मैं चाहता हूं–आप भी प्रसन्न रहें और मैं भी प्रसन्न रहूं। मैं दोनों की प्रसन्नता देखना चाहता हूं। मैं आपको दुःखी देखना नहीं चाहता।'

धार्मिक आदमी किसी का दुःख देखना नहीं चाहता। दूसरे को दुःखी वह बनाता है जिसमें धर्म का संस्कार नहीं है। जिसमें हिंसा का तीव्र भाव है, जिसमें क्रूरता है, जिसमें ईर्ष्या है, वह दूसरे को दुःखी बनाना चाहता है। जम्बूकुमार ने अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा–'मात! तात! मैं आपको दुःखी बनाना भी नहीं चाहता और अप्रसन्न रखना भी नहीं चाहता। किन्तु समस्या यह है–मैं जो चाहता हूं वह आप नहीं चाहते। आप जो चाहते हैं वह मैं कर नहीं सकता। यह सिद्धांत का प्रश्न है इसलिए बड़ी समस्या है। अब कैसे समझौता हो?'

'पुत्र! तुम बुद्धिमान हो, विनीत हो। यदि तुम चाहोगे तो अवश्य ही कोई मार्ग निकल आएगा।'

विचारमग्न जम्बूकुमार ने कहा–'माता-पिता! मैं आपको कष्ट देना नहीं चाहता किंतु मेरी एक विवशता है। उस विवशता को भी आप समझो।'

'जात! तुम्हारी क्या विवशता है?'

'मेरी विवशता यह है–मैं ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करके आया हूं और आप कहते हैं कि विवाह करना होगा। इन दोनों में मेल कैसे होगा? ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर लिया है तो विवाह नहीं और विवाह है तो फिर ब्रह्मचर्य व्रत नहीं। इन दोनों में समझौता कैसे होगा? कौन-सा बिन्दु है, जहां समझौता हो सके?'

माता-पिता दोनों एक क्षण के लिए अवाक् रह गये, कुछ बोल नहीं पाए। उनके सामने भी प्रश्न आ गया। वे श्रावक थे, यह जानते थे कि जब व्रत स्वीकार कर लिया है तो हमारा आग्रह कैसे चलेगा? वे निरुत्तर से हो गए किन्तु माता-पिता के मन का कष्ट कम नहीं हो रहा था। जम्बूकुमार ने मां की घनीभूत व्यथा को पढ़ा–मां को कितना कष्ट हो रहा है, पिता को कितना संताप हो रहा है। व्यथा का भाव छिपा नहीं रहता। चेहरा स्वयं बोलता है। आदमी को बोलने की जरूरत नहीं होती।



एक बार पूज्य गुरुदेव तुलसी ने जोधपुर में प्रवचन करते हुए कहा था–वक्ता को कोरा बोलना नहीं चाहिए और श्रोता को कोरा सुनना नहीं चाहिए। श्रोता को वक्ता और वक्ता को श्रोता भी बनना चाहिए। लोगों ने इस बात को विस्मय के साथ सुना–श्रोता बोलने लग जाये तो फिर वक्ता कैसे बोलेगा? आचार्यवर ने कहा–श्रोता वाणी से नहीं बोलता किंतु श्रोता का चेहरा बोलता है, आंखें बोलती हैं, हाव-भाव बोलता है, इशारा बोलता है। वक्ता उसे समझ लेता है। श्रोता सुनना पसन्द करते हैं या नहीं, यह पता चल जाता है। यदि श्रोता श्रवणोत्सुक नहीं है तो फिर वक्ता को मौन हो जाना चाहिए।

जम्बूकुमार ने माता-पिता की म्लान मुखाकृति को देखा, उनकी पीड़ा और भावना को पहचाना। अपने भीतर गहन चिंतन किया और एक समझौता कर लिया।

जम्बूकुमार ने सोचा–मैंने शीलव्रत को स्वीकार किया है किन्तु विवाह करने का त्याग नहीं किया है। मैं आठों कन्याओं से शादी करूं, उन्हें भी संयम के लिए समझाऊं और फिर साधुपन को स्वीकार करूं। इससे माता-पिता भी प्रसन्न हो जाएंगे और मेरा संकल्प भी बाधित नहीं होगा।

म्हे आदरियो व्रत शील रे, ते तो भांजू नहीं।
पिण परणवा रो अगार छे ए।



तो परण आठों इ नार रे यांनें राजी करे।
साधुपणों लेसूं पछे ए।।

जम्बूकुमार बोला–'मां! तुम्हारा इतना आग्रह है तो मैं तुम्हारी बात नहीं टालूंगा। मैं विवाह कर लूंगा किंतु मेरी शर्त यह है कि मैं ब्रह्मचारी रहूंगा, मुनि बनूंगा। इस शर्त पर अगर विवाह होता हो तो तुम्हारी बात को मानने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'

इस प्रस्ताव से मां के मन में थोड़ा हर्ष हुआ। दुःख का जो ज्वार था वह थोड़ा कम हो गया। समुद्र में ज्वार भाटा आता रहता है। ज्वार आता है तो पानी एक साथ बढ़ता है, भाटा आता है तो पानी नीचे चला जाता है। मुंबई में महासागर के तट पर हमने ज्वार-भाटा देखा है। अमावस्या, पूर्णिमा आदि निश्चित दिनों में भयंकर ज्वार आता है और फिर भाटा आता है। जिन लोगों ने समुद्र को देखा है, वे यह जानते हैं कि ज्वार-भाटा का दृश्य कैसा बनता है। जब ज्वार आता है, पानी का पूर वेग से तट को छूने लगता है, तट पर प्रहार करता है तब ऐसा लगता है–जैसे यह तट के शिखर को छूता हुआ मुख्य मार्ग पर आ जाएगा। भयंकर समुद्री ज्वार और तूफान ने अनेक बार विनाशलीलाएं रची हैं। भाटा आता है, पानी का उफान कम होता है, सब कुछ सामान्य हो जाता है। हमने समुद्र के शांत और तरंगित, दोनों रूपों को देखा है। एक दिन मुंबई में हम समुद्र के ज्वार में फंस गये थे। सूखी भूमि पर खड़े थे। अचानक ज्वार आया। चारों ओर पानी से घिर गए। कुछ क्षण खड़े रहे। ज्वार कम हुआ, तब तट पर आ पाए।

मां के मन में एक बार दुःख का ज्वार आया, फिर भाटा आ गया। दुःख थोड़ा हलका हुआ। मां के चेहरे पर थोड़ी सी मुस्कान छाई, खुशी की झलक आई। मां ने सोचा–हमारा काम हो गया। अब कोई चिंता नहीं है। एक बार विवाह कर लेगा तो राग-रंग में उलझ जाएगा। यह सब कहने की बात है–ब्रह्मचारी रहूंगा, मुनि बनूंगा। विवाह कर लेगा तो अपने आप गृहस्थी बन जायेगा।

मां ने कहा–'बेटा! चिरायु भव–चिरंजीव रहो। तुमने बहुत अच्छा निर्णय किया है। अब हम विवाह की तैयारी करते हैं।'

'मां! विवाह में मेरी कोई रुचि नहीं है। मैं केवल तेरी प्रसन्नता के लिए विवाह कर रहा हूं किन्तु विवाह के पश्चात् मैं एक दिन भी नहीं रहूंगा।'

'जात! तुम हमारी इच्छा का सम्मान कर विवाह कर रहे हो। हम भी तुम्हारे संकल्प का सम्मान करेंगे।' यह कहते हुए मां ने वार्तालाप को विराम दे दिया।

मां की वार्ता समाप्त हो गई किन्तु जम्बूकुमार की बात समाप्त नहीं हुई। जम्बूकुमार ने चिंतन किया–मैंने एक दुधारी तलवार पर चलना शुरू कर दिया है। इधर-उधर दोनों तरफ धार है। मेरा संकल्प दृढ़ है कि मैं ब्रह्मचारी रहूंगा, मुनि बनूंगा। इस संकल्प में कोई अंतर नहीं आएगा। दूसरी ओर मैंने स्वीकार कर लिया है कि मैं विवाह करूंगा।

विवाह करूं और फिर ब्रह्मचारी रहूं–यह वाग्दत्ता कन्याओं के साथ धोखा होगा। मैं धोखा करना नहीं चाहता।

जम्बूकुमार करे विचार रे म्हें शीलव्रत आदर्‌यो।
ते खबर नहीं म्हारे सासरे ए।।
ओ मोटो दगो साख्यात रे, म्हें करूं छूं जाणतो।
ते श्रेय नहीं छे मो भणी ए।।

एक ओर विवाह का उपक्रम, दूसरी ओर दीक्षा का संकल्प। कन्याओं के माता-पिता यह सोच रहे हैं कि हमारी कन्या को अच्छा वर और अच्छा घर मिल रहा है। वे सुखी रहेंगी। कन्याएं यह सोच रही हैं–ऐसा पति सौभाग्य से मिलता है। हमारा गृहस्थ जीवन बहुत सुखदायी होगा। संसार का सुख सतत मिलता रहेगा। मैं प्रथम मिलन के क्षण में ही दीक्षा का संकल्प बताऊं। विवाह के पहले दिन, सुहागरात में ही उनके सपनों का संसार उजड़ जाएगा। यह अच्छा नहीं है। यह साक्षात् दगा है। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। यह धोखा देना मेरे लिए उचित नहीं है।

आचार्य सोमप्रभ ने लिखा–

मुग्धप्रतारणपरायणमुज्जिहीते, यत्पाटवं कपटलंपटचित्तवृत्तेः।
जीर्यत्युपप्लवमश्यामिहाप्यकृत्वा, नापथ्यभोजनमिवामयमायतौ तद्।।

व्यक्ति धोखा करता है, वह समझता है कि मैंने बहुत अच्छा किया। मैंने उसे ठग लिया। किसी को कोई पता नहीं चला। घर में मिष्टान्न आया। व्यक्ति ने अकेले खा लिया। व्यक्ति सोचता है–मैंने इस प्रकार खाया कि किसी को पता नहीं चला। वह यह नहीं सोचता कि और किसी को पता नहीं है पर तुम्हारे पेट और तुम्हारी आंतों को तो पता है, तुम्हारे पाचनतंत्र को तो पता है। तुमने जो अपथ्य भोजन खाया है, उसके परिणाम को कैसे रोकोगे? वह बीमारी करेगा। आवेशवश आदमी अकृत्य कर लेता है, आवेश और मानसिक असंतुलन की स्थिति में अनेक मनुष्य नींद की गोलियां ले लेते हैं, और भी कुछ आत्मघाती कदम उठा लेते हैं। क्यों किया? क्या किया? यह उस समय पता न चले किन्तु उसके परिणाम से वह कैसे बच सकता है? उस प्रवृत्ति का पता दूसरों को न चले पर परिणाम का पता दूसरों को भी हो जाता है।



जम्बूकुमार ने सोचा–मैं धोखा करना नहीं चाहता। मैं बात को साफ नहीं करूं तो यह धोखा होगा। वह अपने कक्ष में गया, एकांत में चिन्तन किया। वह एक निर्णय पर पहुंच गया। उसने संदेशवाहक को बुलाया, बुलाकर कहा–तुम्हें एक काम करना है।

संदेशवाहक ने विनत स्वर में कहा–'जैसी आपकी आज्ञा।'

'आज्ञा यह है–पिताश्री ने जिन आठ परिवारों में मेरा संबंध किया है, तुम उनके प्रासाद में जाओ। वहां मेरा एक संदेश तुम्हें देना है।'

'हां, क्या संदेश है?'

'मैं तुम्हें अभी भोज पत्र पर लिखकर देता हूं।'

जम्बूकुमार ने संदेश-पत्र लिखा–'आदरणीय श्रेष्ठिवर! मैं मुनि बनना चाहता हूं। एक ओर मैंने ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर लिया है, दूसरी ओर माता-पिता ने मेरा संबंध आपकी कन्या के साथ निश्चित कर दिया



है। माता-पिता का आग्रह है कि मैं एक बार विवाह करूं। मैं यह नहीं चाहता था फिर भी माता-पिता की अंतिम इच्छा को पूरा करने के लिए मैंने उनके आग्रह को स्वीकार किया है। विवाह के बाद मैं दीक्षा लूंगा–यह मेरा संकल्प है। मैं विवाह से पूर्व अपने संकल्प की जानकारी आपको दे रहा हूं। इस अवस्था में आप विवाह करना चाहें तो आपकी इच्छा है और न करना चाहें तो आप इस संबंध को तोड़ने के लिए स्वतंत्र हैं।'

जम्बूकुमार ने इस संदेश की आठ प्रतिलिपि की। प्रत्येक संदेश को एक मंजूषा में बंद किया और आठों संदेश संदेशवाहक को सौंप दिए।

पुराने जमाने में संबंध तोड़ना बड़ी समस्या थी। आज तो संबंध का होना और टूटना एक सामान्य घटना जैसा हो गया है पर उस युग में एक बार संबंध होने के बाद सहसा तोड़ा नहीं जाता था। उस युग में संबंधों का जो मूल्य था, वर्तमान युग में वह मूल्य बदल गया।

जम्बूकुमार के मन में एक भार था कि कहीं भी माया न हो, छल-कपट न हो, दूसरे के साथ धोखा न हो जाए। यह चिन्तन बहुत बड़ी बात है। धोखा होता है तो कभी-कभी ऐसी चोट लगती है कि मरणान्तक कष्ट पहुंचता है। बहुत लोग कहते हैं–धन चला गया। कोई खास चिंता की बात नहीं है पर उसने मेरे साथ धोखा कर लिया, इसका बड़ा कष्ट है।

जम्बूकुमार के मन का भार हलका हो गया। उसने सोचा–अब जो होना होगा, वह होगा पर मैं किसी को धोखा नहीं दे रहा हूं।

संदेशवाहक प्रथम श्रेणी के पास पहुंचा, नमस्कार किया, कहा–'मैं ऋषभदत्त श्रेष्ठी के प्रासाद से आया हूं।'

श्रेष्ठी ने सम्मान देते हुए पूछा–'संदेशवाहक! क्यों आये हो।'

उसने कहा–'संदेश लेकर आया हूं।'

'किसका संदेश?'

'जम्बूकुमार का।'

'ओह! कंवर साहब ने संदेश भेजा है।'

'हां!'

'कहां है संदेश?'

संदेशवाहक ने भोजपत्र श्रेष्ठीवर के हाथ में रख दिया।

श्रेष्ठीवर ने संदेश पत्र को पढ़ा। पढ़ते ही व्याकुल हो गया। निराश स्वर में पूछा–'क्या बात है?'



'श्रेष्ठिवर! जो है, वह इस संदेश में है। आप इसे पढ़ लें।'

सेठ ने सोचा–ऋषभदत्त श्रेष्ठी जैसा घर मिला और जम्बूकुमार जैसा योग्य वर मिला, दामाद मिला। अब वह मुनि बनने की बात कर रहा है, घर को छोड़ने की बात कर रहा है। एक गहरी उलझन पैदा हो गई।

जहां संयोग है, संबंध है, संसार है वहां इस प्रकार की उलझनें आती रहती हैं। एक चाहता है, दूसरा नहीं चाहता। कहीं कन्या चाहती है, लड़का नहीं चाहता। कहीं लड़का पसंद करता है, कन्या को वर उपयुक्त नहीं लगता। विवाह के बाद भी अनेक समस्याएं आती हैं। ये सारी संबंधों की समस्याएं हैं। अगर संबंध न हो तो उलझनें भी शायद न हो। जहां कोई संबंध नहीं वहां कोई चिंता नहीं रहती। किंतु जहां संबंध है वहां अनेक उलझनें पैदा होती हैं इसीलिए भगवान महावीर ने मुनि के लिए कहा–मुनि संबंधातीत रहे। वह कहीं ममत्व न करे।



गामे कुले वा नगरे वा देसे।
ममत्तभावं न कहिंचि कुज्जा।।

मुनि किसी पर ममत्व भाव न करे। न ठिकाने पर, न गांव पर, न देश पर–किसी पर ममत्व न करे। वह 'मेरा' किसी को न माने। जहां मेरा माना वहां समस्या पैदा हो गई। 'मेरा' न माने तो कोई समस्या नहीं है। जब यह मानते हैं 'शरीर मेरा' है तो शरीर भी बहुत सताने लग जाता है और दुःख भी बहुत होता है। यह मानें–शरीर मेरा नहीं है तो कठिनाई आती है पर दुःख नहीं होता। आचार्य विनोबा भावे ने एक जगह लिखा–जब मैं बच्चा था, सिरदर्द बहुत होता था। जब सिरदर्द बहुत होता तब मैं एकांत में अकेला जाकर बैठ जाता और सिर को पकड़ लेता। फिर गर्दन को, सिर को हिलाता और कहता–'सिर मेरा नहीं है, सिर मेरा नहीं है।' मैं यह रट लगाता, दस-बीस मिनट में सिरदर्द गायब हो जाता। किसी को मेरा मानो तो दर्द है, मेरा नहीं मानो तो किसका दर्द होगा? वह दर्द फिर किसी दूसरे का है। जहां मेरापन नहीं है वहां दर्द नहीं होता। जहां मेरापन जुड़ा, दर्द हो गया।

आदमी घड़ा लेकर समुद्र के पास गया। सोचा, पहले थोड़ा तैर लूं। वह तैराक था, समुद्र में तैरने लगा। बहुत गहरे में चला गया। तैर कर वापस आया। फिर घड़ा भरा, सिर पर रखा तो भार लगने लगा।

उसने सोचा–यह क्या बात है? मैंने समुद्र में डुबकी लगाई, हजारों लाखों टन पानी सिर पर आ गया फिर भी भार बिल्कुल नहीं लगा। अभी पांच-दस लीटर पानी उठाया तो सिर पर भार लगता है। बात समझ नहीं सका, उलझ गया। कोई समझदार आदमी मिला, पूछा–'भैया! बात क्या है? समुद्र में गया, भार नहीं लगा। सिर पर घड़ा उठाया और भार लगा!'

उसने कहा–'बहुत सीधी बात है। समुद्र तेरा नहीं था, घड़ा तेरा है। समुद्र के साथ मेरापन नहीं था, इसके साथ मेरापन जुड़ गया। जहां मेरापन जुड़ता है वहां भार हो जाता है। जहां मेरापन नहीं है वहां कोई भार नहीं होता।'

यह संबंध की समस्या मेरेपन की समस्या है। जहां मेरापन है, वहां संबंध में उलझन आती है तो बड़ा कष्ट होता है।

जम्बूकुमार से संबंध का पतला-सा धागा जुड़ा और एक अनुबंध हो गया। अनुबंध से मुक्ति की बात समस्या बन गई। श्रेष्ठी ने सोचा–सगाई हुई है, विवाह तो हुआ ही नहीं है। पहले ही उलझन पैदा हो गई। अब क्या करूं? मन क्षुब्ध हो गया। चिन्तित और व्याकुल हो गया। एक गहरी समस्या का अनुभव करने लगा। दुकान में मन नहीं लगा। दुकान को मंगल किया। घर पर आया। तत्काल पत्नी और कन्या को बुलाया।

पत्नी ने पूछा–'प्रियतम! आज आप उदास क्यों हैं? घंटा भर पहले दुकान गये तब बड़े प्रसन्न थे। अचानक क्या हुआ? उदास क्यों हो गये?'

'प्रिये! उदास कोई अकारण नहीं होता। कभी-कभी अकारण भी उदासी आती है किंतु यह सकारण उदासी आई है।'

पुत्री ने पूछा–'पिताजी! कारण क्या है? हमारे सामने कोई समस्या नहीं है। घर में कोई कमी नहीं है, प्रचुर धन है, सुख है, सब कुछ है। फिर क्या कारण हो सकता है? क्या कोई झगड़ा हो गया है किसी से?'

'नहीं, झगड़ा नहीं हुआ?'

'किसी ने कुछ कर दिया है?'

'नहीं।'

'पिताश्री! आज की दुनिया में ईर्ष्यालु लोग बहुत हैं। बड़े लोगों के साथ बड़ी ईर्ष्या होती है। क्या कोई ईर्ष्यालु मिल गया, जिससे कोई नई समस्या पैदा हो गई है?'

मनुष्य में ईर्ष्या होती है; ईर्ष्या बड़ी समस्या भी पैदा करती है।

कोयल जा रही थी। कोयल के गले में हार था। पेड़ पर कौआ बैठा था। कोयल के गले में हार देख कर कौआ स्तब्ध रह गया। सोचा–यह क्या? कहां से लाई है यह हार?

कौए ने पूछा–'बहन! यह हार कहां से मिला?'

देखा कोकिल के गलहार, प्रस्फुट होता था आभार।
जी खोल कौए ने पूछा, बहिन कहां पाया उपहार।

कोयल बोली–'भैया! मैं स्वर्गलोक में गई थी। इन्द्रसभा की अतिथि बनी थी। वहां मैंने संगीत सुनाया। इन्द्र बड़ा खुश हुआ। खुश होकर उसने उपहार में मुझे यह हार दिया है।'

अतिथि बनी थी इन्द्र सभा की, सुना सभी ने मेरा गान।
उससे खुश हो कर सुरपति ने, हार किया है मुझे प्रदान।

यह बात सुनते ही मन में ईर्ष्या की अग्नि भड़क उठी। उसने सोचा–अरे! कोयल हार ले आई और मैं वंचित रह गया। अब मैं भी जाता हूं। मैं एक नहीं, दो हार लाऊंगा। वह कब ठहरने वाला था। तत्काल स्वर्ग में चला गया। इन्द्रसभा में पहुंचा, बोला–'मैं भी गायक हूं, गाना चाहता हूं।'

कब ठहरने वाला था वह, पहुंच गया सहसा सुरलोक।
अपना हाल सुनाकर गायन, शुरू किया खिल खिल अस्तोक।।

इन्द्र ने कहा–'गाओ, तुम भी गाओ।'

कौए का गान शुरू हुआ। जैसे ही कौए ने क्रौं-क्रौं करना शुरू किया, देवताओं के कान फटने लग गये। कौए की कर्कश आवाज से सब क्षुब्ध हो गए। वे कोमल कान मधुर गीत सुनने के रसिक थे। जहां मंद मधुर स्वर-लहरी चलती रहती है, वहां पंचम-सप्तम स्वर आ गया।

सात स्वर होते हैं–१. षड्ज, २. ऋषभ, ३. गांधार, ४. मध्यम, ५. पंचम, ६. धैवत, ७. निषध।

कौआ पंचम-सप्तम सुर में गाने लगा। चारों ओर से मौन-मौन की आवाजें आईं।

फटने लगे कान सुर गण के, मौन मौन की उठी आवाज।।

कौआ बोला–'इन्द्र महाराज! मेरी एक भूल हो गई। मैं अकेला आ गया। मैं साज-बाज लेकर नहीं आया। आप मुझे आज्ञा दें, मैं अभी दो मिनट में अपना पूरा साज-बाज लेकर आता हूं।'

कृपया दो आज्ञा दो क्षण में, लेकर आऊं पूरा साज।।

इन्द्र ने पूछा–'क्या है तुम्हारा साज-बाज?'

'इंद्र महाराज! मेरा साज-बाज क्या पूछते हैं? मैं एक गधे को लेकर आऊंगा, जिसकी प्रखर ध्वनि है। एक ऊंट को लाऊंगा, उसका घोष निराला है। कुत्ते की तारीफ तो मैं कर नहीं सकता। उसका स्वर मतवाला है।'

खर प्रखर ध्वनि है जिसकी, ऊंट घोष निराला है।
कुत्ते की तारीफ करूं क्या, उसका स्वर मतवाला है।।

इन्द्र ने हाथ जोड़ते हुए कहा–'बस रहने दो। पधारो आप। एक तुम्हारे गायन से ही हमारा देव समाज क्षुब्ध हो गया है। सब कांप उठे हैं। इन सबको लाओगे तो पता नहीं स्वर्ग का क्या हाल होगा? धन्य हो मां वसुन्धरा! धन्यवाद है तुम्हें कि तुम इन सबकी आवाजों को सहन कर रही हो।'

हाथ जोड़ बोला सुरनायक, रहने दो सब मित्र पियारे।
फट गये हैं कान हमारे, कांप उठे हैं स्वर्ग किनारे।।
एक तुम्हारे गायन से ही, क्षुब्ध हमारा देव समाज।
धन्य हो मां वसुंधरा तुम, सहती हो सबकी आवाज।।



ईर्ष्या का चक्र बड़ा भयंकर होता है। मां-पुत्री ने पूछा–'क्या किसी में ईर्ष्या जाग उठी है? क्या किसी ने आपको सताया है, जिससे इस प्रकार उदास हो गये हैं? इस दुनिया में बिना मतलब लोग ईर्ष्या करते हैं, झगड़ा-कलह करते हैं तो आपके साथ कुछ न कुछ ऐसा हुआ है, अन्यथा आपका चेहरा इतना मुरझाता नहीं। आप इतने चिन्तातुर नहीं बनते। आप बतायें कि वास्तव में समस्या क्या है?'

सेठ बोला–'संशय मत करो। किसी पर दोषारोपण मत करो। न किसी ने सताया है, न कोई मुझे ईर्ष्यालु मिला है, न कोई झगड़ालू मिला है। सचाई कुछ दूसरी ही है।'

'तो क्या हुआ है पिताश्री!'

सेठ ने तत्काल जेब में हाथ डाला, भोजपत्र निकाला, सामने रखा और कहा–'लो पढ़ो, क्या लिखा है?'

पत्नी और पुत्री ने पत्र को पढ़ा। सब पर एकदम जैसे दुःख का पहाड़ गिर पड़ा।

सेठ बोला–'तुमने मेरी चिंता का कारण जान लिया।'

पुत्री की ओर उन्मुख होते हुए पूछा–'बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है? स्थिति भयंकर बन गई है। तुम क्या चाहती हो?'

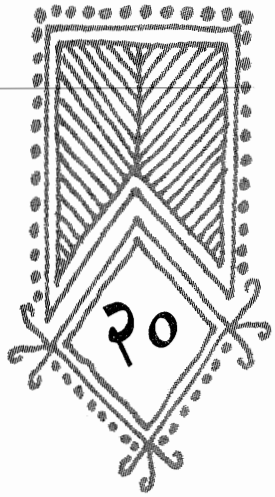
पुत्री का गला अवरुद्ध हो गया। उसकी आंखों के आगे अंधियारा-सा छा गया। आंखों से अश्रु की धारा बह चली। वह बेसुध-सी धरती पर गिर पड़ी।....

संदेशवाहक क्रमशः प्रत्येक श्रेष्ठी की पेढी पर पहुंचा। उन्हें जम्बूकुमार का संदेश सौंपा। सभी श्रेष्ठी संदेश पढ़कर चिन्ताकुल बन गए। वे तत्काल आपण को बंद कर प्रासाद में आए। अपनी पत्नी और पुत्री को सारी स्थिति की अवगति देते हुए संदेश-पत्र दिखाया। श्रेष्ठी परिवारों में उत्साह और उल्लास का स्थान मायूसी और निराशा ने ले लिया। पूरे परिवार में तनाव, चिन्ता और आर्तध्यान का वातावरण बन गया। कन्याएं अन्यमनस्क और किंकर्तव्यविमूढ़ बन गईं। उनके चेहरों पर विषाद और चिन्ता की लकीरें खिंच गईं।....

हम क्या करें? अब हमारा क्या होगा?

क्या हमारे सपनों का महल ढह जाएगा?

यह प्रश्न आठों कन्याओं के हृदय को कचोट रहा था किन्तु इसका समाधान क्या है और वह कहां ? आज यह कोई नहीं जानता था।



प्राकृत साहित्य की बहुत सुन्दर कथा है। समुद्र के तट पर एक खोपड़ी पड़ी थी। एक यात्री जा रहा था। उसने खोपड़ी को देखा। खोपड़ी बड़ी विचित्र ढंग की थी। उस पर लिखा हुआ था–

जम्मो कलिंगदेसे, अंगदेसे य मज्झिमे।
मरणं समुद्दतीरे, अज्जो किं किं भविस्सइ।।

कलिंग देश में जन्म हुआ। अंग देश में व्यापार किया। समुद्र के तट पर मरण हुआ। पता नहीं अब क्या-क्या होगा?



कलिंग में जन्म, अंगदेश में व्यवसाय और समुद्र तट पर मरण–इतिहास की तीन घटनाएं सामने आ गईं। चौथी पंक्ति में लिखा था–**अज्जो किं किं भविस्सई**–अब और क्या-क्या होगा? उसने सोचा–आदमी मर गया, खोपड़ी रह गई, अब मरने के बाद क्या होगा? मन में एक कुतूहल पैदा हो गया–यह चौथी पंक्ति क्यों लिखी? उसने खोपड़ी को कपड़े में लपेट लिया, पेटी में बंद कर ले आया। वह सुबह-सुबह रोज खोपड़ी को देखता, इस पंक्ति को पढ़ता–**अज्जो किं किं भविस्सई**–अब और क्या होगा?

उसके इस क्रम ने पत्नी के मन में संदेह का बीज बो दिया। उसने सोचा–पति प्रदेश से लौटा है। वहां किसी के साथ प्रेम संबंध हुआ और वह मर गई। यह उसकी खोपड़ी लाया है और रोज इसको देखता है। इस चिन्तन से संदेह गहरा बन गया।

इस दुनिया में कलह, संघर्ष और अनबन का बहुत बड़ा कारण है–संदेह। मन में एक कल्पना उठती है, एक संदेह होता है और दृष्टिकोण बदल जाता है। पत्नी के मन में संदेह हो गया, उसने सोचा–अब मैं प्रिय नहीं रही, यह प्रिय हो गई। मुझसे तो बात भी नहीं करता और सुबह-सुबह इसका दर्शन करता है।

एक दिन पति बाहर गया हुआ था। उसने खोपड़ी निकाली, उसको पीसा। उसका चूर्ण बना दिया। सायं कढ़ी बनाई। कढ़ी में चने का आटा डालते हैं। उसने चने के स्थान पर खोपड़ी का चूरा डाल दिया,

कढ़ी बना ली। शाम को पति आया, भोजन करने बैठा। पत्नी ने कढ़ी परोसी। पति ने दो-चार कौर लिए। पति बोला–'क्या बात है? आज कढ़ी में स्वाद बहुत है। बहुत स्वादिष्ट कढ़ी बनाई है।'

उसने व्यंग्यात्मक लहजे में कहा–'हां, आज कढ़ी बहुत स्वादिष्ट लगेगी।'

पति प्रशंसा करता गया और पत्नी व्यंग्य में हंसती गई। दूसरा दिन, सुबह जगा। पेटी को खोला, देखा–पेटी खाली है।

उसने पूछा–'खोपड़ी कहां गई?'

पत्नी–'कल तुमने कढ़ी खाई थी। वह उसी खोपड़ी के चूर्ण से बनी थी।'

पति सिर पर हाथ रख कर बोल उठा–

जम्मो कलिंगदेसे, अंगदेसे य मज्झिमे।
मरणं समुद्रतीरे, अज्जो किं किं भविस्सइ।।

पता नहीं चलता कि कब क्या हो जाता है। आठ कन्याओं ने उत्तम कुल में जन्म लिया, उत्तम वर के साथ विवाह के लिए अनुबंध हुआ। विवाह होने से पूर्व ही संन्यास की बात सामने आ गई। एक प्रश्न खड़ा हो गया–'अब क्या होगा?'

पिता ने पुत्री को वस्तुस्थिति की अवगति दी–'समुद्रश्री! जम्बूकुमार विवाह कर सकता है, किंतु उसकी शर्त यह है–विवाह के बाद घर में नहीं रहेगा, साधु बन जायेगा। अब बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है?'

समुद्रश्री गहरा निःश्वास छोड़ते हुए बोली–'पिताश्री! आप क्या कहते हैं? आपका परामर्श क्या है?'

'पुत्री! यह तुम्हारे जीवन का प्रश्न है इसलिए ज्यादा तो तुम्हें सोचना है पर यह तथ्य तुम्हारे सामने रहे–अभी तक विवाह नहीं हुआ है, केवल संबंध हुआ है। अगर जम्बूकुमार घर में नहीं रहता है तो हम इस संबंध को तोड़ सकते हैं। कहीं अन्यत्र विवाह का संबंध स्थापित हो सकता है।'

'पिताश्री! वचन का भी कुछ मूल्य होता है। जब विवाह का वचन दे दिया और एक निश्चय कर लिया तो क्या उसे बदलना अच्छा है?'

'पिताश्री! यह दृढ़ निश्चय है कि अगर विवाह करूंगी तो जम्बूकुमार के साथ ही होगा, और किसी के साथ नहीं।'

म्हें परणा तो जम्बूकुमार रे, नहीं परणा अवर नै।
ओछा जीतब कारणे।।

'पिताश्री! किसी आदमी ने हाथी पर चढ़ने का संकल्प ले लिया। उसके सामने गधे को लाकर खड़ा करें और कहें–लो सवारी करो। क्या वह कभी पसन्द करेगा?'

'पिताश्री! जम्बूकुमार जैसा यशस्वी वर मिला। उसके साथ संबंध स्थापित कर लिया। मन में भी निश्चय कर लिया। यह निश्चय अटल है कि अगर विवाह होगा तो जम्बूकुमार के साथ, अन्यथा नहीं होगा। इस निश्चय में कोई फर्क नहीं पड़ेगा।'

पिता–'समुद्रश्री! बात तो ठीक है पर तुमने यह सोचा या नहीं कि भविष्य क्या होगा?'

समुद्रश्री–'पिताश्री! परिणाम जो होना है, वह होगा।'

भवितव्यं भवत्येव नालिकेरफलाम्बुवत्।
गच्छत्येव हि गंतव्यं, गजभुक्तकपित्थवत्।।

'पिताश्री! आप जानते हैं, नारियल के पेड़ में पानी कहां सींचा जाता है?'

'जड़ में।'

'वह निकलता कहां है?'

'फल में।'

पानी सींचते हैं जड़ में और पानी निकलता है नारियल के फल में। जड़ में सींचो तो पानी ऊपर तक पहुंच जायेगा इसलिए जो जाना है वह चला जायेगा।

हाथी कैथ (कपित्थ) का फल खाता है। कपित्थ का फल खट्टा होता है, लोग उसकी चटनी बनाते हैं। बिहार में यह फल काफी होता है। हाथी उसे पूरा का पूरा निगल जाता है। वह उसके कोई काम नहीं आता। उसी प्रकार बाहर आ जाता है।

समुद्रश्री ने अपनी भावना को अभिव्यक्ति दी–'पिताश्री! आप चिंता न करें। जो होना है वह होगा। किन्तु.....'

पिता–'समुद्रश्री! क्या कोई मन में संशय है?'

'नहीं पिताश्री! मैं चाहती हूं–हम एक बार आठों बहनें मिल लें तो अधिक उपयुक्त रहेगा।'



श्रेष्ठी को यह प्रस्ताव समीचीन लगा। उसने तत्काल संदेशवाहक को बुलाकर संदेश दिया। संदेशवाहक द्वारा आठों घरों में यह संवाद पहुंच गया। सर्वत्र इसी समस्या पर चिन्तन चल रहा था–अब क्या करना चाहिए, माता-पिता, कन्या सब यही सोच रहे थे। कभी-कभी टैलीपेथी हो जाती है। एक की बात दूसरे तक पहुंच जाती है। सबके मन में परस्पर मिलने की इच्छा प्रबल बनी हुई थी। सब यही सोच रहे थे–हम सब परस्पर मिलकर कोई निर्णय करेंगी। उस विचार के प्रकंपन सबके हृदय में संक्रांत हो गए। व्यक्ति के चिन्तन के परमाणु आकाश में फैलते हैं, संबद्ध व्यक्ति तक पहुंचते हैं, उसके दिमाग से टकराते हैं। आज का युग होता तो फोन पर तत्काल बात कर लेते अथवा फैक्स भेज देते। उस समय न फैक्स था और न फोन की सुविधा। बिना फोन किए भी सबके विचार एक समान हो गये।

संदेशवाहक के माध्यम से स्थान का निर्धारण हो गया। सातों कन्याएं ज्येष्ठ श्रेष्ठी के प्रासाद में पहुंच गईं।

आठ कन्याओं में ज्येष्ठ थी समुद्रश्री। उसने सबका स्वागत किया। आठों बहिनें अंतरंग कक्ष में चिन्तन के लिए प्रविष्ट हुईं। पर्यंक पर आसीन हुईं। समुद्रश्री ने वार्तालाप प्रारंभ करते हुए कहा–'बहनो! हमारे सामने एक बड़ी समस्या आ गई है।'

'हां।'

'अब हमें क्या करना चाहिए? जम्बूकुमार का निर्णय हमारे सामने स्पष्ट है। वह विवाह करने के पश्चात् घर में नहीं रहेगा।'

'हां।'

'हम अभी तो स्वतंत्र हैं। हमारे माता-पिता कह रहे हैं कि तुम चाहो तो जम्बूकुमार के साथ संबंध विच्छेद कर सकती हो। यह कोई सामाजिक अपराध नहीं है, सामाजिक दोष भी नहीं है। माता-पिता भी सहमत हैं। सब कुछ निर्भर है हमारे चिन्तन पर।'

कनकसेना–'बहिन! आपकी क्या इच्छा है?'

'जो सबकी इच्छा है, वही मेरी इच्छा है।'

पद्मश्री बोली–'बहन! जो निश्चय कर लिया, उस निश्चय से मुकरना नहीं है। हम यह मान लें कि हमारे भाग्य में ऐसा ही लिखा है।'

उदयति यदि भानु पश्चिमायां दिशायां।
तदपि न चलतीयं भाविनी कर्मरेखा।।

'बहिन! सूर्य कहां उगता है?'

'पूर्व में।'

'अगर सूरज पश्चिम में उग जाए तो भी यह भाविनी कर्म-रेखा नहीं टलेगी, नहीं टलेगी। हमें भविष्य पर और भवितव्यता पर छोड़ देना चाहिए। यह मानना चाहिए कि हमारा योग ऐसा है।'

पद्मसेना ने कहा–'बहनो! मान लो–हम किसी दूसरे से शादी करें और हो सकता है–कल ही विधवा हो जाएं। हमने तो ऐसे प्रसंग देखे हैं–आज शादी हुई और शाम तक विधवा हो जाती है, कोई दुर्घटना होती है, पति चला जाता है अथवा पत्नी चली जाती है। कम से कम हमारा पति कहीं जाएगा तो नहीं?'

कनकश्री ने प्रश्न उपस्थित किया–'बहनो! हमने जो निर्णय कर लिया है, उस पर अटल रहना संभव है?'

'हां, पर हमारा चिंतन एक होना चाहिए।'

जयंतसेना ने इस मत का समर्थन किया–'हमारे चिन्तन में एकरूपता जरूरी है।'

'यह तो अच्छा नहीं लगता कि कुछ शादी कर लें और कुछ मुकर जाएं। हम पहला निर्णय यह लें–जो कदम उठाएं, वह एक ही हो, अलग-अलग नहीं। हमारी एकता मजबूत होनी चाहिए।'

सब एक स्वर में बोलीं–'हमारा अटल निश्चय है कि विवाह करना है तो जम्बूकुमार के साथ, अन्यथा हम विवाह नहीं करेंगी।'

समुद्रश्री बोली–'बहनो! अकेली स्त्री भी पुरुष को विचलित करने में समर्थ होती है। हम आठ हैं और आठों देवांगना तुल्य हैं। जब हमारा संयोग होगा, उसके लिए शील पालना दुष्कर हो जाएगा।'

कनकसेना ने समर्थन किया–'ऐसा लगता है उसके परिणाम शिथिल हैं। यदि शील पालन का संकल्प मजबूत होता तो विवाह की स्वीकृति कभी नहीं देता।'

रूपश्री ने कहा–'वह अपने मां-बाप की आज्ञा का लोप न हो, इसलिए विवाह कर रहा है। वह हमारी इच्छा का असम्मान कैसे करेगा?'

जयंतश्री ने कहा–'हम अपने वाक्-चातुर्य, माधुर्य और सौंदर्य से देवता को मुग्ध कर सकती हैं। यह तो सामान्य पुरुष है।'

समुद्रश्री ने कहा–'बहनो! हमें अपनी विजय पर पूरा विश्वास है। फिर भी यदि कुछ स्थिति बनेगी तो हम उसका सामना करेंगी।'

सबने एक स्वर में कहा–'हां, फिर हमें अपना निर्णय बता देना चाहिए।'

योग ऐसा मिला–शेष सात लड़कियों के माता-पिता भी वहीं आ गये। सबमें निर्णय जानने की उत्सुकता थी।

चिंतन और निर्णय के बाद कन्याओं ने दरवाजा खोला। उन्होंने देखा–सबके माता-पिता प्रतीक्षा में बैठे हैं। आठ पिता, आठ माता और आठ कन्याएं।

कन्याओं ने निवेदन किया–'पिताश्री! माताश्री! अब आप भी भीतर आ जाएं।'

सब भीतरी कक्ष में आए। आसन पर आसीन हुए। कुछ क्षण के लिए मौन का साम्राज्य हो गया। मन में इतना उद्वेलन था कि कोई बोल ही नहीं पा रहा था। आखिर दो मिनिट बाद ज्येष्ठ श्रेष्ठी ने मौन खोल, पूछा–'पुत्रियो! क्या चिंतन किया है? कोई निर्णय लिया है?'



'हां, पिताश्री!'

'पुत्रियो! सामाजिक जीवन के लिए यह बहुत बड़ी समस्या है। इस समस्या का समाधान करना है। अब बोलो–तुम्हारा निर्णय क्या है?'

समुद्रश्री ने सबका प्रतिनिधित्व करते हुए कहा–'पिताश्री! माताश्री! हम सबका सामुदायिक निर्णय है। मैं एक बोल रही हूं पर निर्णय हम सबका है। हमने गहराई से सोच लिया है, चिंतन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंची हैं–हम जम्बूकुमार के सिवाय किसी दूसरे के साथ विवाह नहीं करेंगी।'

'पुत्रियो! तुमने निर्णय तो ले लिया है पर यह कितना कठिन काम है।'

'पिताश्री! जिसने दृढ़ निश्चय कर लिया, उसके लिये दुष्कर क्या है? आदमी में इतनी शक्ति है कि वह चाहे जो काम कर सकता है, इसलिए आप चिंता न करें। दूसरा कोई विकल्प हमारे सामने नहीं है। यह निर्विकल्प निर्णय है।'

ज्येष्ठ श्रेष्ठी ने प्रतिप्रश्न किया–'पुत्रियो! क्या तुमने अपने आपको तौल लिया?'

परीक्षा के लिए प्रतिप्रश्न करना होता है। जब परीक्षा होती है तब विरोधी तर्क भी सामने आते हैं। विरोधी तर्क के बिना पता नहीं चलता कि मन कितना मजबूत है।

श्रेष्ठी ने कहा–'तुमने जो निर्णय लिया है, यह पराजय का निर्णय है। तुम्हारी पराजय हो गई। जम्बूकुमार जीत गया, उसकी बात रह गई। तुम्हारी जीत तो तब होती जब जम्बूकुमार यह मान लेता–इनके साथ विवाह करना है तो मुझे घर में रहना पड़ेगा। जम्बूकुमार तो अपने निश्चय पर अटल है–मैं दीक्षा लूंगा। तुम कहती हो–हम उसके साथ ही शादी करेंगी। क्या यह तुम्हारी पराजय नहीं है?'

ज्येष्ठ कन्या समुद्रश्री बोली–'पिताश्री! आप समझदार हैं, बहुत अनुभवी हैं। आप तो यह जानते हैं कि हार और जीत क्या है?'

हार-हार से विजय निकलती, तम से पाते तेज सितारे।
वह हारे जिसको मन मारे, वह जीते जो मन को मारे।।

'पिताश्री! विजय कोई अलग से नहीं आती। पहले क्षण में कोई विजय नहीं होती। हारते-हारते विजय मिल जाती है। हार **में** से भी विजय निकल आती है।'

'पिताश्री! रात को सितारे चमकते हैं। चमक कहां से आती है? वे दिन में तो नहीं चमकते। चांद रात को चमकता है और दिन में बादल का टुकड़ा सा बन जाता है। उसमें चमक कहां से आती है?'

अंधकार होता है तो उनमें चमक आ जाती है। अंधकार नहीं है तो चमक भी नहीं आती। जो तारे रात को चमकते हैं, दिन में उनका पता ही नहीं चलता। सूर्य का पूर्ण ग्रहण होता है तब दिन में भी तारे दिखते हैं पर उनमें वह चमक नहीं होती, जो रात को होती है।



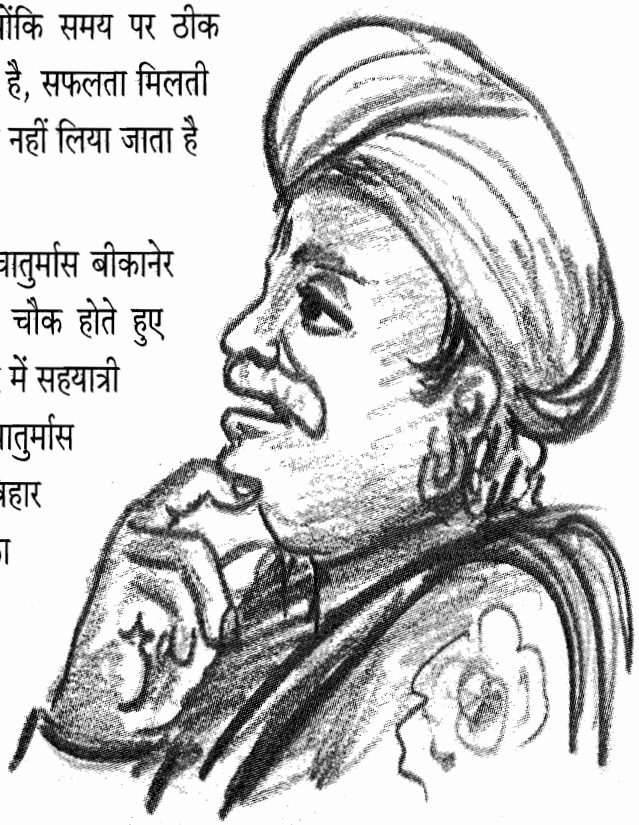
'पिताश्री! हार में से विजय निकलती है। अंधकार में से प्रकाश, ज्योति निकलती है। पिताश्री! जिसको मन मारता है, वह हार जाता है। जो अपने मन को मार लेता है, वह जीत जाता है, विजयी बन जाता है। आप चिंता न करें, हमने मन को तौल लिया है। हमारा मन हमारी मुट्ठी में है। जो भी स्थिति आयेगी, उस स्थिति का हम मुकाबला करेंगी, उस स्थिति से जूझेंगी। यह हमारी जुझारू वृत्ति है।'

'पिताश्री! आप यह न समझें कि हम अबला हैं। हमारे भीतर ऊर्जा है, प्राण शक्ति है। हम सबने मिलकर अपने आपको तौल लिया है, कोई चिंता की बात नहीं है। आप अपने मन को मजबूत बना लें। हमने अपना निर्णय बता दिया है, आप क्या सोचते हैं? यह निर्णय का समय है।'

मुहुत्ताणं मुहुत्तस्स मुहुत्तो होई तारिसो।

भगवान महावीर की वाणी है–कोई कोई ऐसा मुहूर्त आता है, कोई कोई ऐसा क्षण आता है, जिस क्षण में आदमी निर्णय लेता है और वह निर्णय बहुत सफल हो जाता है।

'पिताश्री! यह उपयुक्त क्षण है। क्योंकि समय पर ठीक निर्णय लिया जाता है तो वाह-वाह हो जाती है, सफलता मिलती है, विजय हो जाती है। समय पर ठीक निर्णय नहीं लिया जाता है तो असफलता भी मिल जाती है।'



वि. सं. १९९७ में पूज्य गुरुदेव का चातुर्मास बीकानेर में था। चातुर्मास की सम्पन्नता पर रांगड़ी चौक होते हुए विहार हो रहा था। हजारों-हजारों लोग विहार में सहयात्री थे। वहीं दूसरे संप्रदाय के आचार्य का चातुर्मास था। उनका भी विहार निर्णीत था। दोनों विहार निर्विघ्न हों, कहीं बाधा न आए, टकराव का प्रसंग न बने इसलिए पहले से ही सब कुछ खोज करने के बाद विहार का मार्ग तय किया। संयोग ऐसा बना कि जिस रास्ते से आचार्यवर पधार रहे थे, उसी मार्ग में सामने से दूसरे संप्रदाय के आचार्य का जुलूस आने लगा। समस्या हो गई कि अब कैसे जाएं? कौन पहले निकले?



सबने कहा–हम नहीं रुकेंगे। हम कोई कमजोर थोड़े ही हैं। गुरुदेव ने देखा–यह तो अच्छा नहीं है, अकारण संघर्ष होगा। हो सकता है कुछ अघटित भी घट जाए। चारों ओर दबंग लोग जमे हुए हैं। कहीं शक्ति का प्रदर्शन न कर दें। गुरुदेव ने एक क्षण में निर्णय लिया, तत्काल रांगड़ी चौक में मुड़ गए। ईश्वरचंदजी चौपड़ा आये, बोले–यह क्यों? हम क्यों मुड़ें? हम क्या कमजोर हैं? बहुत लोग शक्ति-प्रदर्शन के लिए सन्नद्ध थे। गुरुदेव ने कहा–सब यहीं रुक जाओ। वह एक क्षण का निर्णय था जिससे संघर्ष शांति में बदल गया। बीकानेर में उसकी जो चर्चा हुई, उससे संघ की महिमा समुन्नत हुई। तत्कालीन महाराजा गंगासिंहजी ने कहा–'पूज्य महाराज अवस्था में तो छोटा है, पण काम बड़ा आदमी जिसो कर्‌यो है, अनुभवी व्यक्ति जैसा कार्य किया है। आज एक बड़ा संघर्ष टल गया, अन्यथा पता नहीं क्या होता, बीकानेर के सिर पर कलंक लग जाता।' आचार्यश्री ने अपनी बुद्धिमत्ता से संघर्ष को टाल दिया।

सही निर्णय होता है तो सब ठीक हो जाता है और निर्णय गलत होता है तो काम उलट जाता है।

पुत्रियों ने कहा–'पिताश्री! यह निर्णय का क्षण है। आप क्या चाहते हैं?'

आठ माता और आठ पिता, सबने एक स्वर में कहा–'पुत्रियो! जो तुम्हारा निर्णय है, वही हमारा निर्णय है। हम तुम्हारे साथ हैं।'

'पिताश्री! फिर आप तैयारी करें।'

सबने मिलकर एक दूत निर्धारित किया, दूत को बुलाया, बुलाकर कहा–'तुम श्रेष्ठी ऋषभदत्त के प्रासाद जाओ, वहां जाकर सूचना दो–हम सब जम्बूकुमार के साथ अपनी पुत्रियों का संबंध करने के

लिए तैयार हैं। आप भी तैयारी करें, हम भी तैयारी करें। जल्दी मुहूर्त देखें ताकि यह शुभ कार्य शीघ्र हो सके।'

दूत ऋषभदत्त के प्रासाद पहुंचा, संदेश दिया। ऋषभदत्त ने संदेश-पत्र पढ़ा। वह पुलकित हो गया, बड़ी प्रसन्नता हुई। सोचा–समस्या का सुंदर समाधान हो गया।

ऋषभदत्त ने जम्बूकुमार को बुलाया, संदेश-पत्र उसके हाथ में थमाया। जम्बूकुमार बोला–'पिताश्री! मैं तो सहमत हूं। आपकी इच्छा है, मां की इतनी इच्छा है तो शादी कर लूंगा। किन्तु यह स्पष्ट है मैं ब्रह्मचारी रहूंगा और मुनि बनूंगा। यह मेरा दृढ़ निश्चय है। इसमें कोई परिवर्तन नहीं आयेगा।'

'पुत्र! इस निश्चय पर ही यह निर्णय हुआ है। तुम्हारे निर्णय को टाला नहीं गया है।'

'पिताश्री! फिर ठीक है। जो मैंने कह दिया, वह मुझे मान्य है। यदि विवाह करने से आपको प्रसन्नता होती है तो मुझे कोई कठिनाई नहीं है। मैं आपकी प्रसन्नता के लिए पाणिग्रहण कर लूंगा किंतु मेरे निर्णय में कोई परिवर्तन होने वाला नहीं है।'

व्यक्ति में मनोबल होता है तभी वह सफल हो सकता है। सबसे बड़ी बात है मनोबल। जैन-दर्शन में बतलाया गया है–आत्मा में अनन्त बल है। आत्मा में सचमुच अनन्त बल है किंतु वह प्रकट होता है मनोबल के सहारे। जिसने मनोबल की साधना कर ली उसका बल प्रकट हो जाता है। जिसका मन कमजोर है उसका बल प्रकट नहीं होता। बल को प्रकट होने के लिए भी कोई माध्यम चाहिए। एक माध्यम है हमारा शरीर, एक माध्यम है वाणी और एक माध्यम है मन। ये तीन माध्यम हैं–शरीरबल, वाक्बल और मनोबल। यदि ठीक प्रयोग किया जाए तो शरीर का बल भी बढ़ता है, वाणी का बल भी बढ़ता है और मन का बल भी बढ़ता है। जरूरत है अभ्यास की।

एक व्यक्ति के मन में आया–मुझे सांड को उठाना है। सांड कितना भारी भरकम होता है। वह खुला घूमता है और कितना शक्तिशाली होता है! जिन लोगों ने बीकानेर का रांगड़ी चौक देखा है, वहां सांड बहुत घूमते हैं। वे इतने शक्तिशाली होते हैं कि खंभे को टक्कर मार दें तो खंभा ही टूट जाए। व्यक्ति ने निश्चय किया–सांड को उठाना है। कैसे उठाए? उपाय खोज लिया। गाय के बछड़ा जन्मा। उसको पहले दिन उठाया। दूसरे दिन उठाया, तीसरे दिन उठाया, रोज उठाता चला गया। एक ओर प्रतिदिन वह बढ़ रहा है दूसरी ओर वह व्यक्ति रोज उठा रहा है। उसका शरीर बल भी बढ़ रहा है। वह उसे रोज उठाता गया। वह बड़ा हुआ, सांड बना तो उसको भी सहजता से उठा लिया। क्योंकि रोज उठाता चला गया इसलिए अभ्यास हो गया।

बल को बढ़ाया जा सकता है। प्राचीन युग में अभ्यास कराया जाता था। एक केला भूमि होती थी बल बढ़ाने के लिए। शरीर के बल को कैसे बढ़ाया जाए? भारी-भारी गदाएं, भालें उठाते थे। संस्कृत साहित्य में आता है–एक खलुरिका होती थी। जैसे मल्लों के लिए अखाड़े होते है वैसे बल बढ़ाने के लिए जो स्थल होता वह खलुरिका कहलाती। वहां जाकर अपने शरीर का बल बढ़ाया जाता था। शरीर का बल बढ़ सकता है। इसी प्रकार वचन का बल बढ़ सकता है। वाणी में इतनी ताकत होती है कि एक शब्द कह दे तो दूसरा

कोई लांघ नहीं सकता। वचनसिद्धि भी हो सकती है। वाणी का बल इतना है कि मुंह से जो कह दिया, वह अटल है, उसको कोई टाल नहीं सकता, चुनौती नहीं दे सकता। जो मुंह से निकल गया वह हो जाएगा।

आचार्य भिक्षु वचनसिद्ध पुरुष थे। वीरभाणजी ने कहा–'स्वामीजी! भारमलजी तो भोले हैं।'

स्वामीजी ने पूछा–'तो आचार्यपद किसको मिलना चाहिए?'

'तिलोकचंदजी को।' वीरभाणजी ने परामर्श दिया।

आचार्य भिक्षु ने कहा–'उन्हें सूरि-पद तो नहीं, सूरदास का पद मिल जाए तो पता नहीं।'

आचार्य भिक्षु का यह वाक्य एक सचाई बन गया। उन्हें सचमुच सूरदास का पद मिल गया।

शरीर बल और वाक्बल इन दोनों से ज्यादा शक्तिशाली है मन का बल। जिसने मन के बल की साधना कर ली, वह असंभव लगने वाले काम को भी संभव बना देता है। मनोबल का एक रूप है आस्था, मनोबल का एक रूप है श्रद्धा, मनोबल का एक रूप है आत्मविश्वास। जिसमें यह विकसित हो गया, उसके लिए कभी कुछ असंभव होता ही नहीं। जम्बूकुमार का मनोबल इतना प्रबल था कि कहीं कोई विचलन नहीं था।

कन्याओं और जम्बूकुमार के बीच एक प्रकार का जुआ खेला जा रहा था। कन्याओं ने सोचा–बात कहते हैं मुनि बनने की किंतु जब हम जायेंगी तब पता चलेगा कि मुनि कैसे बनता है? उनको अपने वाक्बल और सौन्दर्य पर भरोसा था। उन्होंने एक जुआ खेला किंतु उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि जम्बूकुमार उनसे भी बड़ा जुआरी है। उसके 'पाशे' देवकृत हैं, जो कभी हारते ही नहीं हैं।

ऋषभदत्त ने अपने कौटुंबिकजनों को बुलाया, कहा–'जम्बूकुमार के विवाह का निर्णय हो गया है। आठ श्रेष्ठी कन्याओं के साथ पाणिग्रहण होगा।'



कौटुंबिकजनों ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए पूछा–'पाणिग्रहण का उत्तम मुहूर्त कब है?'

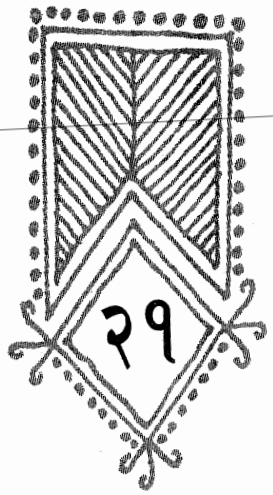
'मुहूर्त देख लिया है, दो दिन बाद अच्छा लगन है, अच्छा मुहूर्त है। सब कुछ ठीक है। मैंने स्वर भी देख लिया है, वह अनुकूल चल रहा है। तुम बरात की तैयारी करो।'

आदेश मिलते ही बरात की तैयारी शुरू हो गई। आठों श्रेष्ठियों को संदेश भेज दिया–बरात आ रही है। आप अपनी तैयारी करें।

दोनों ओर एक प्रश्न है–विवाह के बाद क्या होगा?

क्या जम्बूकुमार अपने संकल्प पर अटल रह सकेगा?

अथवा देवांगना-तुल्य कन्याएं उसे अपने मोहपाश में बांध लेंगी?



व्यक्ति और समुदाय। व्यक्ति का मतलब है अकेला और समुदाय का अर्थ है संगठन। वैयक्तिकता और सामुदायिकता, अकेलापन और संगठन–दोनों का अपना-अपना मूल्य है। हम हर विषय पर अनेकांत की भाषा में सोचते हैं और उसी भाषा में बोलते हैं। किसी का अतिरिक्त मूल्य नहीं। तिनका और बुहारी–दोनों का अपना-अपना मूल्य है। दांत में कुछ फंस गया। वहां तिनके का मूल्य है, बुहारी का मूल्य नहीं है। घर में कचरा आ गया, बुहार कर साफ करना है तो वहां तिनके का मूल्य नहीं है। वहां कोई हाथ में एक तिनका लेकर बुहारना शुरू करे तो कैसा लगेगा? उसके द्वारा काम भी नहीं होगा। वहां बुहारी का मूल्य है। सैकड़ों हजारों तिनके मिलकर इकट्ठे हुए, झाड़ू बना और वह कचरे को साफ करता है।

व्यक्ति का भी अपना मूल्य है और समुदाय का भी अपना मूल्य है। यह जो एक धारणा बन गई–मैं अकेला ही सब कुछ करूं, वह उपयुक्त नहीं है। इस धारणा ने जीवन को बहुत नीरस बना दिया। जैन परम्परा में साधना के अनेक सूत्र रहे। एक व्यक्ति जिनकल्प की साधना करता है, एकलविहारी होता है। अकेला रहकर साधना करता है किंतु साधना के बाद फिर गण में आ जाता है। आखिर गण में ही रहता है, समुदाय और संगठन में रहता है। संगठन में शक्ति है। सामुदायिकता के जीवन का अलग ही आनन्द होता है। समुदाय के बिना वह आनन्द मिलता नहीं है।

आठों कन्याओं ने सामुदायिक रूप से, एक साथ एक स्वर में अपने माता-पिता से कहा–हमारा दृढ़ निश्चय है, दृढ़ संकल्प है कि विवाह करेंगी तो जम्बूकुमार के साथ करेंगी। सामुदायिक स्वर में एक ताकत होती है। अगर सर्वसम्मति नहीं होती, बहुविध मत होता तो कुछ का स्वर होता–हम उससे विवाह नहीं करेंगी जो दीक्षा लेने वाला है। हम उसके साथ नहीं जाएंगी जो पहली रात को ही संबंध तोड़ने की बात कर रहा है। आठों कन्याओं के एक स्वर से माता-पिता को प्रसन्नता हुई। उन्होंने सोचा–बहुत अच्छा निर्णय किया है। हमारी उलझन टल गई।

दोनों ओर से तैयारी शुरू हो गई, वैवाहिक कार्यक्रम शुरू हो गए। पुराने युग में ठाठ-बाट भी बहुत चलता था। आज यह धारणा प्रबल है कि विवाह सादगी से होना चाहिए किंतु पुराने युग में सादगी की बात

नहीं थी, बहुत ठाट-बाट और आडम्बर होता था। उस समय आबादी थोड़ी थी और बड़े लोग भी कम थे। आज जितने धनी हैं उतने पुराने जमाने में नहीं थे। आज जितने भूखे हैं उतने भूखे भी उस युग में नहीं थे। रोटी सबको मिल जाती थी पर अपार सम्पदा सबके पास नहीं थी। राजस्थानी कहावत है–खाता-धापता परिवार है। अपनी रोटी-रोजी में मस्त रहते थे। सामान्य लोगों में यह मस्ती की स्थिति थी। जो बड़े लोग थे उनमें आडम्बर भी होता था किन्तु आज का चिंतन बदल गया, मानस बदल गया, स्थितियां भी बदल गईं। आज तो बदलना जरूरी भी है।

तुम चाहे बदलो मत बदलो, युग ने तो करवट ले ली है।
जिसने दीप जलाये शत शत, उसने भी होली खेली है।।

बदलना जरूरी है। अब बिना बदले काम नहीं चलेगा। आज न इस भाषा में बोल सकते हैं–जम्बूकुमार की बरात में इतना आडम्बर हुआ था तो हम क्यों न करें और न इस भाषा में कह सकते हैं–जम्बूकुमार ने जो सोचा, वह हम क्यों नहीं सोच सकते?

अनेकांत का सिद्धांत है–पर्याय बदलता है। स्वभाव पर्याय प्रतिक्षण बदलता है। विभाव पर्याय समय-समय पर बदलता है। जम्बूकुमार का भी पर्याय बदल रहा है। वह अब तक कुमार था, अब वह वर बनकर जा रहा है। विशाल और भव्य बरात। राजगृह में ही विवाह था इसलिए बहुत दूर नहीं जाना पड़ा। एक स्थान पर सारी व्यवस्था हो गई। एक भव्य मंडप बना। उस मंडप पर सबका ध्यान अटक गया। सब उधर आने लगे, पूरी व्यवस्था कर दी गई। आठों कन्याएं, माता-पिता और परिवारजन आ गये। ऋषभदत्त अपने परिवार के साथ वहां पहुंचा। सैकड़ों, हजारों लोग इकट्ठे हो गए।

एक ओर विवाह के मंडप में पाणिग्रहण का उपक्रम हो रहा है दूसरी ओर चर्चाएं भी हो रही हैं। जनता में यह कुतूहल हो गया–एक नये ढंग का विवाह हो रहा है। किसी ने पूछा–नये ढंग का कैसे?

'क्या तुम नहीं जानते–विवाह होगा और उसके बाद जम्बूकुमार मुनि बन जायेगा। जम्बूकुमार का विवाह और दीक्षा का संकल्प सर्वत्र चर्चा का विषय बन गया। जितने मुंह उतनी बातें।



मुण्ड मुण्ड की न्यारी बुद्धि,
तुण्ड तुण्ड की न्यारी वाणी,
कुण्ड कुण्ड को न्यारो पाणी।

सब कुओं का पानी एक जैसा नहीं होता। किसी का पानी खारा होता है और किसी का मीठा। सबकी बुद्धि एक जैसी नहीं होती। सबकी वाणी भी एक सरीखी नहीं होती।

कुछ लोग बोले–'देखो, यह भी कोई विवाह होता है? विवाह करने वाले समझदार नहीं हैं।'

दूसरा व्यक्ति बोला–'कन्या के माता-पिता भी समझदार नहीं हैं। अगर समझदार होते तो यहां विवाह क्यों करते? जम्बूकुमार स्पष्ट कह रहा है–मैं तो साधु बनूंगा फिर विवाह करने की जरूरत क्या है?'

एक व्यक्ति ने कहा–'ऋषभदत्त भी समझदार नहीं हैं। अनावश्यक इन आठ लड़कियों का जीवन बर्बाद कर रहा है, थोड़ी भी समझ होती तो स्पष्ट मनाही कर देता कि हम विवाह के औपचारिक बंधन में नहीं बांधेंगे।'

अलग-अलग भूमिका होती है और अलग-अलग व्याख्यान होता है। एक संभ्रांत नागरिक ने कहा–'देखो, न तो कुमार को लड़कियों में विश्वास है और न लड़कियों को कुमार में विश्वास है फिर यह विवाह कैसा? दो व्यक्तियों का संबंध जुड़े तो सबसे पहले परस्पर विश्वास होना चाहिए। दोनों का एक-दूसरे में विश्वास कहां है! जम्बूकुमार कहता है–मैं अलग हो जाऊंगा। कन्याएं कहती हैं–हम अलग रह जाएंगी। यह कैसा संबंध है, समझ में नहीं आ रहा है। इनका श्वास और विश्वास कैसे टिकेगा?'

पास नहीं विश्वास तुम्हारे, कोरा श्वास जिलाएगा क्या?
पास नहीं है हृदय तुम्हारे, कोई हृदय मिलायेगा क्या?

तुम्हारे पास विश्वास नहीं है तो क्या कोरा श्वास जिला देगा? कोरा श्वास कैसे जिलाएगा? आदमी विश्वास के आधार पर जीता है। जिसका विश्वास टूट गया, कोरा श्वास उसे जिला नहीं सकता। फिर वह श्वास भी कृत्रिम श्वास बन जाता है।

एक धनी महिला का छोटा बच्चा बीमार हो गया। हॉस्पिटल में भर्ती किया गया। मां मिलने आई। डॉक्टर से पूछा–मेरा बच्चा कैसे है?

डॉ. ने कहा–'ठीक-ठाक चल रहा है। अभी तो उसको नकली श्वास दिया जा रहा है।'

महिला बोली–'डॉ. साहब! मेरे पास पैसे की कमी नहीं है। चाहें जितना धन ले लो पर नकली श्वास क्यों दे रहे हैं? उसे असली श्वास दो।'

नकली श्वास कैसे जिलायेगा? न विश्वास है और न असली श्वास है। विश्वास के बिना असली श्वास आता भी नहीं है। जहां आदमी का विश्वास टूटता है, श्वास भी नकली बन जाता है। वह कैसे जिलाएगा? जिसके पास हृदय नहीं है, उससे कोई क्या हृदय मिलाएगा? हृदय तो होना चाहिए। समाचार मिला–मालिक का हार्ट फेल हो गया, हृदय का अवरोध हो गया। एक मजदूर बड़ा तेज-तर्रार था, बोला–'अरे! कितना क्रूर आदमी था। हार्ट तो था ही नहीं। फेल क्या हो गया?'

एक व्यक्ति ने कहा–'जम्बूकुमार के हृदय में ममता नहीं है। कैसे दो हृदय मिलेंगे? यह बड़ा अजीब विवाह है। न तो विश्वास है न हृदय है। अगर जम्बूकुमार में हृदय होता तो इतनी क्रूरता नहीं करता। वह इन लड़कियों का जीवन बर्बाद नहीं करता। हृदय और विश्वास होता तो ऐसा धोखा भी नहीं देता।'

एक व्यक्ति ने कहा–'जम्बूकुमार तो ऐसा निकला पर इन लड़कियों की बुद्धि कहां गई? इनके माता-पिता की अक्ल कहां गई? क्या और कोई जीवन-साथी नहीं मिलता?'

जहां दृष्टिकोण कोरा लौकिक होता है वहां लौकिक भूमिका पर सारी चर्चा होती है। वे नहीं समझ पा रहे थे कि जम्बूकुमार का कितना उदात्त चिंतन है, कितना ऊंचा विचार है, कितना सही दृष्टिकोण है। पर यह समझ में नहीं आ सकता। अपना-अपना चिंतन का स्तर होता है, अपने-अपने चिंतन की भूमिका होती है और उस भूमिका पर ही सारा विचार होता है।

चर्चा-परिचर्चा का उत्तेजक वातावरण बन गया। विवाह के क्षणों में एक उत्सव, उल्लास का जो वातावरण होना चाहिए वह बिल्कुल नहीं रहा फिर भी उपचार चल रहा था, विवाह की रस्म भी अदा हो रही थी। संस्कारक ने विवाह का संस्कार संपन्न करा दिया, परस्पर विश्वास की शपथ दिला दी।

प्राचीनकाल में, स्मृति काल में शपथ दिलाई जाती थी कि तुम पाणिग्रहण कर रहे हो। जिसके साथ पाणिग्रहण होता है उसे आजीवन निभाना है। जैसे कोई साधु महाव्रत स्वीकार करता है अथवा श्रावक भी अणुव्रतों को स्वीकार करता है तो यावज्जीवन के लिए करता है। यावज्जीवन का संकल्प बड़ा मजबूत होता था। दो वर्ष के लिए, चार वर्ष के लिए जो संकल्प किया जाता है उसमें वह दृढ़ता नहीं आती। आजीवन करता है तो बहुत अंतर आता है। एक महीने की तपस्या और एक दिन का संथारा–दोनों में संकल्प का अंतर बहुत है। एक संकल्प है–मैं आजीवन नहीं खाऊंगा। एक संकल्प है–एक महीने तक नहीं खाऊंगा। एक संकल्प में निश्चित अवधि है, यह आशा जुड़ी हुई है–एक महीने के बाद खा लूंगा।

आजीवन संकल्प में आशा का सर्वथा विच्छेद है। आजीवन आहार का त्याग कर दिया, इसका अर्थ है–आशा को सर्वथा त्याग दिया। जिसके साथ पाणिग्रहण कर रहे हो, उसके साथ संबंध को आजीवन निभाना–यह संकल्प दिलाया जाता था। विवाह को सामाजिक पर्व माना गया। यह सामाजिक व्रत होता था, संकल्प दिलाये जाते थे। जम्बूकुमार और आठों कन्याओं को संकल्प दिलाए गए। पाणिग्रहण की रस्म पूरी हो गई। विवाह संपन्न हो गया।

विवाह के साथ दहेज की बात आती है। आजकल तो दहेज का प्रश्न बहुत चर्चित है। यह स्वर प्रबल बना हुआ है–दहेज बंद होना चाहिए। अणुव्रत का भी एक नियम है–दहेज का प्रदर्शन न हो। उस युग में न तो दहेज को बंद करने की कोई कल्पना आई थी और न प्रदर्शन कम करने की बात थी। प्रदर्शन भी किया जाता था। दहेज भी बड़े लोग खूब देते थे। आठों पिताओं ने पुत्रियों को जो दहेज दिया, उसका विशद वर्णन मिलता है। कहा जाता है–एक सौ बानवे प्रकार की वस्तुएं दी। कुल मिलाकर ९९ करोड़ सौनेयों का दहेज दिया।



एक सौ बानवे बोल नो ए, दियो डायचे दान।
अणगणियो दियो बलि ए, घणो देई आदर सम्मान।।

निनाणूं करोड़ तो सोनईया दिया ए, वले रूपइया जाण।
दीधा घणा हर्ष सूं ए, मन मांहे उद्यम आण।।

९९ करोड़ सौनेयों का नाम भी इतना मोहक है कि सुनते ही ध्यान चला जाता है। ध्यान दूसरों का भी चला जाता है। चोर, डकैतों का तो ध्यान जरूर जाता है। जहां सोने का नाम आता है वहां सोना भी आदमी भूल जाता है। संस्कृत साहित्य में कहा गया–**नामसाम्यात् धत्तूरोऽपि मदप्रदः।** स्वर्ण की महिमा क्या बताएं? संस्कृत कोष में सोने के जितने नाम हैं उतने ही नाम धत्तूरे के हैं। धत्तूरे और सोने के पर्यायवाची नाम एक हैं। कवि ने लिखा–नाम समान है, गुण समान नहीं है। पर नाम की समानता का इतना प्रभाव है कि धत्तूरा खाओ तो नशा आ जायेगा।

आठों कन्याओं को इतना प्रचुर दहेज दिया कि ऋषभदत्त का विशाल प्रासाद स्वर्ण-चांदी से आकीर्ण हो गया। आज भी कहीं-कहीं इस प्रकार का प्रसंग मिलता है। एक बार समाचार-पत्र में पढ़ा था कि विदेश में एक व्यक्ति ने करोड़ों डालर का दहेज दिया। हिन्दुस्तान में भी विवाह में बहुत दहेज दिया जाता है, कहीं-कहीं आडंबर भी होते हैं। वह समय अलग था, उस युग का चिंतन भी भिन्न प्रकार का था। ऋषभदत्त श्रेष्ठी ने उस विशाल दहेज को स्वीकार कर लिया।



विदाई की वेला आई। ठाट-बाट से बरात को विदा दी। सब कुछ हो गया। बाहर में चारों ओर उल्लास है पर भीतर में एक खटक भी है। कन्याओं के पिता-माता के चेहरों पर तो मुस्कान है पर भीतर में मुस्कान नहीं है। बाहर से उल्लास टपक रहा है पर भीतर में उल्लास नहीं है। वे इस चिन्ता में डूबे हैं–अभी तो इतना उल्लास हो रहा है। आखिर क्या होगा? जम्बूकुमार आज विवाह के पश्चात् अपने घर पहुंचेगा, कल क्या होगा? एक अप्रिय और वेदनामय चित्र सामने है।

डायचो तो दीनो अति घणो,
पर सोच घणो घट मांय।
खटक मिटी नहीं ए,
रखे ऊभी देलो छिटकाय।
म्हांरी पुत्र्यां भणी ए।।

दहेज तो बहुत दे दिया पर खटक नहीं मिटी। एक शल्य मन को साल रहा है। तीन प्रकार के शल्य बताए गए–माया शल्य, निदान शल्य और मिथ्या दर्शन शल्य। भीतर में शल्य सालता है। शल्य जब तक खटकता है, अच्छा जीवन नहीं होता।

चूर्णि साहित्य की कथा है। राजा का घोड़ा बहुत बीमार हो गया। बहुत इलाज करवाए। कुशल वैद्य आए, इलाज किया पर ठीक नहीं हुआ। एक दिन एक अनुभवी वैद्य आया, देखा, उसने पूछा–'क्या घोड़ा कभी युद्ध में गया था?'

'हां, कुछ मास पहले युद्ध में गया था।'

वैद्य बोला–'समस्या समझ में आ गई, निदान हो गया।'

जब तक निदान नहीं होता, इलाज अच्छा हो नहीं सकता। गलत निदान होता है तो इलाज गलत हो जाता है। मलेरिया है और इलाज टाइफाइड का शुरू कर दिया। टाइफाइड है और इलाज शुरू कर दिया मलेरिया का। बीमारी जटिल हो जाती है, रोगी की दशा भी बिगड़ जाती है। वैद्य ने शस्त्र मंगवाए, पेट को चीरा। बाण का नुकीला भाग भीतर में था। उसने कहा–दवाई लगेगी कैसे? भीतर में तो शल्य है। जब तक शल्य है तब तक दवा लगेगी नहीं। शल्य को निकाला, दवा दी। कुछ दिनों में घोड़ा ठीक हो गया।

उमास्वाति ने व्रती की परिभाषा करते हुए लिखा–निःशल्यो व्रती। व्रती कौन? व्रती वह है जो निःशल्य है। माया का शल्य, मिथ्या दृष्टिकोण का शल्य अथवा निदान का शल्य भीतर में है और व्रत की आराधना करो तो व्रत आयेगा नहीं। पहले निःशल्य बनो, शल्य को बाहर निकाल दो।

माता-पिता के मन में एक शल्य है, वह खटक रहा है। क्या करें? फंस गये। विवाह न करते तो भी समस्या, कर दिया तो भी समस्या। किधर जायें? **इतो व्याघ्र इतस्तटी।** एक आदमी जा रहा था। नदी सूखी थी। पार कर गया। आगे जंगल आया। जंगल में खूंखार जानवर होते हैं। वहां रहने वाले आदमी ने कहा–आगे मत आओ, आगे बाघ है। उसने सोचा–वापस चला जाऊं। वर्षा हो रही थी। नदी में अचानक पानी का पूर आ गया। फिर आवाज आई–इधर मत आओ, पानी का पूर आ गया है। वह बीच में फंस गया–एक ओर बाघ, दूसरी ओर नदी–वह कहां जाये?

कन्याओं के माता-पिता के मन में एक खटक है–इतना भव्य विवाह समारोह हुआ, इतना दहेज दिया, इतने लाड-कोड किए। मन की आशा को पूरा किया। हमारे घर में अपूर्व महोत्सव हुआ।....यदि जम्बूकुमार ने शील-व्रत का पालन किया तो क्या होगा? हमारे सुनहले सपनों का क्या होगा?

म्हें लाड-कोड किया घणा ए, पूरी मन री हूंस।
ते सगली बातां बिगड़सी ए, जम्बू रे पाल्या सूंस।।

जम्बूकुमार के माता-पिता के मन में भी कोई उल्लास नहीं है। वे चिंता में डूबे हुए हैं कि देखो, सगे-संबंधियों ने कितना स्वागत किया, कितना अच्छा भोजन खिलाया, कितना बड़ा दहेज दिया। जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती, इतना अपार धन दिया पर कौन भोगेगा? यह संपदा किसके काम आयेगी? इस धन का मालिक कौन होगा? हमारे पास तो वैसे ही बहुत धन है। हमें तो जरूरत भी नहीं है। जम्बूकुमार के लिए दिया, इन लड़कियों के लिए दिया। इन लड़कियों का क्या हाल होगा?

एक ऐसा माहौल बन गया, मन की विचित्र सी स्थिति बन गई कि क्या करे? कुछ समझ में नहीं आ रहा है। भीतर ही भीतर दिल को यह चिन्तन कचोट रहा है–जम्बूकुमार गृहस्थी बसने से पहले ही उजाड़ देगा। यह मुनि बन जाएगा। कन्याओं का क्या होगा? इस धन का क्या होगा? यह धन किसके काम आयेगा?



वले माता पिता जंबुकुमार नां, त्यांनें पिण ओहिज सोच।
मांड्यो घर बिखेरने ए, साधु थई करे लोच।
तो दुःख हुवै मो भणी ए।।

बड़ा जटिल विषय हो गया। ऐसा लगता है कि सामाजिक जीवन में तो सामाजिक रिश्तों को निभायें तब ही लोगों को अच्छा लगता है। सामाजिक स्थिति में आध्यात्मिक, धार्मिक बात बीच में आ जाए तो वह लोगों को प्रिय नहीं लगती। लोग उसको ठीक भी नहीं मानते। वे यह देखते हैं कि मेरा घर जमा रहे, मेरा नाम अमर रहे, चलता रहे। संतान नहीं है तो गोद लेकर ही चलाओ पर वास्तव में नाम किसका चलता है?

भरत चक्रवर्ती तमिस्रा गुफा में गया। चक्रवर्ती की यह प्रथा होती है कि जब वैताढ्य को पार करता है, तमिस्रा गुफा में जाकर वह रास्ता खोलता है और अपने नाम का आलेखन करता है। भरत चक्रवर्ती ने देखा–गुफा का मुख्य शिलालेख नामों से आकीर्ण है। कोई स्थान खाली नहीं है। बिना मिटाए मेरा नाम लिखना संभव नहीं है। उसने सोचा–अरे! मुझसे पहले तो इतने चक्रवर्ती हो चुके हैं। मेरा यह चिन्तन मिथ्या है कि मैं प्रथम चक्रवर्ती हूं। नाम किसका चला है? कितने बड़े लोग हो गये, उन्हें कोई जानता

भी नहीं है। फिर भी सामाजिक जीवन में एक आकर्षण होता है, मोह होता है, मूर्च्छा होती है। व्यक्ति सोचता है कि हमारा घर बराबर चलता रहे, मंडा हुआ घर बिखरे नहीं। यह ममता की बात सबके मन में पल रही है।

आठ कन्याओं के माता-पिता के मन में, जम्बूकुमार के माता-पिता के मन में एक बोझिलपन है। उनका दिमाग बोझिल बन गया, भारीपन आ गया किन्तु जम्बूकुमार का दिमाग बोझिल नहीं है। विवाह से पहले भी खाली था, अब भी खाली है। उसके मन में कोई विकल्प नहीं है, एक दृढ़ निश्चय है कि मुझे तो साधु बनना है, सब कुछ त्यागना है। जहां त्याग की बात होती है वहां दिमाग बोझिल नहीं बनता। दिमाग बोझिल बनता है संग्रह में। जहां संग्रह करने का प्रश्न है वहां सिर पर बोझ आता है। जहां छोड़ने की बात है वहां बोझ उतर जाता है, बोझ रहता ही नहीं है।

जम्बूकुमार और माता-पिता, दोनों की अलग-अलग स्थितियां हैं। जम्बूकुमार की स्थिति अलग है, माता-पिता की स्थिति अलग है, चिंतन भी अलग है।

विवाह संपन्न कर जम्बूकुमार अपने घर आया। आठों पत्नियों को साथ लेकर सीधा मां के पास गया। मां को प्रणाम किया। पत्नियों से कहा—'मां के चरणों में प्रणाम करो, नमस्कार करो।' सद्यः परिणीता कन्याओं ने निर्देश को शिरोधार्य कर मां को नमस्कार किया।

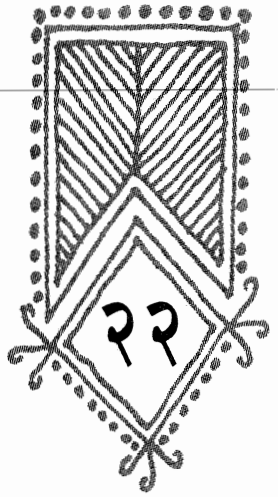
जम्बूकुमार बोला—'मां! मेरा संकल्प पूरा हुआ। तुमने कहा था कि तुम विवाह करो, सब बहुओं को पगे लगाओ। मेरा विवाह हो गया। आठों बहुएं तैयार हैं, आपके चरणों में नत हैं।'

'मां! मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया। अब आपको मेरी भावना का सम्मान करना है।'

यह बात सुनते ही मां का मन भारी हो गया।

क्या मां के मन का भार हलका होगा?

क्या नवोढ़ा वधुएं जम्बूकुमार के मानस को बदलने में सफल होंगी?



इच्छा प्राणी का लक्षण है। जड़ में कोई इच्छा नहीं होती। जैसे-जैसे चेतना का विकास होता है, मन का विकास होता है, इच्छा-शक्ति और प्रबल बन जाती है। इच्छा पैदा हुई और पूर्ति होती है तो सुख मिलता है। इच्छा पैदा हुई और पूर्ति नहीं होती है तो दुःख होता है।

माता की एक इच्छा पूरी हो गई। यह चाह थी कि विवाह हो जाए। विवाह सम्पन्न हो गया पर इच्छा कभी समाप्त नहीं होती। इच्छा का तो बहुत विस्तार होता है। भगवान महावीर ने कहा–**इच्छा हु आगाससमा अणंतया**–इच्छा आकाश के समान अनन्त है। यह ऐसा रबर है कि खींचते चले जाओ, बढ़ता चला जायेगा। आकाश जितना बड़ा है उतनी बड़ी है इच्छा इसीलिए एक पूरी होती है, दूसरी पैदा हो जाती है। सबकी सब इच्छाएं पूरी नहीं होतीं। इच्छा पूरी हुई तो सुख मिला। इच्छा अधूरी रह गई तो दुःख उत्पन्न हो गया। इच्छा और चाह के साथ दुःख जुड़ा हुआ है। जहां इच्छा है चाह है वहां दुःख होना स्वाभाविक है। ऐसा व्यक्ति, जिसके मन में कोई चाह न हो, कोई इच्छा न हो, कभी दुःखी नहीं बनता। उसे कोई दुःखी बना नहीं सकता। जहां चाह है वहां दुःख है।



बुद्ध से पूछा गया–'सबसे सुखी कौन है?'

बुद्ध ने धर्मसभा के अंतिम छोर पर बैठे व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए कहा–'जो अंतिम छोर पर बैठा है, वह आदमी सबसे ज्यादा सुखी है।'

बुद्ध के सामने अनेक धनी लोग बैठे थे। राजा बैठा था, सामन्त बैठे थे। बुद्ध ने उनको सुखी नहीं बताया। किनारे पर जो गरीब आदमी बैठा है, वह सबसे ज्यादा सुखी है–यह कैसे हो सकता है?

एक संभ्रांत नागरिक ने प्रतिप्रश्न किया–'भंते! क्या उससे ज्यादा कोई सुखी नहीं है?'

'वर्तमान में वह परम सुखी है।'

'यह आप कैसे कह सकते हैं?'

बुद्ध बोले–'परीक्षा कर लो।'

संभ्रांत नागरिक राजा के पास गया, बोला–'महाराज! आप तो बहुत सुखी हैं।'

राजा बोला–'मैं सुखी कहां हूं? मेरे सामने कितनी समस्याएं हैं। मुझे जो चाहिए, वह मिल नहीं रहा है। मैं चाहता हूं–पड़ोसी राज्य पर अपना अधिकार जमा लूं पर वह अभी हो नहीं पा रहा है।'

वह अमात्य, नगरश्रेष्ठी आदि के पास गया। सबसे पूछा–आप सुखी हैं? किसी ने स्वयं को परम सुखी नहीं माना। सबके मन में कोई ना कोई चाह है। चाह के पीछे दुःख जुड़ा हुआ है। वह आखिरकार उस आदमी के पास पहुंचा–'बोलो, तुम्हें क्या चाहिए?'

'मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।'

'तो आगे चलो, गुरुजी के पास चलो। तुम्हें आशीर्वाद दिलाएं।'

वह आगे आया। बुद्ध ने पूछा–'क्या चाहते हो?'

'कुछ भी नहीं चाहता।'

'क्या आशीर्वाद लेना है।'

'नहीं।'

'मैं तुमको आशीर्वाद देना चाहता हूं।'

'आप देना चाहते हैं तो यह आशीर्वाद दें कि मेरे मन में कोई चाह पैदा न हो।'

जो व्यक्ति इस भाषा में सोचता या बोलता है, उसे दुःख कहां से होगा?



मां की एक इच्छा पूरी हो गई। मां की चाह थी–विवाह हो जाये। विवाह हो गया। एक चाह पूरी होते ही दूसरी चाह ने जन्म ले लिया–जम्बूकुमार घर में रह जाए। जब तक यह पूरी नहीं होती है तब तक मन में एक तनाव बना हुआ है। तनाव के साथ मन में एक भरोसा भी है।

मां ने सोचा–एक स्त्री आती है तो भी पुरुष को अपने मोह में बांध लेती है। ये आठ-आठ नव यौवनाएं सर्वांग सुंदर हैं। ये अवश्य अपना करतब दिखाएंगी। जम्बूकुमार पर ऐसा कामण डोरा डालेंगी कि जम्बूकुमार घर में रह जायेगा।

संशयालु बन गई मां। एक मन कहता है–यह दीक्षा लेगा। दूसरा मन कहता है–नहीं, यह घर में रह जाएगा। इन दोनों विकल्पों के बीच में मां का मन झूल रहा है।

रात्रि का समय। जम्बूकुमार के लिए आरक्षित भव्य एवं रमणीय कक्ष। नव विवाहित पत्नियां उस कक्ष में प्रियतम की प्रतीक्षा में लीन हैं। मां को प्रणाम कर जम्बूकुमार ने उस भव्य कक्ष में प्रवेश किया। पत्नियों ने प्रियतम का स्वागत किया। जम्बूकुमार रत्नजटित पर्यंक पर आसीन हुआ। आठों पत्नियां सामने बैठ गईं। वातावरण शान्त और मौन। दिन में कोलाहल ज्यादा होता है, रात में मौन का साम्राज्य रहता है। आजकल तो रात को भी नीरव शांति नहीं रहती। रात को भी दो-तीन बजे तक कोलाहल चलता है। उस युग में रात में नीरवता व्याप्त हो जाती थी। जम्बूकुमार के कक्ष का वातावरण शांत था।

एक अजीब सी खामोशी और स्तब्धता थी। न तो जम्बूकुमार बोल रहा है और न नव परिणीता पत्नियों की ओर देख रहा है।

नापि वक्ति न पश्येच्च सुरूपास्वपि तासु वै।
स्थितः स्थिरतरः स्वामी निस्तरंगसमुद्रवत्।।

जम्बूकुमार उनके सामने नहीं देख रहा है। वे नवौढ़ा कन्याएं भी इतनी गंभीर बनी हुई हैं कि वे भी जम्बूकुमार के सामने देख नहीं पा रही हैं। जैसे कन्याओं और जम्बूकुमार के बीच में यवनिका डाल दी गई। एक-दूसरे के पास बैठे हुए वे अपने आपको एक-दूसरे से अलग-थलग अनुभव कर रहे हैं। काफी समय बीत गया। कोई पसीजा नहीं। कहा गया–एकान्त में अकेली स्त्री के साथ रात को अकेला न रहे। यदि व्यक्ति अकेला रहता है तो आवेशवश पतन का प्रसंग बन सकता है। एक मुनि के लिए विधान किया गया–मुनि दिन में भी अकेली स्त्री के साथ वार्ता न करे। जहां अकेला पुरुष और अकेली स्त्री होती है वहां काम के आवेश का प्रसंग बन सकता है।

जम्बूकुमार आठ स्त्रियों से घिरा हुआ बैठा है फिर भी उस पर कोई असर नहीं हुआ। वह अप्रभावित बना हुआ है।

तत्र वाचंयमीवाशु, तस्थौ स्वामी विरक्तितः।
संस्थितश्चापि तन्मध्ये पद्मपत्रं जले यथा।।

अप्रभावित कौन रह सकता है? इसकी बहुत सुन्दर मीमांसा आचार्य भिक्षु ने की है–

जेहनी मींजी भेदाणी, तेहनी किम पलटे वाणी।
लागो रंग चोल मजीठो, जे जातो किण ही न दीठौ।।



मजीठ का रंग उतरता नहीं है। हल्दी का रंग कच्चा होता है वह जल्दी उतर जाता है। पर मजीठ का रंग पक्का होता है, वह लग जाता है तो उतरता नहीं है। जम्बूकुमार की चेतना और मन पर ऐसा मजीठ का रंग हो गया, वैराग्य या आत्मदर्शन का रंग लग गया। एक लय लग गई–मुझे आत्मा का साक्षात्कार करना है, आत्मा को देखना है, वह रंग अब उतरने वाला नहीं है। हल्दी जैसा कच्चा रंग होता है तो खतरा होता है। वह उतर जाता है, दूसरे रंग से प्रभावित हो जाता है। जिनके वैराग्य का मजीठ का रंग लग जाता है, उतरता नहीं है। जो दृढ़ निश्चय कर लिया और जिसकी मज्जा का भेदन हो गया, उसको कोई प्रभावित नहीं कर पाता। बहुत मर्म की बात लिखी है–हमारे शरीर की हड्डियों और हाड़ की मज्जा तक जो बात पहुंच जाती है, वह बदलती नहीं है। ऊपर-ऊपर रहती है तो बदल जाती है। आज का मनोविज्ञान कहता है–जो बात चेतन मन तक रहती है, उसकी धुलाई हो जाती है किंतु जो अवचेतन मन तक चली जाती है, वह बात गहरी जम जाती है। आगम की भाषा है–**अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ते**–जो मज्जा तक चला गया, वह विचार, वह भाव फिर उतरता नहीं है। राजस्थानी भाषा में कहते हैं–इनकी तो हड्डी और मज्जा धर्म स्यूं रंग्योड़ी है। मज्जा हमारे ज्ञान का मुख्य केन्द्र है। हमारे मस्तिष्क में भी मज्जा है ग्रे मेटर है, वह विशिष्ट होता है। अस्थि के साथ जो मज्जा है और उस मज्जा तक जो बात चली जाती है वह पक्की हो जाती है।



शांतिनाथ चरित्र का प्रसंग है। महाराजा की रानी संन्यासी के पास जाती थी। संन्यासी ने कोई ऐसी औषधि दे दी कि उसको संन्यासी के सिवाय कोई दिखाई नहीं देता। समस्या पैदा हो गई। वह महल में आती और फिर जंगल की ओर दौड़ने के लिए तैयार हो जाती। राजा ने सोचा–क्या हो गया? बहुत लोगों को बुलाया, उपचार सफल नहीं हो रहा था। रानी को निरंतर वही दिखाई दे रहा है। एक अनुभवी वैद्य आया, उसने देखा, कहा–जो दवा दी है, वह मज्जा तक चली गई है। जब तक मज्जा का शोधन नहीं होगा, इसका समाधान नहीं होगा। आज भी ऐसा होता है। कोई जानकार व्यक्ति ऐसा प्रयोग करा देता है कि बात मज्जा तक पहुंच जाती है, फिर उसे वही-वही दिखाई देता है। वैद्य ने मज्जा का शोधन किया, समस्या विलीन हो गई।



आचार्य भिक्षु ने लिखा–जिसकी मज्जा भीग गई है, उसकी वाणी कैसे पलटे? जम्बूकुमार की मज्जा इस संकल्प से भीग गई–मुझे मुनि बनना है, आत्मा का साक्षात्कार करना है। यह कोरी मौखिक वाणी नहीं रही। वह भीतर की आवाज बन गई। अन्दर की आवाज का मतलब वह आवाज है जो मज्जा का स्पर्श कर ले। मुंह की बात विश्वसनीय नहीं होती। व्यक्ति कहता है और पलट जाता है। अरे! कल तो कहा था, आज पलट गया। उसका जबाव होता है–कल कहा था, आज तो नहीं कहा। वही वाणी बदलती है, जो कोरी मुंह से आती है।



प्राचीन युग में बारठजी विरुदावली गाते थे। एक बारठ ने सेठ की विरुदावली गाई। सेठ खुश हो गया। सोचा–विचारा नहीं, भीतर तक नहीं गया। मुंह से वाणी निकल गई, बोला–कल आना, एक मन अनाज दूंगा। बारठजी खुश हो गये, सोचा–एक मन अनाज काफी दिन तक चल जाएगा। दूसरा दिन। सूरज उगा। सेठजी दुकान पर आकर बैठे। बारठजी आये, बोले–'सेठ साहब! नमस्कार!'



सेठ ने कहा–'बोलो भाई, क्यों आये हो?'

'कल आपने कहा था–एक मन अनाज दूंगा, अब आप लाइए।'

'कौन-सा अनाज?'

'कल तो आपने कहा था।'

'भोले आदमी हो, तूने बोलकर मुझे राजी किया और मैंने बोलकर तुम्हें राजी किया। लेना-देना कुछ नहीं है। चले जाओ।'

वह वाणी पलट जाती है जो भीतर से नहीं निकलती, केवल मुंह

से निकलती है। जो बात मज्जा तक चली जाती है, वह बदलती नहीं है। जम्बूकुमार ने एक वाणी निकाल दी–मुझे मुनि बनना है, आत्मा का दर्शन करना है, अब वह वाणी पलट नहीं रही। जम्बूकुमार अपनी लय में बैठा है। पांच-दस मिनट बीत गए।



कन्याओं के लिए यह स्थिति असह्य हो गई। उनकी कामाग्नि प्रदीप्त बनती चली गई। काम-भोग की अभिलाषा प्रबल हो गई किन्तु इस अभिलाषा को जो पूरा कर सकता है, वह मूर्ति की तरह स्थिर एवं मौन बैठा है–

अन्यं तासां शरीरेषु, चलति स्म ज्वरानलः।
प्रत्युपायैरसह्यश्च, साभिलाषो रिरंसया।।



जम्बूकुमार ने सोचा–मैं दुधारी तलवार पर चल रहा हूं। मैंने इन आठ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण कर लिया। धोखा तो नहीं दिया फिर भी संबंध तो जोड़ लिया। अब ये सामने बैठी हैं, मौन हैं, उदास हैं, गंभीर हैं, बोलने की स्थिति में नहीं हैं। आखिर मौन मुझे ही खोलना है। मैं बातचीत शुरू करूं क्योंकि मुख्य कर्ता तो मैं रहा। मुझे अपनी बात को स्पष्ट कर देना चाहिए।

जम्बूकुमार पहली बतलावै, अंतरंग री बात सुणावै।
सवारे लेसूं संजम भार, थे कांई करसो बैठी लार।।
करणी हुवै तो करो मोसूं बात, उतावल सूं बीती जाए रात।
हिवड़ा लगती बैठी मो तीर, सवारे ते पिण नहीं छै सीर।।





जम्बूकुमार ने मौन खोला–'कैसे बैठी हो, क्या सोच रही हो, ऐसे क्यों बैठी हो? प्रसन्न रहो, बातचीत शुरू करो। मेरे साथ आई हो तो अपने मन की बात बताओ।'

सबने मन ही मन कहा–तुम्हारे कारण ही तो ऐसे बैठी हैं। तुम्हारा ही प्रताप है, प्रसाद है, कृपा है। नहीं तो हम क्यों उदास बनती? आज विवाह की पहली रात, सुहाग की रात, हम क्यों ऐसी विरह वेदना में तड़पती रहती? हमारी उदासी का कारण तुम स्वयं हो फिर भी पूछ रहे हो–उदास क्यों हो?



जम्बूकुमार बोला–'मैं अपने मन की बात बता दूं। मेरे मन की बात यह है–दिन उगते ही मुझे मुनि बनना है, संयम स्वीकार करना है। मैं आप सबसे पूछना चाहता हूं–मैं तो साधु बन जाऊंगा, दीक्षा ले लूंगा, तुम पीछे क्या करोगी? यह मुझे बता दो कि तुम्हें क्या-क्या करना है, जिससे मैं सारी व्यवस्था कर दूं। तुम्हें क्या काम करना है? व्यापार करना है, धंधा करना है या कोई ऑफिस खोलना है? लिखना-पढ़ना है? सिलाई, रंगाई करना है? क्या करना है? पीछे क्या करोगी? यह मुझे बता दो तो मैं सारी व्यवस्था कर

दूं। मेरा तो स्पष्ट विचार पहले भी था। मैंने धोखा नहीं किया है। पहले तुम्हें बता दिया था कि मुझे मुनि बनना है, मैं मुनि बनूंगा और अब भी मेरा वही दृढ़ संकल्प है। मैं तो यह जानना चाहता हूं कि तुम पीछे क्या करोगी?'

जम्बूकुमार ने चिनगारी लगा दी। अब कन्याओं ने मौन खोला। जब आग सुलगा दी गई, चिनगारी लगा दी गई तो फिर आग भड़केगी।

एक बाबा चिलम पी रहा था। चिलम पीते-पीते चल रहा था। पास में घास की बागर थी। बाबा आगे निकला और बागर में आग लग गई, लोगों ने खोजा–आग लगी कैसे? कौन व्यक्ति आया, जिसने लाय लगा दी। खोजते-खोजते बाबा की झोपड़ी के पास पहुंचे, बोले–'बाबाजी! आपने आग लगाई?'

'नहीं, मैंने नहीं लगाई।'

'तो कैसे लगी?'

'मुझे तो पता नहीं?'

'बाबाजी! आप इधर से आये थे?'

'हां आया था।'

'चिलम पी रहे थे?'

'हां, पी रहा था।'

'आपने कुछ किया?'

'और तो कुछ नहीं किया पर चिलम से एक चिनगारी उधर उछल गई।'

'महाराज! एक चिनगारी घास जलाने के लिए काफी होती है।'

संन्यासी ने स्पष्टीकरण देने का प्रयत्न किया–'मैंने चिनगारी फेंकी, मैंने आग नहीं लगाई।'

लोगों ने कहा–'आग फिर कैसे लगती है? चिनगारी फेंक दी तो लाय लग गई।'

जम्बूकुमार ने चिनगारी डाल दी। सबके मन में जो एक आक्रोश था, जो वेदना थी, उसको उभार दिया। अब सब बोलने के लिए तैयार हो गई।

ज्येष्ठा समुद्रश्री बोली–'स्वामी! आपका यह संकल्प है कि मैं मुनि बनूंगा तो आप पहले इस प्रश्न का उत्तर दें–आपको मुनि बनना था तो हमारे साथ फिर यह संबंध क्यों स्थापित किया? आप कहते हैं कि मैंने धोखा नहीं किया? आपने विवाह होने से पहले बताया किन्तु क्या सगाई से पहले बताया?'

'नहीं।'

'स्वामी! जब एक बार संबंध स्थापित कर लिया, सगाई कर ली, अब तोड़े तो कठिनाई, न तोड़े तो कहां जाएं? आप कहते हैं–कुछ नहीं किया। आपने अच्छा नहीं किया। अगर आपको साधु बनना था तो आपने सगाई का संबंध भी क्यों स्थापित किया? आपको साधु बनना था तो संबंध नहीं करते। न आपको कोई चिन्ता और परेशानी होती, न हमें कोई चिन्ता और परेशानी होती। आप अपने घर में मस्त और हम

अपने घर में। आपने संबंध भी किया, चिनगारी भी फेंक दी, अब आप कहते हैं–बागर में यह लाय मैंने नहीं लगाई तो किसने लगाई है यह लाय? हम यह बात मानने को तैयार नहीं हैं, इस बात का उत्तर हम चाहती हैं।'

जम्बूकुमार के मन में चिन्तन आया–एक भूल पहले हो गई। माता और पिता ने संबंध कर लिया, मुझे पता भी नहीं चला। अब मैं यह कहूं कि माता-पिता की भूल है तो यह अच्छा नहीं। मैं इस भूल को मान लूं। यह भूल तो अवश्य हुई है और इनको कहने के लिए अवकाश मिला है।

जम्बूकुमार ने इस तर्क को शांतभाव से सुना। दूसरे की आलोचना को शांतभाव से सुनना भी बड़ा कठिन है पर सम्यग् दृष्टिकोण होता है तो सम्यग् ग्रहण होता है।

जम्बूकुमार बोला–'आप क्षमा करें। मान लें–यह भूल हो गई पर भूल को सुधारा भी जाता है।'

'हां।'

'मैं तुम्हें एक बात बताऊं। एक गोष्ठी थी। सौ-पचास आदमी सहभागी थे। भोज का आयोजन भी था। वहां एक लड़की के पास बढ़िया रूमाल था। रूमाल पर स्याही गिर गई। एक धब्बा सा हो गया। वह रोने लग गई। गोष्ठी की समरसता भंग हो गई। एक चतुर आदमी ने कहा–क्यों रोती हो?

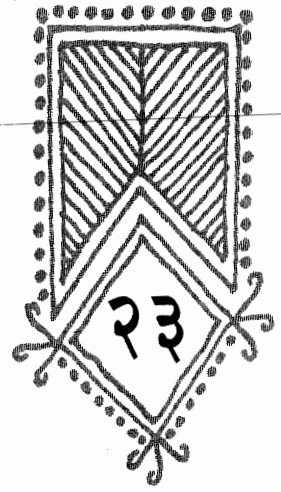
लड़की ने रोते हुए अपनी व्यथा कही–'देखो, मेरा रूमाल खराब हो गया, धब्बा लग गया।'

उसने कहा–'तुम रूमाल मुझे दो।' वह आदमी चतुर कलाकार था और चित्रकार भी। रूमाल को हाथ में ले लिया। तूलिका इस प्रकार चलाई कि जो धब्बा था, उसका चित्र बना दिया। उसने चित्र बनाकर रूमाल उस लड़की को दिया। लड़की ने उसे देखा और नाचने लग गई, खुश हो गई–मेरा रूमाल कितना बढ़िया हो गया।'

जम्बूकुमार ने कहा–'बहनो! तुम्हारा तर्क ठीक है। यह मान लें–भूल हो गई पर अब भूल को सुधारना तो है। बोलो, कैसे सुधारें?'

प्रश्न है–कौन किसकी भूल सुधारेगा? क्या पत्नियां जम्बूकुमार की भूल को सुधारेंगी? अथवा जम्बूकुमार पत्नियों की भूल को सुधारेगा?







प्रत्येक प्राणी में आत्मा है। निश्चय नय की दृष्टि से सबकी आत्मा समान है। व्यवहार नय की दृष्टि से सब आत्माएं समान नहीं हैं, बहुत भिन्नता है। एक एकेन्द्रिय प्राणी और एक पंचेन्द्रिय समनस्क प्राणी–दोनों में कितना अंतर है। यह अंतर है चेतना के विकास का। जिस व्यक्ति में मोह की प्रबलता होती है उसकी चेतना दूसरी दिशा में जाती है। जिसमें मोह कम होता है उसकी चेतना दूसरी दिशा में जाती है। दोनों की दिशाएं अलग-अलग हैं, चिंतन अलग है। सोच अलग हो जाती है तो अच्छा-बुरा लगना भी अलग-अलग हो जाता है। एक आदमी को एक चीज अच्छी लगती है। दूसरे को वह अच्छी नहीं लगती। एक उसको निःसार समझता है, एक उसे सारवान् समझता है। मोह की तरतमता के आधार पर, क्षायोपशमिक भाव के आधार पर सत्य के नाना रूप बन जाते हैं।

जम्बूकुमार और कन्याओं की दृष्टि में जो अंतर है, उसका कारण भी यही था। जम्बूकुमार को जो अच्छा लग रहा है, वह आठ नववधुओं को अच्छा नहीं लग रहा है। जम्बूकुमार को अच्छा लग रहा है त्याग, संयम और व्रत। नवोढ़ा पत्नियों को अच्छा लग रहा है घर-परिवार, धन और पदार्थ। दोनों की दिशाएं दो हैं, चिंतन भी दो हैं। जम्बूकुमार सोच रहा है–मैं इनको समझा लूं, मेरे साथ कर लूं। कन्याएं सोच रही हैं–हम जम्बूकुमार को समझा लें और उसके साथ संसार के सुख का भोग करें।

जम्बूकुमार ने अपनी भूल को स्वीकार किया। उसे सुधारने का प्रस्ताव रखा। इस स्वीकृति से कन्याओं के मानस में एक आशा-किरण प्रस्फुटित हुई।

कन्याओं ने एक स्वर में कहा–'भूल तो तब सुधरेगी, जब परस्पर विश्वास हो। आप हमारी बात सुनें, स्वीकार करें, उस पर विश्वास करें तो भूल का सुधार हो सकता है। हमारे प्रति आपका विश्वास ही नहीं है तो हम क्या बात करें और क्यों भूल की ओर इंगित करें?'

जम्बूकुमार बोला–'देखो, मैं अविश्वास नहीं करता। मैं अनास्थाशील नहीं हूं, अश्रद्धालु नहीं हूं। मुझमें श्रद्धा है, आस्था है, आत्मविश्वास है पर मेरा एक सिद्धांत है।'

'क्या है आपका सिद्धांत?'–सभी कन्याओं ने एक स्वर से पूछा।

विश्वासं कुरुषे कुरुस्व यदि त्वं नैवासितं विद्युतौ।
स्थैर्ये विश्वसनं सदा हितकरं नो चंचले चंचलम्।।

अगर विश्वास करना है तो चेतना में विश्वास करो, इस बिजली में विश्वास मत करो। बिजली एक क्षण में ऐसी जाती है कि घोर अंधकार छा जाता है। चेतना में विश्वास करो। स्थिर में विश्वास करो, चंचल में विश्वास मत करो। यह बिजली चंचल है। एक क्षण के लिए चमकती है, जलती है और चली जाती है।'

'हम रात को अनेक बार देखते हैं। प्रवचन के लिए जाते हैं, बहुत प्रकाश होता है। कभी अचानक बिजली चली जाती है, घोर अंधकार हो जाता है।' विद्युत् स्थिर नहीं है।

'बरसात के दिनों में जब काले मेघ मंडराते हैं तब बिजली चमकती है। एक क्षण में विलीन हो जाती है। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। विश्वास स्थिर में होगा। चंचल में विश्वास मत करो। उसका कोई भरोसा नहीं है इसलिए मैं स्थिर में विश्वास करता हूं। तुम लोगों ने चंचल में विश्वास कर रखा है इसलिए यह तुम्हारा विश्वास काम नहीं देगा'–जम्बूकुमार ने आध्यात्मिक भाषा में अपनी बात कही।

ज्येष्ठा समुद्रश्री सब बहनों को संबोधित करते हुए बोली–'इनसे क्या बात करें? यह आदमी निर्दय है। जिसमें दया ही नहीं है उससे बात करने से क्या मिलेगा? अगर थोड़ी दया, हया होती तो क्या यह इस प्रकार की अरुचिपूर्ण बात करता? कभी नहीं करता किन्तु इसमें दया का कहीं लेश नहीं है। करुणा का स्रोत सूख गया है। यह बात कटु अवश्य है, इनके सामने कहनी चाहिए या नहीं, किन्तु ऐसा लगता है–इनमें पुरुषत्व नहीं है।'

अहोऽस्मिन् निर्गुणे पुंसि, किं कृतेनापि चाटुना।
बाणाः कुर्वन्ति किं षण्ढे, मन्मथस्यापि सर्वशः।।

समुद्रश्री ने जम्बूकुमार के पुरुषत्व पर व्यंग्य करते हुए कहा–'हम इनसे क्या बात करें। इनके सामने बात करने का अर्थ है किसी बधिर के सामने गीत वाद्य प्रस्तुत करना।'



एक श्रेष्ठी ने खूब महफिल सजाई, नर्तकों नर्तकियों को बुलाया, सैकड़ों-सैकड़ों लोगों को निमंत्रण दिया। पूरी परिषद् जुड़ गई, नाट्यशाला दर्शकों से भर गई। नृत्य शुरू होने से पूर्व संयोजक ने कहा–'बहुत बढ़िया नृत्य दिखाना है। स्टेज पर जो मुखिया बैठा है, उसको दिखाना है।'

'वह कौन है?'

'वह अंधा है पर इसी को दिखाना है। अंधे को कोई क्या नाट्य दिखायेगा?'

संगीत की सभा जुड़ी। प्रख्यात शास्त्रीय संगीतकारों को बुलाया। पूछा गया–किसको सुनाना है? कौन है सुनने वाला?

संयोजक ने कहा–'स्टेज पर सामने बैठा है, उसे सुनाना है किन्तु वह बहरा है।'

समुद्रश्री ने कहा–'जम्बूकुमार के सामने आलाप-संलाप करने का अर्थ है अंधे को नृत्य दिखाओ और बहरे को संगीत सुनाओ।'

कातरैः कि कृपाणेन–कृपाण कायर को देने से क्या होगा? एक कायर व्यक्ति जा रहा था। किसी ने कहा–यह तलवार ले जाओ। तलवार हाथ में दे दी। दूसरे ने पूछा–'उसके हाथ में तलवार क्यों दी?'

'उससे सुरक्षा होगी।'

वह थोड़ा आगे बढ़ा। सामने से कोई वीर आदमी आया, बोला– 'खबरदार! आगे मत बढ़ो।'

'क्यों?'

'आगे नहीं जा सकते। पहले इस तलवार को नीचे गिराओ।'

'भाई! मारना मत। मैं अभी गिरा देता हूं।'

कायर आदमी क्या कर सकता है? एक व्यक्ति जंगल में जा रहा था। किसी ने पूछा–'तुम जंगल में जा रहे हो, वहां शेर मिल गया तो क्या करोगे?'

वह बोला–'मैं क्या करूंगा! जो करना है वही करेगा।'

रामायण में एक कथा आती है। एक व्यक्ति बहुत डींग हांकता था कि मैंने ऐसा कर दिया, वैसा कर दिया। पत्नी ने सोचा–रोज देरी से आता है। पूछती हूं इतनी देरी से क्यों आए तो उत्तर देता है–आज रास्ते में दस चोर मिल गये। तुम्हारा सुहाग रहना था। दस को मैंने मारा, पीटा और छुड़ाकर आ गया। कभी कहता है–दस डाकू मिल गये। कभी कुछ कहता है, बड़ी डींगें हांकता है। आखिर बात क्या है?

पत्नी ने निश्चय किया–सचाई को जानना है। उसने वेश बदला, आदमी का वेश धारण किया। जिस रास्ते से पतिदेव आ रहे थे, उस मार्ग पर एक वृक्ष के नीचे खड़ी हो गई। कुछ अंधकार गहरा हुआ। पतिदेव उस वृक्ष के पास आए। पत्नी ने पुरुष के स्वर में ललकारते हुए कहा–कौन हो तुम?

ललकार सुनते ही वह कांपने लगा, गिड़गिड़ाने लगा। उसने उसी अंदाज में कहा–'यदि कुशलक्षेम चाहते हो तो अपनी सामान की पोटली नीचे गिरा दो।'

भय से धूजते हुए पतिदेव ने विक्रय के लिए संगृहीत सामान की पोटली गिरा दी।

पत्नी ने हाथ में पोटली ली और एक जोरदार चांटा भी लगा दिया।

वह गाल को सहलाते हुए क्षमा मांगने लगा। उसने कहा–'आज तो तुम्हें छोड़ रहा हूं। वह भी इस शर्त पर कि एक घंटा तक यहां से उठना नहीं है। यदि उठे तो खैर नहीं है।'

पतिदेव बेचारा बैठ गया। घंटा-दो घंटा तक नहीं उठा। रात को बहुत भयाक्रांत घर आया। पत्नी ने कहा–'भले आदमी! आज तो बहुत देर कर दी।'

पति ने शेखी बघारते हुए कहा–'पूछो मत। आज तो पचीस चोर मिले। तुम्हारा सुहाग ही बचना था, इसलिए सकुशल आ गया। नहीं तो आज आना बहुत मुश्किल था।'

पत्नी बोली–'भले आदमी! जान बच गई पर वह सामान की पोटली कहां है?'

पति–'वह तो उनके पास रह गई।'

पत्नी ने तत्काल पोटली सामने रखते हुए कहा–'यह पोटली लो, वहां कोई पचीस नहीं थे। अकेली मैं थी।'

पति ने किंचित् शर्म का अभिनय करते हुए कहा–'अच्छा तुम थी! मुझे यह तो लगा था कि पोला-पोला हाथ पोमले की मां जैसा है।'

कायर को कृपाण दो, चाहे और कुछ दे दो। जो कायर है, वह अपनी सुरक्षा नहीं कर पायेगा।

लक्ष्म्याः किं कृपणैः वृथा। एक कृपण आदमी के पास बहुत धन है। लक्ष्मी की बड़ी कृपा है पर कृपण का धन कोई काम का नहीं होता।

पुराने जमाने की बात है। कंजूस पति से पत्नी ने कहा–जाओ, बाजार से शाक ले आओ। वह एक पैसा लेकर गया। उस युग में एक पैसा भी बहुत होता था। एक पैसे का बहुत कुछ आता था। पैसे को मुट्ठी में एकदम ऐसा बन्द किया कि कहीं गिर न जाए। गर्मी का मौसम। मुट्ठी बिल्कुल बंद। मालिन के पास पहुंचा। शाक-सब्जी को देखा। मोल-भाव किया। कुछ सब्जियां लेने का निश्चय किया। मालिन सब्जी तौलने लगी। कृपण ने बंद मुट्ठी को खोला। हाथ से पसीना चू रहा था। उसने सोचा–पैसा तो रो रहा है। यह मेरा वियोग सह नहीं पा रहा है। उसने करुणा भरे स्वर में कहा–

पैसा हूं तन भांज स्यूं, तनै न भांजू वीर!
क्यूं रोवै तू रंग में, तुझ मुझ सांचो सीर।।

पैसा! रो मत। तुम राजी रहो। क्योंकि तेरा-मेरा तो इतना संग है, एक संबंध सा जुड़ गया है। यह शरीर भले ही चला जाए पर तुझे तो नहीं छोड़ूंगा।

वह शाक-सब्जी लिए बिना घर आ गया। पत्नी से बोला–मैं शाक-सब्जी तो नहीं ला सका। यह तुम्हारा पैसा वापिस ले लो।

समुद्रश्री बोली–'मैं कहना भी नहीं चाहती। पति की अवमानना, अवहेलना करना भी नहीं चाहती किन्तु यथार्थ को छिपा भी नहीं सकती। यथार्थ यह है–

यथांधे नर्तनेनापि, गानेन बधिरे न हि।
कातरैः किं कृपाणेन, किं लक्ष्म्या कृपणैः वृथा।।

जम्बूकुमार नृत्य को देखने में अंधा, संगीत को सुनने में बहरा और शस्त्र को उठाने के लिए कायर और लक्ष्मी का प्रयोग करने के लिए कंजूस है। हम इससे क्या बात करें? हमारे चिन्तन में इतनी दूरी बढ़ गई है कि उसको कैसे व्यक्त करें?'



यह अध्यात्म और पदार्थ की दूरी रहती है। ये दो भिन्न दिशाएं हैं। अध्यात्म में जाना एक दिशा है और पदार्थ-भोग के प्रति आकृष्ट होना अलग दिशा है। इसीलिए भगवान महावीर ने कहा–

अणुसोयपट्ठिए बहुजणम्मि पडिसोय लद्धलक्खेणं।
पडिसोयमेव अप्पा, दायव्वो होउ कामेणं।।

सारा संसार अनुस्रोत में जा रहा है, स्रोत के पीछे जा रहा है। स्रोत है हमारी इंद्रियां। सारा संसार इंद्रियों के पीछे दौड़ रहा है। एक इंद्रिय चेतना को हटा दो, संसार बचेगा नहीं। इंद्रियों के पीछे चल रहा है व्यक्ति। कोई शब्द के पीछे दौड़ रहा है, कोई रूप के पीछे दौड़ रहा है, कोई रस के पीछे दौड़ रहा है। आज तो दौड़ बहुत अधिक हो गई है। आज के संसाधन ऐसे हैं कि कहीं होने वाली घटना को कहीं देखा जा सकता है। पुराने जमाने में दिल्ली, कोलकाता, मुंबई में खेल होता तो लाडनूं वाले नहीं देख पाते। आज तो दुनिया में कहीं क्रिकेट मैच हो रहा है। अपने घर में बैठा व्यक्ति उसे देख लेता है। इंद्रियों की लोलुपता के बढ़ने का आज जैसा अवसर आया है, अतीत में नहीं था। पुराने जमाने में कहीं कोई हत्या होती, हिंसा होती, लड़ाई होती तो उसी गांव तक उसका प्रभाव होता। सौ कोस, चार सौ कि.मी. की दूरी पर घटना होती तो महीनों तक पता ही नहीं चलता। आज दो मिनट में पता लग जाता है कि कहां लड़ाई हो रही है? कहां क्या हो रहा है? इंद्रिय चेतना को खुलकर खेलने का मौका आज के युग में उपलब्ध है। इंद्रियों के पीछे सारा संसार दौड़

रहा है। बड़े आदमी की बात छोड़ दें, छोटा बच्चा भी इंद्रियों के पीछे दौड़ना शुरू कर देता है। छोटे-छोटे बच्चे दर्शन करने आते हैं। चार-पांच वर्ष के बच्चे का सीधा हाथ मोबाइल पर जाता है। घर में रहता है तो प्रायः टी.वी. पर दृष्टि जाती है। बच्चे जितना टी. वी. देखना पसन्द करते हैं, बड़े शायद नहीं देखते होंगे। बच्चों से रहा नहीं जाता।

हम लोग राजलदेसर में थे। अहमदाबाद से एक परिवार आया। उपासना में बैठा था। एक भाई ने कहा–यह टी. वी. बहुत देखता है। लड़का अवस्था में ८-९ वर्ष का था पर बहुत होशियार था। मैंने पूछा–'तुम टी. वी. कितने घंटा देखते हो?'

'आठ घंटा देखता हूं।'

मैंने कहा–'कम कर सकते हो?'

उसने कहा–'बिल्कुल संभव नहीं है।'

मैंने सोचा–ऐसा उत्तर तो बड़ा आदमी भी नहीं देता। थोड़ा सोचने का अवकाश रहता है। बालक ने तो सोचने का भी अवकाश नहीं रखा। आज स्थिति यह है–बच्चों की इंद्रिय चेतना भी–**अणुसोयपट्ठिए बहु जणम्मि**–प्रवाह के पीछे चल रही है। सब लोग उस दिशा में जा रहे हैं जहां इंद्रियां ले जाना चाहती हैं किंतु भगवान महावीर ने कहा–जो कुछ होना चाहता है, जो कुछ बनना चाहता है, सफल होना चाहता है, बड़ा आदमी बनना चाहता है, बड़ा काम करना चाहता है उसके लिए जरूरी है कि वह अनुस्रोत–इंद्रियों के पीछे चलने की बात पर ब्रेक लगाये। उस पर ब्रेक लगाये बिना कोई बड़ा आदमी बन नहीं सकता। शासक हो या उद्योगपति, व्यापारी हो या घर का मुखिया, इंद्रियों के पीछे चलेगा तो उसके पैरों में बेड़ियां लग जाएंगी, उसकी गति में अवरोधक आ जायेगा। वह कार तीव्र गति में सीधी नहीं चला सकता। बहुत आवश्यक है इंद्रियों पर नियंत्रण करना, इंद्रियों की हर मांग को पूरा नहीं करना। खाने की जरूरत है, खाने की बहुत वस्तुएं हैं पर यह नहीं होना चाहिए कि बर्फ अच्छी लगती है तो बर्फ ही बर्फ खाता चला जाए फिर चाहे श्वास की बीमारी भले हो जाए। श्वास की बीमारी का प्रमुख कारण है बर्फ, आइसक्रीम का अत्यधिक सेवन। केवल श्वास ही नहीं, अधिकांश बीमारियां इंद्रियों के पीछे दौड़ने से होती हैं, रसना के पीछे दौड़ने से होती हैं। इसलिए इंद्रियों पर विजय पाना बहुत जरूरी है।

जम्बूकुमार का चिन्तन इंद्रिय विजय की दिशा में जा रहा है। नवोढ़ा का चिन्तन इंद्रिय सुख के आसेवन की दिशा में जा रहा है। यही विवाद और संवाद का विषय बना हुआ है।

समुद्रश्री बोली–'स्वामी! आप क्या कर रहे हैं? आप जरा चिंतन करें। तपस्या का फल क्या है? क्या आप यह जानते हैं? तपस्या का फल है–सुख। वह स्वर्ग में मिले अथवा मनुष्य लोक में।

तपसां हि फलं सौख्यं, तत्स्वर्गे वा महीतले।
प्राप्तं चापि न जानाति, नूनमध्यक्षतो जड़ः।।

आपको अकूत वैभव प्राप्त है, सुख-सुविधा के साधन मिले हुए हैं, पर ऐसा लगता है कि आपको कोई अच्छा सलाहकार मित्र नहीं मिला है। आपको कोई शिक्षक या गुरु नहीं मिला जो अच्छी सलाह दे सके और आपको दुनिया में जीना सिखा सके।

स्वामी! तपस्या करने वाला मरकर कहां जाता है? उसे क्या मिलता है? शास्त्रकार कहते हैं–उसे स्वर्ग मिलता है।

सुकुले जन्म–वह अच्छे कुल में जन्म लेता है। आप और हम सब उत्तम कुल में जन्मे हैं। आप क्षमा करें। मैं कहना तो नहीं चाहती पर बहुत कटु बात कह रही हूं–आपमें समझदारी नहीं है, जड़ता है। जड़ आदमी पकड़ी हुई बात को छोड़ता नहीं है। आपमें भी जड़ता आ गई। आप अपनी जिद को छोड़ नहीं रहे हैं।'

'स्त्री का हठ विख्यात है किन्तु ऐसा लगता है कि यह स्त्री का नहीं, जम्बूकुमार का हठ है।'

सखेऽसमीक्षाकारीव, वर्तते ग्राहवानयम्।
प्राप्तं तपःफलं त्यक्त्वा, पुनः कर्तुं समीहते।।

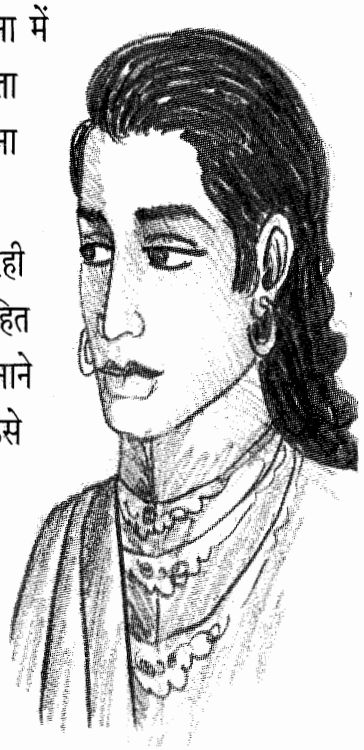
'स्वामी! आप देखिए! व्यक्ति स्वर्ग में जाता है वहां अप्सराएं उसके स्वागत में तैयार रहती हैं। हम सब तो अप्सरा या इंद्राणी के समान हैं। यह सेठ ऋषभदत्त का घर स्वर्ग के समान है। आपका शरीर देवताओं के तुल्य सुकोमल है। आपके और हमारे घर में संपदा की कोई कमी नहीं। आप हमें यह तो बताएं कि इससे ज्यादा और क्या दुर्लभ होता है?

वयं रंभासमा नार्यः सद्मैतत् स्वर्ग सन्निभम्।
वपुर्दिव्यं गृहे संपद्, दुर्लभं किमतः परम्।।

जितनी दुर्लभ बातें होती हैं, वे हम सबको मिली हैं, फिर भी पता नहीं आपका चिंतन किस आसमान में जा रहा है? आप क्या सोच रहे हैं? हम तो आपकी बात नहीं समझ पा रही हैं'–समुद्रश्री ने एक वक्तव्य सा दे डाला।



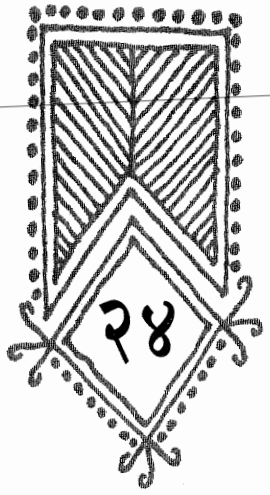
जम्बूकुमार मौन भाव से सब कुछ सुनता रहा। काफी कड़वी मीठी बातें कहीं किन्तु जम्बूकुमार शांत बना रहा। क्योंकि उस पर कोई असर नहीं हो रहा है। वह जिस चेतना में जी रहा है उस चेतना के लिए कोई समस्या नहीं है। वह सद्यः परिणीता कन्याओं की व्यथा, वेदना और भावना को समझ रहा है। वह उनकी वेदना के विलय और भावना के परिवर्तन की युक्ति सोच रहा है।



कन्याएं जम्बूकुमार के संकल्प को शिथिल करने का प्रयत्न कर रही हैं। वे हाव-भाव, विलास, संलाप आदि के द्वारा जम्बूकुमार को सम्मोहित कर सुख का संसार बसाने का सपना संजो रही हैं। सपने को साकार बनाने के लिए कन्याएं नई युक्तियां सोच रही हैं जम्बूकुमार को समझाने की, उसे अपने मोह-पाश में बांधने की।

जम्बूकुमार संसार-सुख के लिए व्याकुल कन्याओं को अध्यात्म की दिशा में मोड़ने की युक्ति पर विचार कर रहा है।

कौन कैसी प्रखर युक्तियों का प्रयोग करेगा? और कौन किसकी युक्तियों को निरस्त करेगा?





मनुष्य दिखाई देता है। उसका चेहरा, रंग, रूप, लंबाई-चौड़ाई दिखाई देती है। स्थूल शरीर दिखाई देता है, इंद्रियां दिखाई देती हैं। स्थूल शरीर के भीतर एक सूक्ष्म शरीर है, वह दिखाई नहीं देता। सूक्ष्म शरीर के भीतर आत्मा है, वह भी दिखाई नहीं देती। इंद्रिय चेतना सामने आती है किन्तु इंद्रियों से परे जो अतीन्द्रिय चेतना है, वह हमारे सामने नहीं है, इसीलिए हमारा व्यक्तित्व दो रूपों में बन गया–एक स्थूल व्यक्तित्व, दूसरा सूक्ष्म व्यक्तित्व। एक इंद्रिय चेतना से प्रभावित व्यक्तित्व और एक अतीन्द्रिय चेतना से भावित व्यक्तित्व। जहां इंद्रिय चेतना बोलती है वहां सोचने का प्रकार दूसरा होता है, करने का प्रकार भी दूसरा होता है। जहां अतीन्द्रिय चेतना काम करती है वहां सोचने और करने का प्रकार बदल जाता है। जम्बूकुमार सूक्ष्म का प्रतीक और अतीन्द्रिय चेतना का प्रतिनिधि बना हुआ है। जो नवोढ़ाएं सामने बैठी हैं, वे स्थूल जगत् और इंद्रिय चेतना का प्रतिनिधित्व कर रही हैं। एक ओर त्याग से भोग की ओर खींचने का प्रयत्न हो रहा है, दूसरी ओर भोग से त्याग की ओर आकृष्ट करने का संकल्प पल रहा है।

ज्येष्ठा समुद्रश्री ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा–'प्रियतम! आपका और हमारा यह विवाद समाप्त नहीं हो रहा है। आप अपने आग्रह पर अड़े हुए हैं और हम अपने आग्रह पर अड़ी हुई हैं। वस्तुतः आप गलत रास्ते पर जा रहे हैं और हम सही रास्ते पर।'

हर व्यक्ति दूसरे को गलत रास्ते पर और अपने आपको सही रास्ते पर मानता है।

'प्रियतम! ऐसा लगता है आपमें समझ भी थोड़ी कम है। आप बड़े घर में पैदा अवश्य हो गये। आपका बड़ा प्रतिष्ठित परिवार है, अपार सम्पदा है, सब कुछ है पर इनके साथ समझ का संबंध नहीं है। संपदा का होना अलग बात है और समझ का होना अलग बात है। धन, वैभव आदि मिला पर समझ नहीं मिली। अगर आपमें थोड़ी भी समझ होती, सकारात्मक चिन्तन होता तो आप ऐसा निर्णय नहीं लेते, ऐसी बात नहीं सोचते। हमें आपका चिन्तन सही नहीं लग रहा है।'

'प्रियतम! आप यह मत मानना कि मैं यह सब स्वार्थ के कारण कह रही हूं। हमारा कोई स्वार्थ नहीं है। दुनिया में स्वार्थ की बात भी होती है, दुनिया को स्वार्थी भी कहा जाता है किन्तु हम जो कह रही हैं वह एक सचाई के साथ कह रही हैं। सचाई यह है–आपका शरीर साधुपन पाल सके, उसके योग्य नहीं है'–यह कहते हुए समुद्रश्री ने अयोग्यता का प्रमाण पत्र दे दिया–'इतना नाजुक और सुकोमल शरीर। वह साधुपन का कष्ट झेल सके, यह संभव नहीं है।'

म्हें म्हारे स्वारथ बरजा नहीं, बरजा तुम देख शरीर।
इसड़ी सुकुमाल काया रा धणी, किम होसो साहस धीर।।

'प्रियतम! आप हमारी बात मान लें अन्यथा आपको पछताना पड़ेगा, कुछ सोचना पड़ेगा तब यह याद आयेगा कि समुद्रश्री ने मुझे ऐसा कहा तो था पर मैंने उसकी बात मानी नहीं।'

'प्रियतम! बाद में पछताओ, इससे अच्छा यह है कि पहले ही जरा समझ लो। जब बाद में पश्चात्ताप होगा तब कोई भी आड़े नहीं आयेगा, काम नहीं आयेगा। आप यह जानते हैं कि संसार भी स्वार्थ का है, कोई दूसरा किसी के काम नहीं आता। आपने यह सुना होगा–मेघकुमार ने दीक्षा ली थी। एक रात में ही यह सोचना पड़ा कि घर चला जाऊं। उनके कौन काम आया? अभी तो आपको लग रहा है कि सुधर्मा स्वामी की शरण में चला जाऊं पर न सुधर्मा स्वामी काम आएंगे, न कोई दूसरा काम आएगा।'

'प्रियतम! आप शायद स्वयं नीति को जानते हैं। फिर भी मैं आपको एक नीति की बात सुनाना चाहती हूं।

एक दिन अगस्त्य ऋषि ने संकल्प ले लिया–मैं समुद्र को तीन चुल्लू में पी जाऊंगा। वे समुद्र का जल पीने लगे, समुद्र को पता लग गया। समुद्र गिड़गिड़ाया, बोला–कोई आओ, मेरी सहायता करो। स्वामी! उसने किनको बुलाया?'





'समुद्रश्री! तुम्हीं बताओ।'

'प्रियतम! सबसे पहले देवों को बुलाया, फिर श्रीकृष्ण को बुलाया, पृथ्वी को बुलाया, कल्पवृक्ष को आमंत्रण दिया, चन्द्रमा को आमंत्रण दिया, मैनाक आदि पर्वतों का आह्वान किया। किन्तु सहयोग के लिए कोई आगे नहीं आया।

प्रियतम! निराश होकर समुद्र बोला–

पीयूषेण सुरा श्रिया मुरारितुं मर्यादया मेदिनी,
स्वर्गं कल्पतरुः शशांककलया श्रीशंकरः शोभितः।
मैनाकादिनगाः नगारिभयतो यत्नेन संरक्षिता,
मच्चूलूकरणे घटोद्भवमुनिः केनापि नो वारितः।।

मैंने सबका कितना उपकार किया। **पीयूषेण सुरा**–मैंने देवताओं को तृप्त बनाया। किसके द्वारा? अमृत

के द्वारा। मैंने ही तो अमृत दिया था। आज देवता अमृतभोगी बन गये। अमृत खाते हैं, अमृत पीते हैं पर अमृत आया कहां से? मैंने ही अमृत का दान किया था। समुद्र में से निकला था अमृत।

श्रियामुररीतुं–मैंने श्रीकृष्ण को भी एक बड़ा अवदान दिया था लक्ष्मी का। लक्ष्मी कहां से आई? वह मेरे से ही निकली थी।

मैंने मर्यादा के द्वारा पृथ्वी को भी सुंदर बनाया। पृथ्वी की मर्यादा कौन कर रहा है? मैं ही तो कर रहा हूं।

कल्पवृक्ष हैं देवलोक में। कल्पवृक्ष कहां से आया? मैंने ही तो दिया था वह कल्पवृक्ष।

महादेव शंकर के ललाट पर चन्द्रमा आया कहां से? शिवजी को वह चन्द्राकार चिह्न मैंने ही तो दिया था।

मैनाक आदि पर्वतों को किसने बचाया? जब इन्द्र ने वज्र से इन पर्वतों को चूर-चूर करना चाहा तब मैंने ही मैनाक आदि पर्वतों को अपनी गोद में शरण दी थी।

आज जब अगस्त्य ऋषि मुझे तीन चुल्लू में पी जाना चाहते हैं तब कोई काम नहीं आ रहा है। न देवता काम आ रहे हैं, न शंकर काम आ रहे हैं, न श्रीकृष्ण काम आ रहे हैं और न वे पर्वत काम आ रहे हैं, न अमृत और कल्पवृक्ष काम आ रहे हैं। सब अपने स्वार्थ में लीन हैं।'

समुद्रश्री ने कहा–'प्रियतम! तुम सम्यक् सोचो। कठिन परिस्थिति में कोई काम नहीं आयेगा। आप पश्चात्ताप करेंगे इसलिए हमारी बात मानिए– जल्दबाजी में कोई काम मत कीजिए। आपको दीक्षा लेनी है, यह अच्छी बात है पर कम से कम सात-आठ वर्ष परिवार के साथ रहें। विवाह किया है, जो संबंध स्थापित किया है, उसमें समरस बनें। जो संयोग बना है, उसको भी महत्त्व दें। आज विवाह किया और आज ही दीक्षा की बात प्रारंभ कर दी। यह जल्दबाजी अच्छी नहीं है। काम करो तो ढंग से करो, सोच समझकर करो।

प्रियतम! नीतिकार कहते हैं–**सहसा विदधीत न क्रियां, अविवेकः परमापदां पदं।**

जल्दबाजी में काम मत करो। जिसमें विवेक नहीं है, वह बिना सोचे-विचारे जल्दबाजी में काम करता है। यह अविवेक परम आपदा का स्थान होता है।

प्रियतम! जल्दबाजी में काम करने वाला हमेशा पछताता है। कुछ समय ठहरो, परिवार में रहकर साधना करो, फिर दीक्षा की बात सोचना। आप यह चाहते हैं कि मैं शीघ्र मुनि बन जाऊं पर यह कैसे होगा?'

ए मन गमता सुख छोड़नै, यांसूं अधिकी करौ छो टाप।
जिम पिछतायौ बग नामा करसणी, तिम पछतावोला आप।।

'प्रियतम! मैं आपको सही बात कहती हूं–जो प्राप्त है, उसको तो आप छोड़ रहे हो और जो अप्राप्त है, उसके लिए जा रहे हैं। आपको वैसे ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा, जैसे बग नाम के किसान ने किया था।'

जम्बूकुमार ने अपना मौन खोला–'समुद्रश्री! कौन था बग किसान? कैसे पछताया था वह?'

'क्या आप नहीं जानते–बग किसान की कथा?'

'समुद्रश्री! मैंने नहीं सुनी वह कथा।'

'प्रियतम! मैंने पहले ही कहा था–आपने पढ़ाई कम की है। आप सदा आराम में रहे। जो लाड़ले इकलौते बेटे होते हैं, लाड़-प्यार में रहते हैं, वे पढ़ नहीं पाते।'

आजकल तो प्रायः सब पढ़ते हैं किन्तु पुराने जमाने में कहा जाता था–जो बड़े सेठ का बेटा है, लाड़-प्यार में रहता है, वह पढ़ाई में नहीं जाता।

समुद्रश्री ने व्यंग्यात्मक लहजे में कहा–'प्रियतम! आप तो लाड़-प्यार में रहे, पढ़ाई आपने की नहीं।'

जो बच्चा लाड़ला होता है, उसमें कुछ कमी रह जाती है। पूज्य कालूगणी बहुत बार कहा करते थे कि मेरे पैर कमजोर रह गये। पूछा गया–क्यों? कालूगणी ने कहा–मैं इकलौता बेटा था। मां छोगांजी बाहर जाने नहीं देती थीं। उन्हें यह भय रहता कि कहीं बाहर चोट लग न जाये इसलिए मैं खेल नहीं पाया। बच्चा खेलता नहीं है तो वह कमजोर रह जाता है। मेरे पैर कमजोर रह गये। चालीस-पचास वर्ष के आसपास कालूगणी ने गेडिया ले लिया था।

'प्रियतम! आप लाड़-प्यार में पले-पुसे, बड़े घर के आदमी रहे। न पूरी पढ़ाई की और न आपको अच्छा गुरु मिला, न नीति को जाना। फिर भी कोई बात नहीं। अब आप जानना चाहते हैं तो मैं आपको बग किसान की कथा सुनाऊं।'

गाथा
परम विजय की

एक किसान रहता था थली प्रदेश में। वहां ऊंचे-ऊंचे रेत के टीले बहुत होते हैं। पानी कम होता है।

उत्तराध्ययन में आता है–थलाओ–थल से पानी नीचे चला जाता है, टिकता नहीं है। ऊंचे-ऊंचे टीलों से घिरे गांव में बग नाम का किसान रहता था। उसकी शादी हुई थी मेवाड़ में। वह सजल प्रदेश था। एक दिन वह ससुराल गया। उसका बहुत स्वागत हुआ। उसके लिए विशेष प्रकार का भोजन बनाया गया। ससुराल में मिष्टान्न बनाए गए। मिठाई के नाम का ही आकर्षण है। किसान ने ससुराल में भोजन किया। तृप्त हो गया। भोजन के बाद अपने साले से पूछा–'सालाजी! बताओ, यह इतना मीठा कैसे होता है?'



साला बोला–'गुड़ और चीनी से।'

'क्या उसकी खेती होती है?'

'हां।'

'उसका बीज कौन-सा है?'

'ईख है उसका बीज।'

'ईख कहां होती है?'

'हमारे खेत में होती है।'

'मुझे भी दिखाओ।'

साला बहनोई को अपने खेत में ले गया। ईख को देखा, साले ने कहा–यह ईख है, मिठाई का मूल है। इससे गुड़ बनता है, राप बनती है, चीनी बनती है, शक्कर बनती है। फिर सारी मिठाइयां बनती हैं।

किसान ने कहा–'अच्छा, मेरे बात समझ में आ गई।' वह अपने आपको होशियार मानता था। उसने मन में पूरी योजना बना ली। जब जाने लगा तब ईख के बीज को खरीदा, गाड़ों में भरकर अपने गांव में आया। महीना था आसोज-कार्तिक का। गांव पहुंचते ही घरवालों से बोला–'देखो, आज एक बहुत बड़ा तत्त्व, रहस्य लाया हूं तुम्हारे लिए।'

'क्या रहस्य है?'

'यदि मेरी बात मानो तो रोज मीठा खाओ, कभी कोई कमी नहीं रहेगी।'

'भाई! बात क्या है।'

'मैं बीज लाया हूं मिठाई का। इस खेती को तो कटा दो और ईख की बुआई कर दो। उसने भरे ईख की ओर इशारा करते हुए कहा।'

घर के बुजुर्ग बोले–'कितनी मूर्खता की बात कर रहा है। खेती तो पकने को आई है। तुम कहते हो–इसको कटा दो। कैसे कटाई करें? ईख यहां होगी कैसे? पीने को तो पूरा पानी नहीं है। ईख कैसे पैदा होगी? ईख को पानी बहुत चाहिए। पानी के बिना ईख की खेती होती नहीं है। आखिर उसमें रस कहां से आता है? वह पानी से ही तो आता है। **जलं सर्वरसानां रसम्**–सब रसों का रस है जल। यहां जल की बहुत उपलब्धता ही नहीं है तो फिर यह सरसता आयेगी कहां से?'

परिवारजनों ने बहुत समझाया पर वह समझ नहीं पा रहा था। वह भी घर का एक मुखिया था। आग्रही भी था। उसने कहा–यह बात मैं नहीं मानूंगा। मैं सारा रहस्य लेकर आया हूं। जिस व्यक्ति को रहस्य मिल जाता है, वह सफल हो जाता है। मुझे रहस्य मिल गया है। तुम चिंता मत करो। मैं कहूं, वैसे कर लो।

जैसे प्रौद्योगिकी का रहस्य मिल जाता है, टेक्नोलॉजी मिल जाती है तो व्यक्ति बहुत आगे बढ़ जाता है। मैं तो ऐसी टेक्नोलॉजी लेकर आया हूं कि तुम्हें मीठा ही मीठा कर दूंगा। सारा भोजन मीठा खिलाऊंगा।

उसने किसी का कथन नहीं माना। जो फसल पकने जा रही थी, कटा दी। फसल कटाकर ईख की बुआई कर दी। पानी तो वहां था नहीं। अगर आषाढ़ सावन का महीना होता, तो फिर भी थोड़ा बहुत पानी मिल जाता। महीना था आसोज-कार्तिक का। वर्षा ऋतु समाप्त हो चुकी थी। पानी बरसा नहीं। न कोई नहर और न कोई पानी का स्रोत। ईख का बीज बोया। देखते-देखते थोड़े दिनों में सूख गया।

उसने देखा–ईख का फल सूख रहा है, पनप नहीं रहा है। घरवालों के पास आया, आकर बोला–ईख की खेती तो पनप नहीं रही है।

उन्होंने कहा–'हमने पहले ही तुमको बहुत समझाया था कि तुम ऐसी मूर्खता मत करो। जो प्राप्त फसल है, जो फसल पक रही है उसको तो तुम छोड़ना चाहते हो और जिस ईख की आशा करते हो, मिठाई की आशा करते हो, उसका कोई भरोसा नहीं है। तुम ऐसी मूर्खता मत करो।'

'प्रियतम! वह बग किसान बड़ा दुःखी बन गया। एक ओर घरवालों का आक्रोश, दूसरी ओर अपनी असफलता का मन में रोष। उसने सोचा–मैं असफल हो गया। अपनी असफलता पर उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ।'

'प्रियतम! आपने यह कहानी ध्यान से सुनी।'

'हां।'

'प्रियतम! विष्णु शर्मा ने राजकुमारों को कहानी सुनाई थी और मैं आपको सुना रही हूं, जैसे बग किसान पछताया आप भी वैसे ही पछताएंगे। आपको इतना बड़ा घर मिला है, इतना बड़ा परिवार मिला है, इतनी सम्पदा मिली है और हम आठों नवोढ़ाएं आपके चरणों में समर्पित हैं, आपके हर सुख-दुःख की सहचरी हैं। आपको जो यह प्राप्त है, उसको तो छोड़ रहे हैं और अप्राप्त की आशा कर रहे हैं। आप सोच रहे हैं–मैं साधु बनूंगा तो मुझे स्वर्ग मिलेगा, अप्सराएं मिलेंगी। यह तो चला जाएगा और वह मिलेगा, इसका कोई भरोसा नहीं है। क्या यह मूर्खता नहीं है? खड़ी फसल को काटकर नई फसल की आशा करना कितना उचित है? आपको आगे क्या मिलेगा, आपको यह भी पता नहीं है। मरकर आप रहेंगे या नहीं? कहां जायेंगे?'

समुद्रश्री ने यह वक्तव्य इंद्रिय चेतना के स्तर पर दिया। इंद्रिय चेतना में परोक्ष का स्वीकार नहीं है। परोक्ष और प्रत्यक्ष दो हैं। एक होता है प्रत्यक्ष। एक होता है परोक्ष। इंद्रिय चेतना में केवल प्रत्यक्ष का स्वीकार है, परोक्ष का स्वीकार नहीं है। आंख देखती है पर जो सामने है उसको देखती है। यह उसकी सीमा है। वह कितनी दूर देखेगी, इसकी सीमा है। परोक्ष को बिल्कुल नहीं देख सकती, दीवार के पीछे क्या है, आंख बिल्कुल नहीं देख सकती। जो सामने है, वह दिखाई देगा। सामने यवनिका कर दो, परदा डाल दो, कुछ नहीं दिखेगा।

आंख की सीमा है। सुधर्मा सभा में इतने परमाणु स्कन्ध हैं, इतने सूक्ष्म पुद्गल स्कन्ध हैं, अगर उन सबको स्थूल बनाया जाये तो पूरे हिन्दुस्तान में ही नहीं, आज की दुनिया में भी न समाएं। इतने परमाणु स्कन्ध हैं पर आंख सूक्ष्म को नहीं देखती। आंख प्रत्यक्ष को देखती है, परोक्ष को नहीं देखती।



समुद्रश्री ने जम्बूकुमार को संबोधित करते हुए कहा–'प्रियतम! किसने देखा है कि मरकर आप स्वर्ग में कहां जायेंगे? आपको पता है क्या? यह आपने कैसे मान लिया कि मैं साधु बनूंगा, साधना करूंगा, केवली बनूंगा।'

'प्रियतम! मैं ठीक कहती हूं कि आप बग किसान की तरह पछताओगे। पश्चात्ताप के क्षणों में कोई आड़े नहीं आयेगा। जैसे समुद्र ने पछतावा किया, बग किसान ने किया। आप भी करेंगे। इसलिए जिद्दी मत बनो। कहते हैं कि स्त्रियां ज्यादा जिद्दी होती हैं पर आप पुरुष होकर भी जिद्दी बन गये। जिद मत करो, मेरी बात को मानो, ठंडे दिमाग से सोचो। एकांत में बैठकर सोचो, जल्दबाजी में कोई कदम मत उठाओ। गहराई से सोचो।'

यह सारी बात कौन बोल रहा है? क्या समुद्रश्री बोल रही है? वस्तुतः समुद्रश्री नहीं बोल रही है, इंद्रिय चेतना बोल रही है। इंद्रियां अपनी तृप्ति चाहती हैं। कान अच्छा शब्द सुनना चाहता है, आंख अच्छा रूप देखना चाहती है, नाक सुगंध का, परिमल का आस्वाद लेना चाहता है, जीभ सरस चीजें खाना चाहती है। स्पर्शन इंद्रिय कोमल स्पर्श चाहती है। इंद्रियां अपना-अपना विषय चाहती हैं। जब आदमी इंद्रिय चेतना की भूमिका पर होता है उसका निर्णय भी यही होगा, उसका कथन भी यही होगा।

पिब खाद च चारुलोचने, यदतीतं वर गात्र तन्नते।
नहि भीरुगतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम्।।

खूब खाओ, पीओ, मौज करो, और कुछ करने की जरूरत नहीं है। किसने देखा है–आत्मा है, पुनर्जन्म है। यहां तक कहा गया–**'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत'**–पास में कुछ नहीं है तो ऋण करके भी घी का सेवन करो। पुराने जमाने में घी का प्रयोग ज्यादा था, घी को रत्न मान लिया गया। यह कहा गया– ऐसा तृप्त हो गया मानो सवा सेर घी पी लिया। लोग पी जाते थे सवा सेर घी। मण का तेरिया–एक मण घी और तेरह लोग बैठते तो पूरा घी पी जाते पानी की तरह। हमने भी देखा है कुछ लोगों को। वे घी को ऐसे पीते जैसे पानी पी रहे हैं। ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत–घी पीओ। यदि सहज सुलभ नहीं है, पास में पैसा नहीं है तो ऋण लेकर भी पीओ।

आज के युग में लोग इस भाषा में कहेंगे–**ऋणं कृत्वा सुरां पिबेत**–ऋण करो और शराब पीते चले जाओ।

समुद्रश्री बोली–'प्रियतम! आप आगे की चिंता मत करो। न कोई परलोक है, न कोई जन्म है, न कोई मरण है, न कोई कर्म है। जो सुख के साधन प्राप्त हैं, उन्हें भोगें।'

इंद्रिय चेतना का वक्तव्य सामने आ गया। इसको नास्तिकता कहें, अधर्म का सिद्धांत कहें, कुछ भी कहें।

समुद्रश्री ने इंद्रिय चेतना का प्रतिनिधित्व कर दिया और प्रतिनिधित्व भी सशक्त स्वर में किया।

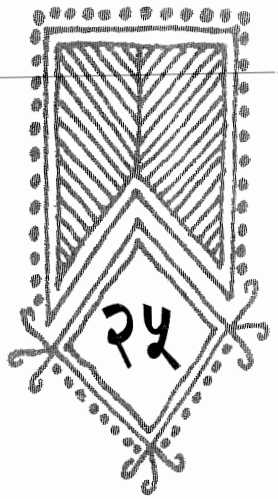
जम्बूकुमार ने सारी बात सुनी, बोला–'समुद्रश्री! तुम बोलने में तो बहुत चतुर हो। आज मुझे पता चला कि तुम बहुत वाक्पटु भी हो। तुमने अपना पक्ष रखा है, बहुत अच्छी तरह रखा है। तुम मान लो कि मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं, समझदार नहीं हूं। अब तुम्हारे जैसी पत्नी मिल गई तो एक घंटा में ही मैं समझदार बन जाऊंगा।'

'समुद्रश्री! तुमने बहुत अच्छा वक्तव्य दिया है पर मेरी बात भी सुनना चाहोगी या अपनी वाक्पटुता जारी रखोगी?'

जम्बूकुमार ने मधुर स्वर में यह कहा तो समुद्रश्री को मौन हो जाना पड़ा।

जम्बूकुमार अब कुछ बोलेगा, वह होगा अतीन्द्रिय चेतना का वक्तव्य। जो इंद्रिय चेतना से परे है, उसका क्या वक्तव्य होगा?

यह जिज्ञासा सब नवोढ़ा के मन में उभर रही है–क्या जम्बूकुमार समुद्रश्री की युक्तियों का खंडन कर सकेगा?



दो बहुत प्रसिद्ध शब्द हैं–भौतिकवाद और अध्यात्मवाद। भौतिकवाद का आधार है इंद्रिय चेतना, इंद्रिय प्रत्यक्ष। अध्यात्मवाद का आधार है अतीन्द्रिय चेतना, अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष। इन दोनों का संघर्ष निरन्तर रहा है। दोनों समानान्तर रेखाएं हैं, साथ-साथ चलती हैं पर मिलती कभी नहीं। दोनों में दिशा-भेद भी है। आगे जाकर दिशाएं भी बदल जाती हैं। लक्ष्यभेद भी है, चिंतन और कार्य का भेद भी है। आध्यात्मिक भूमिका पर जो व्यक्ति होता है, वह पदार्थ को पदार्थ की दृष्टि से देखता है। भौतिक दृष्टिकोण वाला व्यक्ति पदार्थ को प्रियता और अप्रियता की दृष्टि से देखता है। अलग-अलग दृष्टिकोण बनता है और अलग-अलग व्यवहार होता है।

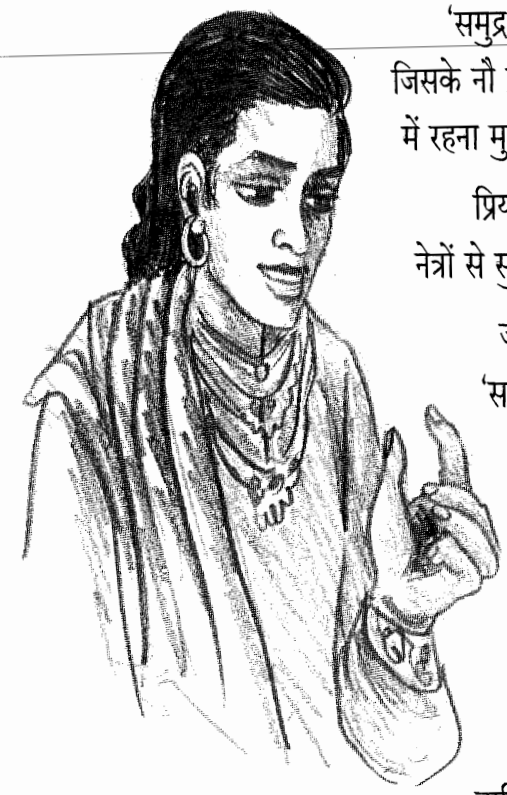


जम्बूकुमार ने कहा–'समुद्रश्री! तुम बंधन में बांधना चाहती हो। यह इंद्रिय चेतना बांधती है, आकर्षण पैदा करती है। मैं इस बंधन और आकर्षण से मुक्त होना चाहता हूं।'

जम्बूकुमार ने दृष्टांत की भाषा का प्रयोग करते हुए भावपूर्ण शब्दों में कहा–'समुद्रश्री! तोता इस पिंजरे में कब तक रहेगा। बंधन आखिर बंधन ही है।'

'समुद्रश्री! पिंजरा पिंजरा ही है, चाहे लोहे का पिंजरा मिले या सोने का। एक तोता राजमहल के सोने के पिंजरे में बंद है। उसे सारी सुख-सुविधाएं प्राप्त है। राजा स्वयं उसे अपने हाथ से नहलाता है। स्वादिष्ट फल और मेवा खिलाता है। उसे बहुत स्नेह देता है। उसकी हर इच्छा पूरी करता है। इतना सब कुछ होने पर भी पिंजरा उसे एक बंधन प्रतीत होता है। वह तोता उस जंगल में, पेड़ के उस कोटर में, जहां जन्मा था वहां जाना चाहता है, अनंत आकाश में उड़ान भरना चाहता है। पिंजरे में बंद रहना उसको पसंद नहीं है।'–दृष्टांत उपसंहार करते हुए जम्बूकुमार ने हृदय को झकझोरने वाला प्रश्न किया– 'समुद्रश्री! क्या तुम जानती हो–यह शरीर क्या है?'

'प्रियतम! आप बताएं–यह शरीर क्या है?'



'समुद्रश्री! यह शरीर पिंजरा ही तो है। यह ऐसा विचित्र पिंजरा है, जिसके नौ द्वार खुले हैं। उस पिंजरे में यह जीव रह रहा है। इस पिंजरे में रहना मुझे अब पसंद नहीं है। मैं इस बंधन को तोड़ना चाहता हूं।'

प्रियतम की इस आध्यात्मिक भाषा को समुद्रश्री ने विस्फारित नेत्रों से सुना।

जम्बूकुमार ने एक ओर कथा-वृत्त प्रस्तुत करते हुए कहा–'समुद्रश्री! तुमने यह बात सुनी होगी–एक बार सात मित्र एक साथ चले। नदी के इस तट को पार कर उस तट पर जाना था। रात का समय था। उन्होंने शराब पी ली। सब शराब में मस्त बन गए। बेभान से हो गए। वे अपनी धुन में चले जा रहे थे। तट पर पहुंचे तो देखा–नौका तो खड़ी है पर नाविक नहीं है। कुछ देर तक प्रतीक्षा की। सोचा–कोई नाविक आए तो उस पार चले जाएं पर कोई नाविक नहीं आया। उन्होंने निश्चय किया–हम नाविक की कब तक प्रतीक्षा करेंगे? नौका सामने खड़ी है। हम भी नौका चलाना जानते हैं। आओ बैठ जाएं।

इस निश्चय के साथ सारे नौका में बैठ गए। दो व्यक्तियों ने हाथ में पतवार ली और नौका को खेना शुरू किया, चलाना शुरू किया। चलाते गये, चलाते गये। वे नशे में मस्त और धुत थे। रात भर चलाते रहे। आखिर सुबह होने को आई। थोड़ा उजला-उजला प्रभात सा हुआ। देखा–हम तट पर पहुंच गए हैं। ध्यान से उन्होंने देखा तो आश्चर्य से भर गए–अरे! हम नदी के उसी तट पर खड़े हैं, जिस तट पर चढ़े थे। हमने रात भर नौका को खेया फिर भी हम दो कदम आगे नहीं बढ़े। उनका नशा भी थोड़ा उतरा। एक व्यक्ति बोला–यह कैसे हुआ? रात-भर नौका को खेया और पहुंचे कहीं नहीं। जहां थे, वहां रहे। क्या हुआ? खोज करो। वे नौका से नीचे उतरे। चारों तरफ से ध्यान दिया तो देखा–नौका चारों ओर से बंधी हुई है। रस्सा खोला नहीं और नाव को खेते चले गये। कैसे पहुंचते मंजिल के पास?'

जम्बूकुमार बोला–'समुद्रश्री! मैं उस रस्से को खोलना चाहता हूं। मैं वैसा मूर्ख बनना नहीं चाहता। मैं नशे में धुत नहीं हूं कि सारी रात को नौका खेऊं, रस्सा खुले नहीं और नौका वहीं की वहीं खड़ी रहे। मैं इस बंधन को तोड़ना चाहता हूं।'

'समुद्रश्री! तुमने महावीर की इस शाश्वत वाणी को सुना है–

शरीर माहु नावत्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो।।

यह शरीर है नौका। यह जीव है नाविक और यह संसार है समुद्र। जो जागरूक हो जाता है, महर्षि हो जाता है, महान् लक्ष्य बना लेता है, महैषी बन जाता है, वह उस समुद्र को पार कर देता है।'

'समुद्रश्री! मैं इस शरीर का उपयोग एक नौका की तरह करना चाहता हूं। मैं शरीर के बंधन को स्वीकार नहीं करूंगा। केवल शरीर को एक नौका बनाकर इस संसार समुद्र को पार करना चाहता हूं।'

'तुम जरा ध्यान दो–हमने इस शरीर को बंधन बनाया है। हम उसके साथ इतने जुड़ गये हैं कि हमारे चारों ओर बंधन ही बंधन चल रहा है। हमने उसको खोलने का, तोड़ने का प्रयत्न नहीं किया। अब इस बंधन को काटना है, नौका से चिपकना नहीं है।'

'समुद्रश्री! एक बार दो आदमी नौका पर बैठे। उन्हें पार जाना था। नौका पार पहुंच गई। एक आदमी नौका से उतर गया। दूसरा आदमी बोला–'भाई! मैं तो नहीं उतरूंगा।'

उसने पूछा–'क्यों?'

उसने कहा–'इस नौका ने हमारा कितना भला किया है। हमें यहां तक पहुंचा दिया। भला इस नौका को मैं कैसे छोड़ सकता हूं? वह नौका से चिपका हुआ बैठा रहा। नाविक परेशान हो गया। वह व्यक्ति भी परेशान हो गया। वहां बैठे-बैठे क्या खाये? क्या पीये पर उसने पक्का आग्रह कर लिया कि नौका से चिपककर रहूंगा, नौका को छोडूंगा नहीं। तुम बताओ–क्या ऐसा व्यक्ति समझदार होता है?'

समुद्रश्री बोली–'प्रियतम! जो नौका से चिपक जाता है, वह समझदार कैसे हो सकता है? मनुष्य नौका से चिपकने के लिए नहीं है। नौका का इतना ही उपयोग है कि वह पार पहुंचा दे और यात्री उतर जाए। नौका के साथ यात्री का इतना ही संबंध है।'

'समुद्रश्री! यह शरीर एक नौका है। इसके साथ इतना ही संबंध है कि यह शरीर हमें पार पहुंचा दे। यह नौका संसार समुद्र के पार पहुंचा दे। इसका इतना ही उपयोग करना है। इस शरीर से चिपककर नहीं रहना है, शरीर में मूर्च्छित नहीं होना है, शरीर में आसक्ति नहीं करना है। केवल नौका को काम में लेना है। मैं तो वही काम करना चाहता हूं। तुम स्वतंत्र हो, तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसा करो।'



'प्रियतम! आखिर आप प्राप्त सुखों को छोड़कर अप्राप्त सुख की आशा ही तो कर रहे हैं।'

'समुद्रश्री! प्राप्त सुख को छोड़कर अप्राप्त की इच्छा कौन करता है? मैं तो भौतिक सुख की इच्छा बिल्कुल नहीं करता। तुम जिस सुख की चर्चा कर रही हो, वह सुख मुझे मान्य ही नहीं है। मैं उस सुख को सुख मानता ही नहीं हूं।'

समुद्रश्री ने साश्चर्य पूछा–'प्रियतम! यह कैसे? जो सुख है, वह प्रत्यक्ष है। उसे आप कैसे अस्वीकार कर रहे हैं?'

'समुद्रश्री! तुम इस तत्त्व को नहीं जानती–वह सुख, जिसके पीछे दुःख निरन्तर चल रहा है, वस्तुतः सुख नहीं है। वह ऐसा सुख है, जब तक न भोगो, तब तक सुख लगता है। यदि उसको भोगो तो उसके पीछे दुःख आता है। दुःख, जिस सुख के पीछे-पीछे चल रहा है, मैं उसे सुख नहीं मानता। मेरी कल्पना का सुख वह है जिसके साथ दुःख का कोई अनुबंध नहीं है। जिसके न पहले दुःख हो और न पीछे दुःख, मैं उस सुख को सुख मानता हूं। तुम जिस सुख की बात कर रही हो, मैं उसकी न तो इस लोक में इच्छा करता और न परलोक में। तुम्हारा बग किसान का दृष्टांत कहां काम आयेगा? मैं बग किसान जैसा मूर्ख नहीं हूं जो बाजरी की खड़ी फसल की कटाई कर ईख (सेलड़ी) बोने का प्रयत्न करूं।'

'समुद्रश्री! मेरी सुख की मान्यता भौतिक पदार्थों की उपलब्धि से जुड़ी हुई नहीं है। मेरा सुख का सिद्धांत विलक्षण है। सुख वही है, जहां दूसरे की कोई अपेक्षा ही नहीं है, जो निरपेक्ष है। वह सुख, जहां दूसरे की अपेक्षा हो, कैसा सुख होगा?'

'प्रियतम! आपकी यह बात समझ से परे है। ऐसा लग रहा है, जैसे आप कोई पहेली बुझा रहे हैं। यह पहेली की भाषा हम कैसे समझ सकती हैं?'

'समुद्रश्री! तुम पहेली की भाषा नहीं समझ सकती। कहानी की भाषा तो समझ सकती हो।'

'हां प्रियतम! वह सरस होती है। उसकी बात सीधे गले उतर जाती है।'

'समुद्रश्री! तुमने मुझे एक कहानी सुनाई। मैं भी तुम्हें एक कहानी सुनाना चाहता हूं, जिससे मेरा मत समझ में आ जाए।'

'प्रियतम! सुनाइए। हमें भी कुछ बोध होगा।'

'समुद्रश्री! एक राजा को अपने राज्य का बड़ा गर्व था। वह सोचता था–मेरा राज्य कितना बड़ा है, कितना अच्छा है। मेरे पास कितनी संपदा है। एक बार एक त्यागी, तपस्वी मुनि का योग मिल गया। मुनि ने राजा को कुछ वैराग्य की बातें बताई। राग की तो बातें सारी दुनिया में चलती हैं। वैराग्य की बात तो कोई मुनि साधक ही बता सकता है। यदि कोरा राग ही राग चले तो पता नहीं आदमी कहां चला जाए। थोड़ी-थोड़ी वैराग्य की बातें सुनें तो कम से कम कुछ बचाव हो जाए।'

राजा को अपनी राज्य संपदा का गर्व था। उसने कहा–'महाराज! मेरे पास कितनी सम्पदा है, कितना बड़ा राज्य है।'

मुनि बोले–'राजन्! तुम्हारा राज्य और संपदा कितनी बड़ी है, मैं उसको देख रहा हूं। तुम्हारी जितनी सम्पदा है, धन है, वैभव है उसका मूल्य है दो गिलास पानी।'

राजा इस मूल्यांकन से आहत हुआ, उसने हताश स्वर में कहा– 'महाराज! ऐसा मूल्यांकन आप करते हैं? यह बड़ा आश्चर्य है। ऐसा मूल्यांकन कौन करता है? मैं आपको एक घटना के द्वारा बताना चाहता हूं। एक व्यक्ति सवा लाख का हीरा लेकर साग-भाजी की बाड़ी में गया। उसने माली से कहा–'यह लो, इसका मूल्य बताओ।' माली बोला–'दो मूली और दो गाजर।' फिर वह किसी कुम्हार के पास गया, पूछा–'इसका मूल्य बताओ।' कुम्हार बोला–'भाई! अच्छा तो लग रहा है। इसका मूल्य दो घड़ा हो सकता है।' उसने वह किसी वस्त्र व्यवसायी को दिखाया, पूछा–'इसका मूल्य क्या है?' उसने कहा–'कपड़े के दो थान।' वह किसी जौहरी से मिला। उसने कहा–'इसका मूल्य तो बहुत है, यह सवा लाख का हीरा है।'

'महाराज! आपने कैसा मूल्यांकन किया है? आपने उस माली, कुम्हार और दुकानदार की तरह मूल्यांकन कर दिया कि मेरे राज्य और सम्पदा का मूल्य है दो गिलास पानी। यह कैसे किया आपने? मैं नहीं समझ सका आपकी बात को।'

मुनि ने राजा की बात का प्रतिवाद नहीं किया। बातचीत आगे बढ़ी। मुनि ने कहा–'राजन्! तुम एक बार वन-यात्रा के लिए गए। संयोग ऐसा मिला कि तुम्हारा सारा परिकर पीछे रह गया। जेठ का महीना। तपती धूप। भयंकर लू का प्रकोप। पानी पास में रहा नहीं। कंठ सूखने लगे। प्यास के कारण भयंकर

स्थिति हो गई। इतना सुकुमार तुम्हारा शरीर। तुम मरणान्तक वेदना का अनुभव करने लगे। श्वास कंठ तक आ गया। ऐसे लगा कि जैसे प्राण पंखेरू उड़ने वाले हैं। उस समय अचानक एक कोई चरवाहा आया। उसने तुम्हारी अवस्था को देखा। तुम्हारी बोलने की स्थिति नहीं रही। तुमने हाथ से संकेत किया–'पानी पिलाओ।' उसने तत्काल ठंडा-ठंडा एक गिलास पानी पिला दिया। तुम्हारे प्राण बच गए। बोलो–तुम उसके लिए क्या करोगे?'

'महाराज! ऐसी स्थिति होती है, उस स्थिति में कोई पानी पिलाता है, मेरे प्राण बचा देता है तो मैं तो इतना प्रसन्न होऊंगा कि उसको आधा राज्य दे दूंगा।'

'ठीक बात है राजन्! तुम पानी पीकर कुछ सचेत हुए। नगर की ओर आए। सैनिक मिल गये, परिवार मिल गया, तुम महल में आए। गर्मी का मौसम था। शरीर में गर्मी बढ़ गई और मूत्रावरोध हो गया, पेशाब बंद हो गया। तुम फिर तड़पने लगे।'

जब मूत्रावरोध होता है बड़ी समस्या होती है। हमने भी कुछ लोगों को तड़पते हुए देखा है जिनके मूत्रावरोध की समस्या थी। व्यक्ति बहुत तड़पता है, बेहाल-सा हो जाता है।

'राजन्! उस स्थिति में तुम वैसे तड़प रहे थे, जैसे बिना पानी के मछली तड़पती है। उस समय कोई चिकित्सक आए, तुम्हारी समस्या का समाधान कर दे। वह कोई दवा दे और मूत्रावरोध मिटा दे तो तुम क्या करोगे?'

'महाराज! इतना खुश होऊंगा कि उसे आधा राज्य दे दूंगा।'

मुनि बोले–'राजन्! अब बताओ, तुम्हारे राज्य का मूल्य कितना हुआ। आधा राज्य एक गिलास पानी पिलाने वाले को दिया और आधा राज्य एक गिलास पानी निकालने वाले को। तुम्हारे राज्य का मूल्य हुआ दो गिलास पानी–एक गिलास भीतर डाला और एक गिलास बाहर निकाला।'



राजा को अब समझ में आया कि सचाई क्या है? आखिर पदार्थ का मूल्य कितना है!

जम्बूकुमार बोला–'समुद्रश्री! यह सम्पदा, यह सुख, जो नश्वर है, चले जाने वाला है, जिसे हमने मोहवश सुख मान रखा है, वह वास्तव में सुख नहीं है। उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है।'

'समुद्रश्री! एक आदमी खुजली करता है। कितनी मीठी लगती है। खुजलाना बहुत अच्छा लगता है। बड़े-बड़े समझदार आदमी भी स्वयं को रोक नहीं पाते। छोटे बच्चे तो रोक ही नहीं पाते। कभी-कभी माताएं हाथ बांध देती हैं इसलिए कि शरीर लहूलुहान न हो जाए। खुजली के कीटाणु प्रबल होते हैं तब खुजलाना कितना अच्छा लगता है। वैसे ही मोह के कीटाणु हमारे भीतर हैं, वे प्रबल बने हुए हैं, इसलिए हमें यह पदार्थ-भोग अच्छा लग रहा है।'

'समुद्रश्री! ऐसा लगता है कि तूने महावीर की वाणी को शायद पढ़ा नहीं है। तुम कह तो यह रही हो कि आप भोले हैं, आप पढ़े-लिखे नहीं हैं, समझदार नहीं हैं पर मुझे लगता है कि तुमने भी महावीर की वाणी को पढ़ा नहीं है। समुद्रश्री! महावीर कहते हैं–

उवलेवो होइ भोगेसु अभोगी णोवलिप्पइ।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चइ।।

जहां भोग है वहां उपलेप होता है। लेप, बंधन भोग के साथ चलता है। जो अभोगी है, भोग से दूर रहता है उसके उपलेप नहीं होता, बंधन नहीं होता। भोगी संसार में भ्रमण करता है और अभोगी मुक्त हो जाता है।'

जयाचार्य ने इस महावीर वाणी का बहुत सुन्दर अनुवाद किया है–

अग उपलेप लगे भोगी रै, अभोगी तो नाहि लिपायौ रे।
भोगी संसार में भ्रमण करै छै, अभोगी तो जात मुकायो रे।।

भोगी के लेप लगता है। अभोगी लिप्त नहीं होता। भोगी संसार में भ्रमण करता है, अभोगी मुक्त हो जाता है।

'समुद्रश्री! मैंने इस सचाई को समझा है। यह तुम्हारी इच्छा है कि तुम इसे समझो या नहीं। मैंने इतनी बात तुमको बताई। इस पर भी अगर नहीं समझती हो तो लो एक कहानी मैं तुमको और सुनाऊं।'

'प्रियतम! अवश्य सुनाइए। आपकी कथ्य शैली मुझे पुनश्चिंतन के लिए विवश कर रही है।'

'समुद्रश्री! एक कौआ था। वह जंगल में रहता था। जंगल में एक हाथी मरा, उसका विशालकाय कलेवर पड़ा रहा। कौआ उसी पेड़ पर रहता था। उसने सोचा–बहुत अच्छा हुआ, अब कहीं खाने के लिए जाने की जरूरत नहीं है। वह हाथी के शरीर पर बैठ गया, मांस खाता रहा। खाते-खाते हाथी के कपाल का मांस खा लिया। हाथी का सिर विशाल होता है। वहां एक बड़ा कोटर बन गया। कौए ने सोचा–मुझे बहुत अच्छा घर मिल गया। उसने वहीं अपना घोंसला बना लिया। वह वहीं बैठा रहता। जब इच्छा होती, मांस खाता रहता। दूसरे कौए आते, मांस खाते, उड़कर चले जाते। वह उड़कर नहीं गया, वहीं टिक गया, उसमें लिप्त हो गया।

वर्षा का मौसम आया। तेज वर्षा हुई। हाथी का कलेवर पानी में बह गया। नदी के प्रवाह में बहता हुआ वह कलेवर समुद्र में चला गया। कौआ वहीं बैठा रहा, उड़ा नहीं। क्योंकि उसमें इतनी आसक्ति हो गई कि वह छोड़ नहीं पा रहा था। समुद्र में जो मगरमच्छ आदि जीव थे, उन्होंने हाथी के शरीर को खा लिया। कोरी कोटर की हड्डी रह गई और कौआ रह गया। अब वह क्या करे? कौए ने सोचा–अब उड़ना चाहिए। आकाश में उड़ान भरी, कुछ उड़ा, थक गया। न ठहरने के लिए कोई पेड़ मिला, न निवास करने के लिए कोई स्थान मिला।

वह नीचे उतरा, कोटर में ठहरा। फिर उड़ा। दो-चार बार ऐसा किया, थक गया, थक कर चूर हो गया, परेशान हो गया। कोई विश्राम का स्थान नहीं मिला, आखिर थककर पानी में गिरा और वहीं मर गया।'

'समुद्रश्री! यही हालत विषयासक्त व्यक्ति की होती है। जो आदमी जीवनभर विषय में आसक्त रहता है, उसको कभी छोड़ता नहीं है, वह मृत कलेवर में बैठे हुए कौए की भांति कहीं बहकर समुद्र में चला जाता है। उसको रहने के लिए कोई अवकाश, स्थान नहीं मिलता। उसकी वही गति होती है, जो उस कौए की हुई। समुद्रश्री! तुम इस सचाई को समझो।'

जम्बूकुमार की अतीन्द्रिय चेतना का यह प्रवचन सुना, सचाई सामने आई तो समुद्रश्री का मन भी बदल गया। उसने सोचा–बात तो ठीक कही जा रही है। हमने तो समझा था कि प्रियतम समझदार नहीं हैं पर

ये तो गुदड़ी में छिपे लाल हैं। बहुत समझदार हैं। इन्होंने बात भी बहुत अच्छी कही है और सत्य भी यही है। हम मोह में हैं, मूर्च्छा में हैं। मानें या न मानें पर जो प्रियतम कह रहे हैं वह ऐसा सच है जिसे तर्कों से काटा नहीं जा सकता। जहां सचाई परोक्ष होती है वहां तर्क काम देता है। यह तो आंखों के सामने प्रत्यक्ष है। यह पदार्थ का स्वभाव है, सत्य है। **स्वभावे तार्किका भग्नाः**–जहां स्वभाव है वहां तर्क कोई काम नहीं देता। मूर्च्छा के कारण हमें सचाई का पता नहीं चलता। हम समझ नहीं पा रहे हैं किन्तु यह सत्य है कि यह भोग और सुख की कल्पना आदमी को उलझाने वाली है, इसलिए हमें भी दूसरी बात सोचनी चाहिए।

जम्बूकुमार ने समुद्रश्री की ओर दृष्टिक्षेप करते हुए पूछा–'समुद्रश्री! क्या चिंतन है तुम्हारा? इसका क्या उत्तर देना चाहती हो?'

समुद्रश्री बोली–'प्रियतम! अब चर्चा समाप्त है। न कोई प्रश्न और न कोई उत्तर।'

'बोलो, तुम क्या चाहती हो।'

'जो आप चाहते हैं वही मैं चाहती हूं।'

सातों नवोढ़ाएं एक साथ व्यंग्यात्मक भाषा में बोल उठीं–'समुद्रश्री! तुमने हमारा अच्छा प्रतिनिधित्व किया! हमने तो सोचा था–तुम हमारा काम करोगी पर तुम तो कमजोर निकली। एक झटका लगा जम्बूकुमार का और तुम पिघल गई। ऐसी ठंडी बर्फ, हाथ से छुआ और पिघल गई। निकम्मी हो तुम। बैठ जाओ अब। तुमसे काम नहीं होगा। तुमने हमें धोखा दे दिया। तुमने यह नहीं सोचा–पीछे सात बैठी हैं, उनका क्या होगा? तुमने हुंकारा भर लिया, अच्छा नहीं किया।'

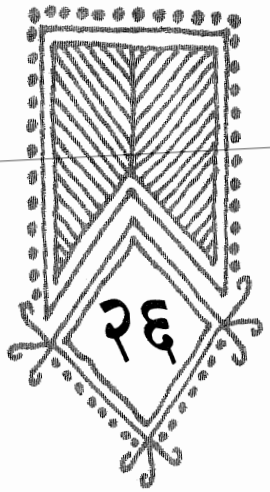
यह दुनिया की रीत है कि जहां स्वार्थ का संबंध टूटता है वहां आदमी का दृष्टिकोण और भाषा बदल जाती है।



पद्मश्री बोली–'प्रियतम! यह हमारी बहिन समुद्रश्री, जिसको हम होशियार समझते थे, चतुर समझते थे, बहुत भोली निकली। यह आपके झूठे फंदे में फंस गई। आपने ऐसा मायाजाल बिछा दिया कि यह फंस गई पर हम फंसने वाली नहीं हैं। आपने एक को अनुकूल कर लिया तो क्या हुआ? आपको तो हम सातों की बात सुननी पड़ेगी। फिर आप कोई निर्णय कर सकेंगे। प्रियतम! मैं भी आपसे कुछ कहना चाहती हूं।'

जम्बूकुमार ज्येष्ठा समुद्रश्री की चिन्तनधारा के रूपान्तरण में सफल हो गया। इस सफलता से उसका हृदय प्रसन्न हो गया।

समुद्रश्री का मन संतुष्ट हो गया। अध्यात्म पथ उसे रुचिकर लगने लगा। सातों नवोढ़ाएं समुद्रश्री के मानस-परिवर्तन से क्षुब्ध बन गईं। जम्बूकुमार की इस सफलता को विफलता में बदलने का निश्चय किया। पद्मश्री उनका प्रतिनिधित्व करने के लिए उद्यत हुई। क्या वह अपने प्रयत्न में सफल होगी? क्या वह समुद्रश्री की हार को विजय में बदल सकेगी?



हर व्यक्ति अपने पुरुषार्थ में विश्वास करता है और यह सोचता है कि मैं यह काम कर लूंगा। यह विश्वास बहुत आवश्यक है। आत्मविश्वास के बिना कोई काम होता नहीं है। पद्मश्री में यह आत्मविश्वास जागृत हुआ कि मैं जम्बूकुमार को समझाकर ही रहूंगी।

पद्मश्री अपने आसन से उठी, जम्बूकुमार के पास आई, बोली– 'प्रियतम! मैं ज्यादा कुछ नहीं कहना चाहती। मैं केवल एक सूक्त, एक नीति वचन की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहती हूं।'

'पद्मश्री! क्या है वह नीति वचन?'

'प्रियतम! वह नीति वचन यह है–**अति सर्वत्र वर्जयेत्**–चाहे कितना ही अच्छा काम हो, कितनी ही अच्छी बात हो, अति नहीं करनी चाहिए। अति हानिकारक होती है। बस इतनी छोटी सी बात आप समझ लें कि अति नहीं करनी है तो मुझे और कुछ नहीं कहना है। किन्तु लगता है–आप अति पर जा रहे हैं, अति कर रहे हैं।'

जम्बूकुमार ने कहा–'पद्मश्री! मैं तो अति या इति कुछ नहीं जानता। मैं अति कहां कर रहा हूं? जो मेरा स्वभाव है, वही तो मैं कर रहा हूं।'

'प्रियतम! आप बिल्कुल अति कर रहे हैं।'

'अति कहां है? जो स्वाभाविक है वही तो कर रहा हूं।'

'प्रियतम! आप अभी तक जानते नहीं हो, समझते नहीं हो। अगर अब आप अति करेंगे तो उसी प्रकार पछताएंगे, जैसे एक वानर पछताया था। जो दशा उस वानर की हुई थी, वही दशा आपकी होगी।'

जम्बूकुमार बोला–'पद्मश्री! वह कौन वानर था? उसने क्या अति की थी? मैं भी सुनना चाहूंगा।'

पद्मश्री ने वानर की कथा सुनाते हुए कहा–'प्रियतम! जंगल में एक बावड़ी थी। उसके परिसर में एक बंदर का जोड़ा रहता था। वानर-वानरी दोनों एक दिन घूमते-घूमते उस बावड़ी के पास आ गए। बावड़ी के पास एक आवाज सुनाई दी। वहां प्रतिदिन एक ध्वनि होती है, आकाशवाणी होती है–कोई भी बंदर बावड़ी में नहायेगा, स्नान करेगा वह आदमी बन जायेगा। यह आकाशवाणी दोनों ने सुनी, सोचा–बहुत अच्छा

मौका है। दोनों एक साथ बावड़ी में कूदे। स्नान किया। स्नान करते ही योनि का परिवर्तन हो गया। दोनों आदमी बन गये। वे बड़े खुश हुए कि हम बंदर से आदमी बन गये। एक विकास हो गया।'

डार्विन ने कहा था–बंदर मनुष्य का पूर्वज है। विकासवाद के सिद्धांत में यह माना जाता है–मनुष्य पहले बंदर था, फिर वह आदमी बना।

एक व्यंग्य है। जापानी और अमेरिकन नागरिक परस्पर बात कर रहे थे। जापानी नागरिक ने कहा–हमारे यहां बहुत बड़े-बड़े मकान बन गये हैं। कोई आदमी ऊपर की मंजिल से नीचे गिर जाए तो उसे नीचे आने में दस मिनट लग जाए।

अमेरिकन ने कहा–तुम हमारे देश की बात सुनो। हमारे यहां कितने ऊंचे मकान बने हैं? एक दिन एक बंदर ऊपर से नीचे गिरा और वह नीचे आते-आते आदमी बन गया।

बंदर पूर्वज है और आदमी उसका विकास है।

'प्रियतम! वे दोनों परस्पर बातचीत कर रहे हैं, बहुत प्रसन्न हैं। अचानक बंदर के मन में एक बात आई–बावड़ी बड़ी चमत्कारी है। हम एक बार नहाए और स्नान करते ही हम बंदर से आदमी बन गए। अब एक बार और स्नान करें तो आदमी से देवता बन जायेंगे। उसने अपनी पत्नी से कहा–देखो प्रिये! हम फिर बावड़ी में जायें, एक बार और नहा लें।'

वह स्त्री बोली–'पतिदेव! ज्यादा लोभ मत करो। पता नहीं, कल क्या हो जाए? बस जो होना था, बहुत अच्छा हो गया। हम अच्छे आदमी बन गए। दुनिया का सबसे अच्छा प्राणी है आदमी और हम आदमी बन गये। अब क्यों ज्यादा लोभ करते हो?'



वह बोला–'नहीं, मेरा मन तो यह कहता है कि इस बार डुबकी लगाऊंगा तो देवता बन जाऊंगा। मुझे देवता बनना है।'

उसने अपनी पत्नी को बहुत मनाने की कोशिश की, कहा–'तुम भी मेरे साथ चलो।'

उसने स्पष्ट शब्दों में कहा–'मैं तो पुनः स्नान के लिए नहीं जाऊंगी। देवता तुम बनो, मुझे तो आदमी ही रहना है।'

पद्मश्री ने जम्बूकुमार की ओर स्नेहिल दृष्टि से निहारते हुए कहा–'प्रियतम! ध्यान से सुनते हो ना। स्त्री ज्यादा समझदार होती है। आप उस बंदर जैसे हैं, जो हमारी बात पर ध्यान नहीं दे रहे हो।'

'प्रियतम! वह स्त्री बावड़ी के भीतर नहीं गई। उसने अपने पति को बहुत समझाने का प्रयत्न किया। बावड़ी में पुनः न नहाने का आग्रह किया। उसने आगाह किया–स्वामी! कहीं आपको अति लोभ में पछताना न पड़े।'

पति ने उसका परामर्श और आग्रह अस्वीकार कर दिया। वह आदमी बहुत लोभी और लालची बन गया।

पद्मश्री ने जम्बूकुमार को व्यंग्यात्मक लहजे में कहा–'प्रियतम! आपमें और वानर में यह समानता है कि उसने भी स्त्री की बात नहीं मानी, आप भी अपनी पत्नियों की बात नहीं मान रहे हैं।'

'प्रियतम! वह वानर नर भीतर जाने लगा। स्त्री ने उसका हाथ पकड़ा, बहुत रोका–'मत जाओ, स्नान मत करो।'

अपनी पत्नी के कथन को अनसुना कर वह बावड़ी के भीतर गया। जैसे ही उसने डुबकी लगाई, वह पुनः बंदर बन गया।

'पुनर्मूषको भव' की घटना चरितार्थ हो गई। एक संन्यासी ने चूहे पर करुणा कर उसे सिंह बना दिया। सिंह बनते ही उसने संन्यासी को अपना भोजन बनाना चाहा। संन्यासी ने फिर अभिशाप दे दिया–'पुनर्मूषको भव'–फिर चूहा बन जा। जो शेर बन गया था, वह फिर चूहा बन गया।

वानर के साथ वही हुआ। बंदर से आदमी बना और आदमी से फिर बंदर बन गया। उसने सोचा–अब क्या करूं? यह तो अच्छा नहीं हुआ। मैं बंदर बन गया। सामने मेरी पत्नी मानवी बनी हुई खड़ी है। ओह! यह भयंकर समस्या हो गई। अब मैं क्या करूं? वह किंकर्तव्यविमूढ़ सा पत्नी की ओर देखता रहा। कुछ क्षण पश्चात् बंदर अपनी भाषा में बोला–'तुम भी आओ, डुबकी लगाओ और वानरी बन जाओ।'

वह बोली–'अब मैं नहीं आऊंगी।'

वानर ने हताश होते हुए कहा–'तो मैं अकेला रह जाऊंगा?'

पत्नी ने उसकी मूर्खता का उपहास करते हुए कहा–'तुमने देख लिया अतिलोभ का परिणाम। अब तुम जानो, तुम्हारा भाग्य जाने। मैं क्या करूं? मैंने तो तुम्हें बहुत समझाया था, कितना निषेध किया था कि तुम लोभ मत करो। मैंने बार-बार कहा था–अति सर्वत्र वर्जयेत्। अतिलोभ मत करो, अतिलोभ अच्छा नहीं होता। तुमने मेरी बात नहीं मानी। उसी का परिणाम है कि तुम पुनः बंदर बन गए।'

बंदर ने बहुत आग्रह किया–'तुम आ जाओ, एक बार डुबकी ले लो। हमारा साथ बना रहेगा।'

वह बोली–'मैं तो नहीं आऊंगी।'

दोनों में परस्पर वार्तालाप चल रहा था–वानर मान-मनौव्वल कर रहा है कि तुम आओ, डुबकी लगाओ। वह स्त्री कह रही है–मैं डुबकी नहीं लगाऊंगी, मानवी से पुनः वानरी नहीं बनूंगी।



संयोग ऐसा मिला कि उसी समय वन-क्रीड़ा के लिए एक राजा उधर आया। उसने एक मानवी को एक वानर के पास खड़े देखा। राजा ने सोचा–यह जंगल में अकेली स्त्री कौन है? क्या यह कोई वनदेवी है? इतनी सुंदर स्त्री कोई वनदेवी ही हो सकती है।

राजा ने अपना रथ रोका, नीचे उतरा। बावड़ी के पास गया, उस नवयौवना सुंदरी को देखा और पूछा–'तुम कौन हो? क्या कोई देवी हो?'

वह मानवी बोली–'नहीं, मैं देवी नहीं हूं।'

विस्मय-विमुग्ध राजा ने पुनः पूछा–'कौन हो तुम?'

'मैं मानवी हूं, स्त्री हूं।'

'यहां कैसे खड़ी हो?'

'ऐसे ही खड़ी हूं।'

'और कौन है तुम्हारे साथ?'

उस स्त्री ने अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा–'कोई नहीं है अब मेरा।'

राजा और अपनी पत्नी का वार्तालाप सुन रहे वानर ने सोचा–'देखो, क्या कह रही है। कितना झूठ बोल रही है कि मेरा कोई नहीं है। यह असली बात नहीं बता रही है।'

राजा ने प्रसन्न होकर आमंत्रण दिया–'आज से मैं तुम्हारा हूं।' राजा ने उसको बहुत स्नेह दिया, कहा–'तुम आओ, मेरे साथ चलो।' वह राजा उसके सौन्दर्य पर इतना मोहित हुआ कि उसको अपनी पटरानी बना लिया।

'प्रियतम! वह बंदर बंदर ही रह गया और वह स्त्री राजा की पटरानी बन गई।'

अब बंदर क्या करे? वह अकेला रह गया। बावड़ी से बाहर आया। दुःखी और उदास इधर-उधर घूमने लगा। कुछ मदारी लोग आए। उन्होंने बंदर को अकेले घूमते देखा। उन्होंने बंदर को पकड़ने के लिए हंडिया रखी।



बंदर को पकड़ने की एक विद्या होती है। हमने उत्तरप्रदेश और बिहार में बंदर को पकड़ने का यह प्रयोग देखा–जहां बहुत ज्यादा बंदर होते हैं, जगह-जगह पर हंडिया रखी हुई होती है। हंडिया का मुंह संकरा होता है और उसके भीतर चने डाले हुए होते हैं। बंदर चने का बड़ा शौकीन होता है। चने की सुगंध आती है तो वह उसे खाने के लिए कहीं चला जाता है। मदारी ने हंडिया रखी, उसमें चने रखे। बंदर उधर आया, हंडिया में हाथ डाला। बर्तन ऐसा होता है कि हाथ डालते ही अंदर चला जाये। निकालो तो निकल जायेगा पर चने उठाकर मुट्ठी बांध लो तो हाथ नहीं निकलेगा। बंदर ने अपनी मुट्ठी में चने भर लिए। उसे छोड़ना बंदर के वश की बात नहीं होती। वह चने को छोड़ नहीं सकता और मुट्ठी बंद हो जाती है तो हाथ निकाल नहीं सकता। इस उलझन में वह उलझ जाता है। मदारी इस स्थिति में बंदरों को पकड़ लेते हैं। ऐसा ही उस मदारी ने किया और बंदर को पकड़ लिया। एक बार जो फंस जाता है, वह फिर फंसता ही जाता है।

वह बंदर बंधन में आ गया, मदारी के पास पहुंच गया। मदारी ने बंदर को खेल सिखाए। वह बंदर को अपने साथ ले जाता है, खेल दिखाता है और पैसा कमाता है।

'प्रियतम! अब वह बंदर बहुत पछता रहा है। वह सोचता है मैं अगर दूसरी बार डुबकी नहीं लेता, अतिलोभ नहीं करता और यह देवता बनने की बात मन में नहीं सोचता तो आज मैं भी आदमी होता, मेरे साथ मेरी पत्नी होती, परिवार होता। मैं सुखोपभोग करता, स्वतंत्रता का जीवन जीता, अच्छी तरह रहता। मेरी यह दशा क्यों होती? मुझे क्यों ये नाच, खेल करना पड़ता? क्यों ये करतब दिखाने पड़ते। बंदर मन में बहुत पछता रहा है पर अब क्या हो सकता है?'

'प्रियतम! योग ऐसा मिला कि खेल दिखाते-दिखाते मदारी उसी नगर में पहुंच गया, जहां उसकी स्त्री पटरानी थी। वह महल के झरोखे पर बैठी थी। गवाक्ष से उसने देखा–एक मदारी आ रहा है, साथ में बंदर है। बंदर जाति के प्रति उसके मन में एक स्वाभाविक आकर्षण था। उसे बंदर कुछ परिचित-सा लगा। थोड़ा ध्यान दिया तो पहचान लिया कि यह तो मेरा पूर्व पति है। यह तो वही बंदर है, जो अतिलोभ से पुनः बंदर बन गया।'

पटरानी ने राजा से कहा–'महाराज! नृत्य देखे हुए बहुत दिन हो गये। आज मैं बंदरों का नाच देखना चाहती हूं।'

राजा ने पूछा–'कहां है बंदर?'

'महाराज! नीचे देखो, वह मदारी और बंदर जा रहा है।'

राजा ने कर्मकर को आदेश दिया। मदारी को अंतःपुर में बुला लिया। बंदर का खेल देखा। पटरानी और बंदर दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। बंदर ने अपनी स्त्री को पहचान लिया और स्त्री ने अपने पूर्व पति को पहचान लिया।

बंदर ने देखा–पत्नी बहुत आराम का जीवन जी रही है और मुझे ऐसा दासकर्म करना पड़ रहा है। बड़ी समस्या है। पटरानी के मन में थोड़ी प्रियता की भावना जाग गई, सोचा–आखिर तो मेरा पति रहा है। इस प्रकार घूम रहा है, नाच रहा है, खेल रहा है। खाने को भी पूरा नहीं मिलता। उसने मदारी से पूछा–'मदारी! बंदर बेचोगे।'

राजा की पटरानी मांगे तब मदारी इनकार कैसे करे? पटरानी ने अच्छा मूल्य देकर बंदर को खरीद लिया। उसे अपने महल में बांध दिया। बंदर ने सोचा–'अब खाने को तो ठीक मिल जायेगा।' वह रानी के पास रहने लगा। वह प्रतिदिन राजा और रानी–दोनों के मधुर संबंधों को देखता है, उनके प्रेमालाप और सुखी जीवन को देखता है तो मन में बहुत दुःख पाता है, पश्चात्ताप करता है–'देखो, मैंने कितनी मूर्खता की। अगर मैं इतनी मूर्खता नहीं करता, दूसरी बार डुबकी नहीं लगाता तो आज मुझे ये दिन क्यों देखने पड़ते? मैंने क्यों देव बनने की बात सोची? अगर मैं ऐसा नहीं करता तो आज मैं भी आदमी होता, यह मेरी पत्नी होती, परिवार होता, घर-बार होता। और पता नहीं मैं भी राजा बन जाता।' वह बहुत सोचता है, पछताता है पर अब कुछ होता नहीं है। वह जब जब राजा-रानी के प्रेमालाप को देखता तब तब अपने सिर को धुनता, उसकी आंखें आर्द्र हो जातीं। वह स्वयं के भाग्य को कोसने लगता।

वह पटरानी भी उसकी दशा को देख द्रवित हो जाती, उसे अवसर देख समझाती–देखो! तुमने लोभ ज्यादा किया था इसलिए बंदर बन गये। यह बात समझ में आई या नहीं आई–अतिलोभ नहीं करना चाहिए।

वानर संकेतों से कहता–सब कुछ समझ में आ गया किन्तु अब क्या हो सकता है? सिवाय पश्चात्ताप के और कुछ हाथ में आने वाला नहीं है।

पद्मश्री ने कथा का उपसंहार करते हुए कहा–'प्रियतम! मैं अनिष्ट बात नहीं कहना चाहती पर यह बात जरूर कहना चाहूंगी–जिस प्रकार अतिलोभ से बंदर को पश्चात्ताप हुआ। वह देव बनना चाहता था किन्तु वह मनुष्य से पुनः बंदर बन गया। कहीं वही गति आपकी न हो जाए।'

'प्रियतम! आज आपको सब कुछ प्राप्त है, घर है, सम्पदा है, सर्वात्मना समर्पित हम नवोढ़ा हैं। ऐसा लगता है कि अब आपमें देव बनने की भावना जाग गई। साधु क्यों बन रहे हो? इसलिए ही तो साधु बन रहे हैं कि मुझे देव बनना है, स्वर्ग में जाना है। पर आप ध्यान दें–कहीं बंदर वाली गति न हो जाए। उस वानर मनुष्य ने देवता बनना चाहा था पर मूल को ही खो दिया, फिर बंदर बन गया। आप अतिलोभ कर रहे हैं, देव बनने की बात सोचकर साधु बनना चाहते हैं। कहीं ऐसा न हो कि इस आदमी के जन्म को भी व्यर्थ गंवा दें। न इधर के रहें और न उधर के।'

'प्रियतम! आप हमें महावीर की वाणी सुनाते हैं। मैं भी महावीर की वाणी आपको सुनाना चाहती हूं। महावीर ने कहा–**'णो हव्वाए णो पाराए'**–न इधर का रहा, न उधर का रहा, कहीं का नहीं रहा। प्रियतम! आप भी किधर के नहीं रहोगे। न तो आदमी रहोगे और न देव बन पाओगे इसलिए मेरा कहना मानो–अतिलोभ मत करो। जो है उसमें संतोष करो। अति सर्वत्र वर्जयेत्–मेरी इस बात पर ध्यान दो–चाहे कितना ही अच्छा हो, अति मत करो।'

पद्मश्री ने अपनी बात को विराम देते हुए सोचा–समुद्रश्री अपनी बात सम्यक् प्रकार से रख नहीं पाई थी। उसका वक्तव्य था कि तुम वर्तमान को छोड़कर भविष्य के लिए चिंता कर रहे हो, यह ठीक नहीं है। मेरी बात ज्यादा सटीक है। मैंने सरलता से यह समझा दिया है–अति सर्वत्र वर्जयेत्–अति मत करो। अति करना अच्छा नहीं है। मेरी यह बात समझ में आने वाली बात है, व्यावहारिक बात है।

एक बात व्यावहारिक होती है, वह समझ में आ जाती है। एक बात गहरी होती है, शीघ्र समझ में नहीं आती। गहराई में हर कोई जा नहीं सकता। सीधी सादी बात कही जाती है तो वह समझ में आ जाती है। मेरी बात जरूर जम्बूकुमार के समझ में आ जायेगी।

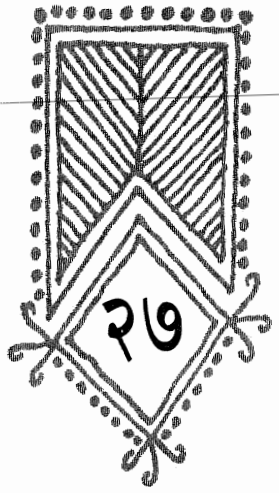


पद्मश्री अपनी प्रस्तुति पर मुग्ध हो रही है। समुद्रश्री सोच रही है–पद्मश्री ने बहुत सुन्दर तर्क प्रस्तुत किया है। अपनी बात को बहुत प्रभावी ढंग से रखा है पर जम्बूकुमार बहुत प्रतिभासंपन्न है। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि के सामने इसके तर्क टिकेंगे नहीं। जिस प्रकार उसने मुझे निरुत्तर किया है, इसे भी निरुत्तर कर देगा।....और....इसकी वही मानसिकता बनेगी, जो मेरी बनी है।

छह नवोढ़ाएं सोच रही हैं–समुद्रश्री को जम्बूकुमार ने अपने मत का समर्थक बना लिया। क्या वह पद्मश्री को भी अपने पक्ष में कर सकेगा? यदि वह ऐसा करने में सफल रहा तो हमारा पक्ष दुर्बल हो जाएगा।....हमें भी कुछ सोचना होगा।....

जम्बूकुमार सोच रहा है–पद्मश्री बहुत चतुर और विचक्षण है। इसने अपनी बात बहुत प्रखरता से रखी है। यदि मैं इसके तर्कों को निरस्त कर दूंगा तो यह मेरे पथ की अनुगामिनी हो जाएगी। इसकी शक्ति और प्रतिभा का उपयोग श्रेयस् के लिए होगा। इसकी चेतना के ऊर्ध्वारोहण का पथ प्रशस्त हो सकेगा।

किसकी सोच सफल होगी? क्या पद्मश्री के मनसूबे पूरे होंगे या समुद्रश्री की तरह पद्मश्री भी जम्बूकुमार के पथ की अनुगामिनी बनेगी?





हर मनुष्य सोचता है, बोलता है और अपना विचार रखता है। सबके विचार नहीं मिलते। सोचने का तरीका भी सबका समान नहीं होता। इसका एक कारण है और वह यह है–कौन व्यक्ति किस मंजिल पर खड़ा होकर सोचता या बोलता है।

एक आदमी नीचे खड़ा था और एक आदमी पांचवीं मंजिल पर। पांचवीं मंजिल पर खड़े व्यक्ति ने कहा–'भाई! तुम्हारा मित्र आ रहा है।'

पहली मंजिल पर खड़ा व्यक्ति बोला--'तुम बिल्कुल गलत कह रहे हो। मेरा मित्र कहीं दिखाई नहीं दे रहा है।'

जो नीचे खड़ा है, उसे दिखाई नहीं दे रहा है इसलिए वह कहता है कि तुम गलत कह रहे हो। जो ऊपर खड़ा है, उसे सामने दिख रहा है इसलिए वह कह रहा है–मित्र आ रहा है।

दोनों का दृष्टिकोण एक कैसे होगा? यदि पहली मंजिल वाला व्यक्ति पांचवीं मंजिल पर चला जाए तो उसे दिखाई देगा। यदि पांचवीं मंजिल वाला व्यक्ति पहली मंजिल पर आ जाए तो उसे भी दिखाई नहीं देगा।

जो प्रथम भूमिका पर खड़ा है, उसकी बात एक प्रकार की होगी। जो ऊपर की भूमिका पर खड़ा है, उसकी बात दूसरे प्रकार की होगी।

जम्बूकुमार ऊपर की मंजिल पर चढ़ गए इसलिए उन्हें जीवन का सत्य दिखाई दे रहा है। जो नववधू हैं, नवोढ़ा हैं, वे नीचे की मंजिल पर खड़ी हैं, धरातल पर खड़ी हैं, उनको वह सचाई दिखाई नहीं दे रही। इस स्थिति में दोनों के विचार मिल कैसे सकते हैं? वह तभी मिल सकता है जब वे नवोढ़ाएं भी ऊपर की मंजिल पर चढ़ जाएं। जम्बूकुमार ऐसा ही प्रयत्न कर रहा है, जिससे नवोढ़ाएं भी मंजिल पर चढ़ जाएं।

जम्बूकुमार बहुत मृदु स्वर में बोले–'पद्मश्री! तुम बड़ी कुशल हो। तुमने कहानी भी बड़ी मार्मिक सुनाई है। अगर मैं भी नीचे की मंजिल पर होता तो तुम्हारी बात को स्वीकार कर लेता, मैं कहता–तुम कह

रही हो, वह ठीक है। मैं अतिलोभ नहीं करूंगा किन्तु मैं सचाई को जानता हूं। मेरी मंजिल दूसरी है। मैं जहां खड़ा हूं, वहां से सचाई को देख रहा हूं इसलिए मैं अतिलोभ की बात को अस्वीकार करता हूं। तुम्हारे तर्क को मैं काटना चाहता हूं। तुम मेरी बात सुनो।'

जम्बूकुमार कहे कामिनी, काम न भोग जहर समान।
थोड़ा छोड़ नै घणा री वांछा करै, इसड़ो नहीं म्हारो ध्यान।।

जम्बूकुमार बोला–'कामिनी! तुम कहती हो कि आप थोड़े को छोड़कर बहुत की इच्छा कर रहे हैं। यह तर्क ही तुम्हारा अनुपयुक्त है। मैंने तो इस काम-भोग को जहर के समान जान लिया है, देख लिया है इसलिए न तो मैं थोड़ा जहर पीना चाहता हूं और न मैं ज्यादा जहर पीना चाहता हूं। तुम ज्यादा की बात क्यों कर रही हो? अगर मैं यह चाहूं कि यहां मुझे काम-भोग थोड़ा मिला है इसलिए मैं तपस्या करूं, स्वर्ग में चला जाऊं और वहां स्वर्ग का सुख मिलेगा। अगर यह मेरा संकल्प हो तो तुम्हारा तर्क बिल्कुल सही है और मेरा चिन्तन गलत। किन्तु मैं तो यह मानता हूं–यह जो थोड़ा काम-भोग है यह भी जहर के समान है, एक जहर की प्याली के समान है और जो ज्यादा काम-भोग है, वह जहर का प्याला नहीं, जहर का पात्र है।

मैं इस जन्म में भी काम-भोग नहीं चाहता और मरने के बाद अगले जन्म में भी काम-भोग नहीं चाहता। कामभोग में न मेरी रुचि है और न कोई इच्छा है।'–जम्बूकुमार के इस उत्तर ने पद्मश्री के तर्क को धारहीन बना दिया।

गाथा
परम विजय की



आचार्य भिक्षु के जीवन का संध्याकाल था। वे अनशन में लीन थे। खेतसीजी स्वामी ने आचार्य भिक्षु से कहा–'गुरुदेव! अब आप समाधिमरण की तैयारी कर रहे हैं। हम सबको छोड़कर स्वर्ग के सुखों में चले जाएंगे।' आचार्य भिक्षु ने तत्काल टोकते हुए कहा–'तुम क्या कहते हो? मैं स्वर्ग के सुखों की वांछा ही नहीं करता। उसकी कामना करने से ही पाप लगता है।'



जम्बूकुमार ने स्पष्ट शब्दों में कहा–'पद्मश्री! मैं नहीं चाहता कि मुझे काम-भोग ज्यादा मिले। अगर वह चाह होती तो तुम्हारी बात सही होती। मैं तो काम-भोग को छोड़ना चाहता हूं।'

'क्यों छोड़ना चाहते हैं आप?'

'उसका भी एक कारण है।'

'कारण क्या है?'

'ये जो काम-भोग हैं, उनका जो स्वरूप महावीर ने बताया है, उसे मैंने समझ लिया है। वह सचाई मेरे ध्यान में आ गई, महावीर की बात मेरे गले उतर गई। वह सचाई यह है–

अच्चेइ कालो तूरंतिराइओ, न या वि भोगा पुरिसाण णिच्चा।
उविच्च भोगा पुरिसं चयंति, दुमं जहा खीणफलं व पक्खी।।

यह काल बीत रहा है, रात और जल्दी जा रही है। ये काम-भोग नित्य नहीं हैं। ये एक दिन तुम्हें छोड़ देंगे। जब तक वृक्ष फलवान है, पक्षी वृक्ष पर आकर बैठते हैं। फल लगे रहते हैं तो पक्षी वृक्षों पर मंडराते रहते हैं। फल समाप्त हो गए, वृक्ष सूख गया तो पक्षियों ने भी आना छोड़ दिया।'

'पद्मश्री! मैंने काम-भोग के स्वरूप को भी समझ लिया। काम-भोग का स्वरूप यह है–

आरंभे तापकान्, प्राप्ते अतृप्तिप्रतिपादकान्।
अंते सुदुष्त्यजान् कामान्, कामं कः सेवते सुधीः।।

पद्मश्री! क्या तुम जानती हो–काम-भोग की प्रकृति क्या है?'

'नहीं, प्रियतम!'

'पद्मश्री! **आरंभे तापकान्**–प्रारंभ में वे ताप देते हैं।' काम भोग सहज नहीं मिल जाते। कोई वस्तु सामने दिखती है, इच्छा होती है कि मुझे यह मिल जाये किन्तु वह सहजता से नहीं मिलती। प्रारंभ में वह ताप देती है। जब तक नहीं मिलती तब तक मन में यह ताप बना रहता है–यह वस्तु मुझे मिली नहीं। कब मिलेगी मुझे यह वस्तु? एक तनाव बना रहता है। प्रारंभ में तो काम तनाव देता है।

'**प्राप्ते अतृप्तिप्रतिपादकान्**–मिल जाता है तो तृप्ति नहीं होती। एक बार भोगा, फिर अतृप्ति। दूसरी बार भोगा तो और ज्यादा अतृप्ति। जैसे-जैसे सेवन करो, अतृप्ति बढ़ती चली जायेगी।'

हम भोजन का उदाहरण लें। जिस मौसम में जो वस्तु आती है, उसके प्रति एक रुचि बन जाती है। चैत्र-वैशाख में आम का मौसम आता है। जब तक आम का मौसम नहीं तब तक कोई आकांक्षा नहीं। जैसे ही आम का मौसम आया, आम आने लगे, व्यक्ति ने आम खाना शुरू कर दिया। एक दिन आम खाया तो क्या तृप्त हो गये? दूसरे दिन फिर विकल्प आता है कि क्या आज आम नहीं आया? कभी-कभी अष्टमी, चतुर्दशी आ जाती है, हरियाली खाने का प्रत्याख्यान होता है तो मन में आता है कि आज आम नहीं खाया। सेवन करने से अतृप्ति बढ़ती चली जाती है।

'**अंते सुदुष्त्यजान्**–वह अतृप्ति इतनी बढ़ जाती है कि अंत में छोड़ना मुश्किल हो जाता है।'

'पद्मश्री! मैं काम-भोग की इस त्रिगुणात्मक प्रकृति को जानता हूं। यह प्रारंभ में तनाव पैदा करता है और अंत में इसे छोड़ना मुश्किल हो जाता है। जिस चीज को अंत में छोड़ना मुश्किल है और जो प्रारंभ में तनाव पैदा करती है, उसे मैं अपने जीवन में महत्त्व क्यों दूं? मैं ऐसा काम क्यों करूं, जिससे दिमाग में तनाव आए। मैं दिमाग को शांत रखना चाहता हूं, खाली रखना चाहता हूं, तनाव से भरना नहीं चाहता।'

जम्बूकुमार ने इतना बड़ा एक रहस्यपूर्ण तत्त्व कहा, जिसका हर व्यक्ति अनुभव कर सकता है। एक वस्तु की चाह मन में हो गई। वह जब तक नहीं मिलती तब तक तनाव बना रहता है। दिमाग में यह विचार उभरता रहता है–मुझे वह मिला नहीं। औरों की बात छोड़ दें। जो साधु बन जाते हैं उनके मन में भी किसी चीज की चाह पैदा हो जाती है, चाहे वह अच्छी चाह है, किन्तु जब तक वह पूरी नहीं हो जाती तब तक थोड़ा तनाव तो होता ही है।

श्रीडूंगरगढ़ की घटना है। हम लोग बहुत छोटे थे। उन दिनों गुरुदेव श्रीडूंगरगढ़ में विराज रहे थे। गुरुदेव की पुस्तक-मंजूषा में भर्तृहरि विरचित नीतिशतक की एक सुन्दर प्रति थी। वह प्रति गुरुदेव ने मुझे पढ़ने के लिए दी। मैंने वह प्रति सहपाठी मुनि बुद्धमल्लजी को दिखाई। वे तनाव से भर गये। तत्काल पहुंचे गुरुदेव के पास, निवेदन किया–'गुरुदेव! मुझे भी नीतिशतक की प्रति चाहिए।'

गुरुदेव ने कहा–'एक ही प्रति थी, वह हमने दे दी।'

'नहीं, मुझे भी देनी होगी।'

किसी वस्तु की चाह उत्पन्न हो जाती है तो तनाव हो जाता है। यद्यपि खराब वस्तु नहीं थी, अच्छी वस्तु थी, ज्ञानवर्धक थी पर जब मन में चाह पैदा हो गई तो तनाव हुए बिना रहता नहीं है। आखिर जैसे-तैसे गुरुदेव को नई प्रति जुटाकर उन्हें देनी पड़ी।

आरंभ में चाह ताप देती है। बार-बार सेवन करो, स्नायु का अभ्यास हो जाता है तो फिर वह अतृप्ति बन जाती है। चाह कभी तृप्त नहीं होती और अंत में उसे छोड़ना मुश्किल होता है। मैंने काम की इस प्रकृति को समझा है।

'पद्मश्री! तुम्हारा यह तर्क–अति सर्वत्र वर्जयेत्–सर्वत्र लागू नहीं होता। मेरे मन में काम-भोग की कोई आकांक्षा नहीं है। मैं तो निराकांक्ष–आकांक्षारहित और निराशंस–आशंसा रहित जीवन जीना चाहता हूं।'

'पद्मश्री! अगर इस सचाई को समझकर मैं इसका पालन न करूं तो कठिहारा जैसा मूर्ख बन जाऊंगा।'

पद्मश्री जम्बूकुमार के कथन से प्रभावित बनती चली गई। उसने विनम्र स्वर में पूछा--'प्रियतम! आप कठिहारा जैसे मूर्ख कैसे बनेंगे? यह भी जरा समझा दो कि कठिहारा कैसे मूर्ख बना?'



जम्बूकुमार बोला–'पद्मश्री! एक कठिहारा, काष्ठहर था। जंगल से लकड़ियां भी लाता और जंगल में कोयले भी बनाता। वह एक दिन जंगल में कोयला बनाने गया। गर्मी का मौसम। जून का महीना। तेज गर्मी–भयंकर लू का प्रकोप। ऐसी स्थिति में वहां जंगल में लकड़ियां काटकर कोयला बनाने गया। वह साथ में पीने के पानी की दीबड़ी भी ले गया। गर्मी इतनी तेज थी कि एक बार तो रास्ते में ही पानी पी लिया। आगे पहुंचा, लक्कड़ चीरे, फिर पानी पी लिया। अब आग जलाई, कोयला बनाने लगा। उसका ताप इतना था कि भयंकर प्यास लग गई। जो थोड़ा पानी बचा था, वह भी पी लिया। दीबड़ी का पानी समाप्त हो गया।

एक ओर आग का ताप, दूसरी ओर जेठ के महीने की धूप का ताप, तीसरी ओर भयंकर प्यास। उसने सोचा–काम तो नहीं कर पाऊंगा। वह बाहर आया। एक बड़ा गहरा वृक्ष देखा। शीतल और सघन छाया। उसके नीचे जाकर लेट गया। थका मांदा और प्यास से व्याकुल। लेटते ही नींद आ गई। नींद में उसको सपना आया। जो आकांक्षा, जो चाह, जो भावना, जो संकल्प मन में जागृत अवस्था में होता है नींद में वह सपना बन जाता है। **दिट्ठं सुयं अणुभूयं**–वह सपना होता है दृष्ट, श्रुत और अनुभूत। उसने सपने में देखा–मुझे प्यास बहुत लगी हुई है। कंठ सूख रहे हैं। मैं कुएं के पास गया। कुएं का पानी पीने लगा। मैं कुएं का सारा पानी पी गया। कुएं को खाली कर दिया। कुएं में पानी नहीं रहा। फिर भी मेरी प्यास नहीं बुझी।

उसका सपना आगे बढ़ा–मैं तालाब में गया। तालाब में डुबकी लगाई और तालाब का सारा पानी पी गया। फिर भी प्यास नहीं बुझी। झील में गया, पोखरनी में गया, उन सबका पानी पी गया, फिर भी प्यास नहीं बुझी। आखिर समुद्र के पास गया, देखा–समुद्र में तो अथाह पानी भरा है। पर मेरी प्यास इतनी तीव्र थी कि समुद्र का खारा पानी भी सारा पी गया। समुद्र सूख गया, फिर भी प्यास नहीं बुझी।'

'पद्मश्री! तुम बताओ–कठिहारा समुद्र का पानी पी गया फिर भी प्यास बुझी या नहीं?

पद्मश्री बोली–'आप कैसा प्रश्न पूछ रहे हैं? आप स्वप्न की बात सुना रहे हैं। सपने में पीए हुए पानी से प्यास कैसे बुझेगी?'

'पद्मश्री! अच्छी बात है। तुम समझ गई कि यह सपने की माया है। तुम यह भी समझो कि ये काम-भोग भी सपने की माया है, इनसे प्यास बुझती नहीं है।'

'प्रियतम! क्यों नहीं बुझती?'

'पद्मश्री! ईंधन से क्या कभी आग बुझती है? ईंधन डालते जाओ, आग कभी बुझेगी क्या? न कभी ईंधन से आग बुझती और न कभी तेल से चिराग बुझता।'

'प्रियतम! आपकी बातें बहुत रहस्यमयी हैं। आप कहना क्या चाहते हैं?'

'पद्मश्री! पहले उस कठिहारे के स्वप्न की गाथा ध्यान से सुनो। वह समुद्र का पानी पी गया, प्यास नहीं बुझी फिर वह आगे बढ़ा। उसे सपना आ रहा है, बहुत मीठा सपना आ रहा है। वह आगे गया, सोचा–समुद्र का पानी पी गया, प्यास तो बुझी नहीं अब क्या करूं? तब वह मारवाड़ में, मरुभूमि में गया। एक कुआं देखा, साठी का कुआं, गहरा कुआं। रस्सा पड़ा था किन्तु बालटी नहीं थी। आस-पास में घास के पूले पड़े थे। एक पूला उठाया, रस्से के बांधा, कुएं में डाला, पानी में भिगोया और उसको बाहर निकाला। वह गीला होकर बाहर आया। अब सोचा–इस पूले को मुंह में निचोड़ लूं और प्यास बुझा लूं।'

'पद्मश्री! जिस व्यक्ति की प्यास समुद्र का पानी पीने से भी नहीं बुझी, क्या मुंह में घास का पूला निचोड़ने से उसकी प्यास बुझ जायेगी?'

'प्रियतम! यह कभी संभव नहीं है।'

'पद्मश्री! तुम जरा सोचो–हमने अनेक बार स्वर्ग की यात्रा की है, स्वर्ग में जन्म लिया है, हम देवलोक में गये हैं और देवलोक के दिव्य भोग हमने भोगे हैं। उन भोगों को हम समुद्र के समान मान लें। देवता और आदमी की भौतिकता की दृष्टि से तुलना कहां है?'

एक तुलना की गई–दुनिया की सारी संपत्ति, सोना-चांदी, हीरा-पन्ना, माणक, मोती सबको इकट्ठा कर लो। दूसरी ओर एक व्यन्तर देवता, जो चार प्रकार के देवों में सबसे निम्न श्रेणी का देव माना जाता है। उस व्यन्तर देव की एक चप्पल में जितने दिव्य हीरे-जवाहरात हैं, उसकी तुलना में सारी दुनिया का धन कम पड़ जाए। क्या देवता की संपदा का कोई पार है? उस संपदा की कोई कीमत नहीं है। प्रश्न हुआ–अनुत्तर विमान में कितने मन का मोती लटकता है। कहा गया–छत्तीस मण का मोती लटकता है। हीरा कितने कैरेट का मिलता है? इस दुनिया में कोहिनूर हीरे का मूल्य करोड़ों रुपए है। जहां मण वजन का हीरा हो जाए और

पन्ना इतना बड़ा हो जाए तो उसका मूल्य कितना होगा। जवाहरात का काम करने वाले जानते हैं कि उसका कितना मूल्य हो जाता है।

'पद्मश्री! इतनी संपदा और वह सुख हमने भोगा है। अनेक बार उस दिव्य सुख को भोग लिया फिर भी न तो प्यास बुझी, न तृष्णा मिटी। क्योंकि यह एक शरीर की प्रकृति है। शरीर का धर्म यह है कि काम-भोग की प्यास शरीर के साथ रहती है, कभी बुझती नहीं है।'

'ओह!' यह कहते हुए पद्मश्री के नयन विस्फारित हो उठे।

'पद्मश्री! क्या तुम मनोविज्ञान को जानती हो?'

'प्रियतम! मनोविज्ञान क्या कहता है?'

'मनोविज्ञान कहता है–यह एक मौलिक मनोवृत्ति है, शरीर के साथ जुड़ी हुई प्रवृत्ति है। जब तक आदमी शरीर में रहता है तब तक उसकी यह स्थिति रहती है। शरीर से ऊपर उठ जाता है, आत्मा में चला जाता है तो उसकी स्थिति बदल जाती है।'

प्रचाल्य विषयेभ्योऽहं, मां मयैव मयि स्थितम्।
बोधात्मानं प्रपन्नोस्मि परमानन्दनिर्वृतं।।

'पद्मश्री! तुम जानती हो–जब तक व्यक्ति शरीर में रहता है तब तक वह काम-भोग के सुखों से कभी विरत नहीं हो सकता। मैंने शरीर से ऊपर की यात्रा शुरू कर दी है इसलिए ये काम-भोग मुझे नहीं लुभाते। मैंने महावीर से प्रतिसंलीनता का पाठ पढ़ा है। इसका मतलब है–इंद्रियों को विषयों से निवृत्त कर दो, विषयों से हटा लो।'



प्रेक्षाध्यान में सर्वेन्द्रिय संयम मुद्रा का प्रयोग कराया जाता है। सर्वेन्द्रिय संयम मुद्रा का तात्पर्य है इंद्रियों के संपर्क सूत्रों से विच्छेद। दोनों कानों में अंगूठे डाल लो, दो तर्जनी अंगुलियों को आंख पर धीरे से रख दो। दो मध्यमा अंगुलियों से नाक बंद कर लो, शेष चार अंगुलियों से होठ बंद कर लो–यह है सर्वेन्द्रिय संयम मुद्रा। इंद्रियां दरवाजे हैं। बाहरी जगत् के साथ हमारा संपर्क इंद्रियों के माध्यम से होता है।

जम्बूकुमार ने भावपूर्ण शब्दों में कहा–'पद्मश्री! मैंने इंद्रियों के दरवाजों को बंद करना सीख लिया, इसलिए बाहर की बात भीतर नहीं आती। मैं अपने घर में रहता हूं इसलिए मेरे मन में कोई चाह नहीं रही। चाह तब सताती है जब दरवाजे खुले रहते हैं। यदि दरवाजे खुले हैं तो चाह बनी रहेगी, चाह बढ़ती रहेगी। आंख ने अपना काम किया, चाह बढ़ जायेगी। कान ने अपना काम किया, चाह बढ़ जायेगी। चाह उत्पन्न होती रहती है, बढ़ती रहती है किंतु जब बाहर के सारे दरवाजे बंद हैं तो चाह का रास्ता भी बन्द हो जाता है। मैंने बाहर के सारे दरवाजे बंद कर दिए हैं। मैं केवल ज्ञाता-द्रष्टा हूं और परम आनन्द में हूं।'

'पद्मश्री! जब तक परम आनंद की स्थिति नहीं आती तब तक यह चिंतन नहीं हो सकता। कोई भी व्यक्ति तब तक काम-भोग के सुखों को नहीं छोड़ सकता, जब तक कि उससे बड़ा सुख उसको न मिल जाए। जब तक अपनी अन्तर आत्मा में छिपा हुआ सुख का खजाना नहीं मिलता तब तक व्यक्ति इस छोटे खजाने को छोड़ नहीं सकता।'

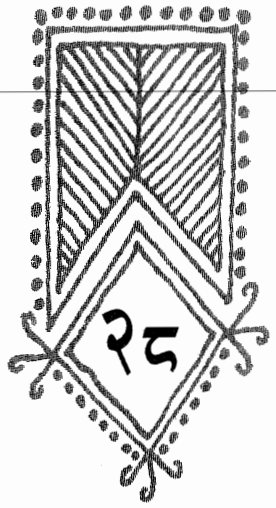
मनोविज्ञान की भाषा में कहा जाता है–कोई भी व्यक्ति ब्रह्मचारी बनेगा तो पागल बन जायेगा। यह आज मनोविज्ञान की नई अवधारणा है, नई मान्यता है। हमारे सामने भी बहुत प्रश्न आये। हमने इस पर चिंतन किया–यह तर्क एक अपेक्षा से ठीक है। जो गृहस्थ गृहस्थी में रहता है, वह ब्रह्मचारी रहता है तो पागल भी हो सकता है। यह बात भी एक अपेक्षा से गलत नहीं है कि जब तक कोई बड़ा सुख न आए तो व्यक्ति पागल बन सकता है। किंतु जिस व्यक्ति को अपने भीतर में रहा हुआ, छिपा हुआ बड़ा सुख मिल गया, वह पागल नहीं बनेगा, और अधिक तेजस्वी बन जायेगा, विकास कर लेगा। कोई भी व्यक्ति उस सुख को खोजे बिना इस सुख को छोड़ भी नहीं सकता। जिसको परम आनंद मिल गया वह थोड़े सुख को छोड़ देगा।

'पद्मश्री! तुम तो यह कह रही हो–आप स्वर्ग के सुख के लिए वर्तमान के थोड़े सुखों को छोड़ रहे हैं। मैं तो यह कहता हूं कि मुझे परम सुख मिल गया है इसलिए ये सुख अपने आप छूट रहे हैं। मैं परम आनन्द में हूं। क्या अब भी तुम नहीं समझी–मैं कठिहारे जैसा मूर्ख नहीं बनना चाहता। मैं समुद्र का पानी पी चुका हूं। अब मारवाड़ के साठी के कुएं के पास जाकर घास का पूला निचोड़कर प्यास बुझाना नहीं चाहता।'

जम्बूकुमार ने पद्मश्री की बात को इतने चातुर्य के साथ काट दिया कि अब बोलने के लिए कोई अवकाश नहीं रहा।

पद्मश्री आत्म-चिंतन में लग गई–मैं अब क्या उत्तर दूं? मेरे पास तो कोई उत्तर नहीं है, मैं निरुत्तर हूं। वह चिंतन की गहराई में चली गई। उसका निष्कर्ष रहा–जम्बूकुमार जो कह रहे हैं, वह सही है। मेरी बात सही सिद्ध नहीं हुई। वास्तव में काम-भोग की प्रकृति ऐसी ही है और उसका स्वरूप भी ऐसा ही है। वह मन ही मन निर्णय की स्थिति तक पहुंच गई। उसने मानसिक स्तर पर निर्णय कर लिया–मुझे भी जम्बूकुमार के संकल्प के साथ रहना है। वही मेरे लिए श्रेयस्कर है।

जम्बूकुमार मौन, पद्मश्री मौन। अब पद्मसेना मुखर हो रही है। उसकी मुखरता का परिणाम क्या होगा?





प्रत्येक मनुष्य में विचार, चिंतन और समझ होती है। किसी व्यक्ति में समझ ज्यादा होती है, वह अपने आपको सबसे ज्यादा समझदार मानता है। एक छोटा बच्चा भी अपने आपको ज्यादा समझदार मानता है। दो बच्चे पास-पास खड़े थे। एक व्यक्ति ने पूछा–दोनों में ज्यादा समझदार कौन है? दोनों बच्चे एक साथ बोल उठे–'मैं ज्यादा समझदार हूं।'

प्रायः हर व्यक्ति अपने आपको अधिक समझदार समझता है, वह इस भाषा में सोचता है और कहता भी है–यदि मैं होता तो यह काम कर देता। तुम यह काम नहीं कर पाये। यह एक प्रकृति है मनुष्य की। पद्मसेना ने भी इस प्रकृति से काम लिया, वह बोली–'पद्मश्री! हमने समझा था, तुम बड़ी चतुर हो, होशियार हो पर तुम कमजोर निकली। जम्बूकुमार ने तुम्हें प्रभावित कर दिया और तुम प्रभावित हो गई। तुम्हें ऐसी मर्म की बात कहनी थी कि जम्बूकुमार मौन हो जाते। किन्तु उलटा हो गया–जम्बूकुमार तो मौन नहीं हुए और तुम मौन हो गई।'

नहीं हुआ मेरा असर तेरे पर, तेरा असर हो गया मेरे पर।

पद्मसेना खड़ी हुई और बोली–'प्रियतम! मेरी दो बहनों ने तुम्हें कुछ बातें बताईं, किन्तु लगता है–वे बातें दमदार नहीं थीं इसलिए आप उन पर हावी हो गये पर मेरे साथ ऐसा नहीं होगा। मैं ऐसी मर्म की बात कहना चाहती हूं कि आपकी आंखें खुल जाएं। अब तक आपकी आंखें बंद बनी हुई हैं। लगता है किसी ने सम्मोहन अथवा वशीकरण कर दिया है, किसी के मायाजाल में आप फंस गए हैं।'

'प्रियतम! यह दुनिया बड़ी विचित्र है, इसमें ठगाई बहुत चलती है। आपको कोई ठग गुरु मिला है। उसने आपको फंसा लिया। अब आपको सत्य दिखाई नहीं दे रहा है। मुझे लगता है कि न तो कोई वैराग्य है, न कोई मुनि बनने की बात है, न और कुछ बात है। उस ठगाई के चक्कर में आपका दिमाग ऐसा हो गया कि केवल वही और वही दिखाई दे रहा है। आप सोच रहे हैं–क्या ऐसा होता है? प्रियतम! बिल्कुल



ऐसा होता है, दुनिया में ठगाई बहुत चलती है। आप बड़े घर में रहे हैं, वैभव का जीवन जीया है, आपको दुनिया का पता नहीं है। हमारा अनुभव है, हमने दुनिया को देखा है। हम यह जानती हैं कि दुनिया में कितनी ठगाई चलती है। आपको सचमुच किसी गुरु ने ठग लिया है।'

जम्बूकुमार ने मृदु स्वर में प्रतिवाद किया– 'पद्मसेना! मेरी चेतना स्वतंत्र है, जागरूक है। मैं कोई नशा नहीं करता, मादक वस्तु का सेवन नहीं करता। मेरा मन शान्त है, संतुलित है। कभी डिप्रेशन नहीं होता, अवसाद नहीं होता। मेरा भावात्मक जगत् बहुत सुन्दर है। मैं कभी आवेश में नहीं आता। ठगाई में वह व्यक्ति फंसता है, जो स्वयं ठगाई की वृत्ति रखता है। मेरी सहज सरलता और पवित्रता के सामने कोई ठगाई टिक नहीं सकती। तुम विश्वास करो–न किसी ने मुझे ठगा है, न वशीकरण किया है, न मोहनीय मंत्र का प्रयोग किया है। तुम कैसे कह सकती हो कि मैं ठगा गया हूं।'

'प्रियतम! जो ठगा जाता है, वशीकृत हो जाता है, उसे यह पता ही नहीं चलता कि वस्तुस्थिति क्या है?'

'क्या तुम्हें वस्तुस्थिति का पता है?'

'हां, स्वामी!'

'पद्मसेना! तुम वस्तुस्थिति बताओ। मैं अवश्य सुनूंगा। मेरा जीवन खुली पुस्तक है। उसका हर पृष्ठ खुला है। जहां से चाहो, खोलकर पढ़ लो। मुझे कोई कठिनाई नहीं है। मुझे यह भी विश्वास है कि मैं बिल्कुल ठगाई में नहीं हूं फिर भी तुम जो मर्म की बात कहना चाहती हो, उसे प्रस्तुत करो।'

पद्मसेना ने किंचित् क्षोभ के साथ कहा–'प्रियतम! आप पहले ही यह मान बैठे हैं कि मैं ठगाई में नहीं हूं तो फिर कहने का मतलब क्या है? यदि सामने वाला व्यक्ति अनुभव करे कि मैं बीमार हूं तो डॉ. कुछ चिकित्सा करे। वह यह कहे कि मैं बीमार नहीं हूं तो फिर डॉ. क्या करेगा? कोई आवश्यकता ही नहीं है।'

'प्रियतम! अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो रोगी हैं किन्तु उनको भी पता नहीं चलता कि मैं बीमार हूं। कुछ बीमारियां भी ऐसी होती हैं कि पता नहीं चलता। कैंसर की बीमारी का प्रारंभ में पता नहीं चलता। जब तक पता चलता है तब तक काम आगे बढ़ जाता है। बीमारी लाइलाज हो जाती है। आपको भी यह पता नहीं है कि आप ठगे गए हैं। आप बहुत सुकुमार हैं, साथ में भोले भी हैं और भद्र भी, इसलिए इस दुनिया की चालाकी को समझ नहीं पा रहे हैं।'

'पद्मसेना! तुम जो सोच रही हो, वह सही नहीं है, फिर भी तुम अपनी बात कहो, मैं ध्यान से सुनूंगा।'

'प्रियतम! मैं भी एक कथा सुनाना चाहती हूं, जिससे मेरा मंतव्य स्पष्ट हो सकेगा।'

'एक राजा की रानी बड़ी होशियार थी, चालाक थी। उस रानी का किसी अन्य पुरुष से प्रगाढ़ प्रेम संबंध भी था। उसे राजा से भी अधिक प्रिय था अपना प्रेमी। उसने सोचा–राजा जब यहां रहता है तब बहुत विघ्न आता है, स्वच्छंद भोग-विलास में बहुत बाधा आती है। मैं क्या करूं? कैसे इस बाधा को दूर करूं?

सोचते-सोचते उसके मन में विकल्प आया–यदि राजा को किसी बहाने बाहर भेज दूं और राजा वर्षों तक भटकता रहे तो मेरा काम बन जाएगा, कोई विघ्न-बाधा नहीं आएगी।

एक दिन रानी अतिशय प्रेम का प्रदर्शन करते हुए बोली–'महाराज! आप चालीस वर्ष के हो गये। आप जानते हैं–चालीस वर्ष तक तो आदमी चढ़ता है, यौवन का उभार रहता है। चालीस वर्ष बाद ढलना शुरू होता है, यौवन से बुढ़ापे की ओर से प्रस्थान हो जाता है।'

जैन आगमों में भी ऐसा उल्लेख मिलता है, आयुर्वेद और मेडिकल साइंस का भी यह सिद्धांत है–चालीस वर्ष के बाद आयु में उतार आना शुरू हो जाता है, आंखों की शक्ति भी कम होने लगती है, इंद्रियों की शक्ति भी कम होने लगती है, दांत भी मजबूती को थोड़ा खोने लगते हैं।

महारानी ने कहा–'महाराज! आप चालीस वर्ष के हो गये। आप थोड़े दिनों बाद बूढ़े हो जाएंगे, यह अच्छा नहीं होगा। कुछ वर्षों पश्चात् मौत सामने दिखने लग जायेगी इसलिए आपको ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे बुढ़ापा न आये, मौत न आये।'

राजा स्नेह से महारानी की केश राशि को सहलाते हुए बोला–'प्रिये! कैसी हास्यास्पद बात कर रही हो। इस दुनिया में जो आदमी जन्म लेता है, क्या वह कभी एक जैसा रहता है। अवस्था के साथ बुढ़ापा न आए, मौत न आए–यह कैसे हो सकता है?'

'महाराज! यह हो सकता है, होता है।'

'प्रिये! कैसे हो सकता है? आज तक जितने संत हुए हैं, महावीर, बुद्ध आदि-आदि जो महापुरुष हुए हैं सबने यह कहा है–



जम्म दुक्खं जरा दुक्खं रोगा य मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो जत्थ कीसंति जंतुओ।।

जन्म दुःख है, बुढ़ापा दुःख है, रोग दुःख है और मरण दुःख है। ये चार दुःख माने गए हैं। कोई भी इनसे मुक्त नहीं रह सकता। हर आदमी जन्म लेता है, हर आदमी बूढ़ा भी बनता है, रोगी भी बनता है और मरता भी है। यह जो आर्ष वाणी है, संतों की वाणी है, तीर्थंकरों की वाणी है क्या इसे कोई झुठला सकता है?'

महारानी आत्मविश्वास भरे स्वर में बोली–'महाराज! आप इन सब बातों को छोड़ो, इनमें कुछ सार नहीं है। मैं एक उपाय जानती हूं।'

'प्रिये! बताओ, कौन-सा उपाय है?'

आज जेरेण्टोलॉजी पर शोध हो रही है–बुढ़ापे पर नियंत्रण कैसे किया जाए? प्रयोगशालाओं में यह शोध चल रही है कि मौत पर नियंत्रण कैसे किया जाए? आज के युग का आदमी होता तो यह उपाय बता

देता–उन वैज्ञानिकों के पास चले जाओ, समस्या हल हो जाएगी। महारानी पुराने जमाने की थी। उस समय न प्रयोगशाला थी और न अन्वेषण का सुनियोजित उपक्रम था।

महारानी ने कहा–'महाराज! एक जड़ी होती है अमरजड़ी। आप जंगल में जाएं। जंगल में बहुत तपस्वी, साधु, संन्यासी और अवधूत बैठे हैं, तप तप रहे हैं। वे बहुत सारी जड़ी-बूटियां जानते हैं। उनके पास जाओ, उनकी भक्ति करो, प्रार्थना करो–महाराज! मुझे अमरजड़ी दो। कोई न कोई संन्यासी प्रसन्न होकर आपको अमरजड़ी दे देगा। उस अमरजड़ी को खाने के बाद आप भी बूढ़े नहीं बनेंगे, मैं भी बूढ़ी नहीं बनूंगी। आप भी नहीं मरेंगे और मैं भी नहीं मरूंगी। हम अमर बन जाएंगे, सदा युवा बने रहेंगे और संसार के दुर्लभ सुख चिरकाल तक भोग सकेंगे।'

पद्मसेना ने कथासूत्र को आगे बढ़ाते हुए कहा–'प्रियतम! महारानी ने राजा के गले यह बात उतार दी।'

राजा ने सोचा–महारानी बिल्कुल ठीक बात कह रही है। अब मुझे अमरजड़ी ले आनी चाहिए। मैं अमरजड़ी ले आऊंगा तो मेरा यौवन अमिट हो जाएगा, मैं कभी बूढ़ा नहीं बनूंगा। कोई भी समझदार व्यक्ति बूढ़ा बनना नहीं चाहता। अवस्था आए तो आए पर अवस्था का जो परिणाम है बुढ़ापा, उसे वह नहीं चाहता।

राजा बड़ा खुश हुआ। उसने भाव भरे स्वर में कहा–'प्रिये! तुमने बहुत सुंदर उपाय बताया है। अपने स्वामी का हित चिन्तन करने वाली ऐसी महारानी किसी को भाग्य से ही मिलती है।'

अजर-अमर होने की इस सीख ने राजा के मानस को छू लिया। उसका मन उसे पाने के लिए व्याकुल बन गया। वह रात-दिन अजर-अमर बनने का सपना देखने लगा। अमरजड़ी को पाने की चाह प्रबल हो गई। उसने जंगल में प्रस्थान की तैयारी शुरू कर दी।

राजा ने सोचा–इतने बड़े काम के लिए जाना है तो अच्छा मुहूर्त भी देख लेना चाहिए। उसने राज ज्योतिषी को बुलाया, निर्देश दिया–ज्योतिषी महाशय! ऐसा अच्छा मुहूर्त देखो कि मेरा मनोरथ सफल हो जाए, मेरा काम सिद्ध हो जाए। ज्योतिषी ने मुहूर्त, पल, घड़ी, दुघड़िया देखा और कार्य सिद्धि के लिए अनुकूल समय बताते हुए कहा–'राजन्! आप इस मुहूर्त में प्रस्थान करें, आपका काम सफल हो जायेगा।'

राजा ने वेश परिवर्तन किया और नियत समय पर अकेला जंगल की ओर चल पड़ा। उसने बहुत मुसीबतें और कठिनाइयां झेलीं। सदा राजप्रासाद में रहा। वैभव-विलास का जीवन जीया। सैकड़ों दास-दासियां सेवा में हाजिर रहतीं। कभी पानी का गिलास भी नहीं उठाया। न खाने की चिन्ता, न पीने की चिन्ता। अब कोई पास में नहीं, न खाने-पीने की व्यवस्था, न सेवा की व्यवस्था किन्तु इस कठिन स्थिति में भी उसे अमरजड़ी के सिवाय कुछ दिखाई नहीं दे रहा था।

'प्रियतम! आप ध्यान से सुन रहे हैं ना? जब कोई भूत सिर पर होता है तो कुछ दिखाई नहीं देता। मुझे लगता है कि आपके सिर पर भी दीक्षा का कोई भूत सवार हो रहा है। आप भी किसी की बात नहीं मान रहे हैं। जैसे रानी ने राजा को ठग लिया वैसे ही आपको भी किसी ने ठगा है।'

'प्रियतम! राजा ने भयावह जंगल में एकाकी भटकना शुरू किया। जहां कोई तपस्वी तप में लीन मिलता, वहां ठहरता, तपस्वी को प्रणाम करता और अपने मन की चाह की पूर्ति की आशा बलवती हो जाती।

तपस्वी पूछते–'भाई! क्यों आये हो?'

'महाराज! अमरजड़ी लेने आया हूं।'

'भाई! कौन-सी अमरजड़ी?'

'महाराज! जिसे खाने पर आदमी बूढ़ा नहीं होता, जिसे खाने पर आदमी कभी मरता नहीं है, वह अमरजड़ी मुझे चाहिए।'

तपस्वी स्पष्ट शब्दों में कह देते–'भाई! यहां से चले जाओ, यहां कुछ नहीं है। यह तो मारवाड़ की भूमि है, यहां क्या मिलेगा?'

राजा आगे बढ़ा, अनेक जंगलों को पार कर हिमालय तक पहुंच गया। हिमालय की अधित्यका में सैकड़ों-सैकड़ों साधक तप तप रहे थे। राजा उस संन्यासी के पास गया, जो बड़ा तेजस्वी लग रहा था। दीर्घ तपस्वी जैसा प्रतीत हो रहा था। राजा ने तपस्वी को नमस्कार किया, उपासना में बैठ गया।

तपस्वी का ध्यान पूरा हुआ, आंखें खोली, पूछा–'भाई! क्यों आये हो?'

'महाराज! मैं अमरजड़ी के लिए आया हूं।'

'कौन-सी अमरजड़ी?'

'महाराज! आप सिद्धपुरुष हैं, तपस्वी हैं, आप तो उसे जानते हैं। जिस जड़ी को खाने पर कोई मरता नहीं है।'

'मुझे वह अमरजड़ी दो। मैं मरना नहीं चाहता'–यह कहते हुए राजा भावुक हो उठा। उसकी आंखों से अश्रु छलक पड़े। उसने योगी के पैरों को अपने आंसुओं से धो डाला–



मैं नहीं मरूं मैं नहीं मरूं, द्यो अमर जड़ी द्यो अमर जड़ी।
राजा री भावुक आंख्या स्यूं, पाणी री बूंदां टपक पड़ी।।
टप टप परनालो चाल पड्यो, गीला जोगी रा पांव कर्‌या।
होठां री फड़कण पून बणी, होग्या भीतरला घाव हर्‌या।।
दिल की धड़कण अणमाप बढ़ी, नाकां में सांस न अब मावै।
जो आग धुकी है पाणी में, वा पाणी स्यूं किम बुझ जावै।।
यूं दिल री पीड़ा झाइ झाइ, हलको कर मन रो बोझ भार।
वीणा रो टूट्यो सांध तार, बोल्यो ले वन रो दिल उधार।।

राजा ने अपने मन की आकांक्षा को प्रस्तुत करते हुए कहा–'महाराज! आप मुझे ऐसी जड़ी बूटी दें जिससे मैं अमर बन जाऊं। मेरा यौवन स्थिर हो जाए। यह बुढ़ापा कभी न सताए।'

मैं अमर बणूं महाराज! इसी, द्यो इमरत री बूंटी घूंटी।
थिर बण ज्यावै जोवन म्हारो, बुढ़ापो टंग ज्यावै खूंटी।।

संन्यासी ने राजा की आंखों को देखा, आंखों में छिपी आकांक्षा को देखा। आंख को देखकर व्यक्ति का अध्ययन हो जाता है, उसके मानस को पढ़ लिया जाता है। आंख में से चेतना बाहर निकलती है। आंख

खिड़कियां हैं, उन खिड़कियों से दिमाग तक पहुंचा जा सकता है। संन्यासी पहुंचा हुआ साधक था, वह समझ गया–भोले आदमी को किसी ने भरमा दिया है, ठग लिया है और ठगाई के कारण यह यहां आया है। संन्यासी बोला–'अरे भाई! अमरजड़ी किसलिए चाहिए?'

विषयासक्त राजा ने महारानी को भी अमरता का दान देने की प्रार्थना की–'महाराज! मेरी महारानी मुझसे परम स्नेह रखती है। वह भी अमर बने। हम दोनों के शरीर अलग हैं किन्तु आत्मा एक है। उसका सुहाग अमिट बन जाए। मैं महारानी का इंगित पाकर ही ममता के इन मोतियों को लाया हूं।'–यह कहते हुए राजा ने मोतियों का हार योगी के चरणों में उपहृत कर दिया।

औ! अमर बणै राणी म्हारी, जो राखै म्हा स्यूं परम नेह।
है एक आतमा दोनां री, दीखे है न्यारी देह देह।।
औ! अमिट सुहाग बणै बी रो, ईं कारण वन में आयो हूं।
इंगित पाकर के राणी रो, ममता रा मोती ल्यायो हूं।।

सिद्धयोगी ने अपने दूरदर्शन से सारी स्थिति को देख लिया, वह बोला–'भाई! मैं समझ गया हूं। तुम राजा हो और अमरजड़ी के लिए आए हो। पर तुम एक काम करो, एक बार फिर राजप्रासाद में चले जाओ, अपनी रानी से मिल कर पुनः मेरे पास आओ तो मैं तुम्हें अमरजड़ी दे दूंगा।'

'महाराज! जैसी आपकी इच्छा, पर अब जाकर मैं क्या करूंगा? देना है तो दे दीजिए। बार-बार आने से क्या होगा? संन्यासीप्रवर! आप जानते हैं–मैं राजा हूं। मैंने कितना कष्ट सहा है! मैं कितना भटका हूं! आप मुझे फिर भेज रहे हैं!'

राजा की नासमझी पर योगी मुस्करा उठा। उसके हृदयवेधक हास्य से राजा का मुख म्लान हो गया। उसने रहस्यमय मुस्कान के साथ कहा–

वन री हरियाली हांस उठी, पंछ्या री पांख्यां फड़क उठी।
राजा री भोली बातां पर, जोगी री आंख्यां मुळक उठी।।
सारे वायु रै मंडल में, हांसी रो कहको छूट गयो।
अपणों सो मूंढो लेकर के, चुपचाप नरेसर ऊठ गयो।।

'राजन्! एक बार तो जाना होगा। बिना तप तपे अमरजड़ी कभी नहीं मिलती। वह उसको मिलती है जो तपस्या करता है। एक बार तो कष्ट सहन करना होगा। तुम जाओ और सीधे अपने अंतःपुर में चले जाओ। वहां महारानी से मिलकर उसकी सलाह लेकर मेरे पास आओ, मैं तुम्हें अमरजड़ी दे दूंगा।'

'ठीक है महाराज! जैसी आपकी आज्ञा।'

विवश राजा ने संन्यासी को प्रणाम कर अपने राज्य की ओर प्रस्थान किया। दो-तीन सप्ताह तक अनवरत यात्रा कर अपने राज्य में आया। उसका वेश बदला हुआ था। दाढ़ी बढ़ गई थी। यात्रा से रूप रंग भी बदल गया। राज्य में अचानक आने की कोई आशा भी नहीं थी। रानी ने यह मंत्र पढ़ा दिया था–'देखो! जा रहे हो, अमरजड़ी लिये बिना आ गये तो ठीक नहीं होगा।' राजा अचानक महल में आया। दरवाजे पर संतरी ने रोक दिया, कहा–'भीतर नहीं जा सकते।'

राजा ने पूछा–'क्यों?'

'यह राजद्वार है, राजप्रासाद है। ऐसे कैसे जा सकते हो? बिना स्वीकृति के कोई भीतर नहीं जा सकता।'

द्वारपाल को काफी समझाया पर वह नहीं माना तब राजा बोला–'मैं तो तुम्हारा राजा हूं। तुम मुझे रोकने वाले कौन हो?'

'राजा तो भीतर बैठा है। तुम कौन से राजा हो?'

'अरे मैं वन-भ्रमण के लिए गया था, वापिस आ गया हूं।'

इतना कहने पर भी द्वारपाल नहीं माना। राजा ने अपना थोड़ा-सा रूप दिखाया। द्वारपाल ने भी कुछ ध्यान देकर देखा तो पहचान लिया, उसने कहा–'महाराज! आप जा सकते हैं पर भीतर में तो एक राजा और बैठा है।'

राजा अचानक महल में गया, अंतःपुर में प्रवेश किया, उसने देखा– महारानी विराजमान है और उसके गले में हाथ डाले हुए एक पुरुष बैठा है।

राजा को गहरा आघात लगा। उसे योगी की मुस्कान का रहस्य समझ में आ गया।

आयो महलां में देखै है, राणी प्रेमी स्यूं मुरझ रही।
जोगी री मुळकण राजा रे, नैणां में रह रह उलझ रही।।

महारानी और प्रेमी के प्रेमालाप का दृश्य देख राजा के मन में इतनी घृणा हुई कि बिना कुछ कहे तत्काल मुड़ गया। जंगल की ओर चल पड़ा। योगी के पास पहुंचा। योगी को प्रणाम किया।



तत्काल मुड्यो बांही पगलां, जोगी रै चरणां शीश धर्यो।
अब अमरजड़ी साची ले ली, जोगी अपणो कर शीश धर्यो।।

'राजन्! आ गए।' योगी ने स्नेहिल स्वर में पूछा।

'हां!'

'रानी से बात कर आए?'

'नहीं महाराज।'

'क्यों?'

'उसकी आवश्यकता ही नहीं रही।'

'राजन्! क्या हुआ?'

राजा ने अपना सिर जोगी के चरणों में टिका दिया। आंखों से टप-टप पानी की बूंदें गिर रही हैं। आर्द्र नयन और अवरुद्ध कंठ से राजा बोला–'सिद्धयोगी! आपने मेरी आंखें खोल दीं। सचमुच मेरी आंखें बंद थीं। अब आंखें खुल गई हैं। मैं जिस अमरजड़ी की खोज में था, वह एक भ्रम था। वास्तविक अमरजड़ी तो आपके पास है। वह अनुग्रह कर मुझे दें।'

जोगी ने सिर पर हाथ रखा और बोला–'जाओ, तुम्हें अमरजड़ी मिल गई।'

कथा का उपसंहार करते हुए पद्मसेना ने कहा–'प्रियतम! आपको भी ऐसा कोई भरमाने वाला मिला है। जो कह रहा है–साधु बन जाओ, अमर बन जाओगे, मोक्ष में चले जाओगे, देवता बन जाओगे। अमरजड़ी की प्राप्ति जैसा प्रलोभन दे दिया है। इस प्रलोभन के पीछे कितनी ठगाई चल रही है, उसे आप नहीं जानते। आपके साथ अवश्य ही धोखा हो रहा है और आप किसी के शब्दजाल और मायाजाल में फंस गए हैं।'

'प्रियतम! कुछ होना जाना नहीं है। न कोई अमर होता है, न कोई स्वर्ग है, न कोई मोक्ष है, कुछ नहीं है। केवल धोखा है। आपको कोई रानी जैसा गुरु मिल गया जिसने भ्रम में डाल दिया है। अब आप किसी सच्चे संन्यासी के पास जाएं तो आपकी आंख खुल जाए।'

'प्रियतम! हमारा और कोई उद्देश्य नहीं है। मैं तो इतना चाहती हूं कि मेरा पति भ्रमित है, उसकी आंखें बंद हैं, उसके नेत्र उद्घाटित हो जाएं तो मैं स्वयं को कृतार्थ मानूंगी। हमारा प्रयत्न भी सफल होगा।'

'प्रियतम! क्या आपको अभी भी यह पता नहीं चला कि आप धोखा खाए हुए हैं। क्या यह अनुभव नहीं हो रहा है कि आपके साथ धोखा हो रहा है, आप ठगे जा रहे हैं? आप इतनी लंबी-चौड़ी बातें करते हैं, आदर्श की बातें करते हैं और जानते कुछ भी नहीं हैं। ज्यादा लोभ और प्रलोभन से समस्या पैदा होती है। विद्वान् लोग कहते हैं–कार्य को सोच-विचार कर करना चाहिए।'

मैंने एक उद्योगपति से पूछा–तुम्हारे पास इतनी संपन्नता थी, सब कुछ था फिर तुमने इतने गलत काम क्यों किए? आज सैकड़ों मुकदमे चल रहे हैं। जगह-जगह बन्धन हैं। वह बोला–मेरे मन में यह भावना जाग गई कि मुझे हिन्दुस्तान का नंबर वन उद्योगपति बनना है, सबसे बड़ा उद्योगपति बनना है। इस आकांक्षा ने मुझसे ये सारे काम करवा दिये।

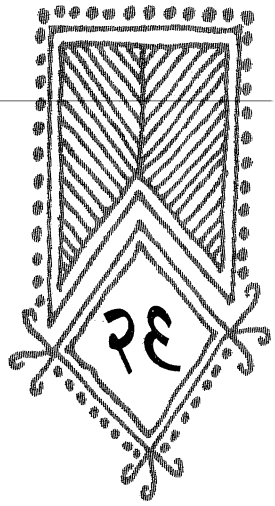
जहां अतिलोभ होता है आकांक्षा की अति होती है वहां समस्याएं होती हैं।

पद्मसेना ने भावपूर्ण स्वर में कहा–'प्रियतम! मेरी बात ध्यान से सुनो। अतिलोभ मत करो।'

जम्बूकुमार ने बड़ी शांति से सब कुछ सुना, सुनकर बोला–'पद्मसेना! तुम भी वाक्पटु हो, चतुर हो, पढ़ी लिखी हो। बड़ी चतुराई के साथ तुमने अपनी बात रखी है। पर पद्मसेना! तुम्हारी बात भी मेरे गले नहीं उतरी। कानों तक तो आई है पर गले नहीं उतरी। गले उतरे बिना नशा नहीं आता। नशा तब आता है जब घूंट गले से नीचे उतरता है। कोई बात गले के नीचे उतर जाए तो नशा आए।'

पद्मसेना–'प्रियतम! मेरी बात गले क्यों नहीं उतरी? इसका कारण तो समझाइए।'

जम्बूकुमार–'मैं कारण भी समझाऊंगा। तुम कारण को समझने का प्रयत्न करोगी तो तुम्हें उस सचाई का साक्षात्कार होगा, जिसका साक्षात्कार कोई विरल मनुष्य ही कर पाता है।'



आत्मनिरीक्षण और आत्मपरीक्षण केवल ध्यान-साधक के लिए ही नहीं, सबके लिए जरूरी है। हर व्यक्ति रोज अपना निरीक्षण करे, अपने आपको देखे, उसके पश्चात् अपने ज्ञान का, अपनी शक्ति और अपने आनन्द का परीक्षण करे। आत्मनिरीक्षण और आत्मपरीक्षण–ये दोनों अध्यात्म के द्वार बनते हैं।

जम्बूकुमार आत्म-निरीक्षण में लगा–पद्मसेना कह रही है कि किसी ने आपको ठग लिया है। क्या इस कथन में कोई सचाई है? क्या मैं ठगा गया हूं? क्या सुधर्मा स्वामी ने मुझे जिस सत्य का उपदेश दिया वह कोई ठगाई है? जम्बूकुमार इस तथ्य के परीक्षण में लग गये।



परीक्षा बहुत जरूरी है। किसी भी बात को सुना, वह बात अच्छी लगी तो उसे एक बार मान लिया किन्तु मानने के बाद उसकी परीक्षा भी करनी चाहिए। मानने तक रुकना नहीं है, पहुंचना है जानने तक। जानना तब होगा, जब परीक्षा होगी।

आचार्य भिक्षु ने परीक्षा पर बहुत बल दिया था। उन्होंने कहा–धर्म को स्वीकार करो तो परीक्षा के बाद स्वीकार करो। उन्होंने दृष्टांत की भाषा में कहा–कोई स्त्री घड़े को खरीदना चाहती है तो पहले घड़े को देखती है, ठोक-बजा कर परीक्षा करती है कि वह घड़ा कहीं से फूटा हुआ तो नहीं है। जब घड़ा भी परीक्षा के बाद लिया जाता है तब बड़े सत्य को आंख मूंदकर कैसे स्वीकार किया जाए? परीक्षा के बाद ही उसका स्वीकार होना चाहिए इसलिए आत्मनिरीक्षण और आत्मपरीक्षण–दोनों बहुत जरूरी हैं। बहुत सारे धार्मिक लोग भी आत्मनिरीक्षण नहीं करते, अपने आपको नहीं देखते, दूसरों को ज्यादा देखते हैं। फिर लौकिक आदमी की तो बात ही क्या करें! वह दूसरों को देखेगा तो कभी भला और कभी बुरा सोचेगा।

जम्बूकुमार ने आत्मनिरीक्षण शुरू किया। वह कुछ क्षण मौन रहा, सोचा–पद्मसेना ने अभी जो कहा, क्या सचमुच ऐसा हुआ है? क्या मैं ठगा गया हूं? क्या किसी ने मुझे ठग लिया है?

जम्बूकुमार मौन रहे, दो क्षण के लिए आत्मनिरीक्षण में रहे तब पद्मसेना ने सोचा–मेरा काम हो गया। अब जम्बूकुमार ने संभवतः मेरी बात मान ली है, स्वीकार कर ली है। अब जैसे ही बोलेंगे तो पहला शब्द यह होगा–अब मैं साधु नहीं बनूंगा।

दो क्षण आत्मनिरीक्षण और गहन चिन्तन के बाद जम्बूकुमार ने मौन खोला, आंखें खोली और बोले–'पद्मसेना! तुमने जो यह आरोप लगाया है कि मैं ठगा गया हूं, वह सही नहीं है। वस्तुतः मैं नहीं ठगा गया हूं। तुम सब ठगी गई हो। पदार्थ ने तुमको इतना ठग लिया कि तुम्हें पदार्थ के सिवाय कुछ दिखाई नहीं देता।'

'पद्मसेना! तुम जानती हो–कौन ठगा जाता है? और कौन ठगता है? दूसरा कोई नहीं ठगता। **'अप्पा अप्पाणं वंचए'**–आत्मा आत्मा को ठगता है। आदमी स्वयं अपने आपको ठगता है, दूसरा कोई नहीं ठगता। वह व्यक्ति ठगाई में जाता है, जो स्वयं को नहीं देखता।'

दो यात्री जा रहे थे, रास्ते में मिल गये। बातचीत हुई। दोनों को पैदल चलना था। एक यात्री ने पूछा–'कहां जा रहे हो?'

'मैं पटना जा रहा हूं। तुम कहां जा रहे हो?'

'मैं पटना के पास एक गांव है, वहां जा रहा हूं।'

दूसरे यात्री ने उल्लास व्यक्त करते हुए कहा–'चलो, बहुत लंबा रास्ता है। हम साथ हो जाएं, एक से दो हो जाएं तो अच्छा रहेगा, सुविधा हो जायेगी।'

दोनों ने समझौता कर लिया और दोनों साथ हो गये। लगभग एक महीने तक दोनों साथ रहे। दोनों पटना के आस-पास पहुंचे। एक यात्री बोला–'भैया! अब मेरा रास्ता दूसरा है। मुझे इधर जाना है। तुम पटना जाओगे। हम साथ रहे, बहुत अच्छा रहा, बड़ा आनन्द रहा, बड़ी सुविधा रही।'

दूसरा यात्री ठग था, वह बोला–'भाई! तुमने मुझे पहचाना या नहीं?'

'हां, मैंने पहचान लिया।'

'पूरा नहीं पहचाना होगा?'

'भाई! आप क्या कहना चाहते हैं?'

'भाई! मैं ठग हूं। मैंने बहुत लोगों को ठगा है। तुम मुझे सेठ लग रहे हो पर सेठ साहब! आज ऐसा लगता है कि तुम महाठग हो।'

'यह कैसे कह रहे हैं आप?'

'भाई! मुझे पता चल गया कि तुम्हारे पास एक बहुमूल्य हीरा है। मैंने बहुत प्रयत्न किया कि मैं उसको ले लूं। पर तुम तो ऐसे ठग निकले कि आज तक मैं हीरे के दर्शन भी नहीं कर पाया। तुम उसे कहां रखते थे?'

'क्या तुम इसका राज जानना चाहते हो?'

'हां, मैं तुम्हारी ठगविद्या को जानना चाहता हूं। तुमने ऐसी कौन-सी विद्या सीखी है जो ठग को भी ठग ले।'

यात्री बोला–'भाई! मैं एक सचाई को जानता हूं और वह सचाई यह है–हर आदमी दूसरे को देखता है, अपने आपको नहीं देखता।'

'ओह!'

'जब तुम कभी पानी पीने के लिए अथवा किसी दूसरे काम से बाहर जाते तब मैं मेरा हीरा तुम्हारी पोटली में बांध देता। तुम वापस आते, तब मैं पानी पीने या आवश्यक काम के लिए चला जाता। मुझे यह मालूम है–पीछे से तुम सारा प्रतिलेखन कर लेते, मेरा पूरा सामान छान लेते किन्तु अपना सामान नहीं देखते। मैं वापस आकर अपना हीरा पुनः ले लेता। इस प्रकार तीस दिन तक यह क्रम चला। इसमें ठगाई कोई नहीं है। यह सचाई है कि आदमी दूसरे को देखता है, अपने आपको नहीं देखता। अगर तुम अपना सामान संभाल लेते तो हीरा तुम्हें मिल जाता।'

ठग यह सुनकर स्तब्ध रह गया।

ठगता कौन है? ठगा वह जाता है जो दूसरों को देखता है।

जम्बूकुमार ने कहा–'पद्मसेना! मैं तो अपने आपको देख रहा हूं। मुझे कोई नहीं ठग सकता। ठगाई का कोई प्रश्न ही नहीं है किन्तु मैं विद्युत्माली जैसा मूर्ख भी नहीं बनना चाहता।'

जम्बूकुमार के इस कथन ने सबके मन में एक जिज्ञासा को जन्म दिया। आठों पत्नियां एक साथ बोल उठीं–'प्रियतम! वह विद्युत्माली कौन था? वह कैसे मूर्ख बना?'

जम्बूकुमार ने कहा–'प्रिये! उसकी कथा बहुत बोध-प्रद है। एक नगर में दो भाई रहते थे। एक का नाम था विद्युत्माली और एक का नाम था मेघमाली। दोनों बहुत दरिद्र थे। पास में कुछ नहीं था। बहुत दरिद्रता का जीवन बिता रहे थे। प्रिये! तुम जानती हो–**दरिद्रसमो पराभवो नास्ति**–दरिद्रता के समान इस दुनिया में कोई पराभव, तिरस्कार, अपमान नहीं है। दरिद्र आदमी की स्थिति बड़ी विचित्र होती है। कोई उसको पूछता नहीं, सामने तक नहीं देखता। एक संस्कृत कवि ने यहां तक कह दिया–



रे दारिद्र्य! नमस्तुभ्यं, सिद्धोऽहं त्वप्रसादतः।
सर्वानहं च पश्यामि, मां न पश्यति कश्चन।।

दरिद्रता! तुम्हें नमस्कार। दरिद्रता ने पूछा–मुझे नमस्कार क्यों? बड़े आदमियों को नमस्कार करो, धन को नमस्कार करो, संपदा को नमस्कार करो। दरिद्रता को नमस्कार करने से तुझे क्या मिलेगा?

कवि ने उत्तर दिया–'दरिद्रता की कृपा से मैं तो सिद्ध बन गया हूं, भगवान बन गया हूं।'

'यह कैसे कह रहे हैं आप?'

कवि ने कहा–'भगवान ऊपर बैठा सबको देखता है किन्तु उसे कोई नहीं देखता। मैं दरिद्र हूं, मैं भी सबको देखता हूं, मुझे कोई नहीं देखता। मैं सबके सामने जाता हूं, सबका मुंह देखता हूं पर मेरे सामने कोई नहीं देखता इसलिए मैं तो सिद्ध भगवान बन गया हूं।'

दरिद्रता में बड़ी कठिनाई होती है। जो दारिद्र्य भोगता है वही जानता है कि दरिद्रता कितनी बड़ी समस्या है।

सन् १९९४ में जयपुर में प्रवास था। एक दिन एक सेवानिवृत्त कमिश्नर आए। उन्होंने एक घटना सुनाई। मैं बांसवाड़ा में जिलाधीश था। एक बार आदिवासी इलाके का दौरा किया। एक स्कूल में गया।

एक बच्चे से पूछा–बोलो, तुम आज नाश्ते में क्या खाकर आये हो? वह बोला–आज मेरी बारी नहीं है। मैं समझ नहीं पाया। फिर वही प्रश्न पूछा और उत्तर भी वही मिला–आज मेरी बारी नहीं है। मैंने अध्यापक से पूछा–यह क्या उत्तर दे रहा है? शिक्षक ने बताया–'जिलाधीश महोदय! यह बड़ा गरीब है। घर में दो बच्चे हैं। दोनों को रोज नाश्ता नहीं मिलता। एक बच्चे को एक दिन नाश्ता मिलता है, दूसरे बच्चे को दूसरे दिन नाश्ता मिलता है। ये भूखे आते हैं और पूरे दिन भूखे रहते हैं।'

यह दरिद्रता कितना बड़ा संकट है, कितनी बड़ी समस्या है। एक आदमी दरिद्रता से बहुत परेशान हो गया। एक दिन हाथ जोड़कर बोला–

रे दारिद्र्य! सुलक्खणा, मुझ इक बात सुणेह।
म्हें परदेसां संचरा, तुम घर सार करेह।।

'दारिद्र्य! तुम मेरी एक बात सुनो। मैं परदेश जा रहा हूं। तुम घर की सार-संभाल करना, रखवाली करना।'

दरिद्रता बोली–'यह कैसे होगा? सज्जन का संग छोड़ना ठीक नहीं है। तुम परदेश जाओगे तो मैं भी आगे तैयार मिलूंगी।'

संचरवो सयणा तणो, छोड़त नेह अयान।
थे परदेसा संचरो, म्हैं पिण आगीवान।।

वह बोला–'फिर परदेश जाने की जरूरत ही नहीं है। वहां जाकर मैं क्या करूंगा?'

बड़ी समस्या है दरिद्रता। राजा भोज के समय का प्रसंग है। एक ब्राह्मण बहुत दरिद्र था। दरिद्रता इतनी थी कि पर्याप्त भोजन भी सुलभ नहीं था। ब्राह्मण को एक दिन किसी यजमान ने ईख भेंट किए। उसने सोचा–आज अच्छा अवसर है। मैं यह ईख राजा भोज को भेंट करूंगा। इससे राजा प्रसन्न होगा और मुझे कुछ दे देगा, मेरी दरिद्रता मिट जायेगी, खाने की समस्या नहीं रहेगी। इस चिन्तन के साथ उसने राजा भोज से मिलने के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में जंगल था। वह चलता-चलता थक गया। सोचा–थोड़ा विश्राम कर लूं। वह वृक्ष की शीतल छांह में लेट गया। वस्त्र में बंधा ईख का गट्ठर सिरहाने लगाकर सो गया। उसे गहरी नींद आ गई। उसी समय उस जंगल से कुछ राहगीर गुजरे। उन्होंने देखा–पंडितजी! गहरी नींद में हैं। उनके सिरहाने ईख है। उन्होंने धीरे से ईख को निकाल लिया, उसके स्थान पर लकड़ियां बांधकर फिर सिरहाना दे दिया। वे ईख को चूसते हुए, इक्षु रस का आस्वाद लेते हुए आगे बढ़ गए। ब्राह्मण को कुछ पता नहीं चला। थोड़े समय बाद उसकी नींद टूटी। वह गट्ठर लेकर चला, राजा भोज की सभा में पहुंचा।

यह मान्यता रही–राजा, देवता और गुरु के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए, कुछ न कुछ भेंट करना चाहिए–**रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं दैवतं गुरुं।**

बहुत बार हमारे पास भी लोग भेंट लेकर आते हैं। पूज्य गुरुदेव दिल्ली में विराज रहे थे। पति-पत्नी दर्शन के लिए आए, वंदना की। वंदना कर जेब से दस रुपया का नोट निकाला और पट्ट के पास रख दिया। गुरुदेव ने कहा–'बहनजी! क्यों?'

'महाराज! यह छोटी-सी भेंट है आपके लिए।'

'हम तो भेंट लेते नहीं हैं।'

पति ने सोचा–हम तो थोड़ा रुपया लाये हैं। इतने बड़े आचार्य हैं, गुरु हैं। कम से कम सौ रुपया तो लाना था। वे बोले–'महाराज! क्षमा करना। अभी इतना ही पास में था। इस बार आएंगे तो ज्यादा लाएंगे। इतना तो आज आप ले लें।' गुरुदेव ने उन्हें बहुत मुश्किल से समझाया–हम रुपया-पैसा की भेंट लेते नहीं हैं।

एक धारणा बनी हुई है–राजा, देवता और गुरु के पास जाएं तो खाली हाथ नहीं जाएं।

ब्राह्मण ने राजा को स्वस्ति-वचन कहे, उपहार के लिए लाई हुई गठरी खोली। वह लकड़ियां देखते ही अवाक् रह गया। उसने सोचा–अरे! यह क्या हुआ? ईख कहां गए? वह हतप्रभ हो गया। राजा भी क्रुद्ध हुआ। महाकवि कालिदास ने सारा दृश्य देखा, सोचा–बेचारा कोई गरीब ब्राह्मण है, इसके साथ धोखा हुआ है। यह अनावश्यक राजा के कोप का भागी बनेगा, मारा जायेगा।

कालिदास बोले–'महाराज! आज बहुत अच्छी भेंट मिली है। इतनी सुंदर भेंट आज तक कोई नहीं लाया?'

'कालिदास! यह सुन्दर भेंट कैसे है?'–राजा ने विस्मय के साथ पूछा।

'राजन्! मैं इसका रहस्य बताता हूं–

दग्धं खाण्डवमर्जुनेन बलिना रम्यैर्द्रुमैर्भूषितं, दग्धा वायुसुतेन हेमनगरी लंका पुनः स्वर्णभूः।
दग्धो लोकसुखो हरेण मदनः किं तेन युक्तं कृतं, दारिद्र्यं जगतापकारकमिदं केनापि दग्धं न हि।।



महाराज! खाण्डव वन कितना सुंदर था। रम्य वृक्षों से सुशोभित था। कौरवों ने कितना सुन्दर उद्यान बनाया। अर्जुन ने उसको भस्म कर दिया। उसने क्या अच्छा किया? वायुसुत हनुमान ने सोने की नगरी लंका को जला दिया। उसने क्या अच्छा किया? शंकर ने उस काम को जला डाला, जो लोगों के लिए सुखकर था। उसने क्या उचित किया? अनेक अच्छी चीजों को जला दिया गया। इस दरिद्रता को, जो सबसे खराब चीज है, किसी ने नहीं जलाया। यह ब्राह्मण इस लकड़ी के गट्ठर के माध्यम से आपसे निवेदन कर रहा है–महाराज! यह भेंट लो और इस दरिद्रता को भस्म कर डालो।

कालिदास की उक्ति से सारा वातावरण बदल गया। राजा प्रसन्न हो गया। उसने ब्राह्मण को इतना पारितोषिक दिया कि उसकी दरिद्रता समाप्त हो गई।

यह लोकतंत्र का युग है। लोकतंत्र में चुनाव होते हैं। चुनावों में सबसे पहला आश्वासन होता है कि हम गरीबी को समाप्त कर देंगे। इस आश्वासन को सुनते-सुनते लोगों के कान बहरे हो गये। एक ओर गरीबी को मिटाने के आश्वासन दिए जा रहे हैं, दूसरी ओर गरीब तो शायद ज्यादा गरीब बन रहा है। अमीर तो कुछ बने होंगे पर गरीब भी कम नहीं हैं। दरिद्रता बहुत बड़ा दुःख है।

जम्बूकुमार ने कहा–'पद्मसेना! मेघमाली और विद्युत्माली–दोनों भाई दरिद्रता से परेशान थे, बहुत दुःखी बने हुए थे। एक दिन दोनों जंगल में गये। एक वृक्ष की छांह में बैठ गये। बहुत उदास और खिन्न। ऐसा योग मिला–एक विद्याधर आकाश मार्ग से यात्रा करते हुए जा रहा था। उसने देखा–वृक्ष के नीचे दो

दुःखी आदमी बैठे हैं। उसे दया आ गई। वह विद्याबल से नीचे उतरा, उनके पास आया, बोला–'भाई! तुम इतने दुःखी क्यों हो?'

'महाराज! हम बहुत गरीब हैं। कुछ खाने को नहीं है। हमारे पास कोई कला नहीं है, कोई शिल्प नहीं है, विद्या नहीं है। न तो हम पढ़े-लिखे हैं और न पास में पैसा है। पेट भरना बड़ा मुश्किल हो रहा है। कभी-कभी तो सोचते हैं कि इस संसार से विदा हो जाएं। हम कुछ समझ नहीं पा रहे हैं कि हम क्या करें।'

विद्याधर को दया आ गई। जिस समय मानवीय संवेदना जागती है, उस समय एकात्मकता का भाव जुड़ जाता है। विद्याधर ने सोचा–इनको निहाल करना चाहिए। विद्याधर बोला–'बोलो, क्या चाहते हो, मांग लो। तुम जो मांगोगे वह देंगे।'

दोनों भाई सोच-विचारकर बोले–'हमें ऐसी विद्या दो जिससे हमारी गरीबी मिट जाए।'

विद्याधर ने कहा–'ठीक है। मैं तुम्हें चंडालिनी नाम की विद्या देता हूं। उस विद्या को तुम साध लो। छह महीना लगेगा। छह महीने में विद्या सिद्ध हो जायेगी। विद्या की सिद्धि के बाद तुम्हारी सारी स्थिति बदल जायेगी। तुम गरीब नहीं रहोगे। जनता में तुम्हारा सम्मान बढ़ेगा। सब लोग तुम्हें पूछेंगे, तुम्हारे पास आयेंगे, कहेंगे–तुम भी हमारा भाग्य बता दो, हमारा गुप्त खजाना बता दो। तुम्हारा बड़ा सम्मान होगा, प्रतिष्ठा भी बढ़ जायेगी।'

दोनों भाई बहुत प्रसन्न हुए।

विद्याधर ने कहा–'देखो, एक काम तुम्हें करना होगा। चाण्डाल कन्या के साथ विवाह करना होगा। विवाह के पश्चात् छह महीने तक ब्रह्मचारी रहकर विद्या की साधना करनी होगी। यदि विवाह के बाद छह माह तक ब्रह्मचारी नहीं रहे तो विद्या सिद्ध नहीं होगी। यदि विवाह के बाद ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए साधना की तो विद्या सिद्ध हो जाएगी।'

विद्याधर विधि बता कर चला गया। दोनों भाइयों ने चाण्डाल कन्या के साथ विवाह कर लिया और विद्या की साधना शुरू कर दी।

विद्युत्माली विद्याधर के निर्देश का पालन नहीं कर सका। वह कन्या में आसक्त हो गया। उसने संकल्प को तोड़ दिया, भोग-विलास में फंस गया। मेघमाली अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ साधना करता रहा। छह महीना पूरा हुआ। मेघमाली को चण्डालिनी विद्या सिद्ध हो गई। जब चण्डालिनी विद्या सिद्ध हो जाती है तब भूत, भविष्य को जानने की शक्ति बढ़ जाती है। विद्यासिद्ध व्यक्ति भविष्यवाणी करने लग जाता है, सुदूर भविष्य की बात बता देता है। मेघमाली ने भविष्यवाणियां करनी शुरू कर दी। पूरे शहर में मेघमाली का नाम गूंज उठा। बड़े-बड़े लोग अपना भविष्य पूछने के लिए आने लगे। आजकल जब चुनाव आते हैं, तब ज्योतिषियों के पास राजनेताओं की भीड़ हो जाती है। उनके मन में यह चिन्ता होती है कि भविष्य क्या होगा? जीतेंगे या नहीं, मंत्री बनेंगे या नहीं?

मेघमाली की प्रख्याति को देख कर विद्युत्माली मन में बहुत पछताता है, वह सोचता है–हाय! मैंने क्या कर दिया? मैं अपने आप पर नियंत्रण नहीं रख सका, अपनी वृत्तियों पर नियंत्रण नहीं रख सका, ब्रह्मचारी नहीं रह सका। उसी का यह परिणाम है–न दरिद्रता मिटी, न विद्या सिद्ध हुई और न मेरा नाम

प्रख्यात हुआ। मुझे कुछ नहीं मिला और मेरा भाई मालामाल हो गया। उसे धन, यश और प्रतिष्ठा सब कुछ मिल गए।

जम्बूकुमार ने कथा का उपसंहार करते हुए पूछा–'पद्मसेना! बताओ कौन ठगा गया? किसने किसको ठगा? क्या विद्याधर ने विद्युत्माली को ठगा? मेघमाली ने विद्युत्माली को ठगा?'

'स्वामी! विद्युत्माली स्वयं अपनी वृत्तियों के कारण ठगा गया।'

'पद्मसेना! जैन आगम कहते हैं–**अप्पा अप्पाणं वंचए**–अपनी आत्मा ही अपने आपको ठगती है। दुनिया में कोई किसी को नहीं ठगता। अगर अपनी आत्मा अप्रमत्त है, जागरूक है, सावधान है तो किसी में ठगने की ताकत नहीं है। अपना आलस्य, अपना प्रमाद, अपनी शिथिलता, अपनी मूर्खता व्यक्ति को ठगती है। मेरा निश्चित विश्वास है कि कोई किसी को नहीं ठगता। तुमने जो आरोप लगाया है–गुरु ने तुमको ठग लिया वह सही नहीं है। मुझे कोई नहीं ठग सकता। विद्युत्माली जैसे व्यक्ति को कोई अवश्य ठग सकता है जिसका अपने आप पर नियंत्रण नहीं है, अपने आप पर अनुशासन नहीं है। जो आत्मानुशासन करना जानता है, **अप्पा अप्पाणं सासए**–आत्मा से आत्मा को शासित करता है उसको कोई नहीं ठग सकता। जो अपना अनुशासन करना स्वयं नहीं जानता, वह ठगा जाता है। इसलिए तुम्हारा यह आरोप सही नहीं है कि किसी ने मुझे ठगा है।'

'पद्मसेना! मैंने मेघमाली की तरह साधना के सूत्र को समग्रता से पकड़ा है। मैं विद्युत्माली जैसा मूर्ख नहीं हूं कि कोई मुझे ठग ले। मैं मेघमाली जैसा दृढ़व्रती हूं इसलिए यह संभव है–जो गुरु ने कहा, जो विद्याधर ने कहा, उसका यथावत् पालन करना और सफलता की दहलीज पर पहुंच जाना। तुम मेघमाली से मेरी तुलना करो, विद्युत्माली से मत करो। यदि मैं पदार्थ में लुब्ध हो जाता, तुम्हारे भोग-आमंत्रण में लुब्ध हो जाता, आसक्त हो जाता तो तुम कह सकती थी कि मैं ठगा गया किन्तु मैं इन सबसे परे हूं इसलिए ठगाई का तो कोई प्रश्न ही नहीं है।'





'पद्मसेना! मैं पदार्थ को पदार्थ जानता हूं, भौतिकता को भौतिकता जानता हं, काम को काम जानता हूं, भोग को भोग जानता हूं और आत्मा को आत्मा जानता हूं। मैं यह भी जानता हूं कि आत्मा का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, पदार्थ का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। पदार्थ पदार्थ है और आत्मा आत्मा है। मैं आत्मा हूं पदार्थ नहीं हूं–मैं इस सचाई को जानता हूं। मेरे इस अध्यात्म अनुप्राणित वक्तव्य को तुम गहराई से समझो–आत्मा आत्मा है। तुम भी आत्मा हो, मैं भी आत्मा हूं। हम क्यों व्यर्थ इस शरीर के प्रपंच में फंस रहे हैं?'

जम्बूकुमार की इस मर्मभरी वाणी को सुनकर पद्मसेना का चेहरा ही नहीं, अंतरंग भी बदल गया। कोरा चर्मचक्षु ही नहीं खुला, अंतश्चक्षु भी उद्घाटित हो गया। जब अंतश्चक्षु उद्घाटित हो जाता है, तब दुनिया का दृश्य बदल जाता है। जब तक अंतर्दृष्टि नहीं जागती, दुनिया का दृश्य दूसरा प्रतीत होता है। अंतर्दृष्टि जागृत होते ही दृश्य बदल जाता है। पद्मसेना की अंतर्दृष्टि जागृत हो गई। वह कुछ भी बोलने की स्थिति में नहीं रही। वह आत्मविलोड़न और आत्ममंथन में लग गई। उसके भीतर में बिलोना शुरू हो गया, मंथन शुरू हो गया।

पद्मसेना ने सोचा–वास्तव में बात तो सच वही है जो जम्बूकुमार कह रहे हैं। हम मोह में फंसी हुई हैं और स्वयं ठगाई के जाल में फंस रही हैं।

पद्मसेना ने निश्चय किया–जब इस सत्य को मैंने समझ लिया है, मेरी अंतर्दृष्टि खुल गई है तब मुझे भी अब जम्बूकुमार का साथ देना है। उसने जम्बूकुमार के कथन का समर्थन किया। वह भी समुद्रश्री, पद्मश्री की पंक्ति में अवस्थित हो गई।

कनकसेना ने देखा–समुद्रश्री और पद्मश्री के पश्चात् पद्मसेना का हृदय भी बदल गया। पता नहीं क्या बात है जो जम्बूकुमार के साथ वार्तालाप करता है, वह उनका हो जाता है।

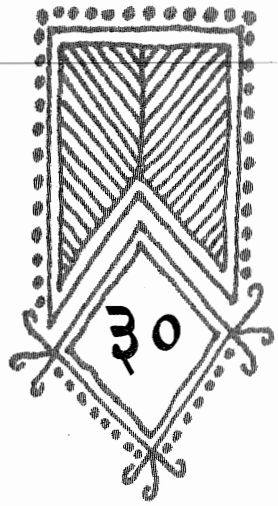
भगवान महावीर कैवल्य को उपलब्ध हो गए। जन प्रवाह भगवान की देशना सुनने के लिए उमड़ पड़ा। इंद्रभूति भगवान महावीर के बढ़ते प्रभाव से विचलित हुए। वे शास्त्रार्थ करने के लिए महावीर के पास आए और महावीर के शिष्य बन गये। अग्निभूति ने सोचा–कोई इन्द्रजाल है, महावीर ने इंद्रभूति को फंसा लिया। मैं जाता हूं, देखता हूं। वे बहुत गर्व के साथ जाते हैं और जाते ही उनका गर्व विगलित हो जाता है। वे स्वयं महावीर के शिष्य बन जाते हैं। वायुभूति सोचते हैं–सब फंस जाते हैं। मैं फंसने वाला नहीं हूं। उनके साथ भी वही होता है।

यह कैसी स्थिति है–जो जालमुक्त है, उसको लोग मायाजाल मान लेते हैं?

कनकसेना बोली–'पद्मसेना! तुम इतनी डींग हांक रही थी, लंबी-चौड़ी बातें कर रही थी कि मैं जम्बूकुमार को दो मिनट में समझा लूंगी पर तुम जलशून्य बादल जैसी निकली। जो जल से शून्य बादल होता है वह बहुत गरजता है पर पानी की एक बूंद भी नहीं गिरती। इसी प्रकार तुम बहुत गरजी पर कोई सार नहीं निकला। बिल्कुल निरुत्तर हो गई, मौन हो गई। अब तुम मेरा करतब देखो–मैं क्या करती हूं। मैं जम्बूकुमार को मनवाकर रहूंगी, यह मेरा दृढ़ निश्चय है।'

कनकसेना की गर्वोक्ति सार्थक बनेगी या निरर्थक संलाप मात्र?





चिन्तनशील व्यक्ति विवेक से कार्य करता है। विवेक यह है–सबको एक समान नहीं मानना। नमक और कपूर को एक जैसा न मानना।

लूण, कपूर गिणै इक आगर।
गुणी, अगुणी न ठीक न ठाहर।।

गाथा
परम विजय की

ऐसा नहीं होना चाहिए कि गुणी भी वैसा और अवगुणी भी वैसा। सज्जन भी वैसा, दुर्जन भी वैसा। नमक भी वैसा, कपूर भी वैसा। हंस भी वैसा और बगुला भी वैसा। कोयल भी वैसी और कौआ भी वैसा। दिखने में कोयल, कौआ समान लगते हैं पर जब वे बोलते हैं तो विवेकी यह पहचान कर लेता है–कौन कोयल है और कौन कौआ? **काकः काकः पिकः पिकः**–कौआ कौआ है और कोयल कोयल है। हंस और बगुला–दोनों सफेद होते हैं। विवेकी यह पहचान कर लेता है कि कौन हंस और कौन बगुला है? **हंसा तो मोती चुगै**–मोती चुगता है, वह हंस है। बगुला मछलियों की टोह में रहता है। नमक भी सफेद है, कपूर भी सफेद है पर कपूर कपूर है और नमक नमक। आंख की दवा में कपूर डालना होता है, उसमें यदि नमक डाल दें तो कैसा रहे?



यह विवेक शक्ति मनुष्य को आगे बढ़ाने के लिए और समझ को ठीक रखने के लिए बहुत आवश्यक होती है।

कनकसेना ने किंचित् सोच-विचार के पश्चात् कहा–'प्रियतम! मेरी तीन बहनों ने आपको जो कुछ कहा है, मैं उसकी पुनरावृत्ति नहीं करूंगी। पिष्ट-पेषण करना मुझे पसंद नहीं है। एक बार आटा पीस लिया, फिर उसको पीसो–यह पिष्टपेषण है। मैं ऐसा नहीं करूंगी। मैं तो नई बात कहना चाहती हूं और ऐसी बात कहना चाहती हूं, जिससे आपको चिन्तन करने के लिए बाध्य होना पड़े।'

जम्बूकुमार ने पूछा–'बोलो, क्या है तुम्हारा तर्क? तुम क्या कहना चाहती हो?'

'प्रियतम! मेरा तो यही अनुरोध है कि आप अवसरज्ञ बनो। स्वामी! मैं यह नहीं कहती कि आप भोले हैं, समझदार नहीं हैं। मैं आक्षेप करना नहीं चाहती, आरोप लगाना नहीं चाहती। पर एक बात तो मुझे विवश होकर कहनी पड़ेगी कि आप अवसर के जानकार नहीं हैं। आप बार-बार कहते हैं–मैंने महावीर की वाणी सुनी है पर मुझे लगता है कि आपने महावीर की वाणी ध्यान से नहीं सुनी। यदि सुनी है तो वह आपके भीतर उतरी नहीं है।'

'प्रियतम! महावीर ने तो कितना सुन्दर सूत्र दिया था–

बलं थामं च पेहाए सद्धा मारोगमप्पणो।
खेत्तं कालं च विण्णाय तहप्पाणं निजुंजए।।

किसी काम में अपने आपको नियोजित करो तो पहले इतनी चीजें देखो–

बलं–मेरे शरीर का बल कैसा है।

थामं–मेरी प्राणशक्ति कैसी है?

सद्धा–मेरी श्रद्धा कैसी है? अंतर की इच्छा, श्रद्धा घनीभूत हो। जिस श्रद्धा से मैं काम को स्वीकार करूं, उसको पूरा निभाऊं–

जाए सद्धाए निक्खंतो, परियायट्ठाणमुत्तमं।
तमेव अणुपालेज्जा, गुणे आयरियसम्मए।।

यह महावीर का वचन है–जिस श्रद्धा से अभिनिष्क्रमण करो, उसका बराबर पालन करो।

चौथी बात है–अपना आरोग्य देखो, अपना स्वास्थ्य देखो। मेरा स्वास्थ्य कैसा है?

क्षेत्र और काल को देखो।

इस षट्क पर ध्यान दो–बल, स्थाम, श्रद्धा, आरोग्य, क्षेत्र और काल–इन सबकी विवेचना कर कोई काम करोगे तो सफल बनोगे। यह एक अवसर की व्याख्या है।'

'प्रियतम! अभी आपने अवसर को नहीं देखा, अपने शरीर के बल को भी नहीं देखा। इतने सुकोमल और सुकुमार हो, कम से कम अपनी शक्ति को तो तौलना चाहिए। आप मुनि बनने की बात कर रहे हो पर मुनि बनने के योग्य आपका शरीर ही नहीं है। आप कैसे मुनि बनेंगे? आपने श्रद्धा को भी नहीं देखा। मुझे तो नहीं लगता कि इतने कोमल शरीर की श्रद्धा भी इतनी मजबूत होती है। **खेत्तं कालं च विण्णाय**–न क्षेत्र उपयुक्त देखा और न काल उपयुक्त देखा। अभी तो एक फूल खिला है, यौवन का उभार आ रहा है, यौवन की दहलीज पर खड़ा है और आप साधु बनने की बात करते हो? साधु तो वह बने, जिसने पचास-साठ वर्ष पार कर लिए, संसार का अनुभव कर लिया, गृहस्थी को चला लिया फिर अवसर आता है साधु बनने का। क्या यह कोई अवसर है? अभी तो आपको कुछ पता ही नहीं है। आप कुछ नहीं जानते, इसलिए मेरी यह बात बिल्कुल ठीक है–आप और सब कुछ हो सकते हैं पर आप अवसरज्ञ नहीं हैं, अवसर के जानकार नहीं हैं। कौन-सा काम कब करना चाहिए? किस क्षेत्र में करना चाहिए? किस समय में करना चाहिए? किस अवस्था में करना चाहिए?–इन सारे तथ्यों को जो नहीं जानता, उसे क्या कहा जाए?'

'प्रियतम! आपको बुरा लगे तो भले लगे। मैं माफी मांग लूंगी, पर यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है–आप अवसर के जानकार बिल्कुल नहीं हैं। यह मुनि बनने का अवसर ही नहीं है। हर बात अवसर पर करनी चाहिए। अनवसर की बात अच्छी नहीं होती। विवाह का अवसर है और मातम के गीत गाएं तो कैसा लगेगा? मातम का समय हो और विवाह के मंगल गीत गाएं तो क्या होगा? मंगल ध्वनि और शोक ध्वनि अपने-अपने स्थान पर ही उपयुक्त लगती है। अवसर के बिना मंगल-गीत भी अच्छे नहीं लगते।'

एक राजा बड़ा संगीतप्रिय था। उसने एक बार अपने अधिकारियों को आदेश दिया–कोई भी बात कहो तो संगीत में कहो, संगीत के बिना मत कहो। जो संगीत में मुझे अपनी बात कहेगा, उसे मैं पुरस्कार दूंगा। जो बेसुरे सुर में अपनी बात कहेगा, उसकी बात पर ध्यान नहीं दूंगा। एक दिन एक अधिकारी आया, उसे आवश्यक सूचना देनी थी। सीधी स्पष्ट भाषा में सूचना देने का निषेध था। एक मिनट की सूचना देने से पूर्व उसने आलाप शुरू कर दिया–आ आ....आ....आधा घंटा आलाप के पश्चात् संगीतमय स्वर में कहा–आज म्हारै राजाजी रै बाग में....आग लागी औ।

राजा ने पूछा–'अरे! क्या कह रहा है?'

'राजाजी रै बाग में आग लागी हो।' उसने संगीतमय लहजे में पुनः दोहराया।

'आग कब लगी?'

'एक घंटा पहले।'

'तुमने उसी क्षण सूचना क्यों नहीं दी?'

'महाराज! सीधी सूचना देता तो आप नाराज हो जाते।'

राजा ने साक्रोश कहा–'मूर्ख हो तुम। उद्यान में आग लग गई और तुम आलाप करते रहे। क्या इतने समय में उद्यान भस्म नहीं हो जायेगा? तुम अवसर को भी नहीं जानते!'

कनकसेना ने गंभीर स्वर में कहा–'प्रियतम! आप भी अवसरज्ञ नहीं हैं। क्या यह अवसर है दीक्षा लेने का? कल तो पाणिग्रहण किया और आज आप साधु बनने की बात कर रहे हैं! आप अवसर को समझो। अवसर को समझे बिना कोई काम करता है तो वह उस किसान की तरह पश्चात्ताप करता है।'

जम्बूकुमार बोले–'कनकसेना! तुम्हारा भाषण बहुत अच्छा हो रहा है। मैं उसे ध्यान से सुन रहा हूं पर वह किसान कौन था? जिसने अवसर को नहीं समझा और पश्चात्ताप किया।'

'प्रियतम! आप उस किसान की कथा को ध्यान से सुनें। दोनों कान खुले रखकर सुनें और केवल सुनें ही नहीं, भीतर तक ले जाएं।'

सुरपुर नगर के बाहर उर्वर भूमि थी। उस भूमि में एक किसान खेती करता था। वह प्रतिदिन खेत की रखवाली करता। समय के साथ फसल काफी बड़ी हो गई। खेत बहुत बड़ा था। सब जगह कैसे रखवाली की जाए? वह पास में शंख रखता और रात को बार-बार शंख बजाता रहता, जिससे कोई भी पशु-पक्षी आए तो आवाज सुनकर बाहर चला जाए। एक रात को ऐसा योग मिला–चोरों का एक दल सुरपुर में आया, जिसमें बीस चोर थे। उस युग में चोरों की पल्लियां होती थीं। कुछ चोर स्वतंत्र होते और कुछ पल्ली बनाकर



रहते। उन चोरों ने खूब माल चुराया, पशुओं को भी चुराया। बहुत धन, भारी सामान और सैकड़ों गायों को लेकर जा रहे थे। जैसे ही उस किसान के खेत के पास आये, किसान ने शंख बजाया। शंख इतना तेज बजाया कि चोर डर गये। उन्होंने सोचा–पीछे से पुलिस पकड़ने के लिए आ रही है। यह उसी की आवाज है और वे ही शंख बजा रहे हैं। शंख की एक विशेष प्रकार की ध्वनि होती है। प्राचीन साहित्य में शंख के चमत्कार का वर्णन मिलता है। भयभीत चोरों ने सोचा–आरक्षी दल आ गये हैं। इतने सामान को लेकर हम भाग नहीं सकते। भयभीत चोरों ने सारे पशुओं को वहीं छोड़ दिया, भारी सामान को भी छोड़ दिया। चोर प्राण बचाने के लिए भाग गये। किसान ने देखा–ये कौन लोग हैं? सब क्यों भाग रहे हैं। क्या बात है? वह वहां आया–रुपये, गहने, जवाहरात का ढेर लगा पड़ा है, बहुत सारे पशु खड़े हैं। उसने सोचा–ये जरूर चोर हैं और भाग गये हैं। उसने उस धन पर कब्जा कर लिया, अपने घर ले गया। कुछ दिनों में उसका हाल बदल गया। लोगों ने पूछा–अरे! इतनी सम्पदा तेरे पास कैसे आ गई? तुम इतने सुखी बन गए, क्या कारण है?

किसान बोला–'आकाश से बरसा है, किसी देवता ने कृपा की है इसलिए इतनी सम्पदा बढ़ गई।' लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

दो-तीन महीने बीते। फसल की कटाई का समय आया। कर्मकरों द्वारा फसल काटी जा रही है। अनाज पड़ा है, रखवाली कर रहे हैं। किसान भी वहीं खड़ा है और शंख बजा रहा है। ऐसा योग मिला–उसी समय वे ही चोर उसी मार्ग से चोरी करने के लिए जा रहे थे। खेत के पास आये, शंख की आवाज को सुना। शंख ध्वनि सुनकर चोरों ने सोचा–यह तो वही शंखध्वनि है। यहां कोई आरक्षी दल नहीं है। कोई सामान्य कृषक शंख ध्वनि कर रहा है। हम तो उस दिन अनावश्यक डर गये। हमने सोचा–पीछे से कोई पकड़ने के लिए आ रहे हैं, यहां तो कोई नहीं है। कोई खेत में से ही आवाज आ रही है। वे खेत में घुस गये, आगे देखा–एक बूढ़ा किसान शंख बजा रहा है। चोरों ने सोचा–धोखा हो गया। उसको पकड़ा। पकड़कर सीधे पल्ली में ले गये। पूछा–बोलो, दो महीने पहले यहां धन और पशु तुम्हें मिले थे। किसान दो-चार बार तो ना-नुकर करता रहा। जब पिटाई शुरू हुई, तब बोला–हां मिला था। मार के सामने तो भूत भी भाग जाते हैं। किसान ने स्वीकार कर लिया–धन मेरे पास है।

'पशु कहां हैं?'

'पशु बाड़ों में बंधे हुए हैं।'

'सबको लाओ यहां। नहीं तो तुम्हारे प्राण चले जाएंगे।'

किसान बेचारा डर गया, उसने कहा–'मैं सारा ला दूंगा।'

उसने सारा धन और पशु वापस दे दिये। जो देवता का प्रसाद था, वह पुनः चला गया। वह वैसा का वैसा हो गया। जो सम्पदा आई वह दो महीने के बाद चली गई।

'प्रियतम! इस कहानी का मर्म समझो। ऐसा क्यों हुआ? इसलिए हुआ कि किसान अवसर को नहीं जानता था। कब शंख बजाना चाहिए, यह ज्ञान नहीं था। केवल बजाता ही चला जाता। उसने यह नहीं देखा कि अभी इतने लोग आ रहे हैं तो अभी शंख नहीं बजाना चाहिए। खेत के आगे जा रहे लोगों को देख लेता, अवसर को जानता, शंख नहीं बजाता तो वह धनवान बनकर फिर गरीब नहीं बनता।'

'प्रियतम! आप भी उस किसान जैसे हैं। अवसर को देखे बिना ही साधुत्व की बात कर रहे हैं। आपको अवसर का ज्ञान नहीं है। यदि अवसर को जानते तो इन बातों पर अवश्य ध्यान देते।'

'प्रियतम! पहली बात तो यह है–माता-पिता वृद्ध हैं। उनकी सेवा किये बिना साधु बनने की बात कर रहे हैं। क्या यह कोई अवसर की बात है? जब तक माता-पिता जीवित थे, महावीर भी मुनि नहीं बने। जब माता-पिता का स्वर्गवास हो गया, उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई तब वे मुनि बने। महावीर ने प्रतिज्ञा की थी–जब तक माता-पिता जीवित हैं तब तक साधु नहीं बनूंगा। क्या आपके लिए उचित है कि माता-पिता तो जीवित हैं और आप साधु बनने की बात कर रहे हैं?

दूसरी बात–हम आठ कन्याएं तुम्हारे साथ आई हैं। कम से कम हमारी भावना का भी तो सम्मान करो। हमारी भावना भी देखो।

तीसरी बात यह है–इतना अपार धन आया है। इसका क्या करोगे? कैसे छोड़कर जाओगे? कोई दूसरा भाई होता तो सोच लेते कि चलो एक भाई जाएगा तो दूसरा भाई भोगेगा। पीछे सब अनाथ हैं। केवल बूढ़े मां-बाप बचेंगे, अन्य लोग इसे लूटेंगे। कितनी बदनामी होगी! थोड़ा चिंतन तो करो।

न परिवार की चिंता, न घर की चिंता, न धन की चिन्ता, न माता-पिता की चिंता और न पत्नियों की चिंता, किसी की चिंता नहीं। बस एक ही धुन सवार हो गई कि साधु बनूंगा, साधु बनूंगा। क्या यह कोई अवसर है?' कनकसेना ने इतना तेज उपदेश दिया कि कोई कच्चा मिट्टी का धोरा होता तो पानी में बह जाता। रेतीले टिब्बे और तिनके तो पानी में बह जाते हैं, पर चट्टान कभी बहती नहीं है। जम्बूकुमार तो कोई तिनका नहीं था, ऐसी दृढ़ चट्टान थी कि उस पर कोई असर नहीं हुआ। उसने सारी बात ध्यान से सुनी।





कनकसेना दो मिनट मौन हो गई, उसने देखा–क्या कोई असर हुआ है? वह चेहरे को पढ़ रही है पर संतोष नहीं हुआ। उसने सोचा–मैंने मर्म की बात कही है, मर्म को छुआ है। मैंने कोई आरोप नहीं लगाया। मैंने जो तर्क प्रस्तुत किया है, उसमें बहुत सचाई है। इस तर्क को कोई काट नहीं सकता–हर काम अवसर पर करना चाहिए, अवसर के बिना कोई भी काम अच्छा नहीं होता। सब अवसर देखते हैं। इतनी अच्छी बात मैंने बताई है पर पता नहीं क्या असर होगा? वह इस चिन्तन में डूब गई।

जम्बूकुमार सारी बात सुनकर धीर, शांत और उदात्त स्वर में बोले–'पता नहीं क्या बात है? क्या कोई ऐसी फैक्ट्री है जिसमें तुम सब एक सांचे में, एक समान ढली हो। समुद्रश्री, पद्मश्री और पद्मसेना–सबने वाक्पटुता और कुशलता का परिचय दिया।'

'कनकसेना! तुम भी उतनी ही वाक्पटु और कुशल हो। बात को इस प्रकार सजा कर कहती हो कि वह हृदय में बैठ जाए और सीधी गले उतर जाए। तुम्हारे कौशल को देखकर सोचता हूं–क्या तुम सबने एक ही कॉलेज में शिक्षा पाई है? और कुछ न भी हो पर तुम्हारी वाक्पटुता के प्रति तो मैं जरूर नत होता हूं। मेरे मन में प्रश्न उठता है–तुमने यह कला कहां से सीखी? अपना पक्ष इस प्रकार प्रस्तुत करती हो कि सामने वाला सोचने के लिए बाध्य हो जाये।'

'कनकसेना! तुमने अपना पक्ष बहुत अच्छा रखा है और यह कह दिया है–मैं अवसरज्ञ नहीं हूं, अवसर को नहीं जानता। यह तुम्हारा दृष्टिकोण है। पर तुम बताओ अवसर को कौन नहीं जानता? अवसर को हर प्राणी जानता है। कनकसेना! कोयल बहुत मीठा बोलती है, पंचम स्वर में बोलती है किन्तु जब वर्षा ऋतु आती है तब कोयल बोलना बंद कर देती है। कोयल सोचती है–अब मेढकराज बोलने लग गए हैं, उनके सामने मौन करना अच्छा है। जब मेढकों की टरटराहट शुरू हो जाए उस समय कोयल बोले तो वह मिठास कहीं छिप जायेगी–**दर्दुराः यत्र वक्तारः तत्र मौनं हि शोभनम्।**'

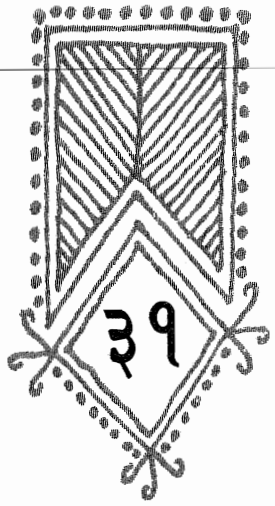
'कनकसेना! मैं तुम्हारी सब बातों को बड़े ध्यान से सुन रहा हूं। तुम ज्यादा बोल रही हो और मैं कम किन्तु क्या मैं अवसर को नहीं जानता? अगर अवसर को नहीं जानता तो तुम्हारी बात सुनता ही नहीं, सबको मौन करा देता पर मैं अवसर को जानता हूं। यह भावना का अवसर है। मेरी आठों पत्नियां अभी भावना में बह रही हैं। इस अवसर पर इनकी भावना को चोट नहीं पहुंचानी चाहिए, कम से कम इनकी बात तो सुन लेनी चाहिए। इनको कहने का अवसर तो मिलना चाहिए। मैं तो अवसर दे रहा हूं। तुम कैसे कहती हो–मैं अवसर को नहीं जानता।'

'कनकसेना! तुमने अपनी बात सुना दी और मुझे किसान जैसा अनवसरज्ञ बता दिया। मैं किसी पर आरोप करना नहीं चाहता किन्तु मैं कहता हूं कि मैं किसान जैसा नहीं हूं, जो बिना समय शंख बजाऊं। मैंने ठीक समय पर शंख बजाया है। तुम कहती हो–माता-पिता को देखो। क्या मैं माता-पिता को छोड़कर जाने वाला हूं? तुम देखो तो सही, क्या होने वाला है? तुम अभी वर्तमान को देख रही हो, भविष्य को नहीं पढ़ रही हो। मुझे भविष्य सामने दिखाई दे रहा है। जब वह समय आए, मुझे बताना कि मैंने अवसर को जाना है या नहीं?'

जम्बूकुमार ने अपनी बात प्रस्तुत करते हुए कनकसेना के कथन के प्रतिवाद की पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर दी।

रात्रि के नीरव वातावरण में एक ओर राग तथा दूसरी ओर वैराग्य का स्वर प्रखर बना हुआ है। वाद और प्रतिवाद दोनों बराबर चल रहे हैं। कनकसेना ने अपना पक्ष रखा। जम्बूकुमार उसका प्रतिपक्ष प्रस्तुत करेंगे। वह क्या होगा? और उसका परिणाम क्या होगा?





यह प्रश्न बहुत चर्चित रहा है–लोक में सार क्या है? जिसकी निष्पत्ति अच्छी हो, वह सार है। जिसकी निष्पत्ति कुछ न आए, वह असार है। बीज बोए, अंकुरित हुए। फसल पकने का समय आया। यदि मक्का, बाजरा, कुछ भी नहीं मिला तो फसल निस्सार हो गई। यदि अनाज उपलब्ध हुआ तो सार मिल गया। रोटी खाएं, भूख बुझ जाए तो वह सार है और भूख शान्त न हो तो वह निस्सार है।

हम सार और असार किसे मानें? वस्तुतः सार वह है, जो अंत तक बराबर शक्तिशाली बना रहे, कभी कमजोर न पड़े, अपना काम करता रहे और मनुष्य को लाभ पहुंचाता रहे।



संस्कृत साहित्य में एक समस्या दी गई–इस असार संसार में सार क्या है? इस समस्या के संदर्भ में अनेक विकल्प प्रस्तुत किए गए। एक अनुभूत आर्ष वाणी में इस प्रश्न के संदर्भ में कहा गया–**सच्चं लोयम्मि सारभूयं**–सत्य ही लोक में सारभूत है। प्रश्न हो सकता है–सत्य सार क्यों है? सत्य वह होता है, जो त्रैकालिक होता है, कभी मिटता नहीं है। जो मिट जाए, वह सार नहीं है। सत्य वह होता है, जो देश-काल से अबाधित होता है। जो देश-काल से विभाजित होता है, वह सार नहीं रहता।

सार वह होता है, जो सदा बना रहता है, कभी न्यून नहीं होता, समाप्त नहीं होता। दुनिया में सत्य ही एक ऐसा तत्त्व है, जो शाश्वत है, सदा एक रूप बना रहता है, कभी बाधित नहीं होता और निरन्तर अपने सार को प्रकट करता चला जाता है।

सत्य का मतलब है नियम। सत्य की खोज का अर्थ है नियमों की खोज। जो सार्वभौम नियम है, नियति है, उसका नाम है सत्य। दुनिया में जितने प्राकृतिक नियम हैं, सार्वभौम और जागतिक नियम हैं, जो सब जगह लागू होते हैं उन नियमों को खोजना सत्य को खोजना है। धर्म के आचार्यों ने एक नियम का पता लगाया–एक ऐसी प्यास है, जो पानी पीने से नहीं बुझती।

जम्बूकुमार ने कहा–'प्रिये! तृष्णा कभी शांत नहीं होती, भोग की पिपासा कभी तृप्त नहीं होती। तुम जिस भोगाशंसा की बात कर रही हो, वह कभी पूरी होने वाली नहीं है। वह अमिट प्यास है।'

व्यक्ति को प्यास लगी। पानी पीया और प्यास बुझ गई। जिसने प्यास को बुझाने के लिए पानी को खोजा, उसने भी एक सचाई की खोज की। यदि ऐसा न होता तो प्यास लगने पर सब आदमी पानी कैसे पीते? पानी की जगह मिट्टी खा लेते तो क्या होता? पानी को भी खोजा गया। दुनिया में एक ऐसा द्रव्य है, जो प्यास को बुझाता है और वह है पानी। यह एक बड़ी खोज थी। किस व्यक्ति ने पहले दिन पानी पीया होगा? किस व्यक्ति को पहले दिन प्यास लगी होगी?

यह बड़ा प्रश्न है–क्या आदमी पानी पीता ही आया है? या उसने बाद में पानी पीना शुरू किया है? आज भी ऐसे प्राणी हैं, जो पानी कभी नहीं पीते, महीनों तक पानी नहीं पीते। जिनका शीतीकरण हो जाता है, उन्हें प्यास नहीं लगती। जो मेढक बर्फ में जम जाते हैं वे पानी कहां पीते हैं। जो शीत प्रधान देश के प्राणी हैं, वे अनेक दिनों तक शायद पानी नहीं पीते। कहा जाता है–सर्दी के दिनों में सांप अपने बिल में चला जाता है। वह वहीं बैठा रहता है, न खाता है, न पीता है। उसकी आवश्यकता अपने आप पूरी हो जाती है। चातक केवल मेघ का ही पानी पीता है। बादल नहीं बरसते हैं तो वह पानी ही नहीं पीता। संभव है–कभी ऐसा स्निग्ध काल रहा होगा कि पानी पीने की जरूरत अनुभव न हुई हो। जब काल की स्निग्धता कम हुई, गर्मी बढ़ी, प्यास लगनी शुरू हुई तब किसी मनुष्य ने पहली बार पानी को खोजा होगा, पानी को पीया होगा। यह पानी की खोज महान् खोज है।

इस सचाई को भी खोजा गया–प्यास लगने पर पानी पीयो तो वह बढ़ती चली जाएगी और न पीयो तो वह बुझ जाएगी। यह सचाई भी महान् सत्य की खोज है। धर्म के लोगों ने इस नियम को खोजा है–एक प्यास ऐसी है, जो पानी पीने से बढ़ती है और नहीं पीने से घट जाती है। प्यास प्रत्येक आदमी के भीतर है।

जम्बूकुमार ने कहा–'कनकसेना! आत्मा को समझे बिना, आत्मा की अनुभूति किए बिना यह प्यास कभी नहीं बुझती। यह अमिट प्यास है, जो कभी मिटती नहीं है। दुनिया भर का पानी पी लें, प्यास बुझेगी नहीं। यदि हम कुछ मुड़ें, आत्मा की लेश मात्र भी अनुभूति कर लें तो प्यास बुझनी शुरू हो जाएगी। इसी अनुभूति के स्वर में भगवान महावीर ने कहा था–

एवं ससंकप्पविकप्पणासो, संजायई समयमुवट्ठियस्स।
अत्थे असंकप्पयतो तओ से, पहीयए कामगुणेसु तण्हा।।

अपने राग-द्वेषात्मक संकल्प ही सब दोषों के मूल हैं–जो इस प्रकार के चिन्तन में उद्यत होता है तथा इंद्रिय विषय दोषों का मूल नहीं है, इस प्रकार का चिन्तन करता है, उसके मन में समता उत्पन्न होती है। उससे उसकी कामगुणों में होने वाली तृष्णा प्रक्षीण हो जाती है।'

'प्रिये! मनुष्य को तृष्णा की प्यास लगी हुई है। वह उसकी पूर्ति के लिए अनेक कल्पनाएं करता है, अनेक संकल्प-विकल्प रचता है किन्तु वह संकल्प-विकल्प से नहीं बुझेगी। वह बुझेगी समता से। समता को साधो, सम रहना सीखो, विषमता में मत जाओ, ऊबड़-खाबड़ आंगन में मत चलो, सम आंगन में चलो।'

'प्रिये! तुमने कहा–मैं अवसर को नहीं जानता। यह यौवन काम-भोग के लिए है। इंद्रियों के रसों का आस्वाद करने का अवसर है। तुम कह रही हो–परोसी हुई थाली को ठुकरा कर आगे की आस करना कौन-सी समझदारी है? पांचों इंद्रियों के भोग भोगने में आदमी को सुख मिलता है।'

'प्रिये! बहुत सारे काम आपातकाल में बड़े सुख देने वाले लगते हैं पर परिणाम काल में वैसे नहीं होते। बहुत सारे काम आपातकाल में दुःखद लगते हैं पर परिणाम काल में सुखद होते हैं। धार्मिक लोगों ने यह विवेक किया, इस सचाई को पकड़ा और सुख को दो भागों में बांट दिया—आपात-भद्र और परिणाम-भद्र। आपात-भद्र वह होता है, जो पहले बहुत सुखद लगता है किन्तु उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। परिणाम-भद्र वह होता है, जो पहले ज्यादा अच्छा नहीं लगता किन्तु उसका परिणाम बहुत सुखद होता है।'

इंग्लैण्ड में एक व्यक्ति को फांसी की सजा हो गई। अपराध था चोरी का। यह एक सामान्य नियम है—फांसी देने से पूर्व चोर की अंतिम इच्छा पूरी की जाती है। चोर ने कहा—मैं अपनी मां से मिलना चाहता हूं। मां को बुलाया गया। चोर मां की ओर झुका और उसकी नाक को चबा डाला। मां चीख उठी। लोगों ने बेटे के चंगुल से मां को छुड़ाया। चोर को डांटते हुए लोग बोले—'मूर्ख! यह क्या किया? कम से कम मां के साथ तो ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए!'

'महाशय! आप नहीं जानते। यह फांसी आप नहीं दे रहे हैं, मेरी मां के कारण मिल रही है।'

लोग यह सुनकर अवाक् रह गए। उन्होंने विस्मय से पूछा—'यह कैसे कह रहे हो तुम?'

चोर ने कहा—'जब मैं छोटा बच्चा था, स्कूल में पढ़ता था तब दो बढ़िया पेंसिलें चुरा कर लाया। मैंने वे मां को दिखाईं। मां ने मेरी पीठ थपथपाते हुए शाबाशी दी। मेरा साहस बढ़ा। मैं चोरी करता रहा, मां शाबाशी और प्रोत्साहन देती रही। उसका यह परिणाम आया है कि मुझे फांसी के फंदे पर लटकना पड़ रहा है। यदि मां मुझे पहले ही दिन टोक देती और यह कहती—'बेटा! तुमने यह अच्छा काम नहीं किया, मेरे दूध को लजाया है तो मैं कभी चोरी नहीं करता, मुझे ऐसी मौत नहीं मरना पड़ता।'

जम्बूकुमार ने भावपूर्ण स्वर में कहा—'प्रिये! तुम गहराई से सोचो। दुनिया भोगों को प्रोत्साहन देती है, समर्थन देती है किन्तु जब भोगों का परिणाम भुगतना पड़ता है तब वह किसे अच्छा लगता है? उस समय भोग की प्रेरणा देने वाला अच्छा लगेगा या त्याग की प्रेरणा देने वाला?'





'प्रिये! त्याग का पथ अलौकिक पथ है। यह पहले अच्छा नहीं भी लगे पर परिणाम में बहुत अच्छा है। जो केवल भोग की बात को लेकर चलता है या चलाता है वह दुःख की ओर ले जाता है। उस मार्ग में थोड़ा सुख है और बहुत दुःख। इस सचाई का तुम अनुभव करो।'

एक आदमी कुछ दिनों के अंतराल से दर्शन करने आया। मैंने पूछा—'भाई! क्या बात है?'

उसने कहा—'महाराज! मैं कुछ अस्वस्थ हो गया था। मेरे आम की बीमारी रहती है, पेट ठीक नहीं रहता। एक दिन भोज में कुछ ज्यादा खा लिया इसलिए वह बीमारी उग्र बन गई।'

'तुमने ज्यादा क्यों खाया?'

'महाराज! क्या करें? हम सामाजिक प्राणी हैं, हमें मनुहार माननी पड़ती है और जब मनभावन चीज सामने आ जाती है तब रहा भी नहीं जाता। उस समय खाना ही अच्छा लगता है।'

जम्बूकुमार ने भावपूर्ण स्वर में कहा–'प्रिये! तुम गहराई से सोचो। यह वर्तमान क्षण का सुख कितना दुःख देता है। क्या आदमी कभी भोग से तृप्त होता है?'

क्या व्यक्ति खाकर कभी तृप्त होता है? आदमी कहता है–मैं तृप्त हो गया पर दो-तीन घंटा बीतने के बाद उसे भूख फिर सताने लग जाती है। अमीर हो या गरीब, कोई भी तृप्त नहीं होता। व्यक्ति सुबह नाश्ता करता है, तृप्त हो जाता है। दोपहर का समय आता है, फिर अतृप्ति उभर आती है। आग कभी तृप्त नहीं होती। उसमें कितना ही ईंधन डालो, वह तृप्त नहीं होगी। मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता। समुद्र कभी तृप्त नहीं होता, चाहे उसमें कितनी ही नदियां गिर जाएं। भोग का एक परिणाम है अतृप्ति।

'प्रिये! भोग से क्या कभी मनुष्य को तृप्ति मिली है? वह तो और अधिक अतृप्त बना देता है।'

'प्रिये! तुम इस सार तत्त्व को समझो–प्रवृत्ति काल में पुण्य का भोग सुखद हो सकता है किन्तु वह परिणाम काल में दुःखद हो जाता है।'

'प्रिये! एक अविवेकी आदमी के लिए पाप का परिणाम दुःखद होता है और पुण्य का परिणाम सुखद होता है। जिसकी विवेक चेतना जाग जाती है, उसके लिए पुण्य का परिणाम और पाप का परिणाम–दोनों दुःखद बन जाते हैं।'

यही बात उत्तराध्ययन सूत्र में कही गई है–चक्रवर्ती के बहुत बड़ा साम्राज्य होता है, सुख भोग के प्रचुरतम साधन होते हैं फिर भी वे दुःख रूप हैं। क्योंकि जिसका परिणाम सुखद नहीं होता, वह वास्तव में दुःखद ही होता है। मनुष्य चीनी खाता है। उसे चीनी खाने में मीठी लगती है। अगर वह खाने में मीठी नहीं लगती तो उसे कौन खाता? यह सफेद दानेदार चीनी दीखने में सुन्दर और खाने में स्वादिष्ट लगती है, किन्तु इसका परिणाम क्या होता है? डॉक्टर कहते हैं–ऐसिडिटी बढ़ाना है तो चीनी खाओ। जितनी चीनी खाओगे उतनी ज्यादा ऐसिडिटी बढ़ेगी। आजकल ऐसिडिटी की बीमारी बहुत चल रही है। इस अम्लता की बीमारी में चीनी का मुख्य हिस्सा है। चीनी खाने में मीठी है किन्तु परिणाम में अम्ल है। आंवला खाने में कसैला या खट्टा लगेगा पर परिणाम में मधुर है।

आयुर्वेद का कथन है–कुछ पदार्थ खाने में मधुर होते हैं, परिणाम में मधुर नहीं होते। कुछ पदार्थ खाने में मधुर नहीं होते, पर उनका परिणाम मधुर होता है। भारतीय चिन्तन और दर्शन की धारा में उसका मूल्य अधिक माना गया जो परिणाम में सुखद होता है। उसका मूल्य बहुत कम माना गया, जो प्रवृत्ति काल में सुखद होता है। आगम का प्रसिद्ध सूक्त है–'खणमेत्त सोक्खा बहुकाल दुक्खा'–सांसारिक भोग क्षण भर के लिए सुख देते हैं किन्तु बहुत काल के लिए दुःख देने वाले हैं। उपभोग काल में सुख देते हैं, परिणाम में दुःख देने वाले हैं।

'प्रिये! तुम मुझे गृहवासी बनने का परामर्श दे रही हो। क्या तुम इस सचाई को नहीं जानती–असासयं–यह गृहवास अशाश्वत है। एक दिन इसे छोड़कर चले जाना है। इसे तुमको भी छोड़ना है, मुझे भी छोड़ना है।'

दूसरी बात–**बहुअन्तरायम्**–सांसारिक भोग में बहुत बाधाएं हैं। आज तक कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ है, जिसने सांसारिक भोगों को निर्विघ्नता से भोगा हो।

तीसरी बात–**न य दीहमाउं**–आयुष्य बहुत छोटा है, संक्षिप्त है। इस छोटे से जीवन को भोगों में बरबाद करना उचित नहीं है। इसलिए गृहवास में रहना पसंद नहीं है, भोग का जीवन स्वीकार्य नहीं है।'

'प्रिये! मैं जो गृहत्याग कर रहा हूं, उसके ये तीन कारण बड़े महत्त्वपूर्ण हैं–अशाश्वतता, बहुविघ्नता और आयुष्य की अल्पता–

असासयं दट्ठु इमं विहारं, बहु अंतरायं न य दीहमाउं।
तम्हा गिहंसि न रइं लहामो, आमंतयामो चरिस्सामु मोणं।।'

वासुदेव कृष्ण ने थावच्चा पुत्र से कहा–'तुम अभी दीक्षित मत बनो। गृहवास को भोगकर दीक्षित हो जाना।'

थावच्चा पुत्र ने कहा–'महाराज! यदि आप दो बातों का आश्वासन दें तो मैं दीक्षा नहीं लूंगा। पहली बात है–मैं कभी मरूंगा नहीं। दूसरी बात है–मैं कभी बीमार नहीं बनूंगा। अमृतत्व और आरोग्य–इन दो बातों का आश्वासन दें।'

कभी-कभी छोटी अवस्था वाला भी प्रौढ़ बात कह जाता है, गंभीर चिंतन दे देता है। इस गंभीर प्रश्न को सुनकर वासुदेव कृष्ण स्तब्ध रह गए।

वासुदेव कृष्ण ने कहा–'मैं तुम्हें राज्य दे सकता हूं, राजा बना सकता हूं, धनवान बना सकता हूं किन्तु अमर बनाना मेरे वश की बात नहीं है।'

थावच्चा पुत्र ने कहा–'तो मेरा भी घर में रहना संभव नहीं है।'

'प्रिये! जिस व्यक्ति में यह अमरत्व की भावना, शाश्वत की भावना जाग जाती है, जिसकी विवेक चेतना प्रबुद्ध हो जाती है उसका घर और भोगों के प्रति आकर्षण हो नहीं सकता।'

जम्बूकुमार ने कनकसेना की ओर उन्मुख होते हुए कहा–'प्रिये! तुमने मुझे अनवसरज्ञ कहा। किन्तु मैं उस किसान जैसा अनवसरज्ञ नहीं हूं। मैंने काम-भोग की प्रकृति को समझा है, उसके परिणामों को जाना है। मैं क्षण मात्र सुख देने वाले काम-भोगों में उलझ कर उस वानर जैसा मूर्ख बनना नहीं चाहता।'

'स्वामी! आप बताइए वह वानर कौन था? और उसने कैसी मूर्खता की?'

'प्रिये! एक जंगल में एक वानर-युगल रहता था। वह वन बहुत रमणीय था। फलदार वृक्षों से आकीर्ण था। पास में सरिता कलकल ध्वनि करती बहती थी। पानी भी बहुत मधुर था। वानर-वानरी पूर्ण सुखी थे। उन्हें पर्याप्त भोजन और पानी उपलब्ध था। एक दिन एक तरुण वानर उस वन में आया। उसने वृद्ध वानर को तंग करना शुरू कर दिया। वह कलह और संघर्ष करने लगा। वृद्ध वानर परेशान और दुःखी हो गया। वह उस वन को छोड़ने के लिए विवश बन गया। उसने अपने लिए दूसरे वन की खोज प्रारंभ की। वह चलते-चलते उस वन में पहुंचा, जो विशालकाय पर्वतों से घिरा हुआ था। वानर ने फल खाकर क्षुधा का शमन किया। क्षुधा के शांत होते ही प्यास सताने लगी। उसने इधर-उधर पानी की खोज की पर कहीं पानी नहीं मिला।'

'प्रिये! प्यास से व्याकुल वानर को एक जगह कीचड़ दिखाई दिया। प्यास से मरता क्या न करता? उसने प्यास बुझाने के लिए उस कीचड़ को पीया किन्तु प्यास नहीं बुझी। कीचड़ के दुर्गन्धयुक्त पानी से उसका मुख कसैला हो गया। प्यास से उसका हाल बेहाल हो गया।

वह उस कीचड़ में लेट गया। उसे कुछ शीतलता का अनुभव हुआ पर प्यास नहीं मिटी। वह अपने हाथों से कीचड़ उलीच कर अपने शरीर पर मलने लगा। उसे कीचड़ का स्पर्श कुछ सुखद लगा पर प्यास की भयंकरता कम नहीं हुई।'

'प्रिये! क्या शरीर पर कीचड़ मलने से भीतर की प्यास बुझ सकती है?'

'नहीं स्वामी! वह तो पानी पीने से ही बुझेगी।'

'कनकसेना! मध्याह्न का समय हो गया। सूर्य का ताप प्रखर बना। शरीर पर लगा वह कीचड़ सूखने लगा। जैसे जैसे कीचड़ सूखता गया, उसके लिए ताप असह्य बन गया। उसने सोचा–मैंने कीचड़ लगाकर मूर्खता की लेकिन अब क्या हो सकता है।

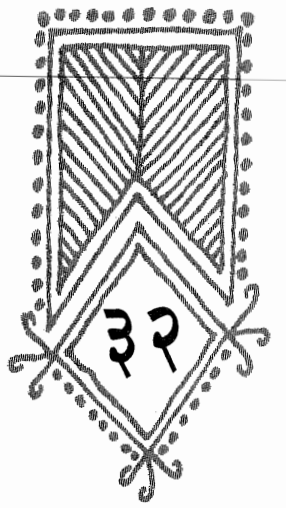
एक ओर प्रबल प्यास, दूसरी ओर सूर्य का प्रखर ताप, तीसरी ओर शरीर पर सूखे हुए कीचड़ से होने वाली असह्य वेदना।....प्रिये! वह वानर प्यास से व्याकुल घोर वेदना का अनुभव करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ।'

जम्बूकुमार ने कनकसेना को प्रतिबोधित करते हुए कहा–'प्रिये! काम-भोग कर्दमलेप के समान हैं। इससे शरीर को कुछ क्षण के लिए सुख मिलता है किन्तु ये भोग मन और आत्मा को कलुषित बना देते हैं। यह कुछ क्षण का सुख शाश्वत दुःख का कारण बनता है।'

'प्रिये! तुम मेरी बात पर ध्यान दो। तुम इन क्षणिक सुखों में आसक्त मत बनो, जो महान् दुःख देने वाले हैं। तुम उन सुखों को पाने का प्रयत्न करो, जिसके साथ दुःख का कोई अनुबंध नहीं है।'

'प्रिये! तुम गहराई से सोचो–यह यौवन, यह प्रवर शक्ति भोग में लीन होकर नष्ट करने के लिए नहीं है। हम शक्ति को संयम की साधना में लगाएं। शरीर में नहीं, आत्मा में लीन बनें। हमारा यौवन और सारी शक्ति सार्थक बनेगी। हमें वह सुख मिलेगा, जिसके लिए सामान्य मनुष्य ही नहीं, देवता भी तरसते हैं'–यह कहते हुए जम्बूकुमार ने अपने कथन को विराम दे दिया।

कनकसेना को जम्बूकुमार के इस सारगर्भित वक्तव्य में जीवन का सार दिखाई देने लगा। वह संबुद्ध हो गई। उसकी विषयानुरक्ति विरक्ति में परिणत हो गई। उसने जम्बूकुमार के कथन से सहमति व्यक्त करते हुए कहा–'स्वामी! आप जिस पथ पर चरणन्यास कर रहे हैं, वही हमारे लिए प्रेय और श्रेय है।'



गाथा
परम विजय की



सर्दी का मौसम था। दो मित्र घूमने निकले। किसी बगीचे में पहुंचे। एक धूप में जाकर बैठ गया और दूसरा पेड़ की छाया में। किसी व्यक्ति ने पूछा–तुम दोनों साथ आए। तुम धूप में बैठे हो और वह पेड़ के नीचे बैठा है, ऐसा क्यों? उसने कहा–मुझे पेड़ के नीचे बैठने में बड़ा सुख मिलता है। दूसरे से पूछा–तुम पेड़ के नीचे क्यों नहीं बैठे? उसने कहा–मुझे धूप में बड़ा सुख मिलता है।

प्रतिबिम्ब दो हो गए और बिम्ब एक हो गया। मूल बात है सुख मिलना। यह जरूरी नहीं है कि जिस बात से एक को सुख मिलता है, उसी से दूसरे को भी सुख मिले। किसी को शीतल छाया सुख देती है और किसी को धूप-सेवन। किसी को ठंडे पानी से नहाना अच्छा लगता है और किसी को गर्म पानी से स्नान करना। किसी व्यक्ति को मिठाई खाने में सुख मिलता है और किसी को नमकीन खाना रुचिकर लगता है। कोई व्यक्ति ठण्डा पेय पीना पसंद करता है और कोई व्यक्ति गर्म पेय पीना। इसलिए आधुनिक होटलों में ठण्डा और गर्म–दोनों प्रकार के पेय पदार्थों की व्यवस्था रहती है। हम कितनी ही घटनाएं लें, सबका निष्कर्ष एक ही है–आदमी वही काम करता है, जिसके प्रति उसकी रुचि होती है, आकर्षण होता है। उसे जिस कार्य में सुख मिलता है वह उस में व्यापृत होता है।

जम्बूकुमार की रुचि एक दिशा में है और नव परिणीता कन्याओं की रुचि दूसरी दिशा में। एक त्याग में सुख का अनुभव कर रहा है और दूसरा भोग में। जम्बूकुमार कह रहा है–संसार में सुख कहां है? कन्याओं का मंतव्य है–यह शरीर, यह यौवन विषय-भोग के लिए है। इसमें जो सुख मिलता है वह प्रत्यक्ष है। इसके अतिरिक्त जिस सुख की बात कही जा रही है, वह किसने देखा है?

नभसेना ने कहा–'प्रियतम! विषय-भोग शरीर की मांग है, आवश्यकता है। वह सुख की अनुभूति देता है। उसका लाभ है–संतान की उत्पत्ति। उससे वंश-परम्परा अविच्छिन्न रहती है। व्यक्ति का नाम अमर हो जाता है।'

आवश्यकता की अनुभूति और लाभ की संभावना–ये दो तत्त्व रुचि का निर्माण करते हैं। रुचि निर्माण का तीसरा तत्त्व है रस। व्यक्ति का जिस चीज में रस होता है, उसके प्रति आकर्षण हो जाता है।

कन्याओं को विषयों में रस है, आसक्ति है इसीलिए भोग के प्रति आकर्षण बना हुआ है। नभसेना ने इसी भाषा में कहा–'प्रियतम! विषय में जो रस है, भोगों में जो मिठास है, वह अन्यत्र कहां है?'

हमारा रस किसी दूसरे स्थान से बंधा हुआ है। यदि किसी व्यक्ति से कहा जाए–तुम एक घंटा तक आत्मा के बारे में चर्चा करो, आत्मा के विषय पर विमर्श करो। वह इस प्रस्ताव को मानने के लिए तैयार नहीं होगा। यदि सुनने के लिए तैयार हो भी जाए तो वह ध्यान से नहीं सुनेगा, आधी नींद के साथ सुनेगा। उस व्यक्ति से कहा जाए–आज टी.वी. पर ऐसा दृश्य आने वाला है, जिसमें युद्ध का वर्णन है, लड़ाई के रोमांचक दृश्य हैं। वह व्यक्ति इस बात को ध्यान से सुनेगा, टी.वी. पर आने वाले उस कार्यक्रम को बहुत गौर से देखेगा। उस समय उसे ऐसा अनुभव होता है कि दुनिया में नींद नाम की कोई चीज ही नहीं है। टी. वी. देखते समय या सिनेमा देखते समय कौन व्यक्ति नींद लेता है? उस समय आती हुई नींद उड़ जाती है। ऐसी स्थिति में कोई व्यक्ति नींद ले, यह अपवाद ही हो सकता है।

राजलदेसर के एक तत्त्वज्ञ श्रावक हुए हैं श्री चांदमलजी बैद। उनकी तत्त्व में रुचि थी। वे तत्त्व-चर्चा में सारी रात जगा देते, उन्हें नींद नहीं आती। सिनेमा देखना उनकी रुचि का विषय नहीं था। वे उसे निकम्मा कार्य समझते थे। इसलिए सिनेमाघर में फिल्म शुरू होते ही वे नींद में डूब जाते।

जहां रुचि होती है, वहां नींद नहीं आती। जहां रुचि नहीं होती है, वहां नींद आती है। यदि धर्मकथा सुनने में नींद आती है तो मान लेना चाहिए–धर्म की रुचि अभी जागृत नहीं हुई है। उपाध्याय यशोविजयजी ने बहुत अच्छा लिखा है–

चतुरशीतावहो! योनिलक्षेष्वियं, क्व त्वयाऽऽकर्णिता धर्मवार्ता।
प्रायशो जगति जनता मिथो विवदते, ऋद्धिरससातगुरुगौरवार्ता।।

आश्चर्य है! इस चौरासी लाख परिमित जीवयोनि में तूने धर्मवार्ता कहां सुनी? इस जगत् में प्रायः जनता ऋद्धि, रस और सुख के गुरु-गौरव से पीड़ित बनी हुई परस्पर विवाद कर रही है।

ऋद्धि, रस और सात–इन तीन विषयों में मनुष्य का आकर्षण है। ऋद्धि की चर्चा, धन की चर्चा चारों ओर है। व्यक्ति बाजार में जाए, पंचायत में चला जाए, कहीं भी चला जाए, धन-चर्चा का विषय बन जाएगा। एक व्यक्ति कहता है–अमुक व्यक्ति लखपति है। दूसरा व्यक्ति कहेगा–नहीं, उसके पास इतना नहीं है। एक व्यक्ति कहेगा–तुम्हें पता नहीं, अमुक व्यक्ति के दिवाला निकला हुआ है। चर्चा का एक मुख्य केन्द्र बिन्दु बना हुआ है धन, ऋद्धि या वैभव।

चर्चा का एक विषय बनता है भोजन। एक व्यक्ति कहता है–आज मैं अमुक बरात में गया था। वहां इतनी मिठाइयां बनी थीं, इतना बढ़िया भोजन बना था। दूसरा व्यक्ति कहता है–मैं जिस बरात में गया था वहां बहुत कम मिठाइयां परोसी गईं। भोजन भी अच्छा नहीं था और आतिथ्य भी अच्छा नहीं था। भोजन की चर्चा में सारा समय व्यर्थ चला जाता है।

चर्चा का एक विषय बनता है–सुख, प्रिय संवेदन। व्यक्ति अपने सुख में बीते हुए क्षणों को याद करता रहता है। वह उनकी स्मृति और चर्चा करता रहता है।

नभसेना श्रेष्ठी कुल में पली-पुसी। उसके पिता ने अतुल धन-वैभव दहेज में दिया। उसने सदा मनोनुकूल और स्वादिष्ट भोजन किया। वह सदा सुख के झूले में झूली। उसका इन सबमें आकर्षण स्वाभाविक था। नभसेना ने सोचा–हमारी यह चाह भी अस्वाभाविक नहीं है कि अच्छा खाएं, अच्छा पीएं, मौज-मस्ती में जीएं। जो सुख-भोग के साधन मिले हैं, उनका उपभोग करते हुए जीवन का आनंद लेते रहें। किन्तु हमारी यह चाह तभी सफल हो सकती है, जब हमारी चाह के अनुकूल जम्बूकुमार का मानस बने। उसकी विरक्ति अनुरक्ति में बदले।

नभसेना ने जम्बूकुमार के मानस को बदलने की अभीप्सा के साथ कहा–'स्वामी! आपने नीति का यह सूक्त सुना है–**संतोषः परमं सुखम्**–संतोष परम सुख है।'

'हां प्रिये!'

'स्वामी! क्या आप संतोष में परम सुख मानते हैं?'

जम्बूकुमार ने नभसेना के कथन का समर्थन करते हुए कहा–'प्रिये! इस सुभाषित से कौन असहमत हो सकता है?'

'स्वामी! आप इस नीति वाक्य को भी जानते हैं–असंतोष परम दुःख का कारण है?'

'हां प्रिये! जब तक मन में संतोष का भाव नहीं होगा तब तक आकांक्षाएं हमें दुःखी बनाती रहेंगी।'

'स्वामी! आपमें संतोष कहां है?'

'प्रिये! मेरे मन में तो कोई असंतोष नहीं है।'

'स्वामी! मुझे नहीं लगता कि आप संतुष्ट हैं?'

'प्रिये! तुम यह कैसे कह रही हो?'

'स्वामी! आपको धन-वैभव, स्वस्थ शरीर, यौवन, चित्त को आह्लाद देने वाली आठ नव यौवनाएं प्राप्त हैं। फिर भी आप संतुष्ट नहीं हैं। यह संपदा किसी महान् पुण्यवान् आत्मा को ही मिलती है। इससे आपकी शोभा है, प्रतिष्ठा है। आप इसे छोड़कर अच्छा नहीं कर रहे हैं।'

'स्वामी! आप यदि इसी प्रकार लोभ करेंगे। जो प्राप्त है, उसमें संतुष्ट नहीं होंगे तो वैसे ही पश्चात्ताप करेंगे, जैसे सिद्धि और बुद्धि को करना पड़ा था।'





'नभसेना! मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं करना पड़ेगा किन्तु तुम यह बताओ कि ये सिद्धि और बुद्धि कौन थीं? उन्हें क्यों पश्चात्ताप करना पड़ा?'

'स्वामी! सिद्धि और बुद्धि–दो बहनें थीं। दोनों बहुत दरिद्र थीं। उनके पास आय के साधन नहीं थे। दोनों बहिनें रोज जंगल में जातीं। लकड़ियां काटतीं और गोबर के उपले बीनतीं। उनको बेचकर जैसे तैसे अपना काम चलातीं।

एक दिन बुद्धि लकड़ियां काटने के लिए जंगल में काफी दूर चली गई। उसे वहां विद्यासिद्ध ब्राह्मण मिला। बुद्धि की दयनीय दशा को देख उसका मन करुणा से भर गया। उसने पूछा–'बहिन! तुम कौन हो? क्या करती हो?'

'भाई! मैं एक दुखियारी महिला हूं। लकड़ियां काटती हूं और गोबर के उपले बीनती हूं। अपना जीवनयापन भी मुश्किल से कर पाती हूं।'

ब्राह्मण उसकी व्यथा से द्रवित हो गया। उसने कहा–'यहां जंगल में देवी का मंदिर है। तुम देवी की आराधना करो। छह माह तक तुम्हें साधना करनी होगी। अखंड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना होगा। खाद्य संयम और मंत्र जप करना होगा।'

बुद्धि ने कहा–'मैं अवश्य यह साधना कर लूंगी। क्या इससे सचमुच मेरा दारिद्र्य मिट जाएगा?'

ब्राह्मण बोला–'यदि तुमने निष्ठा से आराधना की तो अवश्य फल मिलेगा।'

ब्राह्मण ने देवी की आराधना का मंत्र सिखा दिया। बुद्धि बहुत खुश हुई। उसने दूसरे दिन से ही मंत्र की आराधना और साधना प्रारंभ कर दी। तप-जप के साथ साधना करते करते छह मास बीत गए। मंत्र सिद्ध हो गया। देवी प्रकट हुई। उसने पूछा–'बहिन! तुमने मेरी आराधना किसलिए की?'

'देवी! मैं बहुत दरिद्र हूं। खाने को पैसे नहीं हैं।'

'बोलो, तुम क्या चाहती हो?'

'मेरी दरिद्रता मिट जाए, ऐसा वरदान दें।'

'बहिन! क्या दूं तुम्हें?'

'देवी मां! यदि रोज सोने की एक मोहर मिल जाए तो मेरी समस्या हल हो जाए।'

'बहिन! कल से तुम्हें रोज सोने की एक मोहर मिलेगी।'

बुद्धि ने देवी को प्रणाम कर आभार व्यक्त किया। अब उसे रोज सोने की एक मोहर मिलने लगी। खाने-पीने की समस्या समाहित हो गई। रोज जंगल जाकर लकड़ियां काटने और उपले बीनने की अपेक्षा नहीं रही। एक मोहर सोने से उसे रोटी-पानी ही नहीं, अच्छे वस्त्र-परिधान भी सुलभ होने लगे। उसके जीवन की दशा सुधर गई।

सिद्धि ने देखा–बुद्धि इन दिनों बहुत खुश है। उसने जंगल में काम करना भी छोड़ दिया है। उसने सोचा–क्या बात है? क्या कोई छिपा खजाना उसे मिल गया है। सिद्धि बुद्धि के सुखी जीवन का रहस्य

जानने के लिए व्याकुल बन गई। सिद्धि बुद्धि के घर पहुंची। दोनों बहिनों ने एक-दूसरे का कुशलक्षेम पूछा। वार्तालाप के मध्य प्रसंगवश सिद्धि ने सुखी जीवन का राज पूछा। बुद्धि ने सरलता के साथ ब्राह्मण के मिलन और देवी की आराधना की बात बता दी।

सिद्धि ने साधना की पूरी विधि समझ ली। उसने भी विधिपूर्वक छह मास तक मंत्र की साधना-आराधना की, देवी प्रकट हुई। सिद्धि ने भी वही समस्या प्रस्तुत की। देवी ने उसे भी प्रतिदिन सोने की एक मोहर देने का वरदान दे दिया। सिद्धि का जीवन भी सुखी हो गया। बुद्धि ने देखा–सिद्धि का जीवन अच्छा हो गया। अवश्य ही उसने मंत्र की साधना कर देवी को प्रसन्न किया है।

'स्वामी! व्यक्ति अपने सुख से सुखी बनता है या नहीं, किन्तु दूसरे को सुखी देख वह दुःखी अवश्य बनता है। जैसे उसे अपना दुःख सताता है, वैसे ही उसे दूसरों का सुख भी सताता है। अपना दुःख और दूसरों का सुख–दोनों उसे सालते रहते हैं। यह ईर्ष्या की मनोवृत्ति ही निषेधात्मक सोच को संजीवनी देती है।'

बुद्धि ने सोचा–मैं सिद्धि से पीछे कैसे रहूं? उसकी लालसा प्रबल हो गई। सोने की एक मोहर से जो सुख मिला था, वह समाप्त हो गया। उसने पुनः मंत्र की आराधना का निश्चय किया। छह माह तक बुद्धि ने फिर साधना की, देवी प्रकट हुई। देवी ने पूछा–'बहिन! अब तुम्हें क्या दुःख है?'

'देवी मां! आप सिद्धि को भी एक मोहर देती हैं। मुझे उससे दुगुना चाहिए। आप मुझे प्रतिदिन दो मोहर दें तो आपका अनुग्रह होगा।'

देवी ने इस मांग को भी पूरा कर दिया। अब बुद्धि को प्रतिदिन दो सोने की मोहरें मिलने लगीं। उसके जीवन में ठाट-बाट हो गया। उसने भूमि खरीद ली, नया मकान बना लिया।



सिद्धि भी बुद्धि के बढ़ते वैभव को सहन नहीं कर सकी। उसमें भी तृष्णा और लोभ का भाव जाग गया। उसने भी मंत्र की आराधना की। देवी से दो मोहरों का वर प्राप्त किया।

यह एक क्रम जैसा बन गया–बुद्धि मंत्र की आराधना कर सिद्धि से दुगुने धन का वरदान मांगती और सिद्धि पुनः आराधना कर बुद्धि के समकक्ष धन की मांग करती।

'स्वामी! ईर्ष्या और लोभ की वृत्ति ने उन दोनों की विवेक चेतना को ग्रस लिया। एक-दूसरे से अधिक प्राप्त करने की इस वृत्ति ने दोनों के स्नेह संबंधों का रस सोख लिया। दोनों बहिनें एक-दूसरे को नीचा दिखाने का अवसर खोजने लगीं।'

देवी भी मंत्र-साधना के इस प्रकार के उपयोग से क्षुब्ध हो उठी।

ईर्ष्या और लोभ की ज्वाला में जल रही बुद्धि और सिद्धि एक दूसरे के सर्वनाश का षड्यंत्र रचने लगी। उन्होंने सोचा–इस बार मंत्र की आराधना कर ऐसा वर मांगें कि दूसरे की फिर कभी आंख भी नहीं खुल सकेगी।

ईर्ष्या एक ऐसी बीमारी है जिससे ग्रस्त व्यक्ति दूसरे का अनिष्ट करने में भी नहीं सकुचाता। दूसरे के अनिष्ट, उपहास और अपमान में उसे सुखानुभूति होती है। लोभी और ईर्ष्यालु व्यक्ति के हृदय में करुणा के स्थान पर क्रूरता की धारा बहने लगती है।

सिद्धि और बुद्धि के मन में उत्पन्न ईर्ष्या और लोभ ने क्रूरता को जन्म दे दिया। दोनों हर क्षण एक दूसरी का अनिष्ट सोचने लगी।

'स्वामी! उन दोनों के पास धन वैभव की कोई कमी नहीं थी, सब कुछ उनके पास था किन्तु संतोष नहीं था। यह असंतोष लोभ और ईर्ष्या की अग्नि को उद्दीप्त कर रहा था।'

'स्वामी! लोभांध और ईर्ष्यान्ध मनुष्य क्रूर हृदय बन जाता है। उसमें हिताहित का विवेक नहीं होता। वह दूसरों का अनिष्ट करने के लिए अपना अनिष्ट करने में भी नहीं सकुचाता।'

'स्वामी! बुद्धि ने पुनः मंत्र की आराधना की। देवी प्रकट हुई। देवी ने क्षुब्ध स्वर में पूछा–'क्या अभी तक तुम्हारी लालसा शांत नहीं हुई?'

'देवी मां! आज केवल अंतिम बार वरदान चाहती हूं।'

'बोलो! क्या चाहिए?'

'देवी मां! जो मैं मांगूं, उससे दुगुना इसी क्षण सिद्धि को मिलना चाहिए।'

'हां, ऐसी ही होगा।'

'मां! मेरी एक आंख फोड़ दो।'

'तथास्तु।' देवी के यह कहते ही बुद्धि एकाक्ष हो गई और सिद्धि की आंखों की ज्योति विलीन हो गई।

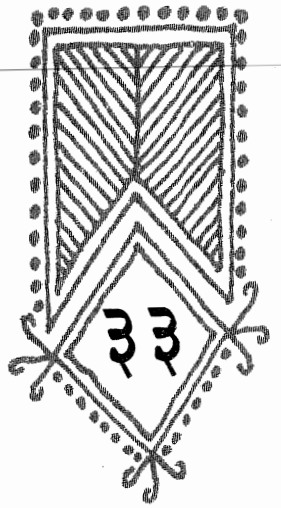
नभसेना ने कथा का उपसंहार करते हुए कहा–'स्वामी! लोभ के कारण बुद्धि काणी और सिद्धि अंधी हो गई। दोनों ने लोभ के वशीभूत होकर अपने हाथों से ही अपने विनाश का बीज बो दिया। अब वे दोनों पश्चात्ताप करती हैं–यदि हम लोभ नहीं करती तो हमें यह दिन देखना नहीं पड़ता।'

'स्वामी! उन्हें धन, वैभव, प्रासाद–सब कुछ प्राप्त हो गए फिर भी उनकी तृष्णा नहीं मिटी। इतना कुछ मिलने पर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ। इस लोभ और असंतोष ने ईर्ष्या को जन्म दिया, क्रूरता को जन्म दिया, अनिष्ट करने के संकल्प को जन्म दिया। लोभ और ईर्ष्या की आग में उनका सुख-चैन स्वाहा हो गया।'

'स्वामी! पड़ोसी और संबंधीजनों को इस घटनावृत्त का पता चला। उन्होंने उनको खूब धिक्कारा। उनकी शोभा, प्रतिष्ठा समाप्त हो गई। उनके दुःख और पश्चात्ताप को कौन माप सकता है?

'स्वामी! आपको भी जो प्राप्त है, उसमें संतोष नहीं है। यह लोभ और असंतोष आपको कहां ले जाएगा? फिर आप भी वैसा ही पश्चात्ताप करेंगे, जैसा सिद्धि और बुद्धि ने किया था। इसलिए आप सोचें, अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें।'

नभसेना ने अपने वक्तव्य को विराम दे कर जम्बूकुमार की ओर दृष्टिक्षेप किया। वह जम्बूकुमार के मुख पर उभरने वाले भावों को पढ़ने का प्रयत्न करने लगी। उसके मन में भी यही प्रश्न उभर रहा था–क्या मेरा प्रयत्न सफल होगा? क्या मेरी बात जम्बूकुमार के हृदय का स्पर्श कर पाएगी?



व्यक्ति और समाज। जहां व्यक्ति अकेला होता है वहां कोई कलह, संघर्ष और विवाद नहीं होता। **अप्पसद्दे, अप्पझंझे, अप्पकलहे**–न कोई तू-तू मैं-मैं करता, न कोई कलह और झगड़ा करता। किससे करे! यदि कभी आवेश प्रबल हो तो भीत से भले ही कर ले। और कोई नहीं है तो व्यक्ति अकेला क्या करे। जहां दो मिलते हैं वहां समाज बनता है। वहां कलह और संघर्ष की संभावना होती है। समाज में कुछ निर्धारित मूल्य होते हैं, मानदंड होते हैं, कसौटियां होती हैं। वहां पूजा होती है, प्रतिष्ठा होती है।

नभसेना ने कहा–'प्रियतम! यह सर्वत्याग का निश्चय आपकी प्रतिष्ठा के लिए क्या अच्छा होगा? क्या आपकी शोभा होगी? इतना दहेज आया, इतना भव्य पाणिग्रहण हुआ। क्या यह एक स्वांग सा रचा है? जैसे नाटक में स्वांग रचते हैं, वैसा ही यह स्वांग है। आप सब कुछ छोड़ रहे हैं, इससे शोभा नहीं होगी, कुल की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ेगी। ऐसा काम करो, जिससे आपकी शोभा हो और कुल की प्रतिष्ठा बढ़े।'



सामाजिक दृष्टि से नभसेना का तर्क सशक्त था–काम वही करना चाहिए, जिससे प्रतिष्ठा और शोभा हो। सारे सामाजिक कार्य, आडंबर और प्रदर्शन इसी आधार पर चलते हैं कि इससे हमारी शोभा होगी। होना या न होना अलग बात है पर चिंतन वही रहता है कि शोभा होगी और प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

जम्बूकुमार ने गहराई से चिंतन किया, चिंतन के पश्चात् बोला–'नभसेना! तुमने अपना पक्ष बहुत प्रबलता से प्रस्तुत किया है। मेरे सामने चिंतन का प्रश्न रख दिया है कि आप वह काम करें, जिससे आपकी और कुल की शोभा हो, आपकी और कुल की प्रतिष्ठा हो। ऐसा कोई काम न करें, जिससे शोभा और प्रतिष्ठा घटे। मैं इस तर्क से सहमत हूं। तुम्हारे विचार को मैं काटना नहीं चाहता। हमें वैसा ही काम करना चाहिए, जिससे कुल की शोभा बढ़े किन्तु कुल की शोभा और प्रतिष्ठा कैसे बढ़े, तुम इस बात को नहीं जानती। मैं यह जानता हूं, मैंने इस सचाई को समझा है।'

'प्रिये! एक पथ होता है और एक उत्पथ। एक सीधा सपाट रास्ता है और एक उझड़ मार्ग। प्रिये! एक आदमी मार्ग पर चलता है और एक आदमी उझड़ पथ पर चलता है, उन्मार्ग में चलता है। शूलें किसके चुभेंगी?'

नभसेना बोली–'स्वामी! जो रास्ते को छोड़कर कुमार्ग में जायेगा, उसके कांटे चुभेंगे, शूलें चुभेंगी। जो रास्ते पर चलेगा, उसके शूलें नहीं चुभेंगी।'

'प्रिये! एक आदमी अंधा है और एक आदमी चक्षुष्मान्। दोनों चल रहे हैं। बीच में एक खड्डा आ गया। बताओ उस खड्डे में कौन गिरेगा? चक्षुष्मान् गिरेगा या चक्षुहीन?'

'स्वामी! वह गिरेगा, जिसके आंख नहीं है।'

'प्रिये! कौन चक्षुष्मान् ऐसा है जो उत्पथ में जायेगा? मुझे लगता है–अभी तुमने इस सचाई को समझा नहीं है, तुम्हारी आंख नहीं खुली है इसलिए तुम ऐसी बात कर रही हो। जिसकी आंख खुल जाती है वह उत्पथ पर जाना नहीं चाहता।'

'स्वामी! क्या हम उत्पथ पर जा रही हैं?'

'प्रिये! यह जो विषय-भोग का मार्ग है वह आदमी को चलते-चलते उत्पथ पर ले जाता है।'

'स्वामी! सब लोग इस मार्ग पर चलते हैं। कैसे ले जाता है यह उत्पथ पर?'

'प्रिये! एक कथा के द्वारा तुम्हें यह सचाई समझाना चाहता हूं। एक राजा की अश्वशाला में दो घोड़े थे। एक घोड़ा विनीत था और एक अविनीत। एक अनुशासित और शिक्षित था और एक घोड़ा शिक्षित नहीं था। जो सम्यक् शिक्षित होता है, वह विनीत होता है। जो विनीत अश्व था, उसे जिनदास श्रावक ने सम्यक् शिक्षा दी और उस अश्व को बहुत तैयार किया।'

'प्रिये! घोड़े बहुत ग्रहणशील होते हैं। घोड़ों को बहुत बातें सिखायी जा सकती हैं। कुछ शिक्षित घोड़े ऐसे होते हैं, जो कठिन स्थिति में भी प्राण बचा देते हैं, सुरक्षा कर देते हैं। जो शिक्षित घोड़ा होता है, वह कभी उन्मार्ग पर नहीं जाता। जो घोड़ा अशिक्षित होता है, वह चलते-चलते कुमार्ग पर चला जाता है।'

'प्रिये! राजा के दोनों अश्वों की प्रसिद्धि हो गई। दूसरे राजा ने अपने अधिकारियों को आदेश दिया–अमुक राज्य में दो बहुत बढ़िया घोड़े हैं, उनको चुरा लो।'

श्रेष्ठ चीजों की चोरी और अपहरण की घटनाएं उस युग में भी होती थीं। कर्मकर रात को गए। जैसे ही अश्वशाला में घुसे, अविनीत घोड़ा सामने दिखाई दिया। उसको चुराया। चुराकर ले जाने लगे। सोचा–रास्ते से ले जाएं तो खतरा हो सकता है। वे उन्मार्ग से ले जाने लगे। वह घोड़ा अशिक्षित था। उन्मार्ग पर चला गया। आगे ऐसा ऊबड़-खाबड़ मार्ग आया कि घोड़ा भी फंस गया, आदमी भी फंस गये। निकलने का रास्ता नहीं रहा। वह उत्पथगामी अश्व अपने लिए भी और दूसरों के लिए भी समस्या बन गया।

कुछ दिनों बाद कर्मकरों ने दूसरे घोड़े को चुराया। उसे भी संकीर्ण मार्ग से ले जाने का प्रयत्न किया। घोड़ा बिल्कुल अड़ गया। एक पैर भी आगे नहीं सरका। उसको यह शिक्षा दी हुई थी–रास्ते को छोड़कर कभी कहीं नहीं जाना। वह घोड़ा वहीं खड़ा रहा, आगे बिल्कुल नहीं बढ़ा। आखिर विवश होकर कर्मकर उसको वहीं छोड़ गए।

वह शिक्षित और विनीत अश्व पुनः अश्वशाला में पहुंच गया।

'नभसेना! तुम बताओ–शोभा किसकी बढ़ी? विनीत घोड़े की या अविनीत घोड़े की?'

'स्वामी! विनीत घोड़े की।'

'प्रिये! दुःखी कौन बना? अविनीत घोड़ा बना या विनीत घोड़ा?'

'स्वामी! अविनीत घोड़ा।'

'प्रिये! शोभा उसकी होती है जो विनीत होता है, अनुशासित होता है। मैंने भी सुधर्मा स्वामी का अनुशासन पाया है। उस घोड़े को जिनदास श्रावक का शिक्षण मिला था और मुझे सुधर्मा स्वामी का शिक्षण मिला है। मैंने सुधर्मा स्वामी से यह सीख लिया है–दृष्टिमान बनो, चक्षुष्मान बनो।'

चक्षुष्मान का तात्पर्य है–अंतर्दृष्टि संपन्न बनो। भीतर की आंख खुले, केवल बाहर की नहीं। बाहर की आंख से हम एक वस्तु को देखते हैं किन्तु भीतर की आंख खुले बिना उस वस्तु को भी सही रूप में नहीं जान सकते।

पुरानी घटना है। एक हाकम के पास बारहठजी का कोई मामला था। एक पक्ष से हाकम को रिश्वत मिली, पैसा मिला। हाकम न्याय पथ से च्युत हो गया। बारहठजी बहुत तेज थे। जब हाकम ने फैसला सुनाया तो सारी गड़बड़ी तत्काल सामने आ गई। बारहठजी बोले–

सुण हाकम संग्राम कहे, आंधो मत ह्वै यार,
औरां रे दो चाहिजे, थारै चाहिजे चार।
थारे चाहिजे चार, दोय देखण ने बारे,
दोय हिया रे मांय, तिण स्यू न्याय निहारै।
जस अपजस रहसी अखी, समय बार दिन चार।
सुण हाकम संग्राम कहे, आंधो मत ह्वै यार।।



अरे हाकम! अंधा हो रहा है, गलत फैसला दे रहा है। सामान्य मनुष्य का तो दो आंख से भी काम चल जायेगा परन्तु तुम हाकम की कुर्सी पर बैठे हो, तुम्हारे तो चार आंख चाहिए–दो बाहर को देखने के लिए और दो भीतर झांकने के लिए। दो से बाहर को देख और दो से भीतर को देख। भीतर से इसलिए देखो कि न्याय को स्वयं निहार सको। यह समय तो चला जाएगा किन्तु जस-अपजस तुम्हारे साथ रहेगा इसलिए तुम सोचो, अन्याय मत करो।

एक है चर्मचक्षु और एक है अंतश्चक्षु। चर्मचक्षु से हम रूप, रंग, आकार आदि को देखते हैं किन्तु जो अंतश्चक्षु है, अंतर्दृष्टि है, उससे सारे संसार को देखते हैं। भगवान महावीर के लिए वीरत्थुई में एक शब्द आता है– **'अणंतचक्खु'**–महावीर अनंतचक्षु थे। जो केवलज्ञानी होता है, वह अनंतचक्षु होता है।

जिसके केवल दो ही आंख है, भीतर की आंख नहीं खुलती है, वह देखता हुआ भी नहीं देखता– **पश्यन्नपि न पश्यति।**

एक तपस्वी संन्यासी जा रहा था। रास्ते में एक अंधा युवक मिल गया। अंधे युवक को पता चला– कोई तपस्वी संन्यासी है। वह नमस्कार कर बोला–'महाराज! यह संसार मेरे लिए कुछ भी नहीं है। मैं देख नहीं पा रहा हूं। आप कृपा करें, अनुग्रह करें तो मेरी आंख खुल जाए।' तपस्वी को दया आ गई और उसने अनुग्रह कर दिया। कुछ तपस्वी ऐसे होते हैं, जिनका तैजस शरीर शक्तिशाली होता है, तेजोलब्धि

विकसित हो जाती है। **तैजसशरीरं अनुग्रहनिग्रहसमर्थं**–तैजस शरीर अनुग्रह और निग्रह–दोनों करने में समर्थ है। अभिशाप भी दे सकता है और वरदान भी। आशीर्वाद भी दे सकता है और संताप भी। तपस्वी के मन में करुणा आ गई, उसने अनुग्रह कर दिया और आंख खुल गई। युवक बड़ा प्रसन्न हुआ, धन्यवाद दिया–'तपस्वीवर! बड़ी मेहरबानी की। अब मैं देख रहा हूं। मेरा जीना सार्थक हो गया।'

तपस्वी अपने स्थान पर चला गया और वह युवक अपने स्थान पर। कुछ दिन बीते। एक दिन तपस्वी कहीं जा रहा था। उसने देखा–आगे-आगे एक युवक जा रहा है और उससे आगे एक स्त्री जा रही है। स्त्री के पीछे युवक दौड़ रहा है। तपस्वी ने ध्यान से देखा तो अवाक् सा रह गया–'अरे! यह तो वही युवक है, जिसे मैंने दृष्टि दी थी।' संन्यासी कुछ तेज चला, उस युवक तक पहुंच गया। युवक को देखा, पहचान लिया, कहा–'युवक! ठहरो।' युवक ठहर गया।

संन्यासी ने पूछा–'यह कौन है आगे?'

युवक–'यह वेश्या है।'

संन्यासी–'तुम यह क्या कर रहे हो?'

युवक कुछ शर्मिन्दा हुआ।

संन्यासी ने कहा–'तुम्हें यह दृष्टि किसने दी थी?'

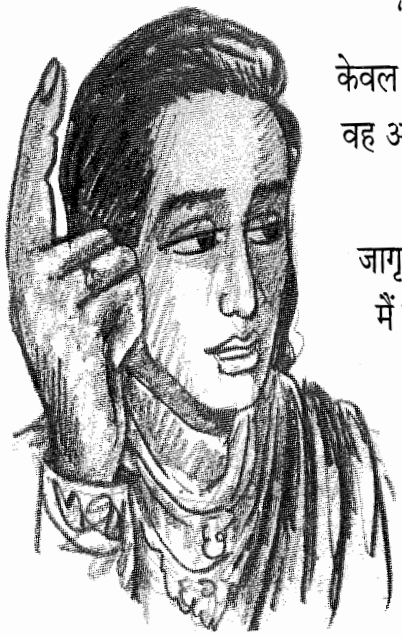
'संन्यासीवर! आपने ही तो दी थी।'

'मैंने क्या इसलिए दी थी कि तुम वेश्या के पीछे दौड़ो।'

'संन्यासीवर! एक कमी रह गई। आपने यह बाह्य दृष्टि तो दे दी पर अंतर्दृष्टि साथ में नहीं दी। अगर अंतर्दृष्टि और दे देते तो मैं कभी वेश्या के पीछे नहीं दौड़ता।'

जम्बूकुमार ने नभसेना से पूछा–'प्रिये! शोभा कोरी दृष्टि से बढ़ती है या अंतर्दृष्टि से? प्रतिष्ठा किसकी बढ़ती है? जिसे अंतर्दृष्टि प्राप्त है उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है या बाह्य आंख वाले की?'

'स्वामी! चक्षुष्मान् की।'



'प्रिये! श्रेष्ठ होता है वह चक्षुष्मान्, जिसकी अंतर्दृष्टि जागृत है। केवल बाहरी आंख वाले तो बहुत अनर्थ करते हैं, देखते भी नहीं हैं। उन्हें वह आंख प्राप्त नहीं होती, जिससे सचाई को देख सके।'

'प्रिये! मैंने सचाई को देखा है। सुधर्मा स्वामी ने मेरी अंतर्दृष्टि जागृत कर दी है इसलिए मैं उत्पथ को छोड़कर सन्मार्ग पर चल रहा हूं। मैं केवल बाह्य दृष्टि से काम नहीं लेता, मैं अंतर्दृष्टि से काम ले रहा हूं। अब तुम बोलो–कौन सही है और कौन गलत?'

'प्रिये! तुम कहती हो–इनको छोड़ने से शोभा नहीं बढ़ेगी। ऐसा लगता है–तुम अभी पदार्थ की प्रकृति को नहीं जानती, इन विषयों की प्रकृति को नहीं जानती। अगर इनकी प्रकृति को जान लो तो तुम ऐसी बात कभी नहीं कहोगी। प्रिये! तुमने ईख देखा है?'

'हां स्वामी!'

'क्या ईख की प्रकृति को जानती हो ?'

'स्वामी! ईख मीठा होता है पर उसकी और प्रकृति क्या है, यह मैं नहीं जानती।'

'प्रिये! एक कवि ने इक्षु की प्रकृति का बहुत सुंदर चित्रण किया है–

कान्तोऽसि नित्यमधुरोऽसि रसाकुलोऽसि, चेतः प्रसादयसि सम्प्रति मानवानां।
ईक्षो! तवास्ति सकलं परमेकमूनं, यत्सेवितो मधुरतां जहसि क्रमेण।।

इक्षु! तू बड़ा कांत है। **कांतोऽसि**–कमनीय लगता है। देखने में भी अच्छा लगता है। **नित्यमधुरोऽसि**–चूसने पर बड़ा मीठा लगता है। **रसाकुलोऽसि**–रस से भरा हुआ है। चूसने वाले के मन को बड़ी प्रसन्नता देता है। चूसने वाला समझता है कि वाह! सब कुछ मिल गया। तुम मिठास के मूल स्रोत हो। सारी मिठाइयां किससे बनती हैं? जो भी मीठा होता है, वह तुम्हारे कारण बनता है। तुम्हारे भीतर सब कुछ है पर एक बात की कमी है–न चूसा जाए तब तक ठीक है। जैसे ही चूसना शुरू किया, रसहीन हुआ और कोरा छिलका बन गया।

कवि का कथन कितना मर्मस्पर्शी है–इक्षु! तुम्हारी यह कमी है–जैसे-जैसे तुम्हारा सेवन किया जाता है वैसे-वैसे तुम अपनी मधुरता को, मिठास को छोड़ते चले जाते हो। केवल फीका छिलका रह जाता है, तुम्हें कचरे की भांति डाल दिया जाता है और उस पर मक्खियां भिनभिनाती रहती हैं।'

जम्बूकुमार उत्प्रेरणा के स्वर में बोला–'प्रिये! तुम जरा सोचो। तुम इतना आग्रह कर रही हो, मुझे उपदेश दे रही हो, समझा रही हो। पर तुमने अभी अध्यात्म को नहीं समझा, सत्य को नहीं समझा। वास्तव में सत्य क्या है? वास्तव में सत्य है–आत्मा में रमण करना। आखिर एक दिन सबको आत्मा की शरण में जाना होगा। वहां गये बिना कोई समाधान भी नहीं है। एक दिन आत्मा की दिशा में जाना होगा और अपने आपको देखना होगा।'



'प्रिये! तुमने सिद्धि और बुद्धि की कथा सुनाई। उनकी दुर्दशा क्यों हुई? इसलिए हुई कि उन्होंने अपने आपको नहीं देखा। ईर्ष्या दूसरे को देखने से उत्पन्न होती है। जो बाहर देखता है, दूसरे को देखता है, वह कभी सुखी नहीं हो सकता।'

'प्रिये! तुम इस सचाई का अनुशीलन करो–जिसकी अंतर्दृष्टि जागृत नहीं होती, जो बहिर्मुखी होता है, वह हमेशा दूसरे को ही देखता है, वह कभी स्वयं को नहीं देख पाता।'

जम्बूकुमार ने नभसेना की ओर दृष्टिक्षेप करते हुए पूछा–'प्रिये! बच्चा जन्मता है तो सबसे पहले किसको देखता है?'

'स्वामी! मां को।'

बाल्ये मातृमुखो जातः–बचपन में मां की ओर देखता रहता है।

तारुण्ये तरुणीमुखः–युवा होता है तो स्त्री की ओर देखता रहता है।

पुत्रपौत्रमुखो चांते–वह बूढ़ा होता है तब बेटों और पोतों की तरफ ताकता रहता है। यह सोचता रहता है कि कोई थोड़ी सेवा कर दे तो अच्छा रहे।

मूर्खो नांतर्मुखो भवेत्–वह कैसा मूर्ख है, जो सबकी ओर देखता है पर अपनी ओर कभी नहीं देखता, कभी अंतर्मुख नहीं होता, अपने भीतर नहीं देखता।

'प्रिये! बाहर की दुनिया प्रतिबिंब की दुनिया है। सब प्रतिबिम्ब को देख रहे हैं।'

बहुत वर्ष पहले की घटना है। पूज्य गुरुदेव राजसमंद से विहार कर भाणा गांव में पधारे। मैं जिस कमरे में बैठा था, सामने एक दर्पण था। सांझ का समय। एक चिड़िया कांच पर आई। वह कांच की ओर झांकती और क्रोधाविष्ट होकर चोंच मारती। वहां से फिर उड़ जाती, दूसरी तरफ जाती। फिर कांच की ओर देखती और कांच पर चोंच मारती। लगभग एक घंटा तक यह नाटक जैसा चलता रहा। चिड़िया अपने ही प्रतिबिम्ब पर चोंच मार रही थी और यह समझ रही थी कि भीतर में कोई दूसरी चिड़िया बैठी है और मैं उसको चोंच मार रही हूं।

चिड़िया एक नासमझ प्राणी है। मनुष्य समझदार प्राणी है। उसमें चिन्तन की शक्ति है किन्तु वह भी प्रतिबिम्ब में उलझा हुआ है।

जम्बूकुमार ने कहा–'प्रिये! अपनी प्रतिच्छाया, अपना प्रतिबिम्ब और अपनी प्रतिध्वनि भ्रांति पैदा कर रही है।'

पंचतंत्र की प्रसिद्ध कथा है–एक सियार बहुत चालाक था। उसने शेर से कहा–'महाराज! आप क्या अपनी वीरता पर गर्व करते हैं? आपसे ज्यादा शक्तिशाली शेर तो इस कुएं में है।'

शेर आवेश में बोला–'मेरे से ज्यादा शक्तिशाली कौन है? मैं उसे अभी समाप्त कर देता हूं।'

शेर कुएं के पास गया, भीतर झांककर देखा–भीतर शेर है। नीचे झुका, हत्थल उठाया तो देखा–वह भी हत्थल उठा रहा है। शेर गरजा, सिंहनाद किया। भीतर से और तेज आवाज आई। उसने सोचा–शेर है तो शक्तिशाली। सियार ने ठीक कहा था। यह ऐसे नहीं मानेगा। अब तो नीचे जाकर ही उसे दबोचूंगा। इस सोच के साथ ही उसने कुएं में छलांग लगा दी। वहां शेर कहां था? वह किसको दबोचे? जो दिख रहा था, उसका अपना ही प्रतिबिम्ब था।

अपनी प्रतिध्वनि, अपना प्रतिबिम्ब और अपनी प्रतिच्छाया भ्रांति पैदा करती है।

एक बच्चे ने जिद कर ली–मैं सामने दिख रही छाया की चोटी को पकड़ूंगा। बच्चा दौड़ने लगा तो छाया की चोटी भी आगे सरक गई। बच्चा परेशान हो गया।

एक समझदार आदमी मिला, बोला–'बच्चे! क्या कर रहे हो?'

'मैं इस चोटी को पकड़ना चाहता हूं और यह हाथ नहीं आ रही है। मैं दौड़ता हूं तो यह और आगे दौड़ जाती है।'

उसने कहा–'लो, मैं तुम्हें चोटी पकड़ा दूं।'

बच्चा बोला–'बहुत अच्छी बात है।'

उसने बच्चे का हाथ पकड़ा और सिर पर रख दिया, कहा–'इसको पकड़ो।' उसने अपनी चोटी को पकड़ा और छाया की चोटी हाथ में आ गई।

परछाईं की चोटी को मत पकड़ो, अपनी चोटी को पकड़ो। परछाईं की चोटी अपने आप हाथ में आ जाएगी।

जम्बूकुमार बोला–'नभसेना! सुधर्मा स्वामी ने मुझे अपनी चोटी पकड़ा दी इसलिए यह परछाईं की चोटी भी पकड़ में आ गई। मैंने इस सचाई को समझ लिया–इस दुनिया में वह आदमी कभी शांति से नहीं जी सकता जो केवल प्रतिध्वनि को सुनता है, केवल प्रतिबिम्ब को देखता है और केवल परछाईं की चोटी को पकड़ना चाहता है।'

'प्रिये! मैं अब प्रतिबिम्ब को छोड़कर बिम्ब को देखना चाहता हूं, प्रतिध्वनि से दूर हटकर मूल ध्वनि को सुनना चाहता हूं, मैं परछाईं से हटकर मूल को पाना चाहता हूं। बोलो तुम क्या चाहती हो?'

जम्बूकुमार ने ऐसी मर्म की बात कही, ऐसा तत्त्वज्ञान दिया कि नभसेना की भी अंतर्दृष्टि खुल गई। बहिर्दृष्टि और अंतर्दृष्टि में दृष्टिकोण का ही तो अंतर है। गांव की विपरीत दिशा में चलो तो दूरी बढ़ती जाएगी। गांव के उन्मुख हो जाओ तो पाव कोश पर गांव है।

पुरानी घटना है। जोधपुर के राजा को धन की जरूरत हो गई। अपने पुराने बही-खाते संभाले। उसमें लिखा था–अगर धन की जरूरत हो तो खाटू और मकराने के बीच में खुदाई कर लेना। बहुत खजाना वहां भरा पड़ा है। खाटू से मकराना है ४० किलोमीटर की दूरी पर। खुदाई कहां पर करें? खोदने वाला कहां-कहां खोदे? बड़ी परेशानी हुई। दीवान बहुत बुद्धिमान था। उसने कहा–कोई समस्या नहीं है। मैं थोड़ा सा ध्यान कर लेता हूं। कल समस्या का हल कर दूंगा।

दूसरा दिन। दीवान ने सारी योजना बना ली। राजा ने पूछा–'समाधान मिल गया।'

'हां राजन्!'

'खजाना कहां है?'

'महाराज! आप जरा खड़े हो जाइए।'

राजा खड़ा हो गया। दीवान ने कहा–'सिंहासन को हटाओ।'

सिंहासन को हटाया। सिंहासन के नीचे कुछ पत्थर खाटू के लगे हुए थे और कुछ पत्थर मकराने के। दीवान बोला–'महाराज! खजाना इनके बीच में है।' उस स्थान को खोदा और खजाना निकल आया।



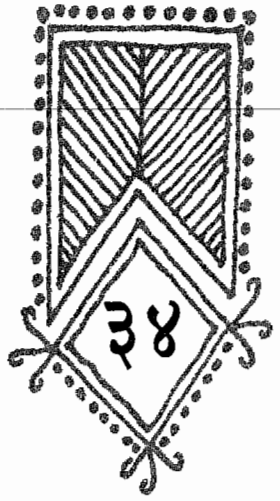
खजाना तो नीचे गढ़ा हुआ है। न खाटू जाने की जरूरत है और न मकराना जाने की। सिंहासन के नीचे खजाना भरा पड़ा है। केवल थोड़ी सी चेतना जाग जाए, अंतर्दृष्टि खुल जाए।

नभसेना की चेतना जाग गई, आंख खुल गई।

अब कनकश्री सामने आई। उसने कहा–तुमने इतनी बातें कहीं पर कुछ नहीं हुआ। तुम भी जम्बूकुमार के विचारों की अनुगामिनी बन गई हो।

हर किसी का अपना अहं होता है। सबसे बड़ी समस्या है 'अहं'। कनकश्री का अहं जागृत हुआ, वह बोली–अब मेरी करामात देखो।

क्या कनकश्री का अहं विगलित होगा?





आग्रह और अनाग्रह–ये दो शब्द हैं। कुछ लोग कहते हैं–आग्रह नहीं होना चाहिए। अनाग्रह भाव का विकास होना चाहिए। दूसरा स्वर यह है–अनाग्रह से काम नहीं चलता। आग्रह भी होना चाहिए। अगर सत्याग्रह नहीं है, सत्य का आग्रह नहीं है तो आदमी फिसल जायेगा। व्यक्ति ने संकल्प लिया–मैं यह काम नहीं करूंगा। यदि वह कहे कि मैं तो अनाग्रही हूं तो कल ही फिसल जायेगा। वह कहेगा–'मैंने संकल्प ले लिया, पर मेरा कोई आग्रह नहीं है। आप कहें तो मैं संकल्प तोड़ दूं।' यह अनाग्रह भी आदेय नहीं है।

आग्रह और अनाग्रह–दोनों को ठीक से समझना जरूरी है। यह विवेक जरूरी है कि कहां आग्रह होना चाहिए और कहां नहीं? जहां मन की वृत्तियां मलिन बनती हैं, राग-द्वेष बढ़ता है, शत्रुता बढ़ती है, वहां आग्रह नहीं होना चाहिए किन्तु जो संकल्प, प्रतिज्ञा और व्रत स्वीकार किया है, जहां अच्छे मार्ग पर चलने की बात है, वहां आग्रह होना चाहिए। जहां सचाई और सदाचार का प्रश्न है, वहां आग्रह होना चाहिए। यदि यह आग्रह नहीं होता तो आचार्य भारमलजी तेरापंथ में नहीं मिलते, तेरापंथ के आचार्य नहीं होते। आचार्य भिक्षु ने मुनि किसनोजी को साथ रखने में असमर्थता व्यक्त की। किसनोजी ने कहा–'यदि आप मुझे नहीं रखेंगे तो मैं भारमल को अपने साथ ले जाऊंगा।'

आचार्य भिक्षु ने कहा–'भारमल जैसा उपयुक्त समझे वैसा करने के लिए स्वतंत्र है।'

भारमलजी से पिता किसनोजी ने कहा–'तुम मेरे साथ चलो। तुम यहां नहीं रह सकते।'

मुनि भारमलजी बोले–'नहीं, मैं यहीं रहूंगा।'

यह आग्रह ही तो था। सत्याग्रह शब्द कब चला, यह पता नहीं किन्तु सत्याग्रह का पहला प्रयोग संभवतः आचार्य भारमलजी ने किया।

पिता ने बहुत दबाव दिया, भारमलजी तैयार नहीं हुए। पिता बलपूर्वक हाथ पकड़ कर ले गए। भारमलजी ने संकल्प कर लिया–'जब तक आप आचार्य भिक्षु को नहीं सौंपेंगे, तब तक आपके हाथ से

आहार-पानी करने का ही त्याग है।' एक दिन बीता, दूसरा दिन बीता, तीसरा दिन भी चला गया। भारमलजी ने न कुछ खाया, न कुछ पीया। निराहार-निर्जल रहे। आखिर झुकना पड़ा किसनोजी को। वे आचार्य भिक्षु के पास आये और बोले–'स्वामीजी! यह भारमल तो आपके पास रहेगा। आप ही इसे संभालें।'

यह सन्मार्ग का आग्रह है। अगर सत्य के प्रति अपना आग्रह नहीं है तो काम नहीं चलेगा। दोनों बातें स्पष्ट हैं–एक आग्रह होता है समस्या को पैदा करने वाला, राग-द्वेष को बढ़ाने वाला और एक आग्रह होता है सत्य की ओर प्रस्थान कराने वाला।

एक ग्रामीण आदमी का किसी के साथ लेन-देन था। उसका साहूकार से ऋण लिया हुआ था। साहूकार ने कहा–'भाई! रुपया लाओ।'

किसान बोला–'यह लो तुम्हारा रुपया।'

'कितने लाये हो?'

'देखो, गिन लो।'

साहूकार रुपए गिन कर बोला–'भाई! क्या तुम्हें याद नहीं है कि मैंने दो बार तीस-तीस रुपये दिये थे। तीस और तीस होते हैं साठ। तुम लाये हो चालीस रुपए।'

किसान बोला–'तुमने जितने दिये उतने दे रहा हूं। तुम कहते हो–तीस-तीस साठ होते हैं और मैं कहता हूं–तीस-तीस चालीस होते हैं।'

साहूकार ने कहा–'आखिर न्याय क्या है?'

ग्रामीण आग्रह के स्वर में बोला–'बस, मैं कहता हूं। मैं नहीं मानूंगा, तुम्हारी बात। तुम्हें मेरी बात माननी पड़ेगी कि तीस और तीस चालीस होते हैं।'



यह मिथ्या आग्रह है, गणित की सचाई को झुठलाने का प्रयत्न है। इस आग्रह को अच्छा नहीं कहा जा सकता। यह लौकिक सचाई है, व्यवहार की सचाई है। इस लौकिक सच को झुठलाने का प्रयत्न भी अच्छा नहीं होता। एक है आध्यात्मिक सचाई। जो व्रत लिया, संकल्प लिया, उसके प्रति आग्रह होता है। प्राण जाये तो भले ही चला जाये पर प्रण नहीं जाना चाहिए। आग्रह अच्छा या बुरा–यह सापेक्ष है तो अनाग्रह अच्छा या बुरा–यह भी सापेक्ष है। हम एकांततः यह नहीं कह सकते कि आग्रह ही अच्छा है या अनाग्रह ही अच्छा है।

कनकश्री जम्बूकुमार को संबोधित करते हुए बोली–'स्वामी! आप तो बड़े आग्रही बन गये हैं। मेरी पांच बहनों ने आपको समझाने का प्रयत्न किया। इतना समझाया पर आपने किसी की बात पर ध्यान ही नहीं दिया। आखिर मेरी बहिनें भी तो समझदार हैं, वे भी कुछ सोच समझकर कह रही हैं।'

'स्वामी! कम से कम बहुमत की बात तो माननी चाहिए। आप अल्पमत में हैं, अकेले हैं और हमारा बहुमत है। आप बहुमत की बात भी नहीं मान रहे हैं, केवल अपनी जिद पर अड़े हुए हैं। जिसे पकड़ लिया है, उसे छोड़ नहीं रहे हैं। ऐसा लगता है–मां का वह इकलौता बेटा जैसे जिद के कारण दुःखी बना, वैसे ही आप भी दुःखी बनोगे।

थे पिण हठ नहीं छोड़सो, तिणनी परे दुखिया होय।
जम्बू कहै ओ कुण हुओ, थे कही बतावो मोय।।

जम्बूकुमार बोला–'कनकश्री! दुःखी बनूंगा या सुखी बनूंगा, इस प्रश्न पर हम फिर विचार करेंगे। पहले यह बताओ–वह मां का इकलौता पुत्र कौन था? वह आग्रह के कारण दुःखी क्यों बना?'

जम्बूकुमार कथा सुनने के शौकीन थे। कथा वास्तव में सरस होती है। कथा में रस होता है। जब रस की बात आती है तब हर किसी का मन होता है। भगवान महावीर ने जो चार अनुयोग की देशना दी, उसमें एक स्थान धर्मकथा का रहा है। यह उल्लेख मिलता है–ज्ञातासूत्र की साढ़े तीन करोड़ कथाएं थीं। अन्यत्र भी कथाओं का विशद संग्रह है। कथाएं रसप्रद होती हैं। रसदार चीज अच्छी लगती है।

एक ग्रामीण आदमी शहर में आया। उसे भूख लग गई, वह कंदोई के यहां गया। आज होटल में भोजन मिलता है, उस युग में कंदोई होते थे। कंदोई से पूछा–'भई! यह क्या है?'

उसने कहा–'यह जलेबी है।'

जलेबी खाने के लिए मन ललचा गया। उसने कहा–'लाओ।'

कंदोई ने कहा–'पहले रुपया दो।'

'बताओ, कितनी खिलाओगे।'

कंदोई बोला–'पांच रुपया दो तो पेट भरकर खिला दूंगा।'

'ठीक है।' उसने पांच रुपये दे दिये और खाने के लिए बैठ गया। कंदोई ने जलेबी खिलाना शुरू किया। वह जलेबी डालता गया और ग्रामीण किसान खाता चला गया। वह खिलाते-खिलाते थक गया किन्तु ग्रामीण खाते-खाते नहीं थका। कंदोई ने सोचा–यह बला क्या है? इस तरह जलेबी खाता रहेगा तो क्या होगा? उसने पूछा–'अरे! तुम कितना खाओगे?'



'क्या तुम अभी थक गये?' उसने अपनी शेखी-बघारते हुए कहा–

'आ तो म्हारै आंकण बांकण ईं में पूरो रस।
खल खाऊं मण छह तो, आ खाऊं मण दस।।

अरे! यह तो बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी है। इसमें बड़ा रस है। छह मन तो मैं खल ही खा जाता हूं। यह रसदार जलेबी कम से कम दस मन तो खाऊंगा ही। तुम चिंता क्यों करते हो?'

जहां रस होता है वहां दस मन की बात भी आ जाती है। रसदार चाहे भोजन हो, चाहे बातचीत हो,

चाहे व्याख्यान हो और चाहे साधना का कोई प्रयोग हो, वहां आकर्षण होता है। जहां रस न आये, रस न टपके, वह ज्यादा चल नहीं सकता, आकर्षण पैदा नहीं करता। रस होता है तो आकर्षण बना रहता है।

जम्बूकुमार भी सरसता प्रेमी थे। वे बोले–'कनकश्री! मैं कैसा हूं, कैसा होऊंगा? इसकी चर्चा अभी छोड़ो। तुम यह बताओ कि वह युवक अपनी जिद के कारण दुःखी कैसे बना?'

'स्वामी! एक युवक मां का इकलौता पुत्र था। वह बड़ा हो गया पर किसी काम में नहीं लगा। निकम्मा और आवारा घूमता रहता। मां ने कहा–बेटा! कुछ काम करो। मां का कथन स्वीकार कर उसने काम करना शुरू किया। सुबह एक जगह जाता, नौकरी करता। दोपहर में झगड़ा कर उसे छोड़ आता। शाम को दूसरी जगह नौकरी कर लेता। नौकरी लगता रहा, छोड़ता रहा पर कहीं सफल नहीं हुआ। कुछ दिन इसी प्रकार बीत गए।

मां ने कहा–'बेटा! ऐसा मत करो। बार-बार स्थान मत बदलो। जिस चीज को पकड़ लो, उसको छोड़ो मत। तुम्हारे जीवन की सफलता का यह मंत्र है कि जिसको पकड़ो, उसको छोड़ो मत।'

जो भोला आदमी होता है वह पकड़ता ज्यादा है। पुत्र ने मां की बात को पकड़ लिया, कहा–'मां! ठीक है। मैं ऐसा ही करूंगा।'

कुछ दिन बाद एक प्रसंग बना। वह युवक घर के बाहर खड़ा था। उधर से एक गधा दौड़ता हुआ आ रहा था और उसके पीछे-पीछे कुम्हार भी दौड़ रहा था। गधा कुम्हार की पकड़ में नहीं आ रहा था। कुम्हार ने दूर से आवाज दी–'अरे युवक! इस गधे को पकड़ लो। मैं आ रहा हूं।' युवक ने कहा–'ठीक है। सहयोग कर देता हूं।' वह गधे के पीछे दौड़ा। दौड़ते हुए गधे की पूंछ हाथ में आ गई। युवक ने पूंछ को पकड़ लिया। पूंछ पकड़ते ही गधा आक्रोश से भर उठा। उसने पूंछ छुड़ाने की कोशिश की। युवक ने पूंछ को और कसकर पकड़ लिया। गधा दुलत्ती मारने लगा।



वह युवक गधे की पूंछ को पकड़े हुए है और गधा दुलत्ती मार रहा है। उसकी दुलत्तियों की चोट से वह आहत हो गया। चोट इतनी तेज थी कि शरीर लहूलुहान हो गया। लोग यह देखकर उसकी मूर्खता पर हंस पड़े। उन्होंने समझाया–'मूर्ख! मार क्यों खा रहे हो? पूंछ को छोड़ दो।'

युवक ने कहा–'चुप रहो तुम। मैं तुम्हारी बात मानूं या अपनी मां की बात मानूं? मेरी मां ने कहा है–जिसको पकड़ लो, उसको छोड़ना नहीं है। मां ने यह पक्का पाठ मुझे पढ़ाया है। कुछ भी हो जाये, मैं इसे छोडूंगा नहीं।' वह मार खाते-खाते लहूलुहान हो गया।

आखिर कुछ लोग आगे आए, कहा–'यह जिद्दी आदमी है। ऐसे नहीं छोड़ेगा।' उसको जबरन पकड़ कर छुड़वाया।

युवक बोला–'भाई! तुम ऐसा मत करो। मेरी मां का जो आदेश है, उसमें हस्तक्षेप मत करो।'

'स्वामी! जो आदमी जिद्दी होता है वह कैसा होता है? और वह कैसे पछताता है? इसका सुन्दर उदाहरण है यह।'

लोगों ने उसकी नादानी का उपहास करते हुए कहा–'यह युवक मूर्ख है। इसमें परीक्षा करने की शक्ति नहीं है इसलिए यह दुःखी बना है, उपहास का पात्र बना है।'

कवि ने मूर्ख एवं आग्रही व्यक्ति का एक 'कवित्त' में सुन्दर चित्रण किया है–

पकड्या सो छोड़ै नहीं, मूरख खर का पूंछ।
शास्त्र रीत जाणै नहीं, उलटी ताणै मूंछ।
उलटी ताणै मूंछ, वचन अनाखी भाखै।
पढ़ै न अक्षर एक टांग सबही मैं राखै।
मिथ्या करे विवाद झूठ का चालै छकड़ा।
छोड़न का तल्लाक पूंछ जो खर का पकड़ा।।

'स्वामी! क्षमा करना। मैं कटु बात कह रही हूं पर कहीं-कहीं कटु सत्य भी बोलना पड़ता है। यह कटु सत्य है पर आप भी वैसी ही रूढ़ि पाले हुए हैं। जो बात पकड़ ली है, उसे छोड़ना नहीं चाहते।'

स्वामी! मेरी बहनें तो भोली हैं, मीठी-मीठी बातें कहकर रह गई पर मैं तो कटु सत्य कहना चाहती हूं। जब तक कटु सत्य सामने नहीं आयेगा, यह जिद की बीमारी मिटेगी नहीं।

प्राचीन युग में बीमारी को मिटाने के लिए डाम देते थे, लोहे की शलाका से दागते थे।

आचार्य भिक्षु का विश्रुत दृष्टांत है। ऊंट बीमार हो गया। वैद्य ने दागने का परामर्श दिया। उसने लोहे की सूई को गरम किया और दाग देने लगा। योग ऐसा मिला कि उसी समय वैद्य उधर से आया। उसने पूछा–'क्या कर रहे हो?'

'डाम दे रहा हूं।'

'अरे भाई! यह सूई से नहीं होगा, गरम शलाका से दागो तो काम होगा।'

'स्वामी! मेरी बहनों ने मीठी-मीठी बातें कहीं पर कुछ काम नहीं बना। आप जानते हैं कि वैद्य को कड़वी दवा देनी पड़ती है और रोगी को कड़वी दवा लेनी पड़ती है। मैं भी कड़वी दवा दे रही हूं, बिल्कुल कड़वी बात कह रही हूं। आप सोचिए, जिद मत कीजिए।'

'स्वामी! अब हमारी बात मान लीजिए। बहुत समय हो गया। रात भी बहुत कम शेष रही है। अब उठने का, जागरण का समय होने वाला है। आखी रात चर्चा में बिता दी पर आपने अपनी जिद नहीं छोड़ी पर अब इस जिद को जरा छोड़ दो। सरल चित्त होकर अनाग्रह भाव से हमारी बात को स्वीकार करो। अभी दीक्षा मत लो, मुनि मत बनो। समय आने पर हम भी आपके साथ मुनित्व को स्वीकार करेंगी।'

'स्वामी! आप महावीर वाणी की दुहाई देते हैं। आप कहते हैं–मैं महावीर की वाणी के आधार पर सब कुछ कर रहा हूं। पर आप देखो–महावीर ने क्या कहा है? **'जामा तिण्णि उदाहिआ'**–आप आचारांग सूत्र के इस पाठ को पढ़ो। आचारांग सूत्र में याम तीन बतलाए हैं। याम का एक अर्थ है प्रहर। याम का एक अर्थ है अवस्था। तीन अवस्थाएं हैं। कुछ लोग बचपन में दीक्षित होते हैं, कुछ जवानी में दीक्षित होते हैं और कुछ बुढ़ापे में दीक्षा लेते हैं। तीनों याम हैं दीक्षा लेने के लिए। आपका यह आग्रह क्यों है कि अभी दीक्षा लेना है। अभी तो आप जवान हो रहे हैं। अभी आप संसार में रहो। सब कुछ देखो, सब कुछ खाओ, पीओ, धन का उपभोग करो। संपदा को, परिवार को बढ़ाओ। जब बुढ़ापे की दहलीज पर जाओ तब आप मुनि बन जाना। हम सब संकल्प करती हैं कि हम सब आपके साथ साध्वी बनेंगी।'

कनकश्री ने खूब गहरा उपदेश दिया। कटु भाषा का प्रयोग भी किया। मूर्ख की भांति की गधे की पूंछ पकड़ कर अपना नुकसान करने वाला भी बता दिया।

अपना-अपना दृष्टिकोण, अपनी-अपनी भूमिका और अपना-अपना तर्क। कनकश्री जिस भूमिका पर खड़ी है, उस भूमिका में पौद्गलिक सुखों का आसेवन सारपूर्ण लगता है। मोहात्मक दृष्टिकोण भी यही है–संसार में रहो, सब कुछ खाओ, पीओ, मौज करो। अनेक व्यक्तियों ने मुझे भी यह सुझाव दिया–आपको सातों चीजें खानी चाहिए। सातों चीजें क्या हैं–यह तो शायद नहीं जानते पर यह कहावत हो गई–सातों चीजें खानी चाहिए। मैंने कभी इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया पर सुझाव देने वालों का तर्क यही रहा–व्यक्ति हर चीज खाए तो अच्छा रहता है। भोजन के प्रति, इंद्रियों के विषयों के प्रति आकर्षण सहज रहता है। हर आदमी उसी ओर ले जाना चाहता है। त्याग की ओर जाना कठिन है और कोई जाना चाहे तो उसके सामने न जाने कितनी समस्याएं खड़ी कर देते हैं। अभी एक बहिन आई। वह मुमुक्षु बनना चाहती है। हमने पूछा–अवस्था कितनी है? कहां तक पढ़ी हो? भावना कब से है? उसने सबका समीचीन उत्तर दिया। मैंने पूछा–तुम्हारे माता-पिता क्या कह रहे हैं? पिता पास में खड़े थे, बोले–मम्मी मनाही कर रही है।

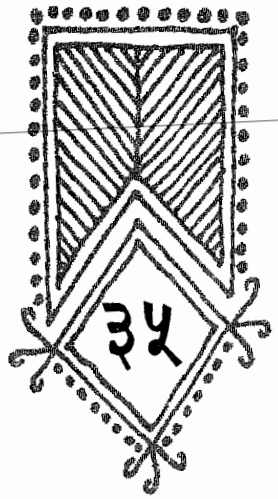
मैंने कहा–इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। कोई दीक्षा लेता है तो गृहस्थ को अच्छा नहीं लगता। उसे संसार में रखना ही अच्छा मानता है। दीक्षा लेने की बात प्रायः अच्छी नहीं लगती।

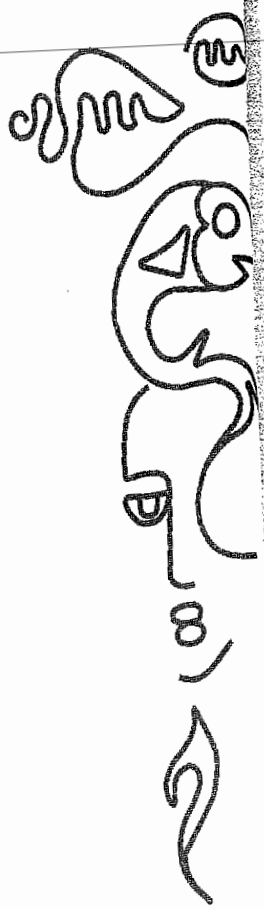
पूज्य कालूगणी का चातुर्मास उदयपुर था। मुनि मीठालालजी की दीक्षा हो रही थी। उस दीक्षा के संदर्भ में शहर के लोगों ने बहुत बवंडर किया। और तो क्या, शाक-सब्जी बेचने वाले कूंजड़ों ने भी एक सत्याग्रह सा शुरू कर दिया। पंचायती नोहरा, जहां चातुर्मास हो रहा था, रात को पत्थरों की वर्षा होने लगी। एक परिवार का व्यक्ति अपने माता-पिता की स्वीकृति से दीक्षा ले रहा था। इसके सिवाय दूसरों को लेना-देना क्या था? कूंजड़ों को लेना-देना क्या था? पर सब लोग यह चाहते हैं कि मोह में फंसा रहे, मोह को छोड़कर वीतरागता में कोई क्यों जाए? यह मोहात्मक दुनिया का स्वभाव है।

जम्बूकुमार ने सारी बात ध्यान से सुनी। कनकश्री की ओर उन्मुख होकर बोले–'कनकश्री! तुम भी बहुत होशियार और विदुषी हो। अपनी बात को रखने में बड़ी चतुर हो। परन्तु तुम जानती हो–मैंने धर्म को केवल पढ़ा नहीं है, धर्म के मर्म को समझा है। महावीर की यह बात मेरे दिल में बैठ गई है–अगर आत्मा को जानना है तो संबंधों को छोड़ना पड़ेगा। जब तक संयोग और संबंध रहता है, आत्मा का बोध नहीं हो सकता।'

'कनकश्री! मैंने जो सर्वत्याग का निश्चय किया है, उसका सबल आधार है। तुम उसे जानोगी तो तुम्हारे चिन्तन में भी एक नया उन्मेष आएगा।'







भाषा का काम एक व्यक्ति के विचार को दूसरे तक पहुंचाना है। यदि भाषा नहीं होती तो सबकी बात अपने-अपने मन में रहती, बाहर नहीं जाती। यह संप्रेषणीयता भाषा की विशेषता है। किन्तु यह दुनिया के सब प्राणियों को कहां प्राप्त है?

दुनिया के जितने प्राणी हैं उनमें सबसे ज्यादा भाषा का विकास शायद मनुष्य में हुआ है। नरक में भाषा का कोई विकास नहीं है। तिर्यंच जीवों में भी भाषा का बहुत विकास नहीं है। बहुत छोटा शब्दकोश है पशु-पक्षियों का। देवता की भाषा का भी बड़ा विचित्र काम है। देवता की कोई भाषा है या नहीं–यह भी खोज का विषय है। कहा जाता है–देवता अर्धमागधी प्राकृत में बोलते हैं। कुछ कहते हैं–संस्कृत में बोलते हैं। पर लगता ऐसा है कि उनकी भाषा कंपन की भाषा होती है, मनुष्य के जैसी स्पष्ट भाषा नहीं होती। किसी मारवाड़ी के मुंह बोलता है तो देवता मारवाड़ी भाषा बोल लेता है। गुजराती व्यक्ति के मुख से बोलता है तो गुजराती में बोलता है। किसी मुसलमान के मुंह बोलता है तो उर्दू, फारसी में बोल लेता है। जैसा माध्यम मिला, वैसी देवता की भाषा हमारे सामने आती है। एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जिसमें व्यक्त भाषा का विकास हुआ है। उसका विशाल शब्दकोश है, जिसमें लाखों शब्द हैं।

मनुष्य कविता बनाता है, गीत बनाता है, निबंध लिखता है, व्याख्याएं करता है। भाषा का कितना प्रयोग करता है मनुष्य। वह हर बात को वाणी के द्वारा प्रकट कर देता है। भाषा एक माध्यम अवश्य है पर एक-दूसरे की बात समझना केवल भाषा का ही काम नहीं है। एक आदमी एक बात कह रहा है, दूसरा उसको उलटा पकड़ रहा है। भाषा तो है, पर बात समझ में नहीं आती। कारण क्या है? कुछ अवरोध रहते हैं जो वहां तक पहुंचने नहीं देते। व्यक्ति पूरी बात सुनता भी नहीं है। सुनता है तो उसका अर्थ नहीं समझता, हृदय में वह बात नहीं उतरती इसीलिए भाषावान् या भाषावाहक होने पर भी व्यक्ति को एक-दूसरे की बात समझ में नहीं आती। जो बात कनकश्री ने कही, उसे जम्बूकुमार नहीं समझ रहा है। दोनों में एक दूरी बनी हुई है। वह दूरी केवल शब्दों की नहीं, चिन्तन और भावों की बनी हुई है। बहुत सारे लोग प्रवचन सुनते हैं

किन्तु क्या सब उसका समीचीन हार्द समझ पाते हैं? अर्थ समझने में बड़ा अंतर रह जाता है। कहा कुछ जाता है और समझ कुछ और लिया जाता है।

जैन साहित्य में तीन प्रकार की परिषद् का उल्लेख मिलता है–ज्ञ-परिषद, अज्ञ-परिषद् और दुर्विदग्ध परिषद्। ज्ञ-परिषद् तो बात को ठीक समझ लेती है। अज्ञ परिषद् सम्यक् समझ नहीं पाती। दुर्विदग्ध परिषद् कथ्य का विपरीत अर्थ लगा लेती है।

सरदारशहर की घटना है। गुरुदेव प्रवचन कर रहे थे। प्रवचन में सहज प्रसंग आया कि दो अंगुली की यह मुद्रा रहे। अनेक लोगों ने उसका सम्यक् अर्थ ग्रहण किया। श्रोताओं में पीछे कोई सटोरिया बैठा था। उसने समझ लिया कि आज दो के अंक पर सट्टा लगाना है। यह असमीचीन अर्थ का ग्रहण है।

समझने की अपनी अपनी दृष्टि होती है इसलिए एक ही वाक्य के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाए जाते हैं। यही कारण है कि विचारों में भेद रहता है। चिंतन की पृष्ठभूमि में रहता है भाव। यदि भावात्मक संवेदन एक जैसा बन जाए तो चिन्तन और भाषा में दूरी सिमट जाती है। जम्बूकुमार और कनकश्री के भावों की दिशा एक नहीं है इसीलिए उनके दृष्टिकोण में अंतर बना हुआ है। कनकश्री के तर्क से असहमति का कारण भी यही है। जम्बूकुमार चाहता है–जैसे पांच कन्याओं की भावधारा और चिन्तनधारा में परिवर्तन आया है, वैसे ही कनकश्री की भावधारा और चिन्तनधारा बदले। कनकश्री की अभिलाषा है–जम्बूकुमार त्याग की यशोगाथा बंद कर हमारी इच्छा का सम्मान करे।



जम्बूकुमार ने कनकश्री को संबोधित करते हुए कहा–'प्रिये! मैंने तुम्हारी बात बहुत गंभीरता से सुनी, तुमने काफी साफ बात कही, चिकनी-चुपड़ी बातें नहीं कही, सुगर कोटेड गोलियां नहीं दी। कटुक चिरायता जैसी कड़वी बात कही। तुम्हारी स्पष्टवादिता से मैं बहुत खुश हूं। तुमने कहा–मैं जिद्दी हूं, आग्रही हूं। मैं भी स्वीकार करता हूं कि आग्रह मुझ में है पर आग्रह इस बात का है कि मैं कर्जदार बनना नहीं चाहता, दूसरे के ऋण पर जीना नहीं चाहता और मैं चोर बनना नहीं चाहता। मेरा यह आग्रह सत्य का आग्रह है कि मैं कर्जदार नहीं बनूंगा और चोर नहीं बनूंगा।'



'प्रिये! तुम जानती हो–जो चोर होता है, चोरी करता है वह बहुत दुःखी होता है। जो सिर पर कर्जा ले लेता है, उसको चुकाना पड़ता है। कर्जदार के दुःख का कोई पार नहीं होता। वह उसी प्रकार दुःखी होता है, जिस प्रकार चारक नाम का एक व्यक्ति हुआ था।'

कनकश्री ने जिज्ञासा की–'स्वामी! कौन था वह चारक? वह कैसे कर्जदार बना? उसने कैसे चोरी की? यह बात मुझे बताएं तो मैं चिंतन करूंगी आपकी बात पर।'

'क्या तुम्हें उसकी करुण कथा सुनाऊं?'

'हां, स्वामी! किन्तु मेरा मन आपकी बात को सुनकर आश्चर्य से भर उठा है।'

'प्रिये! तुम क्या कहना चाहती हो?'

'स्वामी! क्या हम कर्जदार बनना चाहती हैं? हमें क्या जरूरत है कर्जा लेने की। हमारे पास इतनी अपार संपदा है कि हम स्वयं दुनिया को कर्जा दे सकते हैं। कर्जा लेने की बात ही कहां है?'

'प्रिये! तुम चारक की कथा सुनोगी तो स्वयं समझ जाओगी कि कर्जदार कौन होता है और उसे कैसा दुःख भोगना पड़ता है?'

'स्वामी! आपने यह भी कहा–मैं चोर बनना नहीं चाहता पर प्रियतम! हमारे घर में कोई कमी कहां है? हमें चोरी करने की भी कोई जरूरत नहीं है। चोरी तो वह करता है, जिसकी आदत बिगड़ जाती है या जो गरीबी के अभिशाप से अभिशप्त होता है। स्वामी! हम गरीब नहीं हैं। हमारी आदत भी गलत नहीं है। अच्छे कुल में जन्म लिया है, अच्छे संस्कार मिले हैं। हम ऐसे कार्य क्यों करेंगी?'

'प्रिये! पहले चारक की कथा तो सुनो। उसमें इस प्रश्न का उत्तर भी मिलेगा।'

'अच्छा स्वामी!'

'प्रिये! एक गांव में एक क्षत्रिय रहता था। बहुत समृद्ध और प्रतिष्ठित। उस क्षत्रिय के घर में बहुत बढ़िया घोड़ी थी। घोड़ी की सार-संभाल के लिए उसने एक नौकर रखा। उसका नाम था चारक। वह घोड़ी की देखभाल करता। उस घोड़ी के लिए अलग से धान की बुवाई होती। खेत का विशाल भूभाग इसलिए आरक्षित था कि वहां जो अनाज बोया जाए, वह घोड़ी के खाने के लिए काम आए। चारक को आदेश था–घोड़ी को अनाज खिलाया जाए किन्तु नौकर ने इस आदेश का पालन नहीं किया। खेत में जो अनाज होता, उसे वह चारक चुरा लेता। उस अनाज को अपने घर ले जाता और घोड़ी को घास-फूस खिला देता। उसने अनाज की चोरी की और चोरी के साथ वह घोड़ी का कर्जदार भी बन गया।'

'ओह!'

'प्रिये! जिसके हिस्से में जो चीज है वह उसको न देना और स्वयं ले लेना–यह चोरी भी है, उसके साथ ऋण भी है। इस चौर्य प्रवृत्ति और ऋणानुबंध के साथ कर्म का कर्जा भी चढ़ता चला गया।'

'प्रिये! सबसे बड़ा कर्जा कर्म का होता है। कोई दूसरा कर्ज होता है तो व्यक्ति सोचता है–सिर पर कर्ज है, भार का अनुभव होता है। किन्तु यह कर्म का कर्ज ऐसा है कि व्यक्ति करता चला जाता है, कभी सोचता ही नहीं है–कितना बोझ हो रहा है, कितना भार बढ़ रहा है और दिमाग कितना बोझिल बन रहा है।'

'प्रिये! जब कर्म का परिपाक होता है, कर्म उदय में आता है, कर्ज की एक साथ मांग आती है तब व्यक्ति पछताता है और दुःखी भी बनता है पर वह कुछ कर नहीं पाता।'

'प्रिये! वह चारक चोरी करता रहा, कर्जा भी चढ़ता रहा और कर्म का बंधन भी होता रहा।'

'प्रिये! जो चोरी करेगा उसको निषेधात्मक भावों में जाना पड़ेगा। खराब भाव, खराब विचार आते हैं तभी गलत काम होता है। भाव की विकृति के बिना संभव नहीं है दूसरे के स्वत्व का अपहरण। वह चारक

स्वयं कर्जदार बनता गया, कर्म का कर्जा चढ़ता चला गया और चोरी भी करता चला गया। काफी समय तक वह जघन्य कर्म करता रहा।'

'प्रिये! चारक की मनोवृत्ति मलिन थी इसलिए वह घोड़ी को पौष्टिक चीजें नहीं खिलाता। घोड़ी को खाना भी पूरा नहीं मिलता। वह निरंतर दुर्बल बनती रही और एक दिन वह घोड़ी मर गई।'

'प्रिये! इस दुनिया में अमर कोई नहीं रहता। बुराई करने वाला भी अमर नहीं रहता। मारने वाला भी अमर नहीं रहता।'

'प्रिये! कुछ समय पश्चात् वह चारक भी मर गया। उसी नगर में वह चारक एक दास के घर पैदा हुआ। उसका शरीर इतना भद्दा और इतना कुरूप था कि कोई पुरुष या स्त्री उसको देखना भी पसंद नहीं करते।'

कोई पुरुष भद्दा क्यों बनता है, कोई सुंदर क्यों बनता है? इसकी व्याख्या आज जेनेटिक इंजीनियरिंग के वैज्ञानिक जीन के आधार पर करते हैं। अध्यात्म के लोग कर्म के आधार पर करते हैं कि किस कर्म का यह परिणाम है? कर्म के आधार पर बहुत सारी बातें सामने आती हैं। जब हम पूर्वजन्म, वर्तमान जन्म और पुनर्जन्म–आगे होने वाला जन्म–इन तीनों को एक साथ देखते हैं, तब बड़ा विचित्र लगता है। जो व्यक्ति अतीत की ओर आंख मूंद कर बैठा है, भविष्य की ओर ध्यान नहीं देता, केवल वर्तमान को ही देखता है–ऐसा व्यक्ति हिंसा करता है, झूठ बोलता है, आतंकवादी बनता है, चोर, डाकू बनता है, अपराधी बन जाता है, नशाखोर बन जाता है किन्तु जब अतीत पीठ के पीछे, भविष्य हमारे सामने और बीच में स्वयं का वर्तमान–इन तीनों को व्यक्ति एक साथ देखता है तो शायद चिन्तन का कोण बदल जाता है।



अध्यात्म मनीषी कहते हैं–भाई! तुम तीनों कालों को एक साथ देखो। अतीत में तुम क्या थे? वर्तमान में अतीत का कितना प्रभाव है? भविष्य तुम्हारे सामने है। तुम्हारा आचरण जैसा होगा, भविष्य भी वैसा ही होगा। जैसा ज्ञान, जैसा दर्शन और जैसा आचरण होगा, वैसा तुम्हारा भविष्य बनेगा। जो इन सबको मिलाकर देखता है वह सम्यग्दृष्टि है। इस प्रकार देखने वाला बहुत बड़ा अनर्थ नहीं कर सकता। वह सोचता है–कोई सत्कर्म किया था, इसलिए यह जन्म अच्छा मिल गया, पर पता नहीं आगे क्या होने वाला है? मैं जागरूक रहूंगा तो भविष्य भी अच्छा रहेगा।

इतिहास की घटनाएं बताती हैं–पिछले जन्म में जो राजा था, बड़ा आदमी था, वह मरकर क्या बना? कोई कुत्ता बन गया, कोई सूअर बन गया। जो एयरकंडीशन में रहने वाला था वह भैंसा बन गया। कितनी गर्मी लगती है भैंसे को? वह राजस्थान में भैंसा बना गाड़ी के जुता रहता। इतनी धूप, इतनी गर्मी। राजस्थान में कहां जलाशय मिले?

'प्रिये! वह घोड़ी मर कर वेश्या बनी और वह नौकर कुरूप भद्दा लड़का बना। एक दिन योग मिला–वह वेश्या कहीं जा रही थी। चारक ने उसे देख लिया। देखते ही भीतर में कुछ मोहात्मक स्पंदन हुआ, सोचा–यह कोई परिचित लगती है। कौन है यह? केवल यह प्रश्न ही पैदा नहीं हुआ, आकर्षण भी पैदा हो गया, मोह भी जाग गया। वह तत्काल दौड़ा, वेश्या के पास गया, बोला–मैं तुमसे परिचय करना

चाहता हूं। वेश्या ने उसकी सूरत शक्ल को देखा और फटकारा–मूर्ख कहीं का! चले जाओ। तुम इतने भद्दे हो कि मैं तुम्हारे सामने देखना भी नहीं चाहती।'

यह एक वैरानुबंध का प्रतिफल है। जाने-अनजाने वैरानुबंध हो जाता है। चारक ने उसके भोजन को चुराया, इसलिए अनजान में भी एक वैर का अनुबंध हो गया। आचार्य भिक्षु ने अनुकंपा की चौपाई में बहुत सुंदर लिखा–वैर से वैर का अनुबंध होता है, मित्र से मित्र का अनुबंध होता है। एक होता है तात्कालिक काम और एक होता है अनुबंध। अनुबंध का मतलब है कि एक शृंखला बन जाती है। एक कड़ी के बाद दूसरी कड़ी चलती रहती है। शृंखला, सांकल अथवा कड़ी अविच्छिन्न हो जाती है। वैर का अनुबंध होता है और मैत्री का भी। आज किसी का उपकार किया, अगले जन्म में वह भी उपकार कर देगा। आज किसी का नाश किया, अगले जन्म में वह भी विनाश कर देगा। यह अनुबंध चलता रहता है।

वेश्या के मन में घृणा पैदा हो गई। उसे देखते ही दुत्कार दिया। चारक के मन में राग पैदा हो गया। वह उसे छोड़ता नहीं है। आखिर बहुत प्रयत्न किया। ऐसा कुछ अवसर मिला कि वह वेश्या के घर में नौकर बन गया। वहां नौकरी कर रहा है और अपना काम चला रहा है। वेश्या के प्रति बहुत अनुराग था उसके मन में और वेश्या के मन में तीव्र घृणा थी उसके प्रति। उसने बहुत प्रयत्न किया कि वेश्या कभी मुझे प्यार दे, अपना ले। काफी अनुनय किया पर वेश्या ने कभी सामने देखना भी पसंद नहीं किया। उसने कहा–'तुम नौकर हो, तुम्हें जो काम सौंपा हुआ है, करते रहो पर मेरे सामने मत रहो।'

इस बात को लेकर चारक के मन में ऐसी ग्रंथि बनी कि वह संतप्त रहने लगा। जिसके मन में तीव्र अभिलाषा जाग जाती है, वह सपना पूरा नहीं होता, वह कल्पना पूरी नहीं होती तो व्यक्ति दुःखी बनता है। चारक इतना दुःखी बना कि रात-दिन आर्तध्यान में रहने लगा और उसी आर्तध्यान में दुःख का वेदन करता हुआ मरण को प्राप्त हुआ।

कथा का उपसंहार करते हुए जम्बूकुमार ने कहा–'कनकश्री! तुम भी मुझे चारक बनाना चाहती हो? क्या मैं कर्जदार बनूं? क्या मैं चोर बनूं? उसने क्षत्रिय के अनाज की चोरी की। क्षत्रिय ने घोड़ी को अनाज खिलाने का काम सौंपा था किन्तु वह बीच में स्वयं खा जाता था। उसने चोरी की और चोरी के कारण कर्म का इतना बोझ सिर पर कर लिया, इतना कर्जा कर लिया कि मरकर भी कुरूप आदमी बना। निरंतर प्रताड़ना और तिरस्कार का पात्र बना, अंतिम समय में भी निकृष्ट परिणामों में मरा। प्रिये! मैं न तो कर्जदार बनना चाहता हूं और न चोरी करना चाहता हूं।'

'स्वामी! इसमें चोरी कहां हैं? आप किसका चुरा रहे हैं? आपके पास प्रचुर धन-संपदा है। चोरी का प्रश्न ही नहीं उठता?'

'प्रिये! आज्ञा की अवहेलना भी चोरी है।'

'स्वामी! आप किसकी आज्ञा की अवहेलना कर रहे हैं?'

'प्रिये! मुझे मेरी अंतरात्मा का आदेश मिला है कि जम्बूकुमार! तुम्हें वीतराग बनना है। जम्बूकुमार! तुम्हें केवली बनना है। मेरी अंतरात्मा के इस आदेश का पालन न करूं तो यह आत्मा की चोरी होगी। प्रिये!

आत्मा की भी चोरी होती है। केवल दूसरी वस्तुओं की चोरी नहीं होती, अपनी भी चोरी होती है। मैंने स्वयं मन में सोचा, संकल्प किया और वैसा नहीं करता हूं तो यह एक प्रकार से चोरी है।'

'प्रिये! महावीर ने चोरी के अनेक प्रकार बतलाए हैं। तुमने प्राकृत की इस मर्मस्पर्शी गाथा को पढ़ा है–

तवतेणे वयतेणे रूवतेणे य जे नरे।
आयारभावतेणे य, कुव्वई देवकिव्विसं।।

जो मनुष्य तप का चोर, वाणी का चोर, रूप का चोर, आचार का चोर और भाव का चोर होता है, वह किल्विषिक देव में उत्पन्न होने योग्य कर्म का अर्जन करता है।'

एक साधक तपस्वी तो नहीं है किन्तु पतला, दुबला और थका-मांदा है। दूसरा साधु तपस्या कर रहा है। लोग आये, देखा–ये महाराज इतने दुबले-पतले हैं, अवश्य ही ये तपस्वी हैं। लोगों ने पूछा–'महाराज! हमने सुना है कि यहां पर एक बड़े तपस्वी साधु हैं। क्या वे आप ही हैं?' वह सरल होता तो यह कह देता–मैं नहीं करता। यदि उसके मन में कपट है तो वह उत्तर देता है–'साधु सब तपस्वी ही होते हैं।' यह चोरी है तपस्या की।

वयतेणे–अवस्था की चोरी या वाणी की चोरी, **रूवतेणे**–रूप की चोरी और **आयारभावतेणे**–आचार और भाव की चोरी। सब साधु समान तो नहीं होते। साधुओं में भी अंतर होता है। किसी ने पूछा–मुनिजी! हमने सुना है एक महाराज बहुत आचारनिष्ठ हैं, उनकी ईर्यासमिति इतनी सधी हुई है कि एक-एक पैर देख-देखकर भूमि पर रखते हैं। क्या वे महाराज आप ही हैं? मुनिजी बोले–भोले आदमी! समझते नहीं हो। सब साधु आचारनिष्ठ होते हैं। वह उस आचारनिष्ठ साधु का नाम नहीं बताता। यह आचार की चोरी है।



'प्रिये! शिष्य को गुरु का आदेश मिला–यह काम तुम्हें करना है। शिष्य वह न करे तो यह गुरु-आज्ञा की अवहेलना है।'

'प्रिये! मुझे आत्मा का आदेश मिला है कि मुझे मुनि बनना है, वीतराग बनना है, केवली बनना है। यदि मैं न बनूं तो यह आत्मा की चोरी होगी।'

'प्रिये! तुम जानती हो–कर्म का कर्जा कितना भारी होता है और उसे चुकाना पड़ता है। धन आदि का कर्जा तो कोई यहां न भी चुकाये। व्यक्ति बिना चुकाए मर जाये तो कौन चुकायेगा पर यह कर्म का कर्जा तो ऐसा है कि चुकाए बिना कोई गति नहीं है।'

'प्रिये! तुम महावीर के इस वचन का अनुशीलन करो–**कडाण कम्माण न अत्थि मोक्खो**–कृत कर्म से छुटकारा नहीं मिलता। **नत्थि अवेयइता तवसा वा झोसइत्ता**–भोगे बिना अथवा तपस्या के द्वारा क्षीण किये बिना छुटकारा नहीं होता।'

'प्रिये! मैं कर्जदार बनना नहीं चाहता। मुझे कर्जदार बनना पसंद नहीं है।'

'स्वामी! आप क्या चाहते हैं? कर्जदार बनना भी नहीं चाहते और चोरी करना भी नहीं चाहते, आखिर चाहते क्या हैं?'

'प्रिये! मैं चाहता हूं परम सुख।'

'स्वामी! क्या ये इंद्रियां, ये भोग के साधन, ये मनोनुकूल समर्पिता कन्याएं–क्या यह सुख का संसार नहीं है?'

'प्रिये! तुम प्रलोभन देती हो कि इतना धन आया है, इतनी संपदा है, इतना सब कुछ है, पर मैं जो चाहता हूं उसके सामने यह एक तिनके जितना भी नहीं है।'

'स्वामी! आप कैसा सुख चाहते है?'

'**अप्पा परमप्पओ होइ**–मैं आत्मा से परमात्मा बनना चाहता हूं।'

'स्वामी! परमात्मा बनने से क्या मिलेगा आपको?'

'मुझे इतना सुख मिलेगा कि जितना इस घर में, इस धन में नहीं है।'

'इतना सुख कहां से आयेगा?'

'प्रिये! वह बाहर से नहीं आयेगा, अपने भीतर से आएगा। अपने भीतर है इतना सुख।'

'प्रिये! महावीर ने जो कहा है, उसे ध्यान से सुनो। '**सव्वेसिं सुखरासिं**'–सब जीवों के सुख का ढेर कर लो। जैसे अनाज का ढेर होता है, वैसे एक-एक जीव के सुख को लो, सब जीवों के सुखों को लेते जाओ। जो अनंत जीव इस संसार में हैं, उन सब जीवों के सुख का एक विशाल ढेर बना लो। दूसरी ओर एक वीतराग का सुख, मुक्त आत्मा का सुख या ईर्यापथिकी क्रिया में रहने वाले साधक का सुख सामने रख दो। एक विशाल तराजू लाओ। उसमें एक ओर तो सारी दुनिया के सुख का ढेर रख दो, दूसरी ओर एक वीतराग अथवा मुक्त आत्मा के सुख को रखो। तराजू के दोनों पल्लों को तौलो। जिस पल्ले में वीतराग का सुख है, वह नीचा रहेगा। उसकी तुलना में कुछ भी नहीं है सारी दुनिया का सुख।'

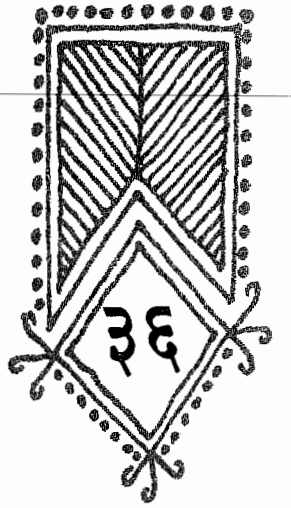
'प्रिये! मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूं कि जो थोड़े सुख प्राप्त हैं उन्हें छोड़कर कोरी कल्पना में चला जाऊं और थोड़े से भी वंचित हो जाऊं। **अप्पंपि य मा बहुयं लुंपेज्जा**–मुझे थोड़े के लिए बहुत को नहीं गंवाना है। प्रिये! क्या तुम थोड़े सुख के लिए बहुत को गंवाना चाहती हो?'

'स्वामी! ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो थोड़े के लिए बहुत को खोए?'

'प्रिये! फिर इन क्षणिक पौद्गलिक सुखों में मत उलझो। परम सुख के पथ पर प्रस्थान का संकल्प करो। वही तुम्हारे लिए आदेय और श्रेय होगा।'

जम्बूकुमार के इन भावपूर्ण वचनों ने कनकश्री के हृदय को छू लिया। उसका मानस भी राग से विराग की दिशा में चरणन्यास के लिए समुद्यत बन गया।





सामाजिक जीवन मोह की परिक्रमा कर रहा है। मोह का विशाल साम्राज्य है। जहां साम्राज्य है वहां सुरक्षा के लिए सेना भी जरूरी है। जहां सेना है वहां सेनापति भी होते हैं। मोह के साम्राज्य की सुरक्षा के लिए दो बड़े सेनापति हैं–अहंकार और ममकार। मैं और मेरा–यह भाव बड़ा विचित्र होता है। आदमी अपने आपको दूसरों से अलग दिखाना चाहता है, बड़ा मानना चाहता है। पूजा, प्रतिष्ठा, श्लाघा और अपना बड़प्पन उसे बहुत प्रिय होता है। वह कहता तो यह है कि मुझे अमुक प्रिय है पर वास्तव में प्रशंसा, श्लाघा, प्रतिष्ठा जितनी प्रिय है उतना शायद कोई प्रिय नहीं है। दो प्रशंसा के शब्द कह दो, बस अपना बन जायेगा और दो निंदा की बात कह दो, दूर हट जायेगा। व्यक्ति अपनी श्रेष्ठता दिखाना चाहता है। मेरी जाति, मेरा कुल, मेरा वंश, मेरा वैभव, मेरा ज्ञान और मेरी तपस्या–जाति मद, कुल मद, तप मद आदि अहंकार के अनेक प्रकार बनते हैं।

अहंकार तोड़ता है, दूसरों से जोड़ता नहीं है। व्यक्ति स्वयं को दूसरों से अलग कर लेता है और अलग हुए बिना प्रतिष्ठा का कोई स्वाद नहीं आता। दूसरों से अलग लगूं तब कुछ अतिरिक्तता का अनुभव होता है। यह प्रबल समस्या है।

एक कवि ने कल्पना की–बकरी मैं-मैं बोलती है। 'मैं-मैं' करते ही बकरी का सिर कट गया। बकरी के बालों से बुनकर तार बुनते हैं। तार बुनते समय मैं-मैं की नहीं, 'तू-तू' की आवाज आती है। 'तू-तू' करते ही उनका मोल बढ़ गया।

'मैं' 'मैं' करत ही बावली छाग कटायो शीश।
'तू' 'तू' बोलत बाल को मोल भयो दस बीस।।

यह 'मैं'–अहं बड़ा खतरनाक होता है। इस अहं के कारण आदमी दूसरों को कुछ मानता नहीं है, विषमता पैदा करता है। दुनिया में जितनी विषमता है, उसका एक प्रमुख कारण है अहंकार।

रूपश्री जम्बूकुमार को समझाने के लिए उद्यत हुई। उसने कहा–'स्वामी! मैं सबसे पहले क्षमा मांगती हूं। क्योंकि मैं जो कहूंगी वह शायद आपको प्रिय नहीं लगेगा।'

'रूपश्री! तुम क्या कहना चाहती हो?'

'स्वामी! मैंने आप जैसा अहंकारी आदमी नहीं देखा। आपमें इतना अहंकार है कि आप किसी की बात पर ध्यान नहीं देते, किसी की सलाह को मानते नहीं हैं। क्या अकेला आदमी ही समझदार होता है दुनिया में? दूसरे भी तो रोटी खाते हैं, पानी पीते हैं, दूसरों में भी समझ है। स्वामी! ऐसा लगता है कि सारी समझदारी का ठेका आपने ले लिया है।'

'स्वामी! आपका अनुभव परिपक्व नहीं है। अभी आप बहुत छोटे हैं। आपकी अवस्था भी क्या है?'

'स्वामी! मैं आपको एक नीति की बात बताऊं?'

'प्रिये! मैं अवधानपूर्वक सुनूंगा तुम्हारा मंतव्य।'

'स्वामी! नीतिकार ने कितना अच्छा लिखा है–

गुणिनामपि निजरूपप्रतिपत्ति परतः एवं संभवति।
स्वमहिमदर्शनमक्षोः मुकुरतले जायते यस्मात्।।

स्वामी! कितना ही गुणी आदमी है पर वह अपने आपको जानना चाहता है तो उसे दूसरों का सहारा लेना पड़ेगा। दूसरे लोग बताएंगे कि आपके भीतर कौन से गुण हैं। व्यक्ति यह स्वयं नहीं जान सकता।'

'स्वामी! नीतिकार ने कितना सुंदर दृष्टान्त दिया है–आंख सबको देखती है पर जब आंख यह सोचे कि मुझे अपने आपको देखना है तो क्या वह स्वयं को देख पायेगी? सबको देखने वाली आंख को जब अपने आपको देखना है तो उसे शीशे के सामने जाकर खड़ा होना होगा। दर्पण यह दिखा देगा कि तुम कैसी हो? वह स्वयं अपने आपको नहीं देख सकती।'



'स्वामी! आप भी अपने आपको पहचान नहीं रहे हैं। आप कैसे हैं–इसे दूसरे अधिक बता सकते हैं। पर समस्या यह है कि आप दूसरों की बात मान नहीं रहे हैं।'

'स्वामी! बात कड़वी है पर बहुत सच है। मैं कहूं या न कहूं?'

'प्रिये! अवश्य कहो। सच को क्यों छिपाना चाहिए?'

'स्वामी! पुरुष के लिए बहत्तर कलाएं और स्त्री के लिए चौसठ कलाएं होती हैं पर ऐसा लगता है कि आप चौहत्तर कलाएं पढ़ गये हैं। आपने दो कलाएं अधिक पढ़ ली हैं।'

'प्रिये! कौन-सी दो कलाएं?'–जम्बूकुमार ने साश्चर्य पूछा।

'स्वामी! स्वयं की तो उपज नहीं और दूसरों की बात मानना नहीं–ये दो कलाएं और पढ़ ली हैं। इस प्रकार आप ७४ कलाओं में निपुण बन गये हैं।'

'प्रिये! क्या कहना चाहती हो तुम?'

'स्वामी! हम सब इतना समझा रही हैं पर आप किसी की बात नहीं मान रहे हैं। यह अहंकार अच्छा नहीं है। दूसरे की सलाह भी माननी चाहिए। दूसरे की बात पर ध्यान देना भी जरूरी है। स्वामी! यदि आप हमारी बात नहीं मानोगे तो उस सिंचाना पक्षी की तरह पछताओगे।'

जम्बूकुमार शांत स्वर में बोला–'रूपश्री! बहुत कड़वी बात बोल रही हो पर कोई बात नहीं है। कम से कम यह तो बता दो कि वह सिंचाना पक्षी कैसे पछताया? कैसे दुःखी बना?'

रूपश्री जम्बूकुमार की शांत वृत्ति को देख स्तब्ध रह गई। मन में कुछ श्रद्धा का भाव भी पैदा हो गया। उसने सोचा–कितना अनावेश है? इतनी कटु बात कही फिर भी मुख पर क्षोभ और क्रोध की रेखा नहीं। विलक्षण है शांति। इन्हें उत्तेजना भी नहीं आती।

आजकल के कुछ पति तो ऐसे हैं कि पत्नी अगर थोड़ी-सी अप्रिय बात भी कह दे तो पिटाई करनी शुरू कर देते हैं। आवेश बहुत है। आज दूसरी समस्या है नशे की। नशा बहुत करते हैं। जो जर्दा, पान पराग, शराब आदि का नशा करेगा उसमें आवेश बढ़ जायेगा, उत्तेजना बढ़ जायेगी, हाथ जल्दी उठेगा, पिटाई करना शुरू कर देगा। अपना घर भले ही बिगड़ जाये, अशांत हो जाए पर नशे में उसे कोई भान नहीं रहता। यह नशे का प्रभाव है। नशे का काम ही है चेतना को बिगाड़ देना, चेतना में विकार पैदा करना। किन्तु इतनी कड़वी बात कहने पर भी बिल्कुल शांत प्रसन्न रहना सचमुच अलौकिक घटना है।



रूपश्री बोली–'स्वामी! मैं जो कह रही हूं, आप बुरा मत मानना। मैं कोई शत्रु बनकर नहीं कह रही हूं। मैं आपकी हितचिंतक बनकर कह रही हूं।'

रूपश्री कड़वाहट के साथ मिठास भी घोल रही है–'स्वामी! जब मैं आपके शरीर को देखती हूं तो लगता है कि यह सुकुमार शरीर कैसे साधुपन को निभायेगा? कैसे भूख को सहेगा? यह गर्मी की रात, जो ज्वाला सी बरसाती है, प्यास को कैसे सहेगा? इस आग उगलती लू को कैसे सहेगा? इस वैभार पर्वत की तलहटी में चलने वाली हवाएं, जो पांच पर्वतों के बीच से चलती हैं, कैसे सहन करेगा? कैसे पदयात्रा करेगा? पैर में कांटे चुभेंगे तो उनको कैसे सहेगा? इस सुकुमार शरीर से आप साधुपन पालेंगे कैसे? कहीं यह न हो कि मेघकुमार की तरह एक रात में ही घबरा जाओ।'

'स्वामी! हमारा क्या स्वार्थ है? हम तो आपकी सुकुमारता को देखकर अच्छी सलाह दे रही हैं। किन्तु यह निश्चित है कि आप हमारी बात नहीं मानोगे तो सिंचाना पक्षी जैसे दुःखी बनोगे।'

'प्रिये! सिंचाना पक्षी ने क्या मूर्खता की, जिससे उसे पश्चात्ताप करना पड़ा?'

'स्वामी! सघन भयावह जंगल में एक पेड़ पर एक पक्षी रहता था। उसका नाम था सिंचाना। संस्कृत में उसका शब्द है सेचनक। जिस वृक्ष पर वह रहता था, उसकी छांह गहरी थी। एक बाघ प्रतिदिन वहां

आता, विश्राम करता और गहरी नींद में चला जाता। नींद में उसका मुंह खुल जाता। सिंचाना पक्षी वृक्ष पर बैठा यह देख लेता–बाघ नींद में है। उसका मुंह खुल गया है। वह नीचे उतरता और बाघ के मुंह में दांतों के आस-पास जो मांस लगा होता, उसे कुरेद-कुरेद कर खाने लग जाता। एक दिन, दो दिन ऐसा किया। कुछ पक्षी इकट्ठे हुए। उन्होंने समझाने का प्रयत्न किया–'सिंचाना! तुम यह काम मत करो। इस कृत्य का परिणाम अच्छा नहीं होगा। तुम्हारा आलस्य और लोभ तुम्हारी मौत का कारण बनेगा। तुम बाघ के मुंह में जा रहे हो या मौत के मुंह में? क्या तुम्हें खाने को कुछ नहीं मिलता? तुम ऐसा मत करो।'

उसने कहा–'यह बाघ तो नींद में सोया रहता है। इसे कुछ पता नहीं चलता और अनायास मुझे भोजन मिल जाता है।'

वे हित चिन्तन करने वाले पक्षी थे, उन्होंने काफी समझाया-बुझाया पर वह नहीं माना। वह लोलुप तो था ही, अहंकारी भी बन गया–'बस मैं करता हूं वह ठीक है।' दूसरों की बात पर ध्यान नहीं दिया।

'स्वामी! एक दिन बाघ लेटा था, उसे नींद पूरी आई नहीं थी। वह अर्धनिद्रा में था, किन्तु उसका मुख खुला था। सिंचाना पक्षी नीचे उतरा। उतरकर खुले मुंह पर बैठा। बाघ के दांतों में फंसा मांस-खंड खाने लगा। बाघ को कुछ पीड़ा का अनुभव हुआ। वह जाग गया। उसने जैसे ही देखा कि सिंचाना पक्षी खा रहा है। वह आवेश में भर उठा। उसने उसे ऐसा दबोचा कि वह भीतर का भीतर ही रह गया।'

कथा का उपसंहार करते हुए रूपश्री ने भावपूर्ण स्वर में कहा–'स्वामी! मैंने कोई बड़ी कहानी नहीं सुनाई है। बहुत छोटी बात कही है पर आप देखें–इसका मर्म कितना बड़ा है? जो दूसरों की सलाह नहीं मानता, अपने अहंकार में रहता है, आखिर उसकी गति वही होती है, जो सिंचाना पक्षी की हुई।'

'स्वामी! मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप सबसे पहले इस अहंकार को छोड़ दो–बस मैं सोचता हूं वही ठीक है, मैं करता हूं वही ठीक है। दुनिया में दूसरे भी अच्छा सोचने वाले हैं, दूसरे भी ठीक बात करने वाले हैं उनकी बात पर भी जरा ध्यान दो। आज हम आठ कन्याएं आपके सामने बैठी हैं, हम सब समझदार हैं, कुलीन हैं, सुशील हैं पर ऐसा लगता है कि आपकी दृष्टि में हमारी सलाह का कोई मूल्य नहीं है।'

'स्वामी! हम आपके अहित की बात नहीं सोच रही हैं। एकांत हित की बात सोच रही हैं पर यह अहंकार आड़े आ रहा है इसलिए हमारी बात आपके भीतर नहीं पैठ रही है। जब तक भीतर न जाए तब तक कुछ होता नहीं है। बात भीतर जानी चाहिए, गले के नीचे उतर जानी चाहिए। स्वामी! हम जो कह रही हैं, वह आपके गले नहीं उतर रही है और गले के नीचे उतरे बिना काम नहीं चलता।'

'स्वामी! आप मेरी बात ध्यान से सुनें। मैं एक कथा फिर सुना रही हूं।'

'प्रिये! मैं तुम्हारी बात तन्मयता से सुन रहा हूं।'

'स्वामी! एक चेला गुरु के पास आया, बोला–गुरुदेव! आपकी सभा में कल पांच हजार आदमी थे। मैं दूसरी जगह गया वहां भी एक धर्मसभा थी। उसमें दस हजार आदमी थे। गुरुदेव! धर्म के प्रति कितना आकर्षण है, इतने लोग धर्म कर रहे हैं। भविष्य में स्वर्ग में भी आबादी बढ़ जाएगी, लोगों की इतनी भीड़ हो जायेगी कि आखिर समाएंगे कहां? मरने के बाद आप भी स्वर्ग जाएंगे, मैं भी स्वर्ग जाऊंगा। इतनी भीड़ में हम रहेंगे कहां? यह बड़ी चिंता की बात है।'

गुरु ने कहा–'वत्स! चिंता मत करो, सब स्वर्ग जाने वाले नहीं हैं।'

'गुरुदेव! धर्मस्थानों में इतनी भीड़ है क्या वह स्वर्ग में नहीं होगी?'

'हां, लोग धर्मसभा में आ रहे हैं, सुन रहे हैं पर धर्म की बात गले कहां उतर रही है?'

'गुरुदेव! आपकी बात भी मेरे गले नहीं उतर रही है।'

गुरु ने कहा–'ठीक है। कभी तुम्हें समझाऊंगा।'

एक दिन प्रातःकाल का समय। गुरु ने शिष्य को बुलाया, कहा–'वत्स! कलाल के घर जाओ और एक घड़ा शराब का भरकर ले आओ।'

शिष्य देखता रह गया–यह क्या आदेश? गुरु भी कभी-कभी बड़ा विचित्र आदेश दे देते हैं। जैन साहित्य का प्रसिद्ध प्रसंग है। गुरु ने अपने शिष्य से कहा–जाओ, सांप की लंबाई नाप आओ। शिष्य अवाक् रह गया। गुरु के आदेश का उल्लंघन भी कैसे करे? वह गया। रस्सी से सांप की लंबाई माप ली। गुरु ने जिस उद्देश्य से आदेश दिया था वह सफल नहीं हुआ। गुरु ने कहा–'एक बार पुनः जाओ। सांप के दांत गिन कर आओ।'

क्या यह कोई आदेश होता है? पर गुरु बड़े अजीब होते हैं, ऐसे आदेश दे देते हैं जो प्रथम दृष्टि में उपयुक्त नहीं लगते। शिष्य विनीत था। उसने गुरु के आदेश का पालन किया। सांप के पास गया। उसके मुंह में अंगुली डाली। सांप ने काट लिया। शिष्य चिल्लाया। गुरु ने कहा–'भीतर आ जाओ।' शिष्य भीतर आया। गुरु ने उसे कंबल ओढ़ा कर सुला दिया। शिष्य कोढ़ के रोग से ग्रस्त था। सर्प-विष के अंदर जाते ही प्रतिक्रिया हुई। कोढ़ के सारे कीटाणु बाहर आ गए। उसका शरीर कंचन जैसा कांतिमान् बन गया।



गुरु के आदेश के पीछे कोई रहस्य होता है। उसे सामान्य मति वाला समझ नहीं पाता।

गुरु ने शिष्य से कहा–'क्या सोच रहे हो? मेरा आदेश है–शराब ले आओ और एक घड़ा भरकर लाना है।' आखिर शिष्य गया। शराब लाकर सामने रख दी, पूछा–'गुरुदेव! अब और क्या आदेश है?'

गुरु–'इस शराब को पीओ।'

शिष्य ने सोचा–आज गुरु को क्या हो गया है? कोई उलटा चक्र चल रहा है। क्या पृथ्वी ऊपर जा रही है और आकाश नीचे आ रहा है? गुरुदेव रोज तो शराब छोड़ने का उपदेश देते हैं, शराब छुड़ाते हैं और आज कह रहे हैं–शराब पीओ। शिष्य अजीब उलझन में फंस गया। गुरु ने कहा–'देखते क्या हो, शराब पीओ।' वह गुरु का भक्त था, उसने आदेश को शिरोधार्य किया। हाथ में गिलास उठाई, उसमें शराब ली।

गुरु ने कहा–'वत्स! एक बात का ध्यान रखना। शराब पीना है और कुल्ला कर थूक देना है।'

'गुरुदेव! जैसी आपकी आज्ञा।' शिष्य शराब पीता गया, कुल्ला करता गया और थूकता गया। पूरा घड़ा खाली कर दिया।

शिष्य–'गुरुदेव! अब क्या आदेश है?'

गुरु–'कोई आदेश नहीं है। तुम्हारी जिज्ञासा का समाधान नहीं हो रहा था, मैंने समाधान कर दिया है।

'गुरुदेव! क्या समाधान किया है आपने?'

'वत्स! तुमने एक घड़ा शराब पी ली, क्या तुम्हें नशा आया?'

'गुरुदेव! नशा तो नहीं आया।'

'क्यों नहीं आया?'

'गुरुदेव! शराब की घूंट गले से नीचे उतरती तब नशा आता। मैंने तो मुंह में ली और कुल्ला करके थूक दिया। नशा कैसे आता?'

'वत्स! बहुत सारे लोग धर्म की बात सुनते हैं और कुल्ला करके थूक देते हैं। धर्म का घूंट गले से नीचे उतरता नहीं है। गले से नीचे उतरे बिना धर्म का नशा कैसे आयेगा? और कैसे वह स्वर्ग में जायेगा?'

रूपश्री ने जम्बूकुमार की ओर देखते हुए व्यंग्यात्मक स्वर में कहा–'स्वामी! ऐसा लगता है आप हमारी बात सुन रहे हैं और कुल्ला करके थूक रहे हैं। वह गले से नीचे नहीं उतर रही है। हमारी बात को थोड़ी नीचे तो उतरने दो।'

'स्वामी! केवल सुनना पर्याप्त नहीं है। आप देखिए महावीर ने क्या कहा है? **सवणे णाणे विण्णाणे पच्चक्खाणे य संजमे**–पहली बात है सुनना। सुनने पर रुक जाए तो पूरा काम नहीं होता। दूसरी बात है **णाणे**–जो सुना है, उसको अच्छी तरह जानो। तीसरी बात है–**'विण्णाणे'** फिर विज्ञान करो, विवेक करो। यदि व्यक्ति पूरी बात सुनता नहीं है, सुनने के बाद उसको जानता नहीं है और जानने के बाद भी उसका विवेचन नहीं करता, विश्लेषण नहीं करता, चयन-विचयन नहीं करता तो कैसे सफल होगा? यह विवेचन करना चाहिए कि अमुक बात क्यों कही गई है?'

'स्वामी! ऐसा लग रहा है जैसे आप नींद में हमारी बात सुन रहे हैं। जो नींद में सुनता है, वह कैसा समझता है? यह मैं एक घटना के द्वारा बताऊं?'

'हां प्रिये! तुम्हारी कथाएं भी रसप्रद होती हैं।'

'स्वामी! एक बुढ़िया रोज धर्मकथा में जाती थी। वहां भीत का सहारा लेकर बैठ जाती। कभी नींद आ जाती और कभी थोड़ा बहुत सुन लेती। एक दिन वह धर्मकथा सुनकर घर आई। पुत्र-पौत्र सब पास में आए, पूछा–'दादी मां! आज धर्मकथा में क्या सुना?'

'अरे! आज तो धर्मकथा का मजा नहीं आया।'

'क्यों? क्या हुआ दादी मां!'

'बेटा! जो मुनिजी धर्मकथा कर रहे थे, उनके पेट में दर्द हो गया।'

'यह तुम्हें कैसे पता चला?'

'बेटे! उन्होंने एक घंटे की धर्मकथा में बीस बार कहा होगा–'ओय मां!' 'ओय मां'। यदि पेट में दर्द नहीं होता तो 'ओय मां' 'ओय मां' क्यों करते?'

'स्वामी! नींद में कोई सुनता है तो कितना विपरीत अर्थ लगा लेता है। मुनिजी भगवती सूत्र पढ़ रहे थे। उसमें गौतम प्रश्न पूछते हैं और भगवान महावीर उत्तर देते हैं। गौतम पूछते हैं तब बोलते हैं–'एवं खुल

भंते!' भंते! यह कैसे है? तब भगवान महावीर कहते हैं–'हंता गोयमा! हां गौतम ऐसे हैं।' उस वृद्धा के लिए 'गोयमा'–'ओय मां' 'ओय मां' हो गया और उसने यह मान लिया–मुनिजी के पेट में दर्द हो गया है।'

'स्वामी! आप भी उस बुढ़िया की तरह पूरी बात को समझ नहीं रहे हैं, विवेचन भी नहीं कर रहे हैं।'

'स्वामी! त्याग कब होता है? पहले तीन बातें चाहिए। पहली बात है–ठीक से सुनो या पढ़ो। फिर उसको जानो कि सही अर्थ क्या है? जानने के बाद यह विवेचन करो कि क्या छोड़ना है? क्या ग्रहण करना है? हेय क्या है, उपादेय क्या है? विवेक के बाद होता है प्रत्याख्यान और संयम।'

'स्वामी! आपने प्रत्याख्यान को तो पकड़ लिया किन्तु पूर्ववर्ती तीन बातों को छोड़ दिया। न कोई बात आप ठीक से सुनते हैं, न उसका ज्ञान और विवेक करते हैं। आपने सीधा प्रत्याख्यान को पकड़ लिया, छलांग लगा दी। स्वामी! यह सीधी छलांग अच्छी नहीं है। सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ना चाहिए, सीढ़ी दर सीढ़ी उतरना चाहिए।'

रूपश्री ने अपने वक्तृत्व का रूप पूरा निखारा। उसकी तार्किक प्रस्तुति को सबने अवधानपूर्वक सुना।

जम्बूकुमार ने शांत और अविचल भाव से सारी बात सुनी। प्रसन्नता और मुस्कराहट के साथ बोला–'रूपश्री! तुम कोरी रूपश्री नहीं हो, बुद्धि भी तुम्हारी रूप के अनुरूप है, बोलने में भी बड़ी कुशल हो। तुम बात को इस प्रकार प्रस्तुत करती हो कि कड़वी घूंट भी सरसता के साथ पिला देती हो। किन्तु....'

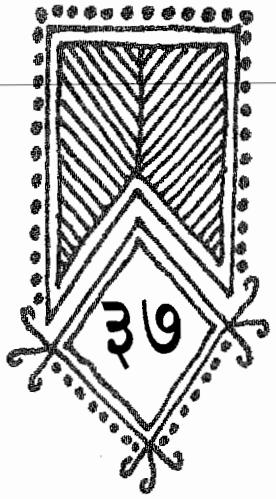
'स्वामी! मेरा तर्क उपयुक्त है, वार्ता समीचीन है फिर किन्तु क्या है?'

जम्बूकुमार बोला–'प्रिये! मैं अपनी बात भी तो कहना चाहूंगा।'

'स्वामी! मैं भी सुनूंगी आपकी बात पर मेरी बात को काटना मत। उस पर जरा गौर करना। मैंने इतनी गहरी बात कही है, उस पर थोड़ा चिंतन अवश्य करना।'

'प्रिये! ठीक है। मैं दो क्षण चिंतन करूंगा, चिंतन के बाद विश्लेषण करूंगा और फिर अपनी बात तुम्हारे सामने प्रस्तुत करूंगा।'





एक व्यक्ति धन से गर्विष्ठ है, उसमें धन का अहंकार है। कोई सामान्य आदमी जाए और बातचीत करना चाहे तो वह सामने ही नहीं देखेगा। सामने वाला सोचता है–बड़ा अहंकारी है। सामान्य लोगों से बोलना ही पसंद नहीं करता। एक व्यक्ति ध्यान में बैठा है, ध्यान कर रहा है या आत्मलीन ज्यादा रहता है, अपने में ही खोया रहता है। दूसरा कोई बातचीत करना चाहता है तो वह नहीं बोलता। सामने वाला सोच सकता है–यह अहंकारी है, हमसे बोलता नहीं है। जहां अहंकार है वहां भी अहंकार का भान और जहां अहंकार नहीं है, वहां भी अहंकार का भान। इसलिए कहीं-कहीं समझना बड़ा कठिन होता है।

जम्बूकुमार में कोई अहंकार नहीं है फिर भी रूपश्री को लगा–ये बड़े अहंकारी हैं। किसी की बात मानते ही नहीं हैं, सुनते ही नहीं हैं। यद्यपि उनमें अहंकार नहीं था क्योंकि जिस व्यक्ति में अनुभव जाग जाता है वहां अहंकार रहता नहीं है।

अहंकारो धियं ब्रूते, नैनं सुप्तं प्रबोधय।
उदिते परमानन्दे, नाहं न त्वं न वै जगत्।।

एक दिन अहंकार बुद्धि के पास आया। बुद्धि ने पूछा–'बोलो भाई! तुम क्यों आए हो?'

अहंकार बोला–'मैंने सुना है कि तुम अनुभव को जगा रही हो।'

'हां!'

'मेरा परामर्श है–तुम अनुभव को कभी जगा मत देना। यह तुम्हारी मूर्खता होगी, बिना सोचा- समझा काम होगा।'

'तुम्हारे इस कथन का आधार क्या है?'

'जिस दिन तुमने अनुभव को जगा दिया, उस दिन **'नाऽहं'**–मैं नहीं बचूंगा और **'न त्वं'**–न तुम बचोगी। न अहंकार रहेगा, न बुद्धि का काम रहेगा। **'न वै जगत्'**–यह जगत् भी नहीं रहेगा। अनुभव के जाग जाने पर ये सब चले जाएंगे इसलिए मैं कहता हूं–तुम ऐसी मूर्खता मत करो, अनुभव को जगाने की

बात मत सोचो। इसे सोया ही रहने दो। गुफा में सिंह सोया पड़ा है, जान-बूझकर उसको क्यों जगाती हो? उसको जगाओ तो खतरा है।'

बुद्धि से अहंकार ने कहा–'अनुभव को जगाने में बड़ा खतरा है। अनुभव के जागने पर न बुद्धि टिक पायेगी, न अहंकार रहेगा और जगत् का भी रूप बदल जायेगा, दृष्टि दूसरी हो जायेगी इसलिए ऐसा मत करो।'

जम्बूकुमार की अनुभव की चेतना जाग गई। दूसरी ओर अहंकार बोल रहा है और आरोप यह हो रहा है कि तुम बड़े अहंकारी हो।

जम्बूकुमार ने रूपश्री से कहा–'तुम चाहे जो कहो, चाहे मुझ पर कुछ आरोपित करो पर मैं यह स्वीकार नहीं करता। मुझमें बिल्कुल भी अहंकार नहीं है। मैंने सचाई को समझा है और मैं अनुभव की भूमिका पर चला गया हूं।'

'रूपश्री! जहां अनुभव है वहां न कोई शब्द काम देता, न कोई तर्क काम देता, न कोई पक्ष और प्रतिपक्ष होता, न कोई वाद-विवाद होता, न कोई संघर्ष होता। वहां केवल अपना साक्षात्कार है। मैं चैतन्य का अनुभव कर रहा हूं, साक्षात् कर रहा हूं वहां तर्क क्या काम देगा? सिद्धांत भी क्या काम देगा? यह तर्क और सिद्धांत की नहीं, केवल अनुभव की बात है। रूपश्री! मेरे मन में कोई अहंकार नहीं है।'

'स्वामी! आप कहते हैं कि अहंकार नहीं है फिर आप हमारी बात क्यों नहीं मानते? आप हमारी बात मानें तब हम मानेंगी कि आपमें अहंकार नहीं है। आप हमारी बात मानते नहीं हैं और कहते भी हैं कि अहंकार नहीं है, यह कैसे हो सकता है?'





जम्बूकुमार बोले–'रूपश्री! मैं बात नहीं मानता, उसका एक कारण है।'

'क्या कारण है?'

'कारण बहुत साफ है। मैं परिणाम में विश्वास करता हूं। एक है प्रवृत्ति और एक है परिणाम। बहुत सारी घटनाएं आपात-भद्र होती हैं किन्तु परिणाम में भद्र नहीं होती।'

'रूपश्री! मैं आपात-भद्र में विश्वास नहीं करता, मैं परिणाम-भद्र में विश्वास करता हूं। जिसका परिणाम अच्छा होता है, उसमें विश्वास करता हूं।'

'प्रिये! क्या तुम महावीर की इस वाणी को जानती हो–

जहा किंपाग फलाणं, परिणामो न सुंदरो।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुंदरो।।

किंपाक का फल बड़ा मीठा होता है, दीखने में बड़ा सुंदर होता है, रंग भी लाल-लाल होता है। किंपाक यानी कुचेले का फल। कुचेला भी जहर और उसका फल भी विषमय। यह जो किंपाक का फल है, वह देखने और खाने में तो अच्छा लगता है पर परिणाम में अच्छा नहीं है। कोई व्यक्ति किंपाक फल को सुंदर मान कर, मीठा जानकर ललचायी आंखों से देखता है और अपने को रोक नहीं पाता, उसे सुस्वादु समझकर खा लेता है तो उसका परिणाम है 'मृत्यु'। **भुत्ताण भोगाणं परिणामो न सुंदरो**–इसी प्रकार भुक्त भोग का परिणाम भी सुंदर नहीं होता।'

'प्रिये! मैं जो कर रहा हूं वह अहंकार के कारण नहीं कर रहा हूं। मैं तुम्हारी बात को अस्वीकार कर रहा हूं। इसमें मेरा कोई अहंकार नहीं है किन्तु मेरी परिणाम की दृष्टि है। मैं आपात-भद्र नहीं, परिणाम-भद्र हूं। मैं प्रवृत्तिभद्र नहीं, किन्तु परिणाम-भद्र हूं। तुम समझती हो कि यह अहंकार है। यही तो चिन्तन में दूरी का कारण है।'

'प्रिये! जिसमें परिणाम-भद्रता की दृष्टि नहीं होती, वही इंद्रिय-विषयों में आसक्त होता है। यह विषयासक्ति अधःपतन का हेतु बनती है।'

'प्रिये! दूसरी बात यह है–मैं नित्यमित्र और पर्वमित्र बनाना नहीं चाहता। मैं हितैषी मित्र बनाना चाहता हूं, जो हर स्थिति में मेरे लिए संबल और आधार बने। पर्वमित्र और नित्यमित्र को महत्त्व देने वाले को सुबुद्धि प्रधान की तरह दुःखी होना पड़ता है।'

रूपश्री बोली–'स्वामी! वह सुबुद्धि कौन था? और वह कैसे दुःखी हुआ?'

'प्रिये! एक राजा था जितशत्रु। उसका प्रधान था सुबुद्धि। वह बहुत बुद्धिमान था। उसने तीन मित्र बनाए।'

हर आदमी मित्र बनाना चाहता है। छोटे-छोटे बच्चे भी मित्र बनाते हैं। आठ वर्ष के बच्चे आते हैं। मैं पूछता हूं–तुम्हारा नाम क्या है? उत्तर देता है–मेरा नाम यह है। फिर पूछता हूं–यह कौन है? उसका उत्तर होता है–यह मेरा मित्र है।

वास्तव में मित्र सबके लिए जरूरी होता है क्योंकि मित्र वह होता है, जो अच्छी सलाह देता है, अच्छे रास्ते पर ले जाने वाला होता है। यह विवेक अवश्य जरूरी है कि मित्र किसको बनाया जाए? हर किसी को मित्र बना ले तो खतरा भी पैदा होता है।

सुबुद्धि ने तीन मित्र बनाए। एक मित्र बनाया अपनी स्त्री को। स्त्री भी मित्र हो सकती है, पुत्र भी मित्र हो सकता है। चाणक्य ने कहा–

लालयेत् पंचवर्षाणि, दसवर्षाणि ताड़येत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे, पुत्रं मित्रवदाचरेत्।।

पांच वर्ष तक पुत्र को लाड़-प्यार करो। पांच वर्ष के बाद ज्यादा लाड़ मत करो। दस वर्ष तक उस पर अंकुश रखो, उसे खुला मत छोड़ो। जागरूकता से ध्यान दो, समय-समय पर ताड़ना भी दो। थोड़ा-थोड़ा उलाहना भी दो, जिससे वह सहन कर सके। अगर पहले सहिष्णु नहीं बनाया, कच्चा रख दिया और फिर

कभी भी कुछ कहा जाए तो वह सहन नहीं कर पाएगा। वह वैसे टूटेगा जैसे चोट लगते ही शीशा टूट जाता है। सहनशीलता के विकास के लिए जरूरी है कि उसे परिपक्व करो।

गुरु और शिष्य के संबंध में एक सुंदर उपमा दी जाती है–

गुरु कुलाल सिख कुंभ सो घट काढे सब खोट।
मांहै तो राखै जापतो, ऊपर स्यूं दै चोट।।

गुरु है कुम्भकार और शिष्य है घड़ा। घड़े को जब बनाते हैं तो कुम्हार भीतर में थापी रखता है और ऊपर से भी थाप देता है। भीतर में पूरा जापता रखता है। भीतर में सुरक्षा न हो और ऊपर से कोरी चोट मारे तो घड़ा फूट जाएगा। यदि बाहर से चोट न लगे तो घड़ा कच्चा रह जायेगा। क्या आजकल यही तो नहीं हो रहा है? पहले बच्चों पर ध्यान दिया नहीं जाता, कुछ कहा नहीं जाता, खुला छोड़ दिया जाता है और जब वे बड़े हो जाते हैं तब कहा जाता है–वे हमारे वश में नहीं हैं, हमारी बात नहीं मानते, हमें दुःख देते हैं। वस्तुतः यह दुःख तो तुमने जान-बूझ कर पैदा किया है। इसकी तैयारी तुमने ही तो की है। पहले ध्यान दिया नहीं, अब बड़ा हो गया, पक गया। जो पकी हुई हांडी होती है उस पर कारी नहीं लगती।

यह एक अनुभव की बात कही गई–पांच वर्ष का बच्चा है, तब तक उसको प्यार दो, प्रियता दो। दस वर्ष तक उसको खूब कसो। पांच से लेकर पन्द्रह वर्ष तक पूरा अंकुश रखो। जब पुत्र सोलह वर्ष का हो जाए तब **पुत्रं मित्रवदाचरेत्**–पुत्र को अपना मित्र बना लो। फिर वह मित्र का काम देगा। कौन-सा पुत्र मित्र का काम देगा? जिस घड़े को पकाया है जिस पुत्र को अंकुश में रखा है, वह मित्रवत् काम देगा। जिसको नहीं पकाया, उसमें पानी डालो तो पानी भी खराब होगा और घड़ा भी फूट जाएगा। पकाना बहुत जरूरी है। जिनमें परिपक्वता नहीं आती और जो सोचते हैं कि हम तो बस आराम में रहें। वे स्वयं के लिए भी खतरा बनते हैं और परिवार के लिए भी।



'प्रिये! उस प्रधान सुबुद्धि ने अपनी पत्नी को मित्र माना। रोज उसका पालन-पोषण करता है, अच्छी वस्तुएं लाकर देता है। उससे बहुत निकट संबंध स्थापित कर लिया। वह नित्यमित्र हो गई।'

'दूसरा मित्र बनाया अपने ज्ञाति वर्ग को। कभी-कभी मौका आता, उस दिन उन मित्रों को बुला लेता, भोजन करवाता और बड़ा स्वागत करता। वे हो गए पर्व मित्र। दूसरी श्रेणी के मित्र थे ज्ञातिजन। जब कोई विशेष अवसर आता, विशेष समारोह होता तब ज्ञातिजनों को बुलाता और उनका स्वागत करता, सत्कार-सम्मान करता।'

'तीसरी कोटि का मित्र बनाया एक सेठ को। वह सेठ बहुत प्रसिद्ध था, शक्तिशाली था। उससे इतना ही संपर्क था कि जब कभी मिले तो जय जिनेन्द्र कह दो, हाथ जोड़ कर अभिवादन कर लो, मुस्करा कर दो शब्द बोल दो। कभी आत्महित और समाजहित की चर्चा कर लो। बस इतनी मित्रता, और कोई गहरा संबंध नहीं।'

ये तीन मित्र हो गये–नित्य मित्र, पर्व मित्र और हितैषी मित्र।

एक बार ऐसा प्रसंग बना कि राजा कुपित हो गया। पुराने जमाने में अनेक राजा भी बहुत निरंकुश होते थे। थोड़ा-सा मन के प्रतिकूल काम होता तो कुपित हो जाते, आदेश दे देते कि फांसी लगा दो, शूली

पर चढ़ा दो, देश निकाला दे दो। इस प्रकार की घटनाएं होती थीं। राजा की इस निरंकुश मनोवृत्ति ने ही प्रतिक्रिया को जन्म दिया, राजशाही के प्रति घृणा के बीज बोए। उसे समाप्त करने के प्रयत्न तीव्र बने और वे सफल भी हुए।

विश्वस्त सूत्रों से मंत्री को पता लग गया–राजा कुपित हो गया है। उसने सोचा–यह अच्छा नहीं हुआ। कहीं ऐसा न हो कि राजा मरवा डाले। मैं अब क्या करूं? घर पर आया। बहुत उदास। पत्नी के पास बैठा, वह नित्य मित्र थी। पत्नी ने पूछा–'पतिदेव! आज आप उदास क्यों हैं?'

'प्रिये! आज एक बड़ी समस्या आ गई है।'

'स्वामी! क्या समस्या है?'

'प्रिये! राजा कुपित हो गया है।'

'स्वामी! अब क्या करना चाहिए?'

'प्रिये! तुम ही कोई मार्ग बताओ।'

'स्वामी! मैं क्या कर सकती हूं?'

'प्रिये! मेरी इच्छा यह है कि मुझे कहीं घर में छिपा लो। अपना घर बहुत बड़ा है। कहीं एक ऐसे गुप्त स्थान में मुझे रख लो। किसी को मत बताना कि मैं कहां हूं। किसी को कुछ पता नहीं चलेगा। कुछ दिनों में स्थिति अपने आप शांत हो जाएगी।'

'स्वामी! यह तो नहीं हो सकता।'

'यह क्यों नहीं हो सकता?'

'स्वामी! राजा के अधिकारी आएं, वे पूछें। यदि मैं कह दूं कि यहां नहीं हैं। यदि वे मेरे कथन पर विश्वास न करें, पूरे प्रासाद में खोज करें और वे गुप्त स्थान तक पहुंच जाएं तो मेरा क्या होगा? मैं ऐसा नहीं कर सकती।'

मंत्री को यह सुनकर बहुत धक्का लगा–जिसके प्रति इतना भरोसा किया, अपना सर्वस्व दे दिया, जिसको नित्यमित्र बना लिया, वह संकट के समय इतनी कच्ची निकली। यह तो बहुत बुरा हुआ। अब मैं क्या करूं? उसने फिर पत्नी को समझाया पर उसने एक भी बात नहीं मानी।

मंत्री ने सोचा–अब यहां रहना तो ठीक नहीं है। यहां रह जाऊंगा तो यह सबसे पहले बता देगी।

मंत्री ज्ञातिवर्ग के घरों में गया। जो दूसरी कोटि के मित्र थे, पर्व मित्र थे, उनके पास गया। अपनी समस्या प्रस्तुत की–'देखो यह स्थिति बनी है। राजा क्रुद्ध हो गया है।'

'तो हम क्या करें?'–ज्ञातिवर्ग ने स्पष्ट कहा।

'अब कृपा कर एक काम करो–मुझे कहीं छिपा दो। राजा को पता न चले तो मेरी सुरक्षा हो जायेगी और समस्या भी टल जायेगी। यह तो आवेश है राजा का। दस-बीस दिन में शांत हो जाएगा। आवेशवश कोई बात कह दी जाती है पर जब आवेश उतरता है तब कोई बात नहीं रहती। इस प्रकार की बहुत घटनाएं हमने देखी और सुनी भी हैं।'

राजा भोज और कालिदास की विश्रुत घटना है। राजा भोज ने कालिदास से कहा–'तुम मुझे मर्सिया सुनाओ।'

मरने के बाद जो कविता बनाई जाती है वह मर्सिया कहलाता है।

कालिदास ने कहा–'आप जीवित सामने बैठे हैं। मैं मर्सिया कैसे सुनाऊं?'

राजा भोज ने कहा–'मेरे मरने के बाद तुम क्या कहोगे, अभी मैं वह सुनना चाहता हूं।'

कालिदास बोला–'यह कभी संभव नहीं है।'

बात इतनी ठन गयी कि राजा आवेश में आ गया। उसने कालिदास को देशनिकाला दे दिया। दो-चार दिन में आवेश ठंडा हुआ, राजा ने सोचा–अच्छा नहीं हुआ। इतने बड़े कवि को मैंने अपने राज्य से निकाल दिया। राजा ने अधिकारियों से कहा–'जाओ, कालिदास की खोज करो।' अधिकारी गये, पर पता नहीं चला। राजा स्वयं वेश बदलकर खोजने के लिए निकला। चलते-चलते बहुत दूर चला गया। एक सघन वन में कालिदास मिल गया। राजा को कालिदास ने नहीं पहचाना। राजा ने कालिदास को पहचान लिया। दोनों में बातचीत शुरू हुई। कालिदास ने पूछा–'कहां से आये हो?'

'धारा नगरी से आया हूं।'

'अरे! धारा नगरी से आये हो, वहां के क्या समाचार हैं?'

'समाचार क्या पूछते हो? राजा भोज तो मर गए।'

क्या भोज मर गए?....अत्यंत दुःखी स्वर में तत्काल बोल पड़ा–'भोज राजा के दिवंगत होने पर धारा नगरी निराधार हो गई है। सरस्वती का आलंबन भी समाप्त हो गया है। सारे पण्डित खण्डित हो गये हैं।'

अद्य धारा निराधारा, निरालंबा सरस्वती।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे, भोजराजे दिवंगते।।



यह सुनते ही राजा भोज मुस्कराया। कालिदास ने देखा–बात क्या है? कौन मुस्करा रहा है? ध्यान से देखा तो पहचान गया–ये तो स्वयं राजा भोज हैं।

कालिदास तत्काल संभल गया, बोला–'नहीं-नहीं, मैंने श्लोक गलत कह दिया। धारा नगरी सदा आधार वाली है और सरस्वती आलंबन वाली है। पण्डित सब मण्डित हो रहे हैं क्योंकि राजा भोज इस धरा पर सुशोभित हो रहे हैं।'

अद्य धारा सदाधारा, सदालंबा सरस्वती।
पण्डिताः मण्डिताः सर्वे, भोजराजे भुवंगते।।

प्रधान सुबुद्धि ने ज्ञातिजनों से कहा–'आप हमारे स्वजन हैं, पर्व मित्र हैं। आप इस समय मुझे अवश्य सहयोग दें।'

ज्ञातिजनों ने कहा–'आप जो कह रहे हैं, वह तो ठीक है परन्तु आप हमें खतरे में क्यों डाल रहे हैं? अगर हम घर में रखेंगे तो हमारी स्थिति क्या होगी? राजा अपने आदमी भेजेगा, पता लगायेगा। यदि पता लग गया तो क्या होगा?'

राजस्थानी कहावत है–**'आप डूबंतो बाणियो, ले डूब्यो जजमान'**–वणिक स्वयं डूब रहा है, साथ में जजमान को भी ले डूबेगा। आप स्वयं खतरे में हैं और हमें भी खतरे में डालना चाहते हैं, यह अच्छा नहीं है इसलिए कृपा करें, आप अभी जंगल में चले जाएं तो अच्छा रहे।'

किसी ने स्थान नहीं दिया, न नित्यमित्र ने स्थान दिया और न पर्वमित्र ने स्थान दिया। सुबुद्धि ने सोचा–कहां जाऊं? एक वे सेठजी हैं, जो यदा कदा नमस्कार कर लेते हैं, दो शब्द बोल देते हैं क्या उनके पास जाऊं? और तो कोई विकल्प भी नहीं है मेरे पास। आखिर वह उनके घर गया। सेठ ने प्रधानमंत्री का बड़ा स्वागत किया। आइये, विराजिये–आप कैसे पधारे हैं। सुबुद्धि ने सारी बात बताई।

सेठ ने कहा–'मंत्रीवर! चिंता की क्या बात है? बहुत बड़ा है मेरा घर। आप कहीं भी रह जाएं। किसी को कुछ पता नहीं चलेगा। मैं यह भी प्रयत्न करूंगा कि राजा प्रसन्न हो जाए और आपको फिर उसी मंत्री पद पर ससम्मान स्थापित करे।'

मंत्री बड़ा संतुष्ट हुआ। वह सेठ के घर में रह गया। कुछ दिन बाद स्थिति बदली। राजा का कोप शांत हुआ। उसने कहा–'मंत्री की खोज करो। मंत्री कहां है? पता लगाओ।' अधिकारी गए, पता लगाया। सेठ ने राजा के मानस को बदलने का प्रयत्न किया। राजा ने पुनः उसे मंत्री पद पर ससम्मान प्रतिष्ठित कर दिया।

जम्बूकुमार बोला–'रूपश्री! मैं नित्यमित्र और पर्वमित्र जैसे कच्चे मित्र बनाना नहीं चाहता। मेरा पक्का मित्र है जिनवाणी। मेरे पक्के मित्र हैं सुधर्मा स्वामी। वे सेठ के बराबर हैं। तुम लोग मेरे कच्चे मित्र हो। मैं कच्चे मित्र बनाना नहीं चाहता। तुम चाहे इसे अहंकार समझो या और कुछ।'

जम्बूकुमार की इस स्पष्टोक्ति ने रूपश्री को निरुत्तर जैसा कर दिया। जम्बूकुमार ने मर्मस्पर्शी शब्दों में कहा–'प्रिये! मित्र उसको बनाओ, जो सदा साथ दे।'

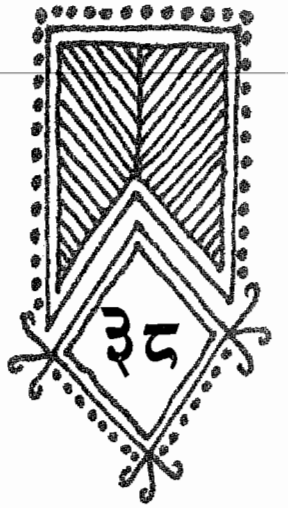
नमि राजर्षि ने कहा था–घर वह बनाओ, जो सदा रहे। ऐसा घर मत बनाओ कि या तो घर छूट जाए या घर से तुम छूट जाओ। **'गेहं तु सासयं कुज्जा'**–शाश्वत घर बनाओ।

जम्बूकुमार ने ऐसा शाश्वत का उपदेश और विवेक दिया–कच्चा मित्र मत बनाओ, पक्का मित्र बनाओ। आपात-भद्र नहीं, परिणाम-भद्र बनो।

रूपश्री जम्बूकुमार के वक्तव्य को सुन चिन्तन में लीन हो गई। चिन्तन का निष्कर्ष भी यही रहा–जम्बूकुमार जो कुछ कह रहा है, वह ठीक है। हमारी बात सही नहीं है। सचाई की उपेक्षा मैं क्यों करूं? मुझे भी सचाई के साथ चलना है, मुझे भी कच्चा मित्र नहीं बनाना है। मुझे भी परिणाम-भद्र होना है।

जम्बूकुमार का पक्ष प्रबल होता जा रहा है, बढ़ता जा रहा है। कन्याओं का पक्ष कमजोर हो गया। अकेली जयंतश्री शेष रह गई।

सातों कन्याओं के मन में यह प्रश्न उभर रहा है–जिस कार्य की सिद्धि में हम सातों बहनें असफल रही हैं, क्या वह कार्य जयंतश्री कर सकेगी?



प्रत्येक ज्ञान और आचरण की पृष्ठभूमि में दर्शन होता है, दृष्टिकोण होता है। जैसा दर्शन वैसा ज्ञान, जैसा दर्शन वैसा आचार और व्यवहार। सब कुछ दर्शन पर निर्भर है, दृष्टिकोण पर निर्भर है इसलिए सम्यग् ज्ञान, सम्यग् चारित्र बाद में है, सबसे पहले है सम्यग् दर्शन। दृष्टिकोण दो भागों में बंट जाता है–एकान्तवादी दृष्टिकोण और अनेकांत का दृष्टिकोण। एकान्तवादी दृष्टिकोण वाला व्यक्ति जिस बात को पकड़ लेता है, उसे छोड़ता नहीं है।

आचार्य भिक्षु ने लिखा–**'पीपल बांध मूर्ख ज्यूं ताणै।'** इस संदर्भ में एक दृष्टांत प्रस्तुत किया। एक बहू नई-नई आई थी। वह कुछ भोली भी थी। सास ने कहा–'बहू! आज पीपल की पूजा करनी है। पीपल ले आओ।' बहू मोटा रस्सा लेकर गई। पीपल का जो तना था, उसे रस्से से बांध दिया और खींचना शुरू किया, खूब खींचा पर पीपल सरका ही नहीं। बहू बोली–ऐसा जिद्दी व्यक्ति मैंने नहीं देखा। आखिर खींचते-खींचते बहू के हाथ में खून आने लग गया पर पीपल एक इंच भी नहीं सरका। एक समझदार आदमी उधर से निकला, उसने देखा–यह क्या नाटक हो रहा है। उसने पूछा–'बहन! क्या कर रही हो?'



'भाई! क्या बताऊं? नई-नई बहू बनकर आई हूं। आज ही तो सास ने कोई काम सौंपा पर ऐसे जिद्दी से पल्ला पड़ गया है कि यह चलता ही नहीं है।' उसने प्यार से समझाते हुए कहा–'भोली बहन! पीपल ऐसे नहीं चलता। मैं पीपल तुमको दे दूं तो?'

बहू ने कृतज्ञ स्वर में कहा–'आपकी बहुत कृपा होगी।' वह व्यक्ति ऊपर चढ़ा, एक टहनी तोड़ी और उसे बहू के हाथ में थमा दी। उसने पीपल की वह टहनी सास को सौंप दी, काम बन गया।

आचार्य भिक्षु ने लिखा–'एकांतवादी दृष्टिकोण वाला व्यक्ति आग्रही होता है। वह पीपल को रस्से से बांधकर कहता है कि तुम चलो पर कभी ऐसा होता नहीं है। एकांतवादी दृष्टिकोण में संघर्ष, आग्रह, लड़ाई-झगड़े सब होते हैं। वस्तुतः ज्यादा संघर्ष एकान्तवादी दृष्टिकोण के कारण ही होते हैं। हर व्यक्ति

अपनी-अपनी बात को तानता है और यह अपनी बात का आग्रह संघर्ष को जन्म देता है। जो एकांतवादी होता है वह इस भाषा में सोचता है–

मैं कहता हूं सत्य वही है।
तू जो कहता सत्य नहीं है।

'स्वामी! आप भी इसी भाषा में सोचते हैं–मैं कह रहा हूं वही सत्य है। मैं ही कल्याण करूंगा, मैं ही उद्धार करूंगा, सब कुछ मैं करूंगा, तुम कुछ नहीं कर पाओगी। यह एकांतवाद आदेय नहीं है।'–जयंतश्री ने इस भूमिका के साथ अपनी बात प्रारंभ की–'प्रियतम! आप एकांतवादी हैं। आपका दृष्टिकोण भी एकांतवादी है। यदि आप एकांतवादी नहीं होते तो इतना आग्रह नहीं करते। आप महावीर वाणी की दुहाई देते हैं पर मुझे ऐसा लगता है कि महावीर वाणी के हृदय का कोई स्पर्श ही नहीं हुआ है। जो महावीर वाणी की दुहाई देते हैं, महावीर की बात को समझते हैं वे अनेकांतवादी होते हैं, वे इतने आग्रही नहीं बनते पर आप तो पूरे एकांतवादी हैं, कहीं भी अनेकांत का स्पर्श नहीं है।

जम्बूकुमार बोले–'जयंतश्री! मैं एकांतवादी कैसे हुआ? इस बात को जरा समझाओ तो सही।'

'स्वामी! यह एकदम स्पष्ट है। मेरी सात बहनों ने जो कथा सुनाई वे सब झूठी और आपने जो सुनाई वह सच्ची। इससे अधिक एकांतवाद क्या होगा? क्या यह एकांतवाद का उदाहरण नहीं है कि हम जो कह रही हैं वह सब झूठ और आप जो कह रहे हैं वह सब सच।'

एक एकांतवादी व्यक्ति से पूछा गया–पृथ्वी का मध्य कहां है? उस व्यक्ति ने एक स्थान पर लाठी रोप दी और कहा–यहीं है।

पूछा गया–इसका प्रमाण क्या है?

उसने कहा–नाप लो, यह एकदम बीचोबीच है।



'स्वामी! एकांतवाद में यही तो होता है कि व्यक्ति दूसरे की बात को सुनता भी नहीं है, समझता भी नहीं है। केवल अपनी बात पर ही अड़ा रहता है।'

'पतिदेव! मैं कोई नई कहानी कहने के लिए उत्सुक नहीं हूं। मैं तो इस सचाई को आपके सामने रखना चाहती हूं कि यह एकांतवाद आपको कहां ले जायेगा? हम जो कुछ कहती हैं, वह सारा गलत, झूठ और मिथ्या है। सारी सचाई की पोटली आपने बांध ली। आपके पास ही सारा सत्य आ गया। क्या यह सही है? जरा चिंतन करो। स्वामी! मुझे लगता है–आप भी सच्ची कहानी और झूठी कहानी का निर्णय नहीं कर सकते, जैसे वह सागर राजा नहीं कर सका था।'

जयंतश्री कहानी कहना नहीं चाहती थी पर कहानी की भूमिका तो बन ही गई।

जम्बूकुमार बोला–'प्रिये! पहले कहानी सुना दो फिर कोई बात करेंगे।'

'स्वामी! श्रीपुर नाम का नगर था। वहां सागर नाम का राजा था। वह राजा कथाप्रिय था। कहानी सुनना बहुत पसंद करता था। कहानी ऐसा तत्त्व है जिसे बच्चे भी सुनना चाहते हैं और बड़े-बूढ़े भी सुनना पसंद करते हैं। अनपढ़ ही नहीं, पढ़े-लिखे लोग भी कहानी सुनना पसंद करते हैं। कहानी सबको प्रिय है क्योंकि कहानी में सरसता के साथ बहुत मर्म की बात कह दी जाती है। **कांतातुल्यतयोपदेशाच्च**–जैसे प्रिय पत्नी की बात सीधी गले उतर जाती है, वैसे ही कहानी की बात एकदम बिना अटके गले उतर जाती है। न ज्यादा सोचना पड़ता है, न चिंतन-मनन करना पड़ता है, न निदिध्यासन करना पड़ता है। स्वामी! बूढ़े आदमी के लिए गरम-गरम हलवा बनाया जाता है। वृद्ध के दांत नहीं होते। उसे चबाने में कठिनाई होती है। जैसे वह गरम-गरम हलवा सीधा गले उतर जाता है वैसे ही कहानी सीधे गले उतर जाती है।'

'स्वामी! कथाप्रिय राजा ने एक व्यवस्था कर दी। उस व्यवस्था के अनुसार प्रतिदिन एक विद्वान ब्राह्मण आता और कहानी सुनाता। प्रतिदिन कथा सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न रहता। एक दिन जिस ब्राह्मण की बारी आई, वह ठोठ भट्टारक था। उसने सोचा–बड़ी मुसीबत हो गई। राजा को कहानी सुनाना है और मैं कुछ जानता नहीं हूं। घर में बहुत उदास बैठा था। लड़की बोली–'पिताजी! आज आप उदास क्यों हैं?'

'बेटी! आज एक समस्या, उलझन आ गई। बड़ी चिन्ता हो रही है।'

'पिताश्री! क्या उलझन है?'

'बेटी! आज हमारी बारी है कहानी सुनाने की। मैं कहानी सुनाना जानता नहीं हूं। राजा के पास जाना है, कहानी सुनाना है, क्या करूंगा मैं?'



उसने कहा–'आप चिंता मत करो, मैं चली जाऊंगी।'

'बेटी! बहुत अच्छी बात है।'

राजा को सूचना मिली–'आज ब्राह्मण पुत्री कथा सुनाएगी।'

राजा ने पूछा–'बहन! आज तुम कथा सुनाने आई हो?'

'हां, राजन्! आज पिताजी आने में असमर्थ हैं इसलिए उनके स्थान पर मैं आ गई।'

राजा ने कहा–'अच्छी बात है। तुम कहानी कहो।'

'राजन्! मैं आपको कहानी नहीं, अपने जीवन की घटना सुना रही हूं।'

'घटना-प्रसंग अधिक जीवन्त होता है। वह भोगा हुआ सच होता है। जीवन का अनुभूत प्रसंग अधिक उत्प्रेरक होता है।'

'हां, राजन्! मेरे जीवन का वह घटना-प्रसंग विलक्षण है।'

'हम उसे सुनना चाहेंगे।'



'राजन्! मैंने बचपन से यौवन में प्रवेश किया। पिताश्री चिन्तित रहने लगे। उन्होंने यथाशीघ्र पाणिग्रहण कर देने का निश्चय कर लिया। वर को खोजा। वर भी मिल गया। उन्होंने वाग्दान की रस्म भी पूरी कर दी। राजन्! एक दिन अचानक वह वर हमारे घर पहुंच गया। मैंने उसे देखा, उसके प्रति सहज प्रेम का भाव जगा। उसकी आंखों में भी स्नेह का दर्शन हुआ। मैंने पहचान लिया कि यह मेरा भावी पति ही होना चाहिए। मैंने उसकी आवभगत की, स्वागत किया। अच्छा भोजन कराया, सब कुछ किया पर उसका तो ध्यान केवल मेरे रूप पर अटक गया। वह मेरे रूप में खो गया। वह मेरे रूप पर इतना मुग्ध हो गया कि तन्मय बन गया।'

'राजन्! अब तक हम दोनों में भेद प्रणिधान था। मैं और वह दो थे। मैं यह जान रही थी, अनुभव कर रही थी कि मुझे कोई देख रहा है, मेरे रूप का कोई दीवाना बना हुआ है। पर राजन्! वह देखते-देखते इतना तन्मय बना कि मुझ में विलीन हो गया। मुझे यह पता ही नहीं चला कि कब मेरे भीतर विलीन हुआ। मैंने उसे खोजा तो कोई दिखाई ही नहीं दिया, कुछ पता ही नहीं चला।'

'राजन्! मैंने पिताजी से कहा–पिताजी! मेरा पति आया था, कहां चला गया।' पिताश्री ने कहा–'बेटी! आया तो था, यहीं-कहीं होगा। पूरे घर में खोजा पर कहीं दिखाई नहीं दिया।'

'राजन्! मैंने आंख मूंदकर सोचा, चिन्तन की गहराई में गई तो मेरे दिमाग में भावी पति के विलीन होने का रहस्य स्पष्ट हो गया।

'क्या रहस्य स्पष्ट हुआ?'–विस्मय विमुग्ध राजा ने पूछा।

पूरी परिषद् भी इस घटना प्रसंग को सुनकर स्तब्ध रह गई।

'राजन्! मैंने दो प्रकार के प्रणिधानों के बारे में जाना है–एक होता है भेद-प्रणिधान और एक होता है अभेद-प्रणिधान। जहां भेद-प्रणिधान होता है वहां ध्याता और ध्येय दोनों का पृथक् अस्तित्व बना रहता है। जहां अभेद-प्रणिधान होता है, वहां ध्याता और ध्येय के बीच की दूरी समाप्त हो जाती है, ध्यान करने वाला अपने ध्येय के साथ एकाकार हो जाता है। राजन्! मेरा भावी पति मेरे रूप में इतना मुग्ध हो गया, इतना तन्मय हो गया कि वह मेरे से भिन्न नहीं रहा, वह मुझमें ही विलीन हो गया।'

राजा क्षोभ के साथ बोला–'तुम बिल्कुल झूठ बोल रही हो। सच्ची कहानी कहो।'

ब्राह्मण कन्या ने विनम्र स्वर में कहा–'महाराज! आप रोज कहानी सुनते हैं, उनमें कौन-सी सच्ची है, कौन-सी झूठी? यह निर्णय पहले करें। आपने तत्काल यह कैसे कह दिया कि तुम्हारी कहानी झूठी है।'

'क्या कोई आदमी गायब होता है? क्या कोई आदमी कहीं विलीन होता है? ऐसा कहीं नहीं होता। यह केवल गप है।'

'महाराज! पहले आप यह निर्णय दें कि इतने दिन आपने कहानियां सुनी हैं। उनमें कौन-सी सच्ची है और कौन-सी झूठी?'

राजा इस प्रतिप्रश्न से असमंजस में पड़ गया। उसने सोचा–कहानी में तो सब बातें सच्ची नहीं कही जातीं। बहुत बातें काल्पनिक आती हैं, बहुत झूठी बातें भी आती हैं। ऐसी गप भी कही जाती है–'नौ हाथ की काकड़ी, तेरह हाथ का बीज।

जयंतश्री ने कथा-सूत्र को समेटते हुए कहा–'स्वामी! राजा असमंजस में पड़ गया, वह यह निर्णय नहीं कर सका कि कौन-सी कहानी सच्ची है और कौन-सी झूठी?'

जयंतश्री ने जम्बूकुमार की ओर दृष्टिक्षेप करते हुए कहा–'स्वामी! मेरी सातों बहनों ने तथा आपने बहुत कहानियां कही हैं। सबने अपनी बात कहानी के माध्यम से कही है। यह पहले निर्णय करो कि कौन-सी कहानी सच्ची है और कौन-सी झूठी? मैं आज यह निर्णय कराना चाहती हूं। मेरी सात बहनों ने जो कहानियां कहीं और आपने जो कहानियां कहीं–इन दोनों में कौन-सी सच्ची है और कौन-सी झूठी? इसका निर्णय होने के बाद कोई आगे की बात होगी।'

जयंतश्री ने स्पष्ट स्वर में कहा–'स्वामी! आपने जो कथाएं कहीं, वे सब सत्य हैं और मेरी बहनों ने जो कथाएं कहीं, वे सब झूठ हैं। ऐसा मत मानिए। आप केवल अपनी बात को मत तानो। यह मत सोचो–मैं कहता हूं वही सही है।'

'स्वामी! इस दुनिया में सचाई का ठेका आपने ही नहीं लिया है। आप सत्य के ठेकेदार मत बनो। इस तथ्य को स्वीकार करो कि दूसरों के पास भी सत्य हो सकता है। तुम्हारे घर में आकाश है तो दूसरों के घर में भी आकाश है। यह मत सोचो–मेरे घर में ही आकाश है, दूसरों के घर में आकाश नहीं है।'

'स्वामी! मिथ्या दृष्टिकोण मत बनाओ। केवल अपनी बात को मत तानो। आपने एक मिथ्या दृष्टिकोण बना लिया और यह मान लिया–जो मैंने समझा है, माना है, वह सच है। जो हमारी बहनें कह रही हैं, वह सच नहीं है।'

'स्वामी! दूसरे की बात में जो सचाई है, उस पर भी जरा ध्यान दो।'



जयंतश्री ने मौलिक और तार्किक ढंग से इस प्रकार बात कही कि वातावरण में एक बदलाव आ गया। जो बहनें समझी हुई थीं उनमें भी थोड़ा जोश भर दिया। उन्होंने भी जयंतश्री के कथन का समर्थन किया–'जयंतश्री! तुम बात तो ठीक कह रही हो। प्रियतम आग्रही बन गए हैं। अपनी बात को ही सब कुछ मान रहे हैं। दूसरों की बात पर ध्यान ही नहीं दे रहे हैं। आदमी को दूसरे की बात पर भी ध्यान देना चाहिए।'

बहनों के समर्थन ने जयंतश्री में नए उत्साह का संचार कर दिया। उसने जम्बूकुमार को उत्प्रेरित करते हुए कहा–'स्वामी! आप नीति पर भी ध्यान दें। नीति का कितना सुन्दर सूक्त है–**'बालादपि सुभाषितं'**–अच्छी बात बच्चे की भी सुननी चाहिए। कभी-कभी छोटे बच्चे भी बहुत तत्त्व की, सार की बात कह जाते हैं। इसलिए बालक की भी अवज्ञा मत करो, उसकी बात पर भी ध्यान दो।'

अमेध्यादपि कांचनम्–सोना है और वह अकूरड़ी पर पड़ा है तो यह सोच कर मत छोड़ो कि यह अकूरड़ी पर पड़ा है। उसको उठा लो। इसका मतलब है–अच्छी बात जहां से भी मिले उस बात को ग्रहण करो।

'स्वामी! ऐसा लगता है कि आप सारी बात उलट रहे हैं। आप देखिए हमारा न्यायशास्त्र क्या कहता है–आग्रही आदमी युक्ति खोजता है, तर्क और हेतु को खोजता है किन्तु कहां खोजता है? वह वहां

खोजता है जहां उसकी अपनी बुद्धि लगी हुई है। वह दूसरों की बात सुनना पसंद नहीं करता। जो व्यक्ति अनेकांत दृष्टि वाला होता है, अनाग्रही होता है वह जहां युक्ति होती है वहां जाता है।'

आग्रही बत निनीषति युक्तिः, यत्र तत्र मतिरस्य निविष्टा।
पक्षपातरहितस्य तु युक्तिः, यत्र तत्र मतिरेति निवेषम्।।

'स्वामी! मन एक बछड़ा है। युक्ति, न्याय, तर्क, हेतु एक गाय है। यह मन रूपी बछड़ा युक्ति रूपी गाय के पीछे चलता है किन्तु **तुच्छाग्रह मनःकपि**–जो तुच्छ आग्रह वाला मन रूपी बंदर है, वह गाय के पीछे नहीं चलता, वह गाय की पूंछ को पकड़कर अपनी ओर खींचता है।'

मनोवत्सो युक्तिगवीं, मध्यस्थस्यानुधावति।
तामाकर्षति पुच्छेन, तुच्छाग्रहमनःकपि।।

'स्वामी! आज आपका मन भी बंदर बन गया, चंचल बन गया इसलिए आप न्याय पर ध्यान नहीं दे रहे हैं, युक्ति पर ध्यान नहीं दे रहे हैं, सचाई पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। आप दूसरों की सचाई को झुठलाने का प्रयत्न कर रहे हैं और अपनी बात को सच साबित करना चाहते हैं।'

जयंतश्री ने अपना पक्ष बड़ी प्रबलता के साथ रखा और इतनी युक्ति के साथ रखा कि यदि कमजोर संकल्प वाला होता तो तत्काल प्रभावित हो जाता। किन्तु जम्बूकुमार भावी केवली था। जिस व्यक्ति को कुछ बनना होता है, उसमें पहले से उसकी परिणति शुरू हो जाती है। आज के विज्ञान का सिद्धांत है–जो बीमारी स्थूल शरीर में आती है, सूक्ष्म शरीर में वह तीन महीना पहले पैदा हो जाती है। वह भीतर ही भीतर पनपती है और तीन महीने बाद इस स्थूल शरीर में प्रकट होती है। स्थूल शरीर में बीमारी होती नहीं है, वहां तो प्रकट होती है। जब रोग स्थूल शरीर के प्रकट होता है तब आदमी सोचता है कि रोगी बन गया। विज्ञान कहता है–तुम रोगी तो पहले ही बने हुए थे। अगर हम सूक्ष्म सचाई में जाएं, निश्चय नय में जाएं तो जैसा होना होता है, उसका प्रारंभ पहले हो जाता है। उसका अंश पहले ही सामने आ जाता है। जम्बूकुमार को जो होना है उसकी आत्मा में उसका परिणमन का चक्र चल रहा है इसलिए जम्बूकुमार पर जयंतश्री की बात का कोई असर नहीं हुआ।

जम्बूकुमार बोला–'जयंतश्री! सबने अपनी-अपनी बात कह दी, तुमने भी अपनी बात कह दी। मैंने सबकी बात सुन ली। तुम्हारी चतुराई, तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारी मनीषा, तुम्हारी समझदारी, तुम्हारा वक्तृत्व–सब कुछ अच्छा है पर वह मेरे भीतर प्रवेश नहीं कर रहा है। बस, ऐसा कोई पंजर बन गया है कि भीतर जा ही नहीं रहा है।'

जयंतश्री बोली–'स्वामी! यही तो मैं कह रही हूं कि आप एकांतवादी हो गए हैं, आपके भीतर दूसरी बात प्रवेश कैसे करेगी? एकांतवादी के भीतर दूसरा सच प्रवेश नहीं करता।'

'स्वामी! आपने इस घटना को सुना होगा–भगवान महावीर की सभा में सब लोग श्रद्धाभाव से जाते थे लेकिन एक व्यक्ति ऐसा था, जो महावीर को बाहर से देखते ही दौड़ता, मानो कोई सिंह आ गया हो। वह महावीर के सामने ही नहीं देख सकता था।

स्वामी! ऐसे लोग होते हैं, जिनमें अच्छाई का कहीं प्रवेश नहीं होता।'

'स्वामी! क्या आपने मुद्गशैल की बात सुनी है?'

'प्रिये! मुद्गशैल के संदर्भ में तुम क्या कहना चाहती हो?'

'स्वामी! मुद्गशैल एक पत्थर होता है। एक बार पुष्करावर्त मेघ आया। कहा जाता है–पुष्करावर्त मेघ के एक बार बरसने के बाद दस हजार वर्ष तक वर्षा की आवश्यकता नहीं होती। भूमि इतनी स्निग्ध हो जाती है कि दस हजार वर्ष तक खेती करो, कोई पानी की जरूरत नहीं, सिंचाई की जरूरत नहीं।'

आज तो पुष्करावर्त मेघ बरस जाए तो बांध, नहर आदि की कोई जरूरत ही न रहे। जब पुष्करावर्त मेघ आया तब वह मुद्गशैल पत्थर से बोला–'मुद्गलशैल! मैं बरसना चाहता हूं।'

मुद्गशैल–'तुम कितना ही बरसो, मुझे क्या फर्क पड़ेगा?'

पुष्करावर्त मेघ–'मैं तुम्हारे भीतर स्नेह पैदा करना चाहता हूं, अंकुर उगाना चाहता हूं।'

मुद्गशैल–'यह मिथ्या गर्वोक्ति मत करो। मैं पत्थर हूं और पत्थर में भी मुद्गशैल हूं। मेरे कोई फर्क नहीं पड़ेगा, कोई अंकुर नहीं फूट सकेगा।'

मेघ अहंभरे स्वर में बोला–'मैं जब बरसूंगा तब सब कुछ हो जायेगा।'

मुद्गशैल–'यह कभी संभव नहीं है।'

मेघ ने बरसना शुरू किया, धारा संपात बरसता गया। जैसे-जैसे मेघ बरस रहा था वैसे वैसे पत्थर चमकने लग गया। वह सात दिन तक निरन्तर बरसता रहा, मुद्गशैल भी जहां का तहां रहा, न वह पानी के प्रवाह में बहा, न अंकुर फूटा किन्तु वह और अधिक मजबूत बन गया। आखिर पुष्करावर्त हार गया, बोला–'भाई! तुम पक्के हो। मैंने भूल की कि तुम्हें स्निग्ध बनाने का, अंकुरित करने का संकल्प किया।'

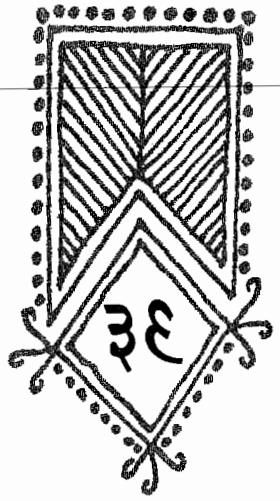


जयंतश्री भावविह्वल स्वर में बोली–'प्रियतम! हमने भी भूल की है। हमने सोचा था कि कहीं स्नेह का अंकुर फूट जायेगा पर आखिर आप मुद्गशैल पत्थर ही निकले, हमने आपको समझने में भूल कर दी। अब हम उस भूल को कैसे सुधारें?'

जम्बूकुमार बोला–'प्रिये! पुष्करावर्त मेघ को मैंने देख लिया है। तुम मुझे मुद्गशैल मानो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। क्या पत्थर होना कोई बुरी बात है? पृथ्वी का मूल आधार तो पत्थर ही है।'

'प्रिये! तुम्हारे शरीर में ये जो हड्डियां हैं, वे क्या हैं? वे पत्थर ही तो हैं। पार्थिव परमाणु होना कोई बुरी बात नहीं है। तुम मुद्गशैल मानो या और कुछ मानो पर सचाई यह है कि मैं अपने घर में चला गया हूं, मैं अपनी आत्मा में चला गया हूं इसलिए इन सब बातों का मुझ पर कोई असर नहीं हो रहा है।'

'प्रिये! तुम मेरी बात भी अवधानपूर्वक सुनो। सच और झूठ के इस प्रश्न की निरर्थकता का अनुभव तुम्हें स्वतः हो जाएगा।'



सत्य क्या है और झूठ क्या है? बड़ी समस्या है निर्णय करना। एक आदमी एक बात को सत्य मानता है, दूसरा उसी को झूठ मान लेता है। कौन सच्चा है और कौन झूठा? इसका निर्णय कौन करे? आखिर निर्णायक कौन? क्या निर्णय करने वाला भी ऐसा व्यक्ति है, जो सत्य बात को ही पुरस्कृत करे। उसमें भी तो पक्षपात है, राग-द्वेष है। आखिर तुला कौन-सी है, जिससे तौला जा सके? मानदण्ड कौन-सा है, जिससे मापा जा सके? कौन-सा धर्मकांटा है जो ठीक-ठीक तौल बता सके? यह बड़ा कठिन काम है।

मालिन से सेठ ने कहा–'कल तुमने जो फल दिये थे वे वजन में कम थे। तुमने कम कैसे दिये?'

मालिन बोली–'सेठजी! मैंने तो तौलकर दिये थे।'

'तो कम कैसे तौले?'

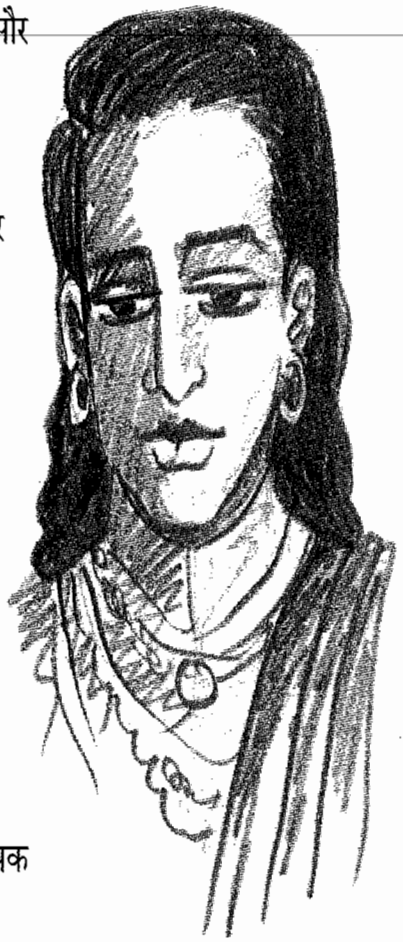
'सेठजी! कल यहीं से एक किलो अनाज ले गई थी। तराजू के एक पल्ले पर एक किलो अनाज रखा और तराजू के दूसरे पल्ले पर एक किलो फल तौल दिये।'

सेठ मौन हो गया। उसने ही तो कम तौलकर अनाज दिया था, वह अब क्या बोले? जो स्वयं तौलने वाला है, वह भी सच्चा नहीं है तो फिर तराजू क्या करेगी? तराजू का काम तो वही है किन्तु तौलने वाला ईमानदार नहीं है तो फिर तुला तुला नहीं रहती।

जम्बूकुमार ने कहा–'जयंतश्री! तुमने प्रश्न उठाया सत्य का। मैं किस कहानी को सच मानूं, किसको झूठ मानूं? यदि मैं यह कहूं कि मेरी पत्नियों ने जो कहानियां कहीं, वे सच्ची हैं तो मेरी कहानियां झूठी हो जायेंगी। यदि मैं यह कहूं कि मैंने जो कहानियां कहीं, वे सच्ची हैं तो तुम आठों ने जो कहानियां कहीं वे झूठी हो जाएंगी। मेरा ज्ञान ऐसा नहीं है कि मैं एक को सत्य कहूं और एक को मिथ्या कहूं। जयंतश्री! तुमने यह झंझट ही क्यों खड़ा किया?'

'प्रिये! दुनिया में कंकड़ भी है और अनाज भी है। अनाज में कंकड़ मिला हुआ आता है, खाद्य पदार्थों में भी कंकड़ आ जाता है। मिलावट सर्वत्र है। आखिर परीक्षा करनी होती है।'

'क्या तुम इस तथ्य को जानती हो–कोयल काली होती है और कौआ भी काला होता है।'



'हां स्वामी!'

'क्या कौआ और कोयल के रंग-रूप को देखकर यह भेद कर सकती हो कि यही कोयल है या कौआ है?'

'यह संभव नहीं है।'

'प्रिये! सच जानने के लिए परीक्षा तो करनी होती है।'

काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः।
यदा ब्रूते तदा ज्ञातं, काकः काकः पिकः पिकः।।

कवि ने कितना सुंदर लिखा है–कौआ भी काला और कोयल भी काली। उनके भेद का पता कब चलता है? जब वे बोलते हैं तब ज्ञात हो जाता है कि यह कोयल है और यह कौआ है।'

'प्रिये! सच की परीक्षा करनी होती है। मैं कुएं का मेढक नहीं हूं कि कुएं में जो कुछ है, उसी को सच मान लूं। मैं विश्व को व्यापक दृष्टि से देख रहा हूं। कूपमंडूक की तरह नहीं देख रहा हूं।'

'प्रिये! जो कुएं का मेढक होता है, वह समझता है–जो सचाई है वह कुएं में है। जो बड़प्पन है वह कुएं में है। इससे बड़ा कोई हो नहीं सकता।'



प्रिये! एक बार कुएं की मुंडेर पर एक राजहंस आकर बैठ गया। कुएं में एक मेढक था। उसने देखा–कुएं की मुंडेर पर कोई पक्षी आकर बैठा है। उसे वह पक्षी अच्छा लगा।'

रे पक्षिन्नागतस्त्वं कुत इह सरसस्तद् कियद् भो विशालं,
किं मद्धाम्नोऽपि बाढं? न हि न हि सुमहत् पाप मा ब्रूहि मिथ्या।
इत्थं कूपोदरस्थः सपदि तटगतो दर्दुरो राजहंसं,
नीचः स्वल्पेन गर्वी भवति हि विषयाः नापरे येन दृष्टाः।।

मेढक ने पूछा–'रे पक्षी! तुम्हारा नाम क्या है?'

पक्षी बोला–'राजहंस।'

'तुम कहां से आये हो?'

'**सरसः**–मानसरोवर से आया हूं।'

'**तत् कियद् भो विशालं**–बताओ, वह कितना विशाल है?'

'बहुत विशाल है।'

मेढक ने एक छलांग लगाई। एक लकीर खींची और पूछा–'क्या इतना बड़ा है?'

'हां, इससे भी बड़ा है।'

'मेढक ने फिर एक लंबी छलांग लगाई और पूछा–'क्या इतना बड़ा है?'

'इससे भी बहुत बड़ा है।'

मेढक ने कुएं का पूरा चक्कर लगाया और पूछा–'क्या इतना बड़ा है?'

राजहंस बोला–'नहीं, इससे भी बहुत बड़ा है।'

मेढक आवेश से भर उठा, बोला–'अरे दुष्ट पक्षी! तुम झूठ बोल रहे हो।'

'क्यों?'

'मेरे घर से बड़ा तुम्हारा घर नहीं हो सकता। तुम झूठी बकवास कर रहे हो।'

राजहंस ने सोचा–अब तो यहां रहना अच्छा नहीं है। जहां इतना अज्ञान है वहां रहना ठीक कैसे होगा?

कवि ने कहा–कुएं का मेढक ही ऐसी बात कह सकता है। कवि ने इसका हेतु भी बतलाया–**नीचः स्वल्पेन गर्वी भवति हि विषयाः नापरे येन दृष्टाः**–जो नीचे रहता है, वह थोड़ा सा पाकर भी गर्विष्ठ हो जाता है। जिसने कुएं के बाहर की दुनिया को नहीं देखा, वह उसी को देखकर अपने अहंकार का पोषण करता है। जिसने न कभी तालाब को देखा, न पुष्करिणी को देखा, न झील और नदी को देखा, न समुद्र को देखा। वह कुएं को देखकर ही गर्व करेगा, अहंकारी बन जायेगा।

'प्रिये! मैं कुएं का मेढक नहीं हूं। मैंने महावीर वाणी से और सुधर्मा स्वामी की देशना से विशाल सचाई को देखा है। जो सत्य आकाश जितना बड़ा है, आकाश से भी बड़ा है उस विशाल सत्य को मैंने देख लिया है। अब मैं कुएं का मेढक बनकर रहना नहीं चाहता। जो केवल काम-भोग और विषय में निमग्न रहते हैं वे कूपमण्डूक बने हुए हैं। मैं राजहंस हूं, मैं कुएं का मेढक नहीं हूं।'

'प्रिये! तुम बुरा मत मानना। तुमने केवल इंद्रियों के स्वल्प विषयों को देखा है। उनको ही सचाई मान लिया है। तुम उसी सत्य की परिक्रमा कर रही हो। जैसे वह तेली का बैल कोल्हू की परिक्रमा करता है वैसे ही तुम भी विषय रूपी कोल्हू की परिक्रमा कर रही हो। तुमने पांच इंद्रियों के विषयों को सत्य मान लिया और केवल उसकी ही परिक्रमा चल रही है।'

'प्रिये! इंद्रिय-विषयों के बाहर भी दुनिया है, इन विषयों से परे भी आत्मा है, चेतना है, उसका विशाल जगत् है और इतना सुखद जगत् है कि तुम उसको जानती ही नहीं हो। तुम घूम-फिर कर केवल इसी बात पर आ जाती हो और भोग-विलास का आमंत्रण देती हो। केवल भोग-विलास का अर्थ है–यह चेतना का बैल रात-दिन घूमता रहे, इंद्रिय-विषयों के कोल्हू के चारों ओर चक्कर लगाता रहे।'

'प्रिये! कोल्हू का बैल चक्कर लगाता है तब उसकी आंखें बंद रहती हैं और गले में घंटी रहती है।'

एक दिन एक एडवोकेट तेली के घर गया। किसी कार्य के विषय में बातचीत करने लगा। उसके सामने कोल्हू है, घाणी है और बैल घूम रहा है। बातचीत करते-करते उस विद्वान व्यक्ति ने पूछा–'अरे भैया! इसके पट्टी क्यों बांध रखी है?'

'महाशय! पट्टी इसलिए बांधी है कि इसको यह पता न चले कि मैं कोल्हू के चारों ओर ही घूम रहा हूं। वह सोचता है कि मैं चल रहा हूं। यह पता नहीं लगता कि मैं यहीं-यहीं चक्कर लगा रहा हूं।'

'इसके गले में यह घंटी क्यों बांध रखी है?'

'कभी मैं इधर-उधर जाऊं तो पता लग जाए कि बैल चल रहा है या एक स्थान पर रुक गया है।'

'यह खड़ा-खड़ा सिर हिला दे तो?'

'महाशय! यह बैल है, वकील नहीं।'

जम्बूकुमार ने कहा–'प्रिये! तुम बुरा मत मानना। मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारे आंख पर भी पट्टी बंधी हुई है। तुम घूम-फिर कर एक ही बात की परिक्रमा कर रही हो और वहीं घूम रही हो। क्या दुनिया इतनी छोटी है? कोल्हू का बैल एक वर्ष भी चलेगा तो क्या कहीं पहुंच पाएगा? वह उसी की परिक्रमा करता रहेगा, घर से बाहर भी नहीं जा पायेगा।'

'प्रिये! तुम भी आंख की पट्टी खोलो, कोल्हू का बैल मत बनो। गले में जो घंटी बज रही है उसको भी निकाल दो। मैं जो कह रहा हूं उस पर ध्यान दो। मैं कोई अनबूझी बात नहीं कह रहा हूं।'

'प्रिये! सत्य बहुत विशाल है। तुमने सच और झूठ की चर्चा शुरू कर दी। तुम पूछ रही हो, कौन-सी कहानी सच्ची और कौन-सी झूठी? मैं यह कहना चाहता हूं कि किसी भी कथा को तुम चाहे झूठ मानो या सच मानो पर मैं जो कह रहा हूं, वह सत्य है और वह सत्य यह है–हम केवल इंद्रियों की सीमा में नहीं रहेंगे, केवल भोग में नहीं रहेंगे। उससे परे भी एक दुनिया है, वह है त्याग की दुनिया, चेतना की दुनिया, आत्मा की दुनिया। उसमें सबको जाना होगा। मुझे भी जाना है और तुम्हें भी एक दिन जाना होगा इसलिए इस सचाई को कोई नकार नहीं सकता।'



जम्बूकुमार बोला–'प्रिये! शायद तुम सत्य को ठीक से समझ नहीं पा रही हो। तुम सत्य को ठीक से समझो।'

मूंद कर आंखें निहारो, सत्य उजला सा लगेगा।
खोलकर आंखें निहारो, सत्य धुंधला सा लगेगा।।

तुम एक बार आंखें मूंद लो, तुम्हें सत्य उजला-सा दिखाई देगा। जब तक यह बाहरी आंख खुली रहेगी, जब तक यह महल दिखाई देगा, यह दहेज में आया हुआ धन दिखाई देता रहेगा, यह यौवन की दहलीज पर खड़ा जम्बूकुमार दिखाई देता रहेगा, उसका रूप-रंग दिखाई देता रहेगा तब तक सत्य धुंधला-धुंधला-सा लगेगा, साफ नजर नहीं आयेगा इसलिए आंख को मूंद कर देखो। दुनिया का स्वभाव है–आंख को खोलकर देखना। जब इन खुली आंखों से देखोगे तब इंद्रियां, विषय, रंग, रूप दिखाई देगा। जब आत्मा को देखना होता है तब आंख मूंद कर देखना होता है। आंख को बंद किये बिना सचाई का पता नहीं लगता।'

प्रेक्षाध्यान में एक प्रयोग करवाया जाता है–सर्वेन्द्रिय संयम मुद्रा यानी सब इंद्रियों का संयम करो, प्रतिसंलीनता करो, प्रत्याहार करो। सब इंद्रियों के दरवाजे बंद कर दो। कान में अंगूठे डाले, कान बंद। अंगुलियां आंख पर रख दी, आंख बंद। नाक पर अंगुली रखी, नाक बंद। होंठों पर अंगुली डाली, मुंह बंद।

कान, नाक, आंख, मुंह–ये सब बंद, इसका अर्थ है–बाह्य जगत् से संबंध विच्छिन्न। बाह्य जगत् से संबंध को तोड़ो, भीतर जाओ तो दिखाई देगा कि सचाई क्या है, चेतना क्या है, आत्मा क्या है, सुख क्या है? भीतर झांकते ही यह सब समझ में आयेगा।

'जयंतश्री! मैं इसीलिए तुम्हें कहना चाहता हूं कि जरा आंख मूंदकर देखो, केवल आंख को खोलकर मत देखो।'

'प्रिये! दूसरी बात यह है अभी तुझमें चपलता दिखाई दे रही है।'

चपलता को जोड़ देखो, सत्य अस्थिर सा लगेगा।
चपलता को छोड़ देखो, सत्य सुस्थिर सा लगेगा।।

'जितनी चपलता है उतना ही सत्य तुम्हें अस्थिर लगेगा। मन की चपलता ही तो सारा काम कर रही है। तुम मन की चपलता को छोड़कर देखो, ऐसा लगेगा, जैसे सत्य एकदम मेरु पर्वत की तरह स्थिर बना हुआ है।'

'प्रिये! तुम मेरी बात मानो। एक बार आंख मूंद कर अपने भीतर देखो और मन की चपलता को छोड़ो। मन को एकाग्र बनाओ, एक विषय पर तुम मन को टिका दो। जैसे-जैसे तुम्हारी एकाग्रता बढ़ेगी, वैसे-वैसे सत्य का अनुभव होता जाएगा।'

'प्रिये! तुम कोरा वाद कर रही हो। कभी कहानी सुनाती हो, कभी वाद-विवाद करती हो। क्या तुम इस बात को नहीं जानती कि वाद से कभी सचाई मिलती नहीं है।'

वाद लेकर तुम चलो, वह डगमगाता सा लगेगा।
हार्द लेकर तुम चलो, वह जगमगाता सा लगेगा।।

'प्रिये! वाद लेकर चलो तो सत्य एकदम डगमगाता-सा लगेगा, हिलता सा लगेगा। उसका हार्द क्या है? हृदय क्या है, यह समझो तो सत्य जगमगाता-सा लगेगा।'

रूढ़ होकर तुम चलो, संहार जैसा वह लगेगा।
गूढ़ होकर तुम चलो, आधार जैसा वह लगेगा।।

'प्रिये! यदि तुम रूढ़ बन कर चलोगी तो वह संहारक प्रतीत होगा। यदि तुम गहराई में जाओगी तो तुम्हें पता चलेगा कि सत्य क्या है और वह कितना बड़ा आधार है।'

'प्रिये! तुम सत्य को यदि समझना चाहती हो, सत्य की बात करती हो तो फिर ऐसी बात मत करो कि किसकी कहानी सच्ची और किसकी कहानी झूठी? तुम यह समझो कि किसका हार्द सही है? कहानी का हार्द क्या है? तुम हार्द को समझने का प्रयत्न करो।'

जम्बूकुमार ने सच और झूठ की पूरी कलई खोल दी। जयंतश्री ने जो तर्क प्रस्तुत किया, उस तर्क की व्यर्थता सिद्ध कर दी, सत्य का स्वरूप सामने रख दिया।

झूठ क्या है, माया क्या है, प्रपंच क्या है, इसे स्पष्ट करते हुए जम्बूकुमार ने कहा–'प्रिये! तुम इस मृग मरीचिका में मत जाओ। यह इंद्रिय-विषयों की एक मृग मरीचिका है जिसका कभी अंत नहीं होता।'

पूज्य गुरुदेव ने गुजरात की यात्रा की। हम कच्छ की ओर जा रहे थे। बीच में कच्छ का रण आया, हम रण में थोड़ी दूर गये, देखा तो लगा–आगे तो तालाब है, पानी ही पानी है। प्रश्न हुआ–आगे कैसे जाएंगे? फिर ध्यान आया–यह तो रण है। केवल ग्रंथों में पढ़ा था मृग मरीचिका। हिरण जब रण में जाता है, ताल में जाता है तो उसे आगे पानी ही पानी दिखाई देता है। वह पानी पीने के लिए दौड़ता है। वहां पहुंचता है तो उसे पूरा क्षेत्र सूखा मिलता है, तालाब आगे सरक जाता है। ऐसे दौड़ते-दौड़ते प्यासा हिरण प्राण दे देता है पर पानी की एक बूंद भी उसे पीने को नहीं मिलती। हमने भी कच्छ की यात्रा में यह अनुभव किया–जैसे-जैसे आगे जाते, तालाब आगे सरकता चला जाता। दस-पंद्रह किलोमीटर का रण पार किया पर पानी की एक बूंद भी कहीं नहीं मिली। यह मृग मरीचिका है।

'प्रिये! क्या तुम इंद्रियों की मृग मरीचिका में मुझे उलझाना चाहती हो?'

'नहीं स्वामी!'

'प्रिये! क्या तुम स्वयं उस मृग मरीचिका से उलझना चाहती हो, जिसमें फंसने के बाद आदमी फंसता ही चला जाता है, कहीं उसका अंत नहीं आता।'

'नहीं स्वामी!'

'प्रिये! तो फिर शुभ और श्रेयस कार्य में देरी क्यों करें?'

'हां, स्वामी!'

'प्रिये! तुम देखो–रात भी काफी चली गई है। अब तुम तैयार हो जाओ। प्रभात होते ही हमें मुनि बनना है।'



'स्वामी! इतना जल्दी निर्णय क्यों?'

'प्रिये! जब तुम सबने यह निर्णय ले लिया है कि हमें साध्वी बनना है तो फिर क्यों विलंब करें?'

'स्वामी! आपकी बात सही है। हमें मुनि बनना है, सचाई के मार्ग पर चलना है। इस कूपमण्डूकता को छोड़कर, विषय की संकरी पगडंडी को छोड़कर राजपथ पर चलना है। परन्तु....'

'प्रिये! फिर परन्तु क्या है?'

'स्वामी! आप सोचें। आपके माता-पिता हैं, हमारे भी माता-पिता हैं। दो हमारे सास और श्वसुर हैं, सोलह आपके श्वसुर-सास हैं। अब उन सबको बताना और समझाना जरूरी है।'

'स्वामी! हमने जो पाणिग्रहण किया वह साधु बनने के लिए नहीं किया, घर बसाने के लिए किया। अब हम जो गृहत्याग का निर्णय कर रहे हैं उसमें उनकी प्रसन्नमना सहमति और स्वीकृति न हो जाए तब तक बात कैसे बनेगी?'

'प्रिये! तुम्हारी बात ठीक है किन्तु मैंने संकल्प ले लिया था कि सूर्योदय के पश्चात् मैं घर में नहीं रहूंगा। मेरा यह मत है कि निर्णय में शिथिलता नहीं होनी चाहिए। जो निर्णय जिस समय करना है उसी समय होना चाहिए। विलम्ब हुआ, प्रमाद हुआ तो समस्या उलझ जाएगी। देखो, मैं तुम्हें एक बात बताऊं।'

'एक भंवरा कमल के पराग का आस्वाद लेने गया। वह पराग में इतना लुब्ध बन गया कि समय का भान नहीं रहा। सांझ का समय। सूरज अस्त होने को था किन्तु इतना लोभी बन गया कि उस स्वाद को वह छोड़ नहीं पा रहा था। यह निर्णय नहीं ले पा रहा था कि मुझे उड़ जाना चाहिए। वह उपयुक्त समय पर निर्णय ले लेता तो सुखी रहता पर प्रियता सम्यक् निर्णय लेने नहीं देती। वह सूर्यास्त से पूर्व निर्णय नहीं ले सका। सूरज अस्त हुआ। कमल का कोष सिकुड़ा और भंवरा उसमें कैद हो गया।'

'प्रिये! निर्णय न लेने में सबसे बड़ी बाधा है प्रियता की। उस प्रियता की जंजीर को न तोड़ने का परिणाम क्या हुआ? कमल कोष में बंद भंवरा बाहर निकल नहीं सका, वह भीतर छटपटा रहा है। वह व्याकुल बना सोचता है–

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्, भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे, हा! हंत हंत नलिनीं गज उज्जहार।।

भंवरा सोच रहा है–मैंने भूल कर दी, प्रमाद कर दिया। जिस समय निर्णय लेना चाहिए था, नहीं लिया। यदि मैं ठीक समय पर निर्णय लेता और उड़ जाता, मैं उस मोहक माया में फंसा नहीं रहता तो आज यह दशा क्यों होती? मैं बंदी क्यों बनता? मैं मुक्त आकाश में मंडराता रहता, गुंजारव करता रहता। मैंने निर्णय ठीक समय पर नहीं किया इसलिए फंस गया। अब क्या हो?'

वह सोच रहा है–**रात्रिर्गमिष्यति**–यह रात बीतेगी। **भविष्यति सुप्रभातं**–उजला प्रभात होगा। **भास्वानुदेष्यति**–सूरज उगेगा। **हसिष्यति पंकजश्रीः**–कमल का फूल खिल जायेगा। मैं तत्काल मुक्त आकाश में विहरण करने लग जाऊंगा।

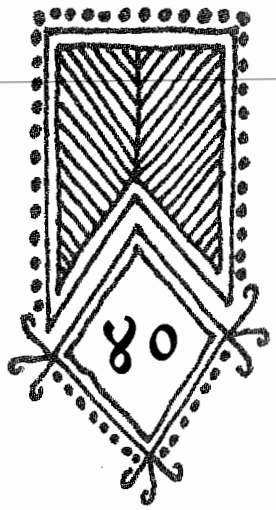
'प्रिये! कमल कोष में बंदी वह भंवरा कल्पना कर रहा है, मीठा-मीठा सपना ले रहा है। **'हा! हंत हंत नलिनीं गज उज्जहार**–उसी समय एक मदोन्मत्त हाथी आया, सूंड को आगे बढ़ाया, उस कमल-कोष को तोड़ा और उसे भंवरे सहित निगल गया। भ्रमर की कल्पना मन में रह गई।'

'प्रिये! देखो हम भी अगर निर्णय लेने में शिथिलता करेंगे तो उस भ्रमर की तरह पछताएंगे। उसका परिणाम भी अच्छा नहीं होगा। इतनी जल्दी क्या है? आज नहीं कल, कल नहीं परसो। अभी कुछ दिन ठहर कर लेंगे, यह शिथिलता उपयुक्त नहीं है। इसीलिए अब यह निर्णय हो जाना चाहिए कि हमें दीक्षा प्रभात के समय लेनी है।'

'प्रिये! अभी रात अवशेष है। हमारे पास समय है। हम बातचीत करें, निरीक्षण करें, विहंगावलोकन और सिंहावलोकन भी करें कि कहां से हमारी बात शुरू हुई और हम कहां पहुंचे हैं?'

'हां स्वामी! यह निरीक्षण और सिंहावलोकन हमारे पथ का पाथेय भी बन सकता है।'

आठों कन्याओं ने एक स्वर से जम्बूकुमार के इस प्रस्ताव का समर्थन किया–'स्वामी! यह अंधियारी रात हमारे जीवन का नया प्रभात बन रही है।'





कोई व्यक्ति जाए और रास्ता भूल जाए तो बहुत समस्या होती है। उस समय कोई व्यक्ति मिले, रास्ता बता दे तो वह कृतज्ञता के स्वर में कहता है–आपने कृपा की, मुझे रास्ता बता दिया। वह साधुवाद देता है, धन्यवाद देता है, कृतज्ञता प्रकट करता है। यह एक शिष्टाचार है। शिष्ट समाज का यह आचार होता है कि कोई उपकार करे तो उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करें। जो कृत उपकार की विस्मृति करता है, उस पर ध्यान नहीं देता, वह अच्छा नहीं होता। कृतज्ञता विकास और शिष्टता का एक लक्षण है।

आठों कन्याएं एक मार्ग पर जा रही थीं, उनका मार्ग बदल दिया, दिशा बदल दी, दृष्टि बदल दी। बहुत बड़ी बात है दिशा और दृष्टि का परिवर्तन। दृष्टि और दिशा–ये दो बदले तो नजरिया भी बदल गया और नजारा भी बदल गया। अब तक जिस रूप में विश्व को देख रही थीं, उसको देखने का कोण भी बदल गया। जिस संसार को बहुत बढ़िया मान रही थीं, जो बहुत अच्छा लग रहा था अब लग रहा है कि वह फीका-फीका है, उसमें सार नहीं है। सार है तो आत्मानुभूति में ही है। दृष्टि बदलते ही सृष्टि बदल गई। अब तक वातावरण में एक ऊष्मा और उत्तेजना थी, वह समरसता में परिवर्तित हो गई। वाद-विवाद का स्थान सहमति और संवाद ने ले लिया। दो विरोधी दिशाओं में सोचने और चलने वाले उस मिलन-बिन्दु पर पहुंच गए, जहां से उनकी सहयात्रा प्रारंभ होनी थी। अब उनका गंतव्य और लक्ष्य भी एक था।

जम्बूकुमार और आठों पत्नियों की संगोष्ठी अभी भी चल रही थी किन्तु उसमें एक नया मोड़ आ गया। समुद्रश्री ने भाव भरे स्वर में कहा–'बहनो! हमें स्वामी को साधुवाद देना चाहिए, जिन्होंने भोग के दलदल में फंसने से पहले ही जागरूक कर दिया, उस दलदल से बाहर खींच लिया।'

पद्मश्री ने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा–'स्वामी! हमने क्या सोचा था और क्या हो गया?'

'स्वामी! हमें आपकी यह प्रतिज्ञा ज्ञात थी–मैं विवाह करूंगा किन्तु दूसरे ही दिन साधु बन जाऊंगा। पर हमने सोचा–ये सब निकम्मी बातें हैं, यह एक दिखावा है, मुखौटा है। केवल दिखाने के लिए बात कर रहे हैं, होना-जाना कुछ नहीं है।'

'स्वामी! हमने सोचा था कि हमारा रूप कितना सुंदर है। हम अप्सराएं जैसी लग रही हैं। हम केवल रूपसी नहीं हैं, गुण संपन्न भी हैं। हम रोहिड़ा के फूल जैसी केवल रूपवती नहीं हैं।'

राजस्थानी का बहुत सुन्दर पद्य है–

ना चंपा ना केतकी, भ्रमर देख मत भूल।
रूप रुड़ो गुण बायरो रोहिड़ा रो फूल।।

भ्रमर को संबोधित करते हुए कवि ने कहा–भ्रमर! रोहिड़े के वृक्ष को सुंदर देखकर तुम खुश मत होओ। यह न चंपा है, न केतकी है। यह रोहिड़े का वृक्ष है। इसके फूल सुंदर हैं पर गुणविहीन हैं।

रोहिड़ा का फूल देखने में बड़ा अच्छा लगता है पर उसमें कोई गुण नहीं होता।

'स्वामी! हमें अपने रूप पर अभिमान था, अपनी बुद्धि और अक्ल पर भरोसा था। रूप, बुद्धिमत्ता और मृदुभाषिता–ये तीनों गुण हमें प्राप्त हैं।'

एक व्यक्ति ने कहा–'भाई! मुझे विवाह करना है पर मुझे ऐसी स्त्री चाहिए, जो रूपसी भी हो, बुद्धिमती भी हो और मृदुभाषिणी भी हो।'

उसने प्रतिप्रश्न किया–'इन तीनों का भार तुम कैसे सहन कर सकोगे? महंगाई के युग में एक को निभाना भी बड़ा मुश्किल है।'

वह बोला–'मैं तीन नहीं, एक में ही ये तीनों गुण चाहता हूं।'

'मित्र! एक तो ऐसी कहां मिलेगी? जो रूपसी है, वह बुद्धिमती नहीं है। जो बुद्धिमती है, वह मृदुभाषिणी नहीं है इसलिए तुम इस महंगाई के जमाने में तीन को लाने की बात मत सोचो।'

'स्वामी! हमने सोचा–अकेला जम्बूकुमार क्या करेगा? हम तो आठ हैं, वह अकेला है। क्या करेगा वह? अहं भी प्रबल था हम सबका।'

अहंकार में आदमी अपनी औकात भी भूल जाता है। एक हाथी जा रहा था। दो चींटियां ऊपर चढ़ गईं। एक चींटी बोली–'बहन! आज तो मन होता है कि हम हाथी से लड़ें।'

दूसरी बोली–'कितनी मूर्खता की बात करती हो। लड़ाई बराबरी वाले से होनी चाहिए। अगर दो हाथी होते तो लड़ने में मजा आता। हम दो हैं और वह एक। वह अकेला क्या कर पायेगा?'

'स्वामी! हमें भी यह अहं था कि हम अपने रूप बल, बुद्धि बल और वाक् कौशल से प्रियतम के मानस को बदल देंगी किन्तु हमारा अहं मिथ्या प्रमाणित हुआ। हम तो आपको नहीं समझा सकीं किन्तु आपने हमें समझा दिया।'

'स्वामी! आपका भाग्य भी प्रबल है और वैराग्य भी प्रबल है। बिना वैराग्य के ऐसा होता नहीं है। कुसुंभा दूसरों को रंगता है पर कब रंगता है? जब वह पहले गलता है तब दूसरों को रंगता है। बिना गले

दूसरों को रंगीन नहीं बना सकता। ऐसा लगता है कि आपका अणु-अणु वैराग्य के रंग से रंगा हुआ है। इस अवस्था में इतना प्रगाढ़ वैराग्य है आपका। क्या यह कोई सोलह वर्ष की अवस्था वैराग्य का समय है?'

जम्बूकुमार ने १६ वर्ष की अवस्था में शादी की। आजकल तो प्रायः १६ वर्ष में शादियां होती नहीं हैं। गांवों में तो अभी भी कहीं-कहीं छोटी अवस्था में विवाह हो जाता है पर अब बहुत कम प्रचलन हो गया है। प्राचीनकाल में १६ वर्ष की अवस्था में प्रायः विवाह हो जाता था।

'स्वामी! इस अवस्था में इतना वैराग्य, इतनी समझ और इतना उपशम। हम कल्पना भी नहीं कर सकती।'

कनकसेना ने कहा–'स्वामी! एक बहुत आश्चर्य की बात हुई है और उससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा?'

आचार्य भिक्षु ने इस आश्चर्य को मर्मस्पर्शी शब्दावली में प्रस्तुत किया है–

केई कांता कुंआरी थका त्यागी, केई परण भोगवने त्यागी।
थे परणीजी ने भोगव्या बिन त्यागी, आ कीधी घणी अथाघी रा कुमरजी!

'स्वामी! कुछ लोगों ने तो कौमार्य अवस्था में दीक्षा ले ली, विवाह किया ही नहीं। कुछ लोगों ने विवाह किया, गृहस्थवास में रहे, सहवास किया। दस-बीस, पचास वर्ष तक भोगों का आसेवन किया। उसके पश्चात् दीक्षा ली। ये दो बातें हमने देखी हैं–कुमार दीक्षा भी देखी है और विवाह के पश्चात् दीक्षा लेते भी देखा है किन्तु यह एक अपूर्व घटना है कि विवाह भी कर लिया और गृहस्थवास भी नहीं भोगा। पहले दिन तो विवाह और दूसरे दिन दीक्षा–यह इतिहास की दुर्लभ घटना है।'

'स्वामी! आपका मनोबल, आपकी धृति, आपका दृढ़ संकल्प, आश्चर्यकारी है। कहा जाता है कि एक स्त्री के मोहपाश में फंस जाएं तो भी बड़ा मुश्किल है। आठ-आठ नवयौवना कन्याओं ने यहां घेरा डाल दिया, आपको मोहपाश में बांधने का बहुत प्रयत्न किया, वैराग्य के संकल्प से डिगाने का प्रयत्न किया। जो कुछ कर सकती थी, वह सब किया पर आपका एक अणु भी प्रकंपित नहीं हुआ, कहीं भी रंग उतरा नहीं। ऐसा मजीठा रंग हो गया कि हमारे सारे प्रयत्न विफल हो गये।'



'स्वामी! हमने ऐसा वैराग्य कहीं नहीं देखा। सचमुच वैराग्य हो तो ऐसा हो। यदि पूछा जाए–कैसा होना चाहिए वैराग्य? तो उत्तर होगा–जम्बूकुमार जैसा।'

एक साधु के लिए यह मर्यादा है कि वह रात में स्त्रियों के साथ एक कमरे में न रहे। जम्बूकुमार भावी मुनि है, साधु होने वाला है, एक कमरे में रातभर एक साथ आठ-आठ अप्सरातुल्य नवयौवनाओं के बीच रहा, पर कहीं भी विचलन नहीं। किसी रुआंली में भी रागात्मक प्रकंपन नहीं। क्या इसकी कल्पना की जा सकती है?

आचार्य मानतुंग ने भगवान ऋषभ की स्तुति में भक्तामर स्तोत्र की रचना की। उनकी स्तुति में मानतुंग ने इस आश्चर्य को प्रकट किया–

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभिर्, नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन, किं मंदराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्।।

आपके पास देवांगनाएं आईं, अप्सराएं आईं पर आपका मन विचलित नहीं हुआ। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। तेज हवा, अंधड़, बवंडर और तूफान की बात छोड़ दें। यदि प्रलयकाल का पवन भी आ जाए, जिससे छोटे-मोटे पर्वत डोल गये, चट्टानें खिसक गईं। क्या उस प्रलयकाल के पवन से मेरु पर्वत कभी डोलता है? वह कभी नहीं डोलता। देवांगनाएं आपको किंचित् भी विकार मार्ग पर नहीं ले जा सकीं, क्षण भर के लिए भी आप विचलित नहीं हुए तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

मानतुंग के सामने आदिनाथ का स्तोत्र था इसलिए आदिनाथ की स्तुति में इस श्लोक की रचना की। यदि मानतुंग जम्बूकुमार का स्तोत्र बनाते तो शायद इस श्लोक को इस प्रकार बना देते–

चित्रं किमत्र यदि तेष्टनवांगनाभिर्, नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन, किं मंदराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्।।

हम विचार करें–चेतना का पक्ष कितना मजबूत है। कुछ लोगों का मनोबल कितना दृढ़ होता है, संकल्प कितना मजबूत होता है। जो संकल्प कर लिया उसमें कोई परिवर्तन नहीं ला सकता। इसका नाम है 'धृति'। दशवैकालिक सूत्र के निर्युक्तिकार ने लिखा–**'जस्स धिई तस्स सामण्णं'**– जिसमें धृति है उसमें श्रामण्य है, साधुत्व है। धृति की बहुत सुंदर परिभाषा की गई–**'मनोनियामिका बुद्धिः धृतिः'**–जो मन पर नियंत्रण करने वाली बुद्धि है उसका नाम है धृति।

सब पत्नियों ने कहा–'स्वामी! आपकी धृति को साधुवाद। ऐसा धैर्य का परिचय कोई विरल व्यक्ति ही दे सकता है। आग पर मोम या मक्खन रखा और वह पिघले नहीं, ऐसा परिचय आपने दिया है। आप जैसा धीर हमने नहीं देखा। **विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः**–विकार का निमित्त मिलने पर भी जो विकृत नहीं होता, उसका नाम है धीर। आप सचमुच धीर पुरुष हैं। आपने बड़ा काम किया है।'

'स्वामी! हमारा दृष्टिकोण तो भौतिकवादी था, भोगवादी था। हम स्वयं भोग में रहना चाहती थी और आपको भी भोग में रखना चाहती थी पर आपने तो सारी बात उलट दी।'

इस भोगवादी युग में कोई ऐसा जम्बूकुमार प्रगटे, जो एक ही रात में आठ-आठ को समझा दे तो कितना बड़ा काम हो जाए। यह मन और चेतना को बदलने का प्रश्न है। यदि एक व्यक्ति रोज भोग ही भोग की बात बोलता है, सोचता है, सुनता है तो वह भोग में चला जायेगा। उसे त्याग की बात सुनाओ, त्याग की बात सुनते-सुनते एक क्षण ऐसा आएगा कि त्याग की चेतना जाग जायेगी। जैसी बात सुनो, वैसा परिणमन शुरू हो जायेगा। एक बात रोज सुनो तो वही-वही दिखाई देगी। दूसरी बात सुनो तो परिवर्तन आना शुरू होगा पर समस्या यह है–कहीं कोई सुनाने वाला नहीं मिलता और कहीं कोई सुनने वाला भी नहीं मिलता। व्यास ने लिखा था–**ऊर्ध्व बाहु विरोम्येष न च कश्चित् श्रृणोति माम्**–मैं हाथ उठा-उठाकर चिल्ला रहा हूं पर कोई सुनने वाला नहीं है। जैन आगमों में यह निर्देश वाक्य मिलता है–**'अणुसट्ठिं सुणेह मे'**–मैं कह रहा हूं, तुम ध्यान से सुनो।

क्या आपके मन में यह प्रश्न उठता है? आठ स्त्रियां एक साथ एक रात में वैरागी बन सकती हैं तो क्या आठ भाई वैरागी नहीं बन सकते? आठ बहनें वैरागिन नहीं बन सकतीं? यदि कोई जम्बूकुमार जैसा समर्थ समझाने वाला मिल जाए तो बदलाव आ सकता है। जिनका एकदम रागात्मक दृष्टिकोण था, उन

पर जम्बूकुमार ने कैसा जादू किया। कोई जादू का ऐसा डंडा घुमाया कि सारी चिन्तनधारा बदल गई। जो एकदम रागात्मक दृष्टिकोण था वह कुछ ही घंटों में वैराग्य में बदल दिया। सब वैरागी बन गये।

कन्याएं कह रही हैं–'स्वामी! हम अपने मन में मोहक कल्पना, भावना और विचार लेकर आई थी। हमारे मन में एक अहं था कि हम स्वामी के मानस को बदल देंगी, उन्हें अनुरक्त बना लेंगी। पर पता नहीं क्या हो गया? अब तो हमें लगता है कि वह हमारा झूठा अहं था। अब यह संसार भी कोई बहुत अच्छा नहीं लग रहा है। हमारी भी भीतर की आंख खुल गई है।'

'स्वामी! भीतरी आंख खुल जाए तो फिर क्या शेष रहता है? यह बाहर की आंख तो खुली थी, आपने भीतर की आंख भी खोल दी है। इससे बड़ी क्या उपलब्धि होती है?'

एक भिखारी का लड़का चौराहे पर बैठा भीख मांग रहा था। छोटे लड़के को इस रूप में कोई देखता तो करुणा जाग जाती, वह उसको कुछ न कुछ दे देता। एक दिन एक आदमी बोला–'ओ बच्चे! कोई भी तुम्हारे पास आता है तो तुम पैसा मांगते हो। अभी तुम छोटी अवस्था में हो। तुम्हारे आंख नहीं है, अंधे हो तो किसी से आंख क्यों नहीं मांग लेते?'

उस लड़के ने एकदम गंभीर भाषा में कहा–'बाबूजी! मैं पैसा इसलिए मांगता हूं कि पैसा तो सबकी जेब में रहता है। लोग पैसा दे देते हैं, पर आंख है किसके पास, जो मैं मांगूं?'

इस दुनिया में शायद आंख से बढ़कर कोई वरदान नहीं है। आंख के सहारे ही तो हमारा काम चलता है। बाहर की आंख का भी इतना मूल्य है। यदि भीतर की आंख खुल जाए तो कहना ही क्या? बाहर की आंख से हम बाहरी दुनिया को देखते हैं। भीतर की आंख खुल जाए तो न जाने कितनी बड़ी सचाई हमारे सामने आती है।



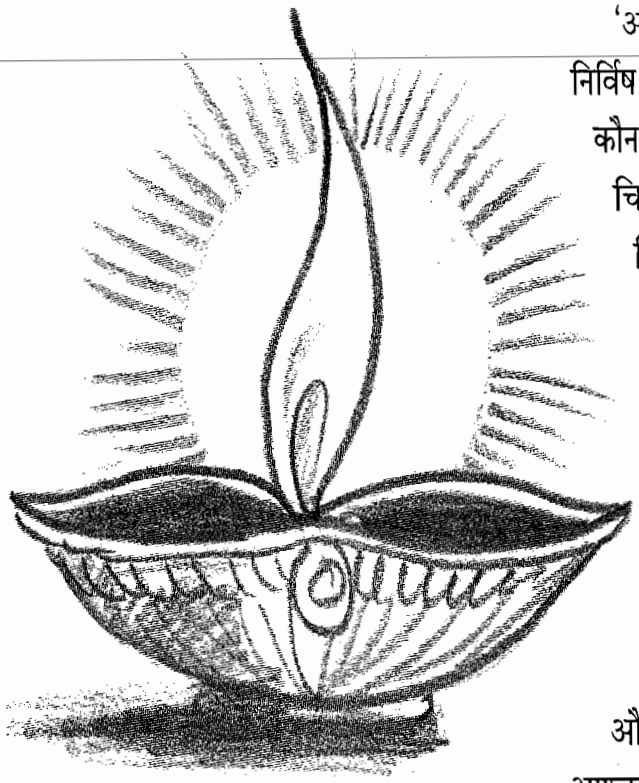
सब कन्याएं बड़ी कृतज्ञता के स्वर में अपनी भावनाएं प्रस्तुत कर रही हैं। अब कोई औपचारिकता नहीं है, कोई बनावटी बात नहीं है, बहुत भावविभोर स्वर में बोल रही हैं–'कुमार! तुमने हमारी आंख खोल दी, सचाई दिखला दी। हमें यह अनुभव हुआ–दुनिया में कोरा राग होना ही अच्छा नहीं है। राग की आंख से हम देखते हैं तो दुनिया का एक स्वरूप हमें दिखाई देता है। वैराग्य की आंख से देखना शुरू करते हैं तो वह पहलू सामने आता है जो अब तक ओझल था। हम नहीं जानती थी कि सचाई क्या है। अच्छा खाना-पीना, मौज-मस्ती करना, इंद्रियों को पोषण देना–यह जीवन का सार मान रखा था। लेकिन स्वामी! आज....'

विहिता निर्विषा नागाः गजाः शक्तिविवर्जिताः।
बलमुक्ताः भटाः येन, तस्याऽहं कुलबालिका।।

एक लड़की जा रही थी। किसी ने पूछ लिया–'बोलो, तुम किसकी लड़की हो?'

वह बोली–**'विहिता निर्विषाः नागाः'**–मैं उसकी लड़की हूं जिसने जहरीले सांप को निर्विष बना दिया। **गजाः मदविवर्जिताः**–मैं उसकी लड़की हूं जिसने हाथियों को मदरहित बना दिया। **बलमुक्ताः भटाः येन**–मैं उसकी लड़की हूं, जिसने महान सुभटों को बल रहित कर दिया।'

वह व्यक्ति कुछ समझ नहीं सका। उसने सीधा प्रश्न पूछा था किन्तु उस कन्या ने एकदम काव्य की भाषा में उत्तर दिया। वह बोला–'मैं नहीं समझ पाया कि तुम किसकी लड़की हो?'



'अरे भाई! बहुत सीधी-सी बात है। सर्प को निर्विष, हाथी को मदरहित और सुभट को बलमुक्त कौन बनाता है? मैं चित्रकार की लड़की हूं। चित्रकार सांप का चित्र बनाता है किन्तु वह निर्विष होता है, वह कभी काटता नहीं है। उसके द्वारा चित्रित हाथी पर बैठ जाओ, वह हाथी कभी गिरायेगा नहीं, कुचलेगा नहीं। वह ऐसा योद्धा का चित्र बनाता है, जिसे देखकर रोम-रोम कंपित हो जाए पर वह कुछ कर नहीं पाता।'

'स्वामी! ऐसा लगता है कि आपने हम सबको निर्विष नाग, बलरहित सुभट और मदरहित गज बना दिया है। हमें स्वयं बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि हमारी दृष्टि कैसे बदल गई? हमारी दिशा कैसे परिवर्तित हो गई? हम आपको कितना साधुवाद दें, कितना धन्यवाद दें। सचमुच आपने अद्भुत काम किया है।'

दृष्टिकोण को बदल देना बहुत बड़ी बात है। सब कुछ निर्भर होता है दृष्टिकोण पर। जिसका जैसा दृष्टिकोण बन गया वह वैसा काम करता है। कन्याओं ने कहा–'स्वामी! आपने देखने का नजरिया बदल दिया। अब हमें संसार दूसरा ही दिखाई दे रहा है। कुछ घंटों पूर्व तक भोग के प्रति आकर्षण था, इंद्रिय विषयों के प्रति आसक्ति थी, संसार के सुख भोगने की तमन्ना थी। हम पदार्थों को एकांत रागात्मक दृष्टि से देखती थीं। अब उनके प्रति उदासीन हो गई हैं, तटस्थ बन गई हैं। विषयों का आकर्षण समाप्त हो गया है।'

'स्वामी! आपने कमाल का काम किया है इसलिए हम सब धन्यवाद का प्रस्ताव पारित करती हैं और हम सब आपको साधुवाद देती हैं।'

साधुवाद और सरस संवाद का यह उपक्रम संपन्न हो, उससे पूर्व सहसा हुई आहट से सब चौंक उठे। वार्तालाप में विक्षेप आ गया।

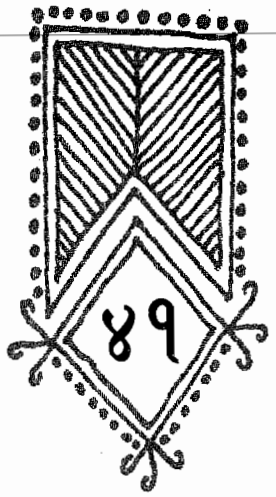
'प्रिये! कोई आ रहा है। कौन हो सकता है?'–पदचाप की ध्वनि को सुनते ही जम्बूकुमार बोला।

पदचाप की ध्वनि तीव्र हुई। ऐसा लगा, जैसे कोई व्यक्ति शयन-कक्ष की ओर बढ़ रहा है।

कुछ क्षण बीते। किसी ने द्वार पर जोर से दस्तक दी। सबका ध्यान द्वार की ओर आकृष्ट हो गया।

जम्बूकुमार और कन्याओं के मन में इस दस्तक ने एक साथ अनेक सवाल खड़े कर दिए।

इस निशा में कौन आया है और क्यों दस्तक दे रहा है?



लक्ष्य की सिद्धि सामने होती है तो व्यक्ति को बहुत आनंद होता है। जो भी लक्ष्य बनाया, उसके लिए प्रयत्न किया, साधन जुटाए, सब बाधाओं को दूर हटाया। व्यक्ति लक्ष्य के परिपार्श्व में पहुंचने वाला होता है उस समय जिस आनंद का अनुभव होता है, उस आनंद का अनुभव अन्यत्र कहीं नहीं होता।



एक लक्ष्य था जम्बूकुमार का कि मुनि बनना है। बाधाएं भी कम नहीं आईं। सबसे पहली बाधा माता-पिता की आई। माता-पिता का विवाह के लिए इतना आग्रह रहा कि जम्बूकुमार उसे टाल नहीं सका। आखिर उसने स्वीकार कर लिया कि मैं विवाह कर लूंगा। विवाह करने के बाद नव-परिणीता पत्नियों की प्रबल बाधा आई। उस बाधा को भी वह पार कर गया। उसने सोचा–अब पथ निर्बाध है, कोई बाधा नहीं है, कोई विघ्न नहीं है पर इस संक्रमणशील दुनिया में जहां अनेक प्रकार के पदार्थ हैं, चैतसिक, मानसिक, भौतिक अनेक परिस्थितियां हैं वहां बाधा सर्वथा टल जाए–यह बहुत कठिन बात है।

जम्बूकुमार और कन्याओं के मध्य प्रसन्नता से वार्तालाप हो रहा है। कन्याएं जम्बूकुमार के धृति बल, मनोबल और वैराग्य का वर्धापन कर रही हैं। उसी समय किसी ने दरवाजा खटखटाया तो सबने सोचा–रात को कौन आया है? किसने दरवाजा खटखटाया है? इस दस्तक को सुना मगर सब मौन रहे। दो-तीन बार दरवाजा खटखटाया फिर भी दरवाजा नहीं खुला तब पुनः आवाज आई–'कुमार! कृपा करो, कृपा करो, अनुग्रह करो।'

जम्बूकुमार ने सोचा–कौन है अनुग्रह की मांग करने वाला? असमय में कौन व्यक्ति आया है, जो कृपा की मांग कर रहा है? लगता है कोई दुखियारा है। जम्बूकुमार द्वार खोलने के लिए खड़ा होता उससे पूर्व उसके कानों से फिर ये शब्द टकराए–'कृपा करो और एक बार दरवाजा खोलो।'

जम्बूकुमार ने दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खुलते ही देखा–एक विशालकाय डील-डौल का लंबा-चौड़ा और सुंदर युवक खड़ा है। उसने सामने आकर नमस्कार किया, नमस्कार कर बोला–'कुमार! आप बड़े शक्तिशाली हैं। आपकी महिमा अपरंपार है। आप अवस्था में छोटे हैं। अभी पूरे युवक भी नहीं हैं, किशोर ही हैं। आपका यह दिव्य ललाट, आभामंडल बता रहा है कि आप बहुत शक्तिशाली हैं। आप मुझ पर कृपा करो।'



जम्बूकुमार ने कहा–'बोलो, क्या चाहते हो?'

'नहीं, कृपा करो'–यह कहते हुए आगन्तुक एकदम भावविह्वल हो गया।

'क्या कृपा करें?'

'कुमार! क्या पहले मैं अपना परिचय दे दूं?'

'हां, अवश्य जानना चाहेंगे हम आपका परिचय'–जम्बूकुमार ने स्वस्थ एवं मृदु स्वर में कहा।

'कुमार! प्रभव मेरा नाम है। मैं चोर पल्ली का स्वामी हूं।' वातायन की ओर इशारा करते हुए प्रभव चोर ने कहा–'कुमार! आप थोड़ा सा बाहर झांकें। दरवाजे से बाहर कौन खड़े हैं? आपके घर में दो-चार नहीं, पांच सौ चोर खड़े हैं। ये सब मेरे अधीन हैं। मैं इन सबका सरदार हूं।'

'कुमार! आपने सुना ही होगा कि मेरे नाम से बड़े-बड़े राजा कांपते हैं, बड़ी-बड़ी सेनाएं कांपती हैं। किसी की हिम्मत नहीं होती मेरे सामने आने की। इतना शक्तिशाली हूं मैं।'

'कुमार! मेरे पास दो विद्याएं हैं। एक है अवस्वापिनी विद्या। मैं जहां चोरी करने जाता हूं, वहां पहले अवस्वापिनी विद्या का प्रयोग करता हूं। इस विद्या का प्रयोग करते ही सब घोर निद्रा में चले जाते हैं। मैं सबको सुला देता हूं, कोई जाग नहीं सकता।'

'कुमार! जब सब सो जाते हैं, घोर नींद में चले जाते हैं, खर्राटे भरने लग जाते हैं तब मैं तालोद्घाटिनी विद्या का प्रयोग करता हूं। इस विद्या का प्रयोग करते ही ताले टूट कर नीचे गिर जाते हैं। तालों को खोलना ही नहीं पड़ता। किसी हथियार का प्रयोग करने की जरूरत नहीं होती। मैं विद्या का प्रयोग करता हूं और सारे ताले टूट जाते हैं। इतना करने के बाद कोई चिंता नहीं रहती। निर्बाध रूप से हमारे साथी काम करते हैं।'

'कुमार! तुम राजगृह के प्रसिद्ध श्रेष्ठी ऋषभदत्त के पुत्र हो। मैं तुम्हें जानता हूं पर तुम मेरा परिचय नहीं जानते। आज तुम मेरा परिचय भी जान लो।'

'कुमार! मैं कोई सामान्य घर का व्यक्ति नहीं हूं। मैं विन्ध्याचल के परिपार्श्व का निवासी हूं। महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश की सीमा पर विन्ध्याचल पर्वत है। वहां दक्षिण प्रदेश शुरू हो जाता है।'

पूज्य गुरुदेव ने जब दक्षिण की यात्रा की, हम भी विन्ध्याचल गए। विन्ध्याचल को पार कर दक्षिण भारत में प्रवेश हुआ।

'कुमार! मैं विन्ध्याचल पर्वत पर अवस्थित विन्ध्य प्रदेश के राजा का पुत्र हूं।'

एक ओर राजपुत्र, दूसरी ओर चोरों का सरदार! जम्बूकुमार को यह सुन कर आश्चर्य हुआ, बोला–'आप राजकुमार हैं और चोर पल्ली के पति भी हैं!'

'कुमार! इसका भी एक कारण है।'

'कारण क्या है?'

'कुमार! अपने पिता के हम दो पुत्र हैं। मैं बड़ा पुत्र हूं। मेरा नाम है प्रभव। मेरे एक छोटा भाई है। पिता का अनुराग छोटे के प्रति ज्यादा रहा। उसे स्नेह ज्यादा दिया।'

'कुमार! तुम राजघराने की परम्परा को जानते हो। जो बड़ा पुत्र होता है वह राजगद्दी का उत्तराधिकारी होता है और वही राजा बनता है किन्तु पता नहीं, मेरे पिता के मन में क्या आया? उन्होंने स्नेहवश छोटे लड़के को राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया।'

'ओह! यह तो अच्छा नहीं हुआ।'

'कुमार! मैं यह अपमान कैसे सहन कर सकता था? मैंने सोचा–अब इस राज्य में रहना ही नहीं है।'

प्रस्तुत संदर्भ में एक बात ध्यान देने योग्य है। पुत्रों की मनोवृत्ति में जो कुछ बदलाव आता है, माता-पिता भी उसका कारण बनते हैं। मां का अधिक झुकाव एक के प्रति, पिता का अधिक झुकाव अन्य के प्रति। वह अतिरिक्त झुकाव एक-दूसरे को शत्रु बना देता है, शत्रुता पैदा हो जाती है। पक्षपात न हो तो सब ठीक-ठाक चलता है। जहां भी पक्षपात हुआ–एक के प्रति ज्यादा और दूसरे के प्रति कम–वहां प्रतिक्रिया पैदा होती है, शत्रुता की भावना बन जाती है। वह फिर मां-बाप को मां-बाप मानने के लिए भी तैयार नहीं रहता।



आचार्य ने नयवाद की महत्ता बताते हुए लिखा–नयवाद का किसी भी मान्यता से पक्षपात नहीं है। दृष्टांत की भाषा में कहा–नयेषु तनयेष्विव–जैसे पिता का अपने पुत्रों के प्रति पक्षपात नहीं होता, वैसे नय का किसी से पक्षपात नहीं होता। जब पक्षपात नहीं होता तब सब ठीक चलता है पर तटस्थ रहना बड़ा कठिन है। थोड़ा सा झुकाव हुआ, पक्षपात हुआ फिर न्याय नहीं किया जाता। पक्षपात के कारण अन्याय होता है। अन्याय को सब सहन नहीं कर पाते। इस स्थिति में कलह और संघर्ष के बीज की बुआई हो जाती है।

अध्यात्म के चार बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं जो व्यवहार का सम्यक् संचालन करते हैं–मैत्री, प्रमोद, करुणा और मध्यस्थता या तटस्थता। जो व्यक्ति अपने व्यवहार को मैत्रीपूर्ण बनाता है, किसी के साथ शत्रुता नहीं रखता उसका मैत्रीपूर्ण व्यवहार दूसरे को प्रभावित करता है और दूसरे व्यक्ति को अपना बना लेता है। दूसरे की विशेषता, दूसरे के गुण को देखकर प्रसन्न होना, यह है प्रमोद भावना। तीसरा है करुणापूर्ण व्यवहार। आज सबसे बड़ी समस्या है क्रूरता की। धन के साथ क्रूरता बढ़ती है। जैसे-जैसे धन बढ़ता है, वैसे-वैसे भीतर में थोड़ी क्रूरता भी बढ़ती चली जाती है। धन के साथ अनेक बुराइयां आती हैं। धन आता है, लक्ष्मी आती है तो साथ में बुराइयां भी पनपती हैं।

मेवाड़ का प्रसंग है। आमेट, राजसमन्द, नाथद्वारा यह मार्बल की पट्टी है। यहां मार्बल का अच्छा व्यवसाय है। उसी क्षेत्र के एक भाई ने बताया–'महाराज! पहले कोई विवाह शादी करते तो पूछते–भाई! सम्पन्न घर का लड़का बताओ। क्या मार्बल की पट्टी वाला कोई लड़का ध्यान में है? क्योंकि वहां कमाई अच्छी होती है। लड़की को वहां दिया जाए, जहां धन है, कमाई अच्छी है। कमाई के साथ शराब का प्रचलन हुआ। जहां शराब आती है वहां अपराध आने लग जाते हैं। एक शराब की लत के साथ अपराध और बुराइयों के लिए दरवाजा खुल जाता है। भाई ने कहा–अब यह देखा जाता है कि लड़का संस्कारी है या नहीं? उसका खान-पान, रहन-सहन और चरित्र कैसा है? यदि खान-पान और चरित्र अच्छा नहीं होता है तो व्यक्ति बुराइयों का पुतला बन जाता है।'

भिक्षो! मासनिषेवणं प्रकुरुषे किं तेन मद्यं बिना,
मद्यं चापि तव प्रियं प्रियमहो वारांगनाभिः सह।
वेश्या द्रव्यरुचिः कुतस्तव धनं चौर्येण द्यूतेन वा,
द्यूतं चौर्यमपि प्रियमहो! नष्टस्य कान्या गतिः।।

एक बहुत मार्मिक कथा है। एक भिक्षुक मांस खा रहा था। एक विद्वान् कवि ने देखा, उसने पूछा–**भिक्षो! मासनिषेवणं प्रकुरुषे?** 'अरे! संन्यासी बने हो और मांस खा रहे हो?'

'**किं तेन मद्यं बिना**–मैं कोरा मांस नहीं खाता हूं। उसके साथ शराब भी पीता हूं।'

'**मद्यं चापि तव प्रियम्**–मांस के साथ शराब भी पीते हो?'

'हां, शराब भी अकेला नहीं पीता।'

'किसके साथ पीते हो?'

'**वारांगनाभिः सह**–वेश्या के साथ पीता हूं।'

'अरे! वेश्यागमन भी करता है?'

'हां!'

'**वेश्या द्रव्यरुचिः**–वेश्या को तो धन चाहिए। तुम भिक्षु हो। **कुतस्तव धनम्**–तुम्हारे पास धन आयेगा कहां से?'

'**चौर्येण द्यूतेन वा**–धन के लिए चोरी करता हूं, जुआ खेलता हूं।'

'अरे! इस वेश में जुआ भी खेलता है, चोरी भी करता है, यह भी तुझे प्रिय है?'

'**नष्टस्य कान्या गतिः**–जो एक बार नष्ट हो गया, फिर उसकी और गति क्या है? सब करना ही पड़ेगा।'

एक बुराई जीवन में आती है, एक अपराध जीवन में आता है तो सारी स्थितियां बदल जाती हैं। एक बहन ने शिकायत की–'महाराज! मेरे पति तम्बाकू बहुत खाते हैं।'

मैंने उससे कहा–'तंबाकू छोड़ दो।'

'छोड़ तो नहीं सकता।'

'तुम यह जानते हो कि नुकसान होता है।'

'हां, जानता हूं पर जानते हुए भी छोड़ नहीं सकता।'

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः–मैं धर्म को जानता हूं पर धर्म का आचरण नहीं करता। अधर्म को जानता हूं पर उससे दूर नहीं हटता। केवल जानने से क्या होगा? जानते हैं, छोड़ नहीं पाते तो क्या लाभ होगा?

एक नशे की प्रवृत्ति आई और सब बुराइयां स्वतः आने लग जाती हैं। एक गृहस्थ के लिए धन वैसे तो उपयोगी होता है। जितना अच्छा जीवन जीने के लिए आवश्यक हो, उतना धन तो एक सामाजिक प्राणी चाहता है। ज्यादा धन बढ़ता है तो विकृति आनी शुरू हो जाती है, क्रूरता आनी शुरू हो जाती है। क्रूरता और धन का तो अनुबंध जैसा बना हुआ है। इसीलिए वर्तमान समाज को ज्यादा जागरूक रहने की जरूरत है। माता-पिता और अभिभावक यह ध्यान दें कि आज के बच्चों पर, आज के युवकों पर थोड़ा अंकुश रहे। उन्हें एकदम खुला न छोड़ें। उनमें खान-पान की शुद्धि रहे।

भगवान महावीर ने खान-पान की शुद्धि पर बहुत बल दिया। उनका तो प्रसिद्ध सूत्र रहा–**आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं**–भोजन कैसा करो? मित भोजन करो और वह भी एषणीय। गृहस्थ के लिए निर्देश रहा– अवांछनीय मत खाओ, अभक्ष्य को मत खाओ। आज दुनिया में शाकाहार का आंदोलन चल रहा है। लाखों-लाखों मांसाहारी आदमी मांस को छोड़ रहे हैं। क्यों छोड़ रहे हैं? धर्म की दृष्टि से नहीं छोड़ रहे हैं। उनको यह पता लग गया है कि मांस खाने से स्वास्थ्य खराब होता है। स्वास्थ्य के लिए शाकाहार जितना अनुकूल है, उतना कोई दूसरा आहार नहीं है। वे मांस छोड़ रहे हैं स्वास्थ्य की दृष्टि से। जिनको धर्म की दृष्टि प्राप्त है, वे लोग इस बारे में कम सोचते हैं।



यह शाकाहार का जो प्रचलन हुआ, मांसाहार का जो निषेध हुआ–वह महावीर की विचार-क्रांति का स्फुलिंग है। मांसाहार को छुड़ाने में भगवान महावीर का सबसे ज्यादा कर्तृत्व रहा है। दूसरे धर्म संप्रदाय के कुछ लोग मांस खाते थे, बौद्ध भिक्षु भी मांस खाते थे किन्तु महावीर ने एक ऐसा वर्ग तैयार किया, जो पूर्णतः शाकाहारी था। लगभग पांच लाख श्रावक, जो बारहव्रती थे, शाकाहारी थे। जो बारह व्रतों को धारण करते, वे कभी मांसाहार नहीं करते। भगवान महावीर ने एक व्रती समाज तैयार किया। आज की भाषा में कहूं तो एक ऐसा कम्यून तैयार किया था जिसका खान-पान, रहन-सहन सारी जीवनशैली अलग प्रकार की थी। आज जैन श्रावक के सामने भी यह प्रश्न है कि वह बारह व्रतों का कितना मूल्यांकन करता है। आज तो ऐसा लगता है कि जैन धर्म पारिवारिक ज्यादा बना हुआ है। पारिवारिक यानी परम्परा से धर्म के अनुयायी हैं। उनमें तत्त्वज्ञान का विकास नहीं है। तत्त्वज्ञान बहुत जरूरी है। पहले तो छोटे-छोटे बच्चों को पचीस बोल सिखा दिया जाता, चर्चा सिखा दी जाती, तेरह-द्वार सिखाया जाता। थोड़ा तत्त्वज्ञान होता है तो बुराई में कम जाते हैं। जिसको तत्त्व का ज्ञान नहीं है, जो तत्त्व को जानता नहीं है, उसके लिए तो फिर कोई अंकुश ही नहीं है। जिसने पचीस बोल को सीखा है, पढ़ा है उसे यह पहला बोल याद है–गति चार है–नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। सबसे पहले नरक का ही नाम आया है। यह तथ्य सामने रहे कि ऐसा आचरण मत करो जिससे नरक गति में जाना पड़े।

नरक गति में जाने के चार कारण हैं–**महारंभेणं महापरिग्गहेणं पंचेन्द्रियवहेणं कुणिमाहारेणं**–महा आरंभ, महा परिग्रह, मांसाहार और पंचेन्द्रिय वध।

महा आरंभ–जहां आरंभ की कोई सीमा ही नहीं है। महा परिग्रह–जहां परिग्रह की कोई सीमा नहीं है। मांसाहार और पंचेन्द्रिय जीवों का वध–इनसे व्यक्ति नरक गति में जाता है। जो पचीस बोल का यह पहला बोल जानता है वह सोचता है कि मुझे नरक में नहीं जाना है। हमने उस युग को देखा है जिसमें छोटे बच्चे आते और कहते–'महाराज! नारकी का चित्र दिखाओ।' नारकी का चित्र देखते तो नरक के प्रति मन में एक भय पैदा हो जाता। उनके मन में यह संकल्प पैदा होता–मुझे नरक में नहीं जाना है, दुर्गति में नहीं जाना है। मैं ऐसा काम नहीं करूंगा जिससे नरक में चला जाऊं। मन पर एक अंकुश लग जाता। व्यक्ति कोई भी काम करता तो सोचता–यह ऐसा आचरण तो नहीं है जिससे नरक में चला जाऊं। आज चिन्तन का यह कोण बन गया है–नरक में, स्वर्ग में कहीं चले जाओ, क्या फर्क पड़ेगा?

तत्त्वज्ञान बहुत आवश्यक होता है। दूसरा बोल है जाति पांच–एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। सबसे पहले आता है एकेन्द्रिय। व्यक्ति सोचता है–मुझे ऐसा काम नहीं करना है, जिससे एकेन्द्रिय बन जाऊं, पत्थर बन जाऊं, पानी बन जाऊं, आग बन जाऊं। मुझे उस जाति में नहीं जाना है। तीसरा बोल है काया छह–पृथ्वीकाय, अप्काय, तैजसकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय। मुझे पृथ्वीकाय आदि में नहीं जाना है।

यह तत्त्वज्ञान एक प्रकार का अंकुश लगाता है। धर्म के क्षेत्र में यह एक अंकुश रहा है। इस अंकुश की आज भी जरूरत है। प्रश्न हो सकता है–आज पचीस बोल कितने लोगों को याद हैं? आज तत्त्वज्ञान छूट गया, सारी धारणा बदल गई इसलिए पाप करने में आदमी सकुचाता नहीं है। उस युग में प्रायः बहिनें पचीस बोल सीखती थीं। आज शायद उसमें भी अंतर आया है। आज की पढ़ी-लिखी लड़कियों और पढ़े-लिखे लड़कों में ज्यादा अंतर नहीं रहा। बहिनों और भाइयों में भी कोई बहुत अंतर नहीं रहा है। कभी-कभी यह भी पता नहीं लगता कि जो सामने व्यक्ति है वह बहन है या भाई?

एक बार नाटक हो रहा था। नाटक का एक पात्र आया। एक व्यक्ति अपने पास बैठे भाई से बोला–यह लड़का तो बहुत अच्छा अभिनय कर रहा है। उस व्यक्ति ने कहा–यह लड़का नहीं है, मेरी लड़की है।

उसने आश्चर्य के साथ कहा–'अच्छा! क्या आप उसके पिता हैं?'

'नहीं, मैं उसका पिता नहीं हूं। मैं उसकी मां हूं।'

आज वेशभूषा में इतना बदलाव आ गया है कि पहचान करना कठिन हो जाता है। वेशभूषा में अंतर रहे या न रहे किन्तु तत्त्वज्ञान में अंतर रहे। यदि बहनों में माला गिनना, सामायिक करना, तत्त्वज्ञान सीखना–यह क्रम पुष्ट रहता है तो बच्चों में अच्छे संस्कार आ जाएंगे। बहिनों में यह नहीं होता है, तो फिर बच्चों का भविष्य कैसे अच्छा हो सकता है? आज की जो नवयुवतियां हैं, उन्हें तत्त्वज्ञान अवश्य करना चाहिए। उनके लिए तत्त्वज्ञान बहुत आवश्यक है और वह नहीं होता है तो सचमुच एक अंकुश नहीं रहता। तत्त्वज्ञान का अंकुश न रहे और धन बढ़ जाए तो फिर बुराई का रास्ता खुलता है प्रतिक्रिया का जन्म हो जाता है।

हम अनेक बार यह स्वर सुनते हैं–'पिता ने मुझे कुछ नहीं दिया। केवल यह लोटा देकर घर से निकाल दिया।' वे पिता के शत्रु बन जाते हैं। जहां तत्त्वज्ञान नहीं होता, आदमी सचाई को नहीं जानता वहां उसका व्यवहार प्रतिक्रियात्मक होता है।

प्रभव ने कहा–'कुमार! मेरे पिता ने न मैत्री का प्रयोग किया, न प्रमोद भावना का प्रयोग किया। न करुणा का भाव उनमें था और न मध्यस्थता का भाव रहा। उनका सारा ध्यान छोटे पुत्र को स्थापित करने में रहा। इसलिए उन्होंने छोटे बेटे को राजगद्दी पर आसीन कर दिया।'

'कुमार! तुम जानते हो कि इस स्थिति में मुझ पर क्या बीती? मेरा मन प्रतिक्रिया से भर गया। मैंने सोचा–यहां रहना ही अच्छा नहीं है। इस घर का पानी पीना ही अच्छा नहीं है। मैं वहां से निकल गया और सीधा चोरों की पल्ली में पहुंचा।'

यह एक स्पष्ट तथ्य है कि अधिकांश अपराधी इन स्थितियों के कारण ही बनते है। इन वर्षों में हमने कुछ डाकुओं के इण्टरव्यू पढ़े। उनसे पूछा गया–तुम डाकू क्यों बने? किसी ने कहा–मां ने मेरे साथ बुरा व्यवहार किया। किसी ने कहा–पिता ने मेरे साथ अन्यथा व्यवहार किया। किसी ने कहा–गांववालों और पड़ोसियों ने मेरा तिरस्कार कर दिया। मेरे मन में भारी प्रतिक्रिया हो गई। ऐसी स्थितियों में अपराधी, हत्यारे, आतंकवादी, डाकू आदि-आदि बन जाते हैं।

प्रभव ने कहा–'कुमार! चोरों की पल्ली में चोरों ने स्वागत किया। उन्हें प्रसन्नता हुई कि इतना शक्तिशाली, इतना सुंदर और इतना बुद्धिमान राजकुमार हमारा साथी बन रहा है। चोरों ने मुझे अपना सरदार बना लिया, स्वामी बना लिया।'

'कुमार! मेरी अपनी चोर पल्ली है, जहां सैकड़ों-सैकड़ों चोर रहते हैं। ऐसी हमारी धाक है कि कोई उस पल्ली के आसपास आने का साहस नहीं करता।'



'कुमार! अतीत का मेरा परिचय है राजकुमार प्रभव और आज का परिचय है कि मैं चोरों का अधिपति हूं, मालिक हूं, स्वामी हूं।'

जम्बूकुमार ने सारी बात सुनी, किन्तु वह अप्रकंप रहा। कन्याएं इस गाथा को सुनकर कांप गईं। जम्बूकुमार धैर्य के साथ बोला–'प्रभव! तुम इतने शक्तिशाली हो फिर क्या चाहते हो?'

'कुमार! तुम कृपा करो।'

'क्या कृपा करना है?'

'मेरी एक प्रार्थना है कि मेरे पास जो दो विद्याएं हैं, वे विद्याएं आप ले लें। मैं आपको अवस्वापिनी और तालोद्घाटिनी विद्याएं सिखा दूंगा।'

'प्रभव! मुझे चोरों का अधिपति नहीं बनना है। मैं इन पत्नियों का भी पति नहीं हो रहा हूं तो इन चोरों का पति क्या बनूंगा? तुम्हारी विद्या तुम अपने पास रखो।'

'कुमार! ठीक है आप न लेना चाहो तो यह आपकी मर्जी है पर आप मुझ पर कृपा करो। आपके पास जो विद्या है वह मुझे सिखा दो।'

'प्रभव! मेरे पास तो एक ही विद्या है और वह है अध्यात्म विद्या, आत्म विद्या, आत्मा को जानना।'

गीता में श्रीकृष्ण ने कहा–अध्यात्मविद्या विद्यानां–सब विद्याओं में श्रेष्ठ होती है अध्यात्म विद्या। यह एक विद्या सीख ले, उसको ज्यादा की जरूरत नहीं होती।

'प्रभव! मेरे पास तो और कोई विद्या नहीं है। बोलो, तुम क्या चाहते हो?'

'कुमार! दरवाजे के बाहर थोड़ी दृष्टि डालिए।' जम्बूकुमार ने प्रभव के अनुरोध पर बाहर दृष्टिक्षेप किया।

कुमार! आप देखिए बाहर पांच सौ खंभे खड़े हैं। ये न हिल रहे हैं, न डुल रहे हैं।' तर्कशास्त्र में कहा गया–स्थाणुर्वा पुरुषो वा–स्थाणु है या पुरुष? जहां दूर से आदमी देखता है और कुछ निश्चय करना होता है वहां अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा होती है। बीच में संशय भी होता है। दूर से कोई पुरुषाकृति दिखाई दी और संशय हुआ 'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' यह कोई खम्भा है या आदमी खड़ा है?

कुमार! मेरे ये पांच सौ साथी खम्भे जैसे खड़े हैं। ऐसा लगता है जैसे 'भित्तिचित्रं'–भित्ति में चित्रांक बना दिये गए हैं। आपने इनके हाथ बांध दिये, पैर बांध दिये।'

जम्बूकुमार ने साश्चर्य पूछा–'प्रभव! यहां इतने आदमी क्यों आये?'

'कुमार! आप जानते हैं कि हमारा धंधा क्या है?'

'नहीं, मैं नहीं जानता।'

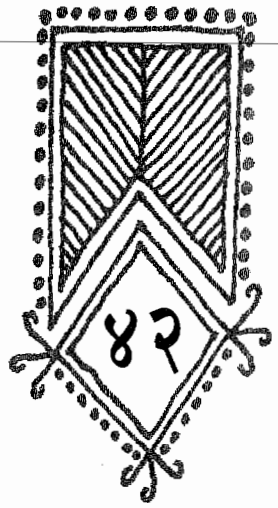
'आप जानना चाहते हैं तो मैं विस्तार से आपको सारी बात बताऊंगा। इसमें कुछ समय लगेगा। आप कृपा कर पूरी बात सुन लें और फिर अनुग्रह करें।'

'मैं बात सुनूंगा पर अनुग्रह क्या करना है?'

'कुमार! मेरे पास दो विद्याएं हैं–अवस्वापिनी और तालोद्घाटिनी। आपके पास एक विद्या है 'स्तंभनी'। जिसके पास यह विद्या होती है उसका प्रयोग होते ही आदमी खम्भा बन जाता है। न चल सकता, न हाथ हिला सकता। पूरा खम्भा बन जाता है। आप यह स्तंभनी विद्या मुझे दे दें।'

क्या प्रभव का अनुरोध कृतार्थ होगा?

क्या विद्या की विफलता उसे नव चिन्तन के लिए अभिप्रेरित करेगी?



विद्वानों की एक संगोष्ठी हो रही थी। संगोष्ठी में अनेक विद्वान उपस्थित थे। जब विद्वान मिलते हैं तब अनेक विषयों पर चर्चा होती है। चर्चा के मध्य प्रसंग आ गया कि मीठा क्या है? मिठास किसमें है?

एक बोला–**दधि मधुरं**–दही मीठा होता है। यह उसका अपना अनुभव था।

दूसरा बोला–कैसी बात करते हो? दही तो बहुत खट्टा भी हो जाता है। **मधु मधुरं**–शहद बहुत मीठा होता है। दही उसकी तुलना में कहां टिकता है?

तीसरा बोला–**द्राक्षा मधुरा**–दाख इससे भी ज्यादा मीठी होती है, अंगूर भी बहुत मीठे होते हैं।

चौथा बोला–अंगूर भी खट्टे होते हैं। '**शर्करा मधुरा**' अर्थात् चीनी बहुत मीठी होती है।

दधि मधुरं मधु मधुरं, द्राक्षा मधुरा च शर्करा मधुरा।
तस्य तदेव हि मधुरं, यस्य मनो यत्र संलग्नम्।।

अलग-अलग मत आए। मत का कहीं अंत नहीं आता। उनमें एक बहुत अनुभवी विद्वान था, वह बोला–कितने नाम गिनाओगे? दुनिया में बहुत चीजें मधुर हैं। इन सब विवादों को छोड़ो, एक नियम मान्य कर लो–**तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्**। जिसका मन जहां लग गया, वही उसके लिए मीठा है। किसी का मन दही में लग गया तो उसके लिए दही मीठा है। शहद में लग गया तो शहद मीठा है। चीनी में लग गया तो चीनी मीठी है। किसी का मन बालू रेत, धूल में लग गया तो वह भी मीठी है। जब एक बच्चा धूल को खाता है तो वह खराब जानकर नहीं खाता। उसे बालू में भी स्वाद आता है इसलिए वह सब चीजों को छोड़कर धूल को फांकने लग जाता है।



वि. सं. २०२० की घटना है। पूज्य गुरुदेव का लाडनूं में चातुर्मास था। हम लोग सुबह-सायं बाहर बहुत दूर पंचमी के लिए जाते थे। एक दिन शाम को लौट रहे थे। हमने देखा–कुछ बकरियां बाड़ पर खड़ी हैं और बाड़ के कांटों को चबा रही हैं। बड़ा आश्चर्य हुआ। हमने उन चरवाहों से पूछा–'भाई! अभी तो चौमासे का समय है, भादवे का महीना है। इतनी हरीभरी घास बकरियां चरकर आई हैं फिर ये बाड़ क्यों खाती हैं?'

चरवाहा बोला–'महाराज! जैसे हम लोग मिठाई खाते हैं व मिठाई के बाद मुंह अच्छा नहीं होता तब चरका खाते हैं, भुजिया-पापड़ आदि खाते हैं। वैसे ही ये बकरियां मिठाई खाकर आई हैं और अब ये भुजिया-पापड़ खा रही हैं। ये सूखे कांटे इनके लिए भुजिया-पापड़ हैं।'

जिसमें जिसका मन लग गया, उसके लिए वही अच्छा है। इसलिए यह नियम नहीं बनाया जा सकता कि कौनसी वस्तु मीठी है। करेले का शाक आता है। कुछ लोग उसे बहुत रुचि के साथ खाते हैं और कुछ लोग करेले के शाक को मुंह में डालना भी पसंद नहीं करते, उन्हें कड़वा लगता है। यह स्पष्ट तथ्य है–जिसका मन जहां लग गया उसके लिए वही मीठा है और वह उसी की खोज में रहता है।

जम्बूकुमार ने पूछा–'प्रभव! यहां क्यों आये?'

'कुमार! हमारा एक ही काम है चोरी करना, धन को बटोरना। हमारा ध्यान उसमें सबसे ज्यादा रहता है। उसमें इतनी मिठास है कि उसे छोड़ नहीं पाते। धन का पता लगते ही और सब काम छूट जाते हैं।'

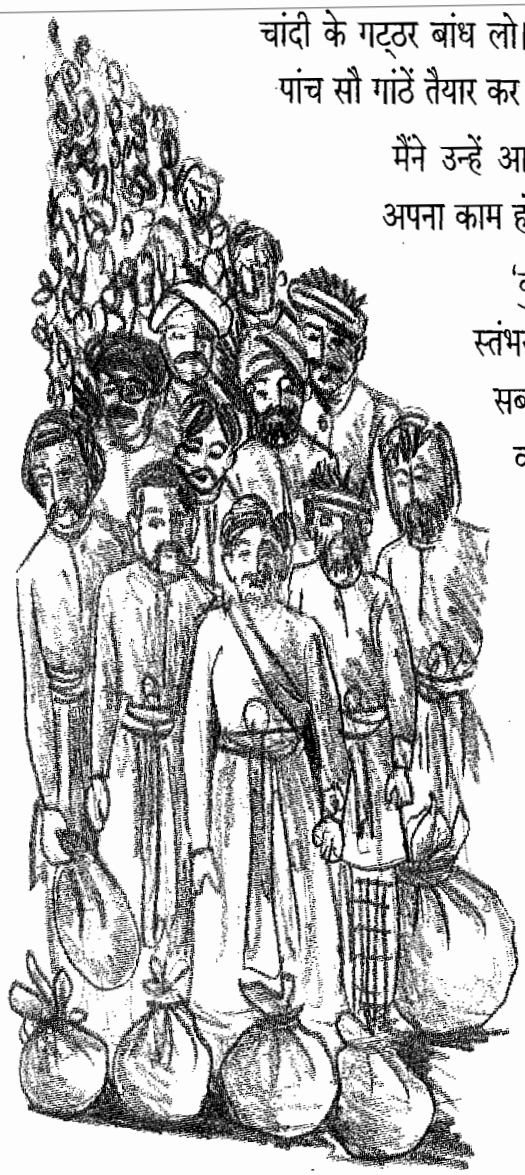
'कुमार! मैं चोर पल्ली में बैठा रहता हूं। हमारे गुप्तचर चारों ओर घूमते रहते हैं, पता लगाते रहते हैं कि आज कहां धन का भंडार है और कहां हमें चोरी करनी है। एक दिन मेरा गुप्तचर आया, बोला–स्वामिन्! आज राजगृह में एक चर्चा सुनी।'

मैंने पूछा–'क्या?' उसने बताया–'जम्बूकुमार नाम का एक श्रेष्ठी पुत्र है। उसका विवाह हो रहा है। मैंने ऐसा सुना है कि विवाह में भारी दहेज दिया जा रहा है। कहते हैं ९९ करोड़ सौनेया का दहेज दिया जाएगा। भारी धनराशि आ रही है। इतनी विशाल धनराशि है कि एक दिन चोरी करने के बाद वर्षों तक कोई अपेक्षा ही नहीं रहेगी। हमारे पास इतना धन हो जायेगा और हमारी शक्ति बहुत बढ़ जायेगी।'

'कुमार! गुप्तचर के द्वारा जो सूचना मिली, उसकी खोज करवाई तो बात प्रामाणिक निकली। मैंने आदेश दिया–आज हम पांच सौ चोरों के साथ चलेंगे। वहां चार-पांच चोरों से क्या होगा? इतना धन आ ?हा है तो उसे गांठों में बांधकर लाना भी मुश्किल पड़ेगा। हमने पूरी सज्जा के साथ एक सेनावाहिनी बना ी। चोरी के लिए निकले। रात्रि का समय। हम नियत समय आपके घर आ गये। हमने देखा कि लोग बोल हे हैं, बातचीत हो रही है। मैं दरवाजे पर आया और मैंने अवस्वापिनी विद्या का प्रयोग किया। जैसे ही इस वेद्या का प्रयोग किया, बातचीत बंद हो गई और सब एकदम गहरी नींद में सो गये। दो मिनट में चारों ओर ांति हो गई। कोई प्रकंपन नहीं, कोई हलचल नहीं।'

आजकल लोग नींद की गोलियां बहुत लेते हैं। इस युग में अनिद्रा की बीमारी बहुत बढ़ी है। अगर ावस्वापिनी विद्या का प्रयोग कर दें तो नींद की गोलियां छूट जाएं। समाचार-पत्रों में पढ़ा–प्रतिवर्ष अरबों-रबों रुपयों की नींद की गोलियां बिकती हैं। न जाने कितने लोग नींद की गोलियां लेते हैं। उनसे नुकसान ो होता है पर क्या करें? कोई उपाय नहीं है। यदि अवस्वापिनी विद्या का ज्ञान हो तो कोई गोली की रूरत ही न रहे।

प्रभव ने कहा–'कुमार! सब सो गये। हम घर में घुसे। मैंने तालोद्घाटिनी विद्या का प्रयोग किया। लोद्घाटिनी विद्या का प्रयोग करते ही सब ताले टूट गये। अब कोई कठिनाई नहीं रही। इधर तो सब लोग ए हुए हैं और उधर सब ताले टूटे हुए हैं। अब मैंने आदेश दिया–शीघ्रता करो। हीरे-जवाहरात, सोने,



चांदी के गट्ठर बांध लो। पांच सौ साथी तत्काल इस काम में लग गए। उन्होंने पांच सौ गांठें तैयार कर लीं। साथियों ने पूछा–सरदार! अब क्या आदेश है?'

मैंने उन्हें आदेश दिया–'साथियो! अब गट्ठर उठाओ और चलो। अपना काम हो गया।'

'कुमार! उसी क्षण आपको पता लग गया और आपने स्तंभनी विद्या का प्रयोग कर दिया। हमारे जितने साथी हैं सबके पैर स्तब्ध हो गये। जो जहां जिस मुद्रा में खड़ा था वह वहां उसी मुद्रा में जड़ीभूत हो गया। पैर जमीन से चिपक गये, हाथ भी जहां थे, वहीं चिपक गये। अब मेरे साथी खंभे की तरह खड़े हैं। न हिलते हैं न डुलते हैं। न हाथ हिला सकते हैं, न पैर उठा सकते हैं।

मैंने सोचा–यह क्या हुआ? मैंने अवस्वापिनी का प्रयोग कर दिया, सब सो गए। किसने किया है विद्या का प्रयोग? मैंने थोड़ा गहराई से ध्यान दिया, सोपान पंक्ति से ऊपर चढ़ा तो मुझे कुलबुलाहट सुनाई दी। मैं अवाक् रह गया–अरे! यहां कोई बोल रहा है। मेरे आश्चर्य का पार नहीं रहा। मैंने अवस्वापिनी विद्या का प्रयोग कर दिया फिर भी इस घर में कोई जाग रहा है, कोई बोल रहा है, यह कैसे हुआ?

मैं ऊपर आया। आपके कक्ष के बाहर रुका, मैंने देखा–भीतर तो बात हो रही है और एक नहीं, अनेक लोग बोल रहे हैं।'

'कुमार! मेरी विद्या कभी व्यर्थ नहीं जाती। नीचे सब लोग सो गये, ऊपर महल में भव्य कक्ष में बैठे लोग क्यों नहीं सोए? विद्या की विफलता पर निराशा और आश्चर्य–दोनों हुए। मैंने तुम्हें देखा और देखता रह गया। मुझे विश्वास हो गया कि यह सब कुमार की करामात है।'

'कुमार! तुम बहुत शक्तिशाली हो, तुम्हारे भीतर इतनी शक्ति है कि मेरी विद्या का तुम्हारे पर कोई असर नहीं हुआ। मैंने अनुभव किया कि प्रायः व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन पर विद्या का असर होता है किन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन पर विद्या का असर नहीं होता।

जिनका आभामंडल बहुत शक्तिशाली होता है, जिनका तैजस शरीर बहुत शक्तिशाली होता है उन पर कोई असर नहीं हो सकता। शक्तिसंपन्न मनुष्य पर न नागपाश का असर होता, न अवस्वापिनी विद्या का प्रभाव होता और न किसी अन्य मारक, उच्चाटन मंत्र का असर होता। इन सबका असर उन पर होता है जो कमजोर मन वाले होते हैं, जिनका शरीर कमजोर होता है।'

कमजोर शरीर का मतलब यह हाड़-मांस का शरीर नहीं है। हमारा तैजस शरीर कमजोर हो तब असर



होता है। यदि तैजस शरीर प्रबल है तो कोई असर नहीं होता। हमारे भीतर एक सूक्ष्म शरीर होता है, जो स्थूल शरीर का संचालन कर रहा है, उसका नाम है तैजस शरीर।

जिन्होंने पचीस बोल सीखा है, वे यह जानते हैं कि शरीर के पांच प्रकार हैं–**पंचविहे सरीरे पण्णत्ते, तं जहा–ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मे**। महावीर ने शरीर के पांच प्रकार बतलाए हैं–औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर और कर्म शरीर। यह हमारा जो दिखाई देने वाला शरीर है, यह जो हाड़-मांस का पुतला कहलाता है, सात धातु का पुतला कहलाता है यह औदारिक शरीर है। इसमें रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य–ये सात धातुएं होती हैं। यह औदारिक शरीर है किन्तु हम जो खाते हैं, वह कौन पचाता है? औदारिक शरीर का काम नहीं है कि वह खाने को पचा दे। पचाने वाला है तैजस शरीर। पाचन करना उसका काम है। वह अग्नि का शरीर है। इसे कहते है विद्युत् शरीर, इलेक्ट्रिकल बॉडी। जिसका तैजस शरीर प्रबल होता है उस पर किसी का असर नहीं होता। तैजस शरीर कमजोर कब बनता है? बुरा विचार, बुरा चिंतन, बुरी बात सोचना, वासना की बात सोचना, आवेश करना, बार-बार क्रोध, अहंकार, लोभ, भय–इन सबसे तैजस शरीर कमजोर हो जाता है, आग बुझने लग जाती है। ज्यादा खाओ तो भी तैजस शरीर कमजोर बनने लग जाता है। तैजस शरीर प्रबल हो तो कोई असर नहीं होता।

प्रभव ने विनत स्वर में कहा–'कुमार! मुझे आश्चर्य होता है तुम्हारी शक्ति पर। तुम्हारी तैजस शक्ति इतनी प्रबल है कि मेरी अवस्वापिनी विद्या का तुम्हारे पर कोई असर नहीं हुआ। तुम जागते रहे। ऐसा लगता है तुम्हारे पास अंतर्दृष्टि भी है। तुम्हें सब कुछ पता भी लग गया।'

प्रभव ने अपने मन की कल्पना प्रस्तुत की–'कुमार! तुमने सोचा होगा कि चोर आ गये, ये धन ले जाएंगे और सुबह हम दीक्षा लेंगे तो लोग कहेंगे कि जो धन दहेज में आया था, वह चला गया, इस दुःख के कारण दीक्षा ले रहा है।'

'कुमार! तुमने ठीक सोचा। यह स्वाभाविक बात है। अगर हम धन ले जाते और फिर तुम्हारी दीक्षा होती तो लोग यही बात कहते। हम इस तथ्य को जानते हैं और बहुत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखते हैं क्योंकि हमारा धंधा ही यही है। हम हर बात को ताड़ लेते हैं। तुमने सोचा कि यह अच्छा नहीं होगा इसलिए तुमने स्तंभनी विद्या का प्रयोग कर दिया और सबके हाथ-पैर बांध दिये।'

एक बार हमारे सामने भी यह प्रश्न आया था–क्या आज भी स्तंभनी विद्या का विकास किया जा सकता है? अगर स्तंभनी विद्या का विकास हो तो सारे शस्त्र निष्प्रभावी बन जाएंगे। कोई अणुबम का प्रयोग करता है, स्तंभनी विद्या का प्रयोग हो तो वह वहां का वहां रह जायेगा, आगे नहीं बढ़ पाएगा। आज कहीं से भी कोई शस्त्र आ रहा है, किसी शस्त्र का प्रयोग हो रहा है। स्तंभनी विद्या का प्रयोग करो, जहां का तहां रह जाएगा, आगे बढ़ नहीं सकेगा। एक ओर अकेला आदमी खड़ा है दूसरी ओर हजारों सैनिक आ रहे हैं, आक्रान्ता और मारक मनुष्य आ रहे हैं, उपद्रवी और आतंकवादी आ रहे हैं। स्तंभनी विद्या का प्रयोग करो, बस वहीं रुक जाएंगे, आगे बढ़ नहीं पाएंगे।

प्रभव ने कहा–'स्तंभनी विद्या बड़ी चमत्कारी है, वह तुम्हारे पास है। जम्बूकुमार! आश्चर्य है कि इतनी छोटी अवस्था में तुम इतने शक्तिशाली बन गये, विद्याधर बन गये। तुम्हारा मुखमंडल और आभामंडल

बता रहा है कि तुम्हारे पास बहुत कुछ है इसीलिए मैं यह भीख मांग रहा हूं, झोली फैला रहा हूं कि तुम कृपा करो। मेरी दो विद्याएं चाहो तो आप सीख लो, पर यह स्तंभनी विद्या आप मुझे सिखा दें।'

'कुमार! आप एक कृपा और करें। मेरे जो ५०० साथी खड़े हैं, खम्भे बने हुए हैं, जड़ जैसे बन गये हैं, उनको आप मुक्त करें।'

जम्बूकुमार और आठों नववधुओं ने सारी बात सुनी। सबको बड़ा अचम्भा हुआ।

प्रभव ने भावविह्वल स्वर में कहा–'कुमार! एक बार बाहर आकर देखो।'

जम्बूकुमार और नव यौवनाएं दरवाजे के पास आईं, बाहर विशाल परिसर को देखा। एक विशालकाय सेना मूर्तिवत्, प्रस्तर या खंभे की तरह खड़ी है। हाथ भी नहीं जोड़ती, नमस्कार भी नहीं करती।

जम्बूकुमार ने सोचा–यह क्या हो रहा है? यह कैसे हुआ? उसने प्रभव से कहा–'प्रभव! तुम भी बैठ जाओ, हम बात करेंगे। कुछ समय तुम हमारी बात सुनो।'

विवश प्रभव बोला–'कुमार! जैसी आपकी इच्छा। अब कोई उपाय नहीं है मेरे पास। यदि प्रभात हो गया, सूरज उग गया, जनता को पता लग गया तो आरक्षक पुलिस आयेगी और इन सबको पकड़ लेगी, फांसी की सजा हो जाएगी। मेरे सारे साथी समाप्त हो जाएंगे। बड़ी समस्या है। आप जो कहें, वह करने के लिए तैयार हूं पर आपको ये दो अनुग्रह जरूर करने होंगे। मुझे स्तंभनी विद्या सिखानी है और मेरे साथियों को बंधन से मुक्त करना है।'

प्रभव ने कातर स्वर में अनुरोध किया–'कुमार! आप अपनी माया को समेट लो।'

जम्बूकुमार ने आश्वस्त करते हुए कहा–'ठीक है, पर पहले जरा बैठो।' उसने प्रभव को स्नेह से अपने पास बिठा लिया।



जम्बूकुमार ने अपनी नवपरिणीता वधुओं से बातचीत शुरू कर दी। जम्बूकुमार बोला–'देखो बहनो! अब तो तुम मेरी पत्नी नहीं, बहन ही हो। अब तक मैं केवल वाचिक बात समझा रहा था। अब प्रायोगिक दृष्टान्त तुम्हारे सामने आ गया। बहनो! तुम बताओ कि ये चोर क्यों आये?'

'स्वामी! धन लेने के लिए आए हैं।'

'क्या चोरी करना अच्छा है?'

'अच्छा तो नहीं है।'

'फिर ये क्यों चोरी करते हैं?'

सब एक स्वर में बोली–'अर्थमनर्थं भावय नित्यम्–स्वामी! यह अर्थ तो अनर्थ का मूल है। ये धन के लिए अनर्थ करने आये हैं।'

हम यह सोचें–मनुष्य के जीवन के केन्द्र में क्या है? उसका सबसे ज्यादा आकर्षण किसमें है? मनुष्य को सबसे ज्यादा प्रिय कौन है? क्या मां प्रिय है? पिता प्रिय है? पत्नी प्रिय है? भाई-बहिन प्रिय हैं? कौन है प्रिय? हम गहराई में जाकर चिन्तन करें कि कौन प्रिय है?

कहा जाता है–बंधु के बिना संसार सूना है पर भाइयों को भी धन के लिए लड़ते देखा गया है। धन के लिए मां और बेटों को लड़ते देखा है। यह कोई सुनी-सुनाई कहानी नहीं है। लंबे समय तक मां और बेटों में संपत्ति के लिए मुकदमा चला है। पिता और पुत्र को भी धन के लिए लड़ते देखा है। पति-पत्नी को भी धन के लिए लड़ते देखा है, कोर्ट में बरसों तक मुकदमे चले हैं। हम सोचें–कौन प्रिय है? सबसे ज्यादा प्रिय है धन। धन मिल जाए तो सब प्रिय हैं और धन इधर-उधर हो जाए तो प्रिय भी एक मिनट में अप्रिय बन जाते हैं। एक बड़ी विचित्र संज्ञा मनुष्य में बन गई कि वह सब कुछ धन को ही मान रहा है। **सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयंति**–सब गुण सोने और धन में है।

'बहिनो! मैंने तुम्हें धन के परिणाम बताए। अब यह प्रत्यक्ष है। यह प्रभव राजा का बेटा है, राजकुमार है पर आज चोर बना हुआ है। दिन-रात चोरी का मानस रहता है। केवल धन ही धन दिखाई देता है। यह धन की जो लीला है, धन का जो आकर्षण है वह पतन की ओर ले जाता है। जब तक आत्मा के प्रति आकर्षण पैदा नहीं होगा तब तक यह आकर्षण छूटेगा नहीं।'

उत्तराध्ययन सूत्र का एक बहुत सुंदर प्रसंग है। भृगु पुरोहित का पूरा परिवार दीक्षित हो रहा था और सारी सम्पत्ति को छोड़ रहा था। वह राजमान्य पुरोहित था। राजा के मन में लोभ आया–जब पूरा परिवार दीक्षित हो रहा है तब यह सम्पत्ति राजा की होगी। उसने अधिकारियों को आदेश दिया– राजपुरोहित का सारा धन महल में ले आओ। महारानी कमलावती को पता चला। उसने कहा–'महाराज! क्या कर रहे हैं? धन का इतना लोभ क्या उपयुक्त है?'

वंतासि पुरिसो रायं, न सो होइ पसंसियो।
माहणेण परिच्चत्तं, धणं आदाउमिच्छसि।।

'राजन्! यह धन आपका ही तो दिया हुआ है। वमन खाने वाले पुरुष की प्रशंसा नहीं होती। आप ब्राह्मण द्वारा परित्यक्त धन को लेना चाहते हैं! इसको पुनः लेना एक प्रकार से वमन को पीना है। जिस धन को आपने दिया, ब्राह्मण ने जिसे वान्त कर दिया, आप फिर उसको खाना चाहते हैं, यह अच्छा नहीं है।'

एक्को हु धम्मो नरदेव ताणं।
न विज्जए अन्नमिहेह किंचि।।

महारानी ने ऐसा मर्मस्पर्शी वाक्य कहा कि राजा की आंखें खुल गईं। कमलावती बोली–राजन्! आप क्या कर रहे हैं? **वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते**–यह धन आपको त्राण नहीं देगा। एक धर्म ही ऐसा तत्त्व है, जो आपको त्राण देगा। दूसरा कोई तत्त्व ऐसा नहीं है जो शरण दे, त्राण दे।'

कमलावती ने इतनी साफ-साफ बात कही कि राजा एक प्रकार से लज्जित हो गया। उसने तत्काल आदेश दिया–'पुरोहित के घर से धन न लाया जाए।'

जम्बूकुमार ने कहा–'बहिनो! तुम देखो! आज सारा संसार धन के पीछे दौड़ रहा है। जहां व्यक्ति धर्म को भुलाकर धन के पीछे दौड़ता है वहां अपराध होते हैं, चोरी-डकैती और मार-काट का प्रश्न आता है।'

दो-दिन पहले एक परिवार आया। हमने पूछा–क्या हुआ? परिवार के लोगों ने बताया–जवान लड़का दुकान में बैठा था। सांझ के समय कुछ अपराधी आये और हत्या कर दी। जो कुछ धन था, उसे ले गये।

धन के लिए न जाने कितनी हत्याएं होती हैं, कितने निरपराध नवयुवकों को मार दिया जाता है।

'बहिनो! तुम कह रही थी कि आप इस धन का भोग करें, फिर साधु बनना। पर धन का कौन भोग करेगा? आज यदि चोरी हो जाती, सारा धन जाता तो तुमको कैसा लगता? क्या तुम्हें रोटी भाती?'

'नहीं स्वामी! जीना भी बहुत मुश्किल हो जाता।'

आज एक परिवार आया। कुछ दिन पहले चोरी हो गई थी। वह बहिन इतनी दुःखी थी कि कहा नहीं जा सकता। हमने बहुत समझाया–'अरे! धन आता है, चला जाता है। इतनी दुःखी क्यों बनती हो? पर उसका तो आर्तध्यान कम नहीं हो रहा था, आंसू थम नहीं रहे थे।

'बहिनो! इतना धन तुम्हारे माता-पिता से आया और इतना मेरा अपना धन। ये सारा वैभव चोर ले जाते तो क्या तुम्हें दुःख नहीं होता?'

सब एक साथ बोली–'हां, स्वामी! आप ठीक कह रहे हैं। दुःख तो इतना होता कि आकाश पाताल एक हो जाते।'

'बहिनो! इसीलिए मैं कह रहा हूं कि यह धन का लोभ, यह भोग का भाव, यह आकांक्षा–इन सबको छोड़ो और उस मार्ग को चुनो, जहां कोई लेने वाला नहीं है, कोई चोरी करने वाला नहीं है। जो मुनि और संत बन जाता है, उसे कोई चोरी-डकैती का भय नहीं होता। उसके प्रवास-स्थल के दरवाजे सदा खुले रहते हैं।'

संतां रा खुला है बारणा।
कब ही ल्यो कोई निहार, संतां रा खुला है बारणा।।



प्रभव चोर इन बातों को सुन रहा है। जम्बूकुमार भी प्रभव चोर को सुनाने के लिए अपनी पत्नियों को कह रहा है। पत्नियां तो समझ चुकी हैं। उनके मन में कोई वैमत्य नहीं रहा। समझाना है प्रभव को। किन्तु कभी-कभी लक्षित व्यक्ति को सीधी बात नहीं कही जाती। दूसरे को कहा जाता है और सामने वाला समझ जाता है। प्रभव ने पूरी गंभीरता से सुना, उसने सोचा–जम्बूकुमार कोरा विद्याधर नहीं है, तत्त्ववेत्ता भी है। इतनी गहरी तत्त्व की बात मैंने आज तक किसी से नहीं सुनी।

प्रभव का दिल कुछ कंपित हो गया, सोचा–मैं कौन था और मैं कहां आ गया? राजकुमार था और चोर बन गया? अब उसे थोड़ा अपनेपन का भान हुआ। वह अपना स्वत्व भूल गया था, आज उसको यह भान हुआ है कि मैं कौन हूं? कोई-कोई ऐसा व्यक्ति मिलता है जो भान करा देता है और भान हो भी जाता है।

एक सिंह का बच्चा जन्मा। जन्म देते ही मां मर गई। बच्चा छोटा था। एक चरवाहा भेड़ें चरा रहा था। उसने देखा, सिंह का शिशु बहुत सुंदर लग रहा है। उसे अपनी गोदी में उठा लिया। उसे भेड़ों के साथ रखने लगा। अब वह सिंह शिशु सारी क्रियाएं भेड़ की तरह करने लग गया। वैसे ही खाना, वैसे ही चरना, वैसे ही बोलना। भेड़ों के बीच में रहा और वही सीख गया।

एक दिन जंगल में भेड़ें चर रही थीं। वह सिंह शिशु भी उनके साथ था। उस समय अचानक कोई शेर आ गया। शेर आते ही जोर से दहाड़ा, उसने हत्थल उठाई, पूरा जंगल भयाक्रांत हो गया। भयभीत भेड़ें इधर-उधर छिपने का प्रयत्न करने लगीं। सिंह शिशु ने सोचा–अरे! यह तो मैं भी कर सकता हूं। वह भी दहाड़ा, उसने भी हत्थल उठाई।

शेर बोला–'अरे! तुम तो शेर हो। भेड़ों के साथ कैसे आ गए?'

स्वत्व विस्मृत सिंह शिशु को सिंह का दर्शन मिला।
चिर समाधि विलीन योगीराज का आसन हिला।
कौन कहता है अरे ईश्वर मिलेगा साधना से।
मैं स्वयं वह, वह स्वयं मैं भावमय आराधना से।

उसका पौरुष जाग गया। वह सचमुच शेर बन गया। उसने भेड़ों का साथ छोड़ा और सिंह के साथ चला गया। जब स्वत्व की विस्मृति होती है, आदमी अपने आपको भूल जाता है तब ये सारी स्थितियां बनती हैं।

दो स्त्रियां बात कर रही थीं। बातचीत का विषय था पति की आदतें। एक स्त्री बोली–मेरा पति बहुत भुलक्कड़ है। एक दिन बाजार में झोला लेकर शाक-सब्जी लाने गया। घंटा भर बाजार में घूमा, वापस आकर खाली झोला रख दिया और बोला–'मैं झोला लेकर बाजार में गया था पर मुझे यह याद नहीं रहा कि मैं क्यों गया था।' इतना भुलक्कड़ है मेरा पति।

उसने कहा–'बहन! तुम मेरे पति के भुलक्कड़पन की बात सुनो। एक दिन मैं अपनी सहेलियों के साथ बाजार जा रही थी। रास्ते में मेरा पति मुझे मिला, उसने कहा–'बहनजी! नमस्ते! मैंने आपको कहीं देखा तो है।' इतना भुलक्कड़ है मेरा पति।

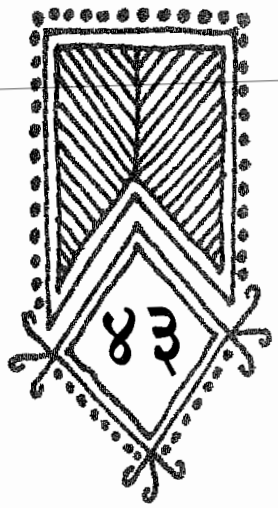
ये कहानियां हास्यास्पद-सी लगती हैं। प्रश्न आता है कि ऐसा हो सकता है क्या? हम पत्नी और शाक-सब्जी की बात छोड़ दें। कितने लोग अपने आपको जानते हैं! कौन व्यक्ति अपने आपको भुला नहीं रहा है? मैं कौन हूं? इसका कितने व्यक्तियों को पता है। जब व्यक्ति अपने आपको भुला सकता है तो पत्नी और शाक-सब्जी को क्यों नहीं भुला सकता?

प्रभव ने जम्बूकुमार की बात सुनी। वह वैसे उद्‌बुद्ध हो गया जैसे वह स्वत्व विस्मृत सिंह शिशु हुआ। उसके चित्त में खलबली-सी मच गई। वह चिंतन में डूब गया। मंथन में लग गया–'अरे, मैं कौन था? क्या हो गया?'

प्रभव का मन जिज्ञासा और उत्सुकता से भर गया। वह जम्बूकुमार से कुछ कहना चाहता है। क्या वह अपनी बात कह सकेगा?

जम्बूकुमार उसके मानस को बदलना चाहता है। क्या वह अपने प्रयत्न में सफल बनेगा?

इस प्रश्न का उत्तर इस क्षण कौन दे सकता है?





प्रत्येक व्यक्ति सुधार या परिवर्तन चाहता है पर सुधार कब हो सकता है? जब व्यक्ति को यह अनुभव हो जाए कि मेरी कहीं भूल है तब सुधार हो सकता है। जब तक भूल का अनुभव न हो तब तक सुधार या परिवर्तन की बात संभव नहीं है। हम एक-एक व्यक्ति की समीक्षा करें, मीमांसा करें, विवेचन करें तो प्रतीत होगा कि हर व्यक्ति प्रायः अपने आपमें पूर्णता का अनुभव करता है। उसे दूसरे की भूल तो दिखाई देती है पर स्वयं की भूल का पता नहीं चलता। जो व्यक्ति भूल कर रहा है, वह भी दूसरे को उपदेश देने के लिए तैयार रहता है।

प्रभव ने जम्बूकुमार से पूछा–'कुमार! एक संशय मेरे मन में है। इतनी रात चली गई। यह गोष्ठी क्या चल रही थी? बातचीत क्या हो रही थी? मुझे लगा–कुछ वाद-विवाद हो रहा था। सुहागरात तो प्रबल अनुराग और प्रेमाभिव्यक्ति की रात है। नर-नारी के मिलन का अपूर्व क्षण है। क्या पहली रात में ही विवाद शुरू हो गया? अगर तुम्हें कहने में कोई संकोच न हो, कोई कठिनाई न हो तो मुझे बताओ कि झगड़ा क्या है?'

'कुमार! मैं अनुभवी आदमी हूं। बहुत अनुभव है मुझे संसार का। मैं भी तुम्हारे झगड़े को मिटा सकता हूं।'

हर आदमी दूसरे के झगड़े को मिटाने को तैयार रहता है, स्वयं चाहे झगड़ा पैदा करता चला जाए। बाजार में कभी कोई दो आदमी लड़ते हैं तो सैकड़ों आदमी झगड़ा मिटाने के लिए इकट्ठे हो जाते हैं। यह पता नहीं कि वे झगड़ा मिटाते हैं या बढ़ाते हैं?

प्रभव ने कहा–'कुमार! मेरे मन में एक उत्सुकता है और मैं चाहता हूं कि मैं तुम्हारे घर में शांति स्थापित कर दूं।'

जम्बूकुमार बोला–'प्रभव! कोई झगड़ा नहीं है, कोई वाद-विवाद नहीं है। सब संवाद हो गया। यदि विवाद कोई था तो वह भी मिट गया।'

'विवाद क्या था?'

'प्रभव! विवाद का विषय इतना ही था कि मैं दीक्षा लेना चाहता था, प्रातःकाल मुनि बनना चाहता था और ये नहीं चाहती थीं कि मैं मुनि बनूं।'

'क्या तुम सुबह ही मुनि बनना चाहते हो?'

'हां प्रभव!'

'कुमार! यह क्या सोचा तुमने? तुम ऐसी भूल मत करना।'

'कुमार! भारी भूल हो जायेगी। क्यों तुम्हारे दिमाग में यह कीटाणु घुसा? किसने तुमको बहका दिया, भरमा दिया कि मुनि बनो। मैं तो यह सोच भी नहीं सकता। जिसकी सम्पदा को देखकर दूसरों को ईर्ष्या होती है, जिसकी सम्पदा को देखकर दूसरों का मन ललचाता है, हमारा भी मन ललचाया और तुम उसको ठुकराकर मुनि बनना चाहते हो? तुम क्या पाओगे? ऐसी भयंकर भूल मत करो।'

जम्बूकुमार ने आठ कन्याओं को समझाया, सोचा–अब कोई बाधा नहीं है। पथ एकदम प्रशस्त है। किन्तु नौवां फिर सामने प्रस्तुत हो गया। इस दुनिया में एक के बाद एक समस्याएं आती हैं, विघ्न-बाधाएं आती हैं। समझाने वाले और उपदेश देने वाले भी बहुत आते हैं। दुनिया में उपदेश देने वालों की कमी नहीं है। एक नया उपदेशक प्रकट हो गया।

प्रभव बोला–'कुमार! मेरी बात ध्यान से सुनो। वह ऐसी सचाई है, जिसे सुनकर तुम मुनि बनने की कल्पना ही छोड़ दोगे। अभी ऐसा लगता है कि तुम झूठ के रास्ते पर जा रहे हो।'

जम्बूकुमार आश्चर्य के साथ विस्फारित नेत्रों से देखने लगा। आठों कन्याओं के मन में भी कुतूहल पैदा हो गया, सोचा–अब तो इसके कथन का हमारे पर भी असर नहीं हो रहा है। यदि यह पहले आता तो हमारा साथी अवश्य बन जाता।

जम्बूकुमार ने कहा–'प्रभव! मन में क्यों रखो। जो कहना है कह दो।'

प्रभव बोला–'कुमार! यह जो भोग सामग्री है वह सुलभ नहीं है, बहुत दुर्लभ है। क्या तुम्हें पता है कि कितने लोग अभाव का जीवन जीते हैं जिन्हें दो जून खाने को रोटी नहीं मिलती?'

दुर्लभां भोग सामग्रीं, जानीहि त्वं धरातले।
सा सर्वापि त्वया प्राप्ता, पूर्वोपार्जितपुण्यतः।।

हिन्दुस्तान में भी आज करोड़ों व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें दो बार खाने को पर्याप्त रोटी नहीं मिलती। दिन में एक बार मिलती है। कभी-कभी एकान्तर हो जाता है। वर्षीतप नहीं करते, एकान्तर नहीं करते पर विवशता से वर्षीतप या एकान्तर हो जाता है। जो मिलता है, वह भी पौष्टिक नहीं मिलता। कुपोषण के कारण न जाने कितने लोग बीमार हो जाते हैं।

बहुत वर्ष पहले की घटना है। हम दिल्ली में प्रभुदयाल डाबड़ीवाल के घर में ठहरे हुए थे। डॉ. राममनोहर लोहिया आए। वार्तालाप के मध्य उन्होंने कहा–'मुनि नथमलजी! (आचार्य महाप्रज्ञ) अब मैं आचार्य तुलसीजी से मिलना चाहता हूं।'

मैंने कहा–'आपने तो यह कहा था कि आचार्य तुलसी से और सब मिल सकते हैं किन्तु डॉ. विधानचन्द्र राय और डॉ. लोहिया कभी नहीं मिलेंगे। आज कैसे परिवर्तन आया?'

लोहियाजी ने कहा–'आज मन में इच्छा हो गई कि आचार्य तुलसी से मिलना चाहिए।'

मैंने कहा–'अच्छी बात है।'

पूज्य गुरुदेव हिन्दू महासभा भवन में विराज रहे थे। मैं वहां गया। मैंने कहा–डॉ. लोहिया अब मिलना चाहते हैं। गुरुदेव को भी आश्चर्य हुआ। डॉ. लोहिया आए, बातचीत शुरू हुई। उन्होंने कहा–'महाराज! आप जो अणुव्रत का काम कर रहे हैं, बहुत अच्छा काम है। अब मैंने उसको समझ लिया है। अब आपको एक काम करना होगा। आप देखें–हिन्दुस्तान की स्थिति क्या है? उस समय लगभग ४०-५० करोड़ की आबादी थी। डॉ. लोहिया ने कहा–आज १०-१५ करोड़ लोग ऐसे हैं, जिनको दो जून खाने को नहीं मिलता। हम इस स्थिति को बदलना चाहते हैं। मैं चाहता हूं कि मुनि नथमलजी को आप गांवों में भेजें। हम सारी स्थिति का सर्वे करेंगे, अध्ययन कर आपको वास्तविकता बताएंगे। आपको स्वयं पता चलेगा–मैं जो कह रहा हूं वह कितना यथार्थ है।'

प्रभव बोला–'कुमार! इस पृथ्वी पर भोग की सामग्री दुर्लभ है। तुम स्वयं अनुभव करो कि यह भोग सामग्री मिलती कहां है?'

आज भी मनुष्य को सब कुछ कहां प्राप्त है? कितने ही लोग ऐसे हैं जिनको मकान सुलभ नहीं है। पूरा कपड़ा भी नहीं मिलता। अमेरिका जैसे सम्पन्न देश में भी हजारों-लाखों लोग फुटपाथ पर सोते हैं। उनके पास भी मकान नहीं हैं, उन्हें कपड़े भी पूरे नहीं मिलते। सर्दी में ठिठुरते हैं। खाने को भी पूरा नहीं मिलता।



'कुमार! भाग्य योग से तुम्हें सारी सामग्री मिली है। तुम्हारा इतना बड़ा मकान, इतनी सम्पदा, इस प्रकार की आठ मनोनुकूल अप्सरा तुल्य पत्नियां, इतना बड़ा परिवार–सब कुछ तुम्हें मिल गया, अब सिर में क्यों खुजलाहट आई है?'

'कुमार! तुम बातें तो बड़ी-बड़ी कर रहे हो पर लगता है कि सचाई को नहीं देख रहे हो? सुनो, मैं तुम्हें बहुत ही तत्त्व की बात बता रहा हूं।

दुर्लभं चैकतश्चैकं, वस्तुजातं स्वभावतः।
भोक्तुं शक्तिर्न कथंचित्, यथा सत्यपि भोजने।।

यह धन-वैभव एक आदमी के लिए दुर्लभ है। कुछ लोग ऐसे हैं, जिनके पास भोजन तो है पर खाने की शक्ति नहीं है। सब भोजन तैयार है, कोई कमी नहीं है पर खा नहीं सकता। कंठ में छाले हैं या भूख मंद हो गई, वह खा नहीं सकता।'

हमने भी इस सचाई को देखा है। पूज्य गुरुदेव दिल्ली में एक बड़े उद्योगपति के घर विराज रहे थे। एक दिन उनसे पूछा–'आप दिन भर फोन पर ही बैठे रहते हैं, भोजन कब करते हैं?'

'महाराज! जब समय मिलता है, कर लेता हूं।'

'कितना खाते हैं?'

'महाराज! एक लूखा फलका खाता हूं। उस अवधि में भी ५-१० बार फोन करना पड़ता है।'

उसने बहुत व्यथा भरे स्वर में कहा–'आचार्यश्री! क्या करूं? पास में सब कुछ है पर भूख नहीं लगती।'

'आचार्यश्री! कभी-कभी तो मुझे अपने ड्राइवर से ईर्ष्या होती है। वह दस-बारह रोटी खा जाता है और मैं एक पतला फुलका भी नहीं खा सकता। मेरे मन में कभी-कभी यह प्रश्न भी उठता है कि यह धन मेरे लिए है या इसके लिए है?'

सत्यपि भोजने–भोजन है पर खाने की शक्ति नहीं है।

'कुमार! दूसरी ओर की स्थिति भी तुम देखो।

परेषां भोजनं नास्ति, भोक्तुं शक्तिस्तु वर्तते।
द्वयं प्राप्य न भुंजीत, यः स दैवेन वंचितः।।

कुछ ऐसे आदमी भी हैं जिनमें खाने की शक्ति है पर उनके पास भोजन नहीं है। जिनके पास भोजन है, उनमें खाने की शक्ति नहीं है। यह विधि की विडम्बना और संसार की विचित्रता है किन्तु जिसको ये दोनों मिल जाये–खाने की शक्ति भी और भोजन भी–फिर भी वह नहीं खाता है तो मानना चाहिए–उसका भाग्य रूठ गया है, वह भाग्य से वंचित हो गया है।'

'कुमार! वह कितना मूर्ख आदमी है, जिसे भोजन भी मिला, भूख भी है और खाने-पचाने की शक्ति भी है फिर भी वह नहीं खा रहा है।'

यथा वा दानशक्तिश्चेत्, गेहे द्रव्यं न वर्तते।
अथ चेत् स्वगृहे द्रव्यं, दानशक्तिर्न जायते।।

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो दान देना तो चाहते हैं पर उनके घर में धन नहीं होता। कुछ लोग ऐसे हैं, जिनके घर में धन तो बहुत है पर दान देना नहीं चाहते। वे कृपण और दरिद्र हैं।

आचार्य भिक्षु ने एक प्रकरण में बहुत सुंदर लिखा–दरिद्र कौन? जिसके घर में धन है पर देता नहीं है वह दरिद्र आदमी है। यह दरिद्र की एक नई परिभाषा है। इस दुनिया में दोनों प्रकार के लोग मिलते हैं–कुछ लोग ऐसे हैं जिनके पास देने की शक्ति है पर धन नहीं है। कुछ लोग ऐसे हैं जिनके पास धन है पर वे देना नहीं चाहते। जिसे भाग्य से दोनों मिल जाये–देने की शक्ति भी और उदार हृदय भी–फिर भी जो नहीं देता, वह मूढ़ आदमी है।

'कुमार! मैं चाहता हूं कि तुम मूर्ख और मूढ़ मत बनो।'

एक चोर ने ऐसा उपदेश दिया कि कन्याएं और जम्बूकुमार अवाक् बन सुनते रहे।

प्रभव बोला–'कुमार! एक अंतिम बात मैं तुम्हें और कहना चाहता हूं, वह यह है–जिसके लिए लोग तपस्या करते हैं, वह संपदा तुम्हें प्राप्त है। तुम मुनि बनकर करोगे क्या? यह तुम मुझे समझा दो।'

यह कह कर प्रभव मौन हो गया। बहुत समर्थ भाषा में प्रभावी ढंग से प्रभव ने अपनी बात रखी।

जम्बूकुमार बोले–'प्रभव! तुम जिस भूमिका पर खड़े हो, उसमें तुम्हारी बात सही है। तुम अभी मोह की भूमिका पर खड़े हो, तुम्हारा धरातल अभी मोह का धरातल है। उस भूमिका पर खड़ा होकर कोई भी बोलेगा तो यही बात कहेगा। किन्तु मेरी भूमिका दूसरी है। मेरी भूमिका है वीतरागता की भूमिका, निर्मोह की भूमिका। मैं मोह की भूमिका से ऊपर उठ गया हूं इसलिए तुम्हारी बात मुझ पर लागू नहीं होती।'

'प्रभव! तुम कहते हो कि जिसके पास शक्ति है और जो भोग नहीं करता, वह मूढ़ है। मैं कहता हूं–जिसके पास शक्ति है और वह शक्ति का भोग में उपयोग नहीं करता किन्तु उन्नति के लिए उपयोग करता है वह मूढ़ नहीं होता, वह महान् होता है।'

'प्रभव! तुम जरा स्वयं को देखो। तुम्हारे पास कितनी शक्ति है पर तुम अपनी शक्ति का क्या उपयोग कर रहे हो? क्या तुमने नीति का यह वचन नहीं सुना?

विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्ति परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतद्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।।

प्रभव! शक्ति को पाना एक बात है और उसका सम्यक् उपयोग करना बिल्कुल दूसरी बात है।'

एक आदमी शक्ति का अच्छा उपयोग करता है और एक आदमी शक्ति का बुरा उपयोग करता है। एक आदमी ने विद्या पढ़ी, विद्वान् बन गया। उसने सोचा–मुझे ज्ञान आ गया। अब मैं सबको हरा दूंगा। वह घर पर आया और सबसे पहले अपनी पत्नी से विवाद शुरू कर दिया। पत्नी से पूछा–'बोलो, तुम क्या जानती हो?'



वह बोली–'मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूं।'

'तुमने पढ़ाई नहीं की तो क्या किया? मुझे ऐसी मूर्ख स्त्री नहीं चाहिए।'

विद्या विवादाय–विद्या क्या पढ़ी, घर में झगड़ा शुरू कर दिया।

एक आदमी को धन मिला। धन में इतना अहंकारी बन गया कि दूसरों को छोटा मानने लग गया। वह गरीब आदमी के सामने भी देखना नहीं चाहता। उसकी आंखें हमेशा ऊंची आकाश में लगी रहतीं। मारवाड़ी कहावत है–उसका मुंह टोडिये (ऊंट का बच्चा) की तरह ऊपर ही रहता है, नीचे जाता ही नहीं है।

शरीर की शक्ति, शस्त्र की शक्ति मिली। 'परेषां परिपीडनाय'–दूसरों को सताने के लिए वह शक्ति का दुरुपयोग करता है। अधिकार मिल गया, सत्ता मिल गई और दूसरों को सताता है। यह शक्ति का सम्यक् उपयोग नहीं है।

दूसरी श्रेणी के आदमी सज्जन होते हैं। उनकी विद्या **'ज्ञानाय'**–ज्ञान बढ़ाने के लिए होती है। वे अपना ज्ञान बढ़ाते हैं, दूसरों का ज्ञान बढ़ाते हैं। ज्ञान बढ़ाने के लिए विद्या का उपयोग होता है। वे धन का उपयोग अहंकार का पोषण करने के लिए नहीं करते। **'दानाय'**–दूसरों का सहयोग करने के लिए, दूसरों की समस्या को मिटाने के लिए होता है। **रक्षणाय**–वे अपनी शक्ति का प्रयोग दूसरों की रक्षा के लिए करते हैं।

'प्रभव! कितना अंतर है। एक का ज्ञान विवाद के लिए है और दूसरे का ज्ञान ज्ञान-वृद्धि के लिए। एक का धन अहंकार के लिए है और दूसरे का धन सहयोग के लिए। एक की शक्ति दूसरों को सताने के लिए है और एक की शक्ति दूसरों की रक्षा के लिए।'

'प्रभव! सज्जन और दुर्जन की प्रकृति में कितना अंतर है। मैं तो सज्जन की भूमिका से भी ऊपर की बात कर रहा हूं और वह है आत्मा की भूमिका, अध्यात्म की भूमिका।'

'प्रभव! तुम महावीर को जानते हो?'

'हां, जानता हूं। मैंने तीर्थंकर महावीर का समवसरण देखा है।'

'क्या तुमने महावीर की वाणी भी सुनी है?'

'नहीं।'

'प्रभव! महावीर ने कहा है–तुम अपनी शक्ति का उपयोग आत्मा की खोज में करो, सत्य की खोज में करो। **'अप्पणा सच्चमेसेज्जा'**–सत्य की खोज में स्वयं को लगाओ। **मेत्तिं भूएसु कप्पए**–सबके साथ मैत्री करो।'

'हां, यह बहुत सुन्दर उपदेश है।'

'प्रभव! तुम चोरी करते हो। क्या यह चोरी करना भी मैत्री है? तुमने क्या इस सत्य की खोज की है? दूसरों के घर धन आए तो उसे उठाकर ले जाना, दूसरों के प्राणों को लूटना....। आखिर तुम सिखाना क्या चाहते हो? तुम उपदेश देने में तो कुशल बन गये हो, पर पहले अपनी कमियों और दोषों को तो देखो।'

छलनी एक दिन सूई से बोली–'बहिन! तुम्हारा सब कुछ ठीक है पर तुम्हारे भीतर एक छेद है। इस छेद को मिटा दो तो तुम अच्छी बन जाओ।'



सूई हंसी, बोली–'माताजी! मुझमें तो एक छेद है। आपमें तो छेद ही छेद भरे हैं। मुझे उपदेश दो, उससे पहले अपने आपको तो देखो। अपने छेद तो मिटा लो।'

'प्रभव! तुम मुझे उपदेश दे रहे हो, सोचने की बात कह रहे हो पर तुम भी तो कुछ सोचो। तुम्हारी शक्ति का उपयोग कहां हो रहा है? दूसरों को सताने में हो रहा है या दूसरों की रक्षा में हो रहा है? तुम्हारे धन का उपयोग कहां हो रहा है? कोरा भोग में हो रहा है या समाज के लिए उसका सदुपयोग हो रहा है? तुम अनेक विद्याओं के जानकार हो, बहुत कुछ जानते हो पर तुम्हारे ज्ञान का उपयोग कहां हो रहा है?'

हर व्यक्ति यह सोचे कि मेरी शक्ति का उपयोग कहां हो रहा है? सबके पास शक्ति है, पर उसका उपयोग कहां हो रहा है? मोह को बढ़ाने में हो रहा है या मोह को घटाने में हो रहा है?

कर्मशास्त्र के दो शब्द हैं–औदयिक भाव और क्षायोपशमिक भाव। क्षायोपशमिक भाव है आत्मा का विकास और औदयिक भाव है आत्मा का अवरोध, आवरण और विकार। कहां हो रहा है हमारी शक्ति का उपयोग?

प्रभव ने सोचा था–मैंने जो बात कही है जम्बूकुमार एकदम बदल जायेंगे किन्तु जब जम्बूकुमार का प्रत्युत्तर सुना तो प्रभव का मस्तिष्क प्रकंपित हो गया। उसने सोचा–मैं किसको उपदेश देने लगा। मैंने समझा था यह १६ वर्ष का युवक है। यह मेरे प्रभाव में आ जायेगा किन्तु यह तो गुदड़ी में गोरख है। यह तो महान तत्त्ववेत्ता है, हर तथ्य को जानता है। प्रभव के विचारों में परिवर्तन आ गया। ऐसे ही तो आदमी बदलता है। जब एकपक्षीय बात सुनता है तब कुछ पता नहीं चलता। इसीलिए संतजन बार-बार कहते हैं–कोरी जीविका में मत रहो, जीवन को भी समझने का प्रयत्न करो। कोरे समाचार-पत्र को ही मत पढ़ो, महावीर की वाणी को भी पढ़ने का प्रयत्न करो। केवल क्रिकेट और विकेट का ज्ञान मत रखो, थोड़ा तत्त्वज्ञान भी करो।

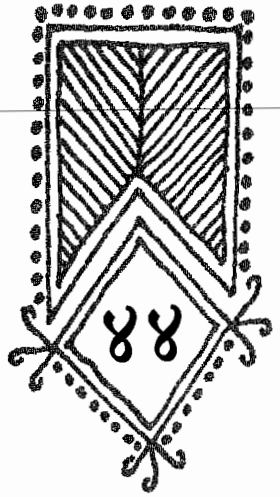
आज के बच्चों में क्रिकेट और विकेट का इतना आकर्षण और रस है कि उस रस के सामने रसगुल्ले भी फीके हो जाते हैं। यह एकपक्षीय आकर्षण जीवन के रस को सोख लेता है। इसीलिए संतजन कहते हैं–केवल एकपक्षीय चिन्तन मत करो। पदार्थ, शरीर और जीविका पर केन्द्रित मत बनो। एक संतुलन करो। उसको देखते हो तो अपने आपको भी देखो। उसको पढ़ते हो तो अपनी आत्मा को भी पढ़ो। ज्यादा न जानो तो कम से कम नौ पदार्थ, षड्द्रव्य, चार गति, पांच जाति आदि जो मुख्य-मुख्य बातें हैं उनको जानो, जिससे यह चिन्तन और अंकुश बना रहे कि मुझे गलत काम नहीं करना है, गलत रास्ते पर नहीं जाना है।



इन दिनों अनेक परिवार आए, उनके साथ अनेक बच्चे भी आए। मैंने पूछा–नमस्कार मंत्र याद है? कुछ ने कहा–याद है। कुछ ने कहा–याद नहीं है। मैंने माता-पिता से कहा–'यह तुम्हारी कमी है कि आठ वर्ष का लड़का हो गया और अभी तक नमस्कार मंत्र नहीं सिखाया।' जो इतनी भूल करते हैं, उन्हें बाद में पछताना भी पड़ता है। जो माता-पिता बच्चों को प्रारंभ से संस्कार नहीं देते, वे असंस्कारित बच्चे सबसे पहले उनके लिए ही समस्या बनते हैं। एक गृहस्थ के दोनों पक्ष बराबर होने चाहिए। संसार का पक्ष तो स्पष्ट है। उसके बिना काम नहीं चलता। धन के बिना भी काम नहीं चलता, पढ़ाई के बिना भी काम नहीं चलता पर दूसरे पक्ष को भुलाना हितकर नहीं होता। इन दिनों कुछ प्रोफेसर भी आए हुए हैं। पूज्य गुरुदेव से वार्तालाप हो रहा था। एक प्रोफेसर ने कहा–हम तो केवल वही पढ़ा रहे हैं जो पश्चिम से हमें मिला है। जब हम अध्यात्म की बात सुनते हैं तब ऐसा लगता है कि हम बहुत गलत काम कर रहे हैं। हमें दूसरे पक्ष को भी जानने का प्रयत्न करना चाहिए।

जम्बूकुमार ने अध्यात्म का पक्ष रखा तो प्रभव का दिमाग भी विचलित हो गया। जम्बूकुमार ने सोचा–आज अच्छा मौका मिला है। यदि प्रभव का मानस बदल जाए, वैराग्य का रंग चढ़ जाए तो कितना अच्छा हो जाए। मुझे इसकी ब्रेन वाशिंग करना है।

ब्रेन वाशिंग का कार्य सरल नहीं है फिर भी जम्बूकुमार ने मस्तिष्कीय धुलाई शुरू कर दी। क्या वह अपने प्रयत्न में सफल होगा? क्या दुर्दान्त चोर अपने दुष्कर्म से विरत हो सकेगा?





सारा संसार आकर्षण के आधार पर चल रहा है। आकर्षण के नाना रूप और नाना नाम बने हुए हैं। एक बच्चे का आकर्षण खेल-कूद में होता है, टॉफी खाने में होता है, बर्फ खाने में होता है। आजकल टी.वी. और क्रिकेट में होता है। एक युवक बन गया, उसके आकर्षण का केन्द्र बदल जायेगा। वृद्ध हो गया, उसका आकर्षण बिन्दु दूसरा हो जायेगा। जो भौतिकता में लिप्त है उसका आकर्षण पदार्थ के प्रति रहता है और वह पदार्थ को ही सब कुछ मानता है। जिसे सत्य उपलब्ध हो गया, उसका आकर्षण आत्मा के प्रति हो जाता है, अपने प्रति हो जाता है और वह अपने को देखने का प्रयत्न करता है। भिन्न-भिन्न रूप और भिन्न-भिन्न नाम बन गये। पदार्थ के प्रति आकर्षण होता है, उसका नाम हो गया 'मोह' अथवा 'राग'। धर्म के प्रति आकर्षण होता है अथवा आत्मा के प्रति आकर्षण होता है, उसका नाम हो गया—श्रद्धा, धर्मानुराग।

जम्बूकुमार का आकर्षण आत्मा के प्रति है। राजकुमार प्रभव—जो वर्तमान में चोर पल्ली का स्वामी है—का आकर्षण है धन के प्रति। वह इसीलिए जम्बूकुमार के घर में आया हुआ है।

प्रभव बोला—'कुमार! जिसके लिए तप तपा जाता है, वह सारा तुझे प्राप्त है और तुम उसे छोड़ रहे हो! मेरी दृष्टि में यह समझदारी नहीं है। अगर तुम थोड़े भी समझदार होते तो इतनी विशाल सम्पदा को छोड़कर मुनि बनने का मार्ग कभी नहीं चुनते।'

यह समस्या है आकर्षण भेद की। एक का आकर्षण है भोग में, एक का आकर्षण है अभोग में। इसीलिए प्रभव की बात जम्बूकुमार और जम्बूकुमार की बात प्रभव के समझ में नहीं आई। शराब पीने वाला शराब की महिमा गाता है—जब शराब पीता हूं तो मस्ती में चला जाता हूं। शराब नहीं पीने वाले को यह बात समझ में नहीं आती। शराब न पीने वाले की जो मस्ती है, वह शराब पीने वाले की समझ में नहीं आती। यह दूरी बनी रहती है, खाई पटती नहीं है।

एक व्यक्ति ने उपवास किया और एक व्यक्ति ने भोज में स्वादिष्ट भोजन किया। जो स्वादिष्ट भोजन करके आया, वह भोजन की प्रशंसा करने लगा—देखो, इतना स्वादिष्ट भोजन था। ऐसा था, वैसा था। यह

कहते-कहते मुंह में लार टपकती जा रही है। उसने उपवास का उपहास करते हुए कहा–तुम भूखे मर रहे हो, आज भोज में चलते तो कितना मजा आता।

उपवास में लीन व्यक्ति कहता है–मैंने उपवास किया। शरीर हलका और मन प्रसन्न रहा। मैंने ध्यान किया। ध्यान में आज इतना आनंद आया, वैसा जीवन में आज तक कभी नहीं आया।

उपवासी को भोजन के आनंद की बात और भोजन करने वालों को उपवास के आनंद की बात समझ में नहीं आयेगी। यह समझ और आकर्षण का बड़ा अन्तर है। इस अंतर को कैसे पाटा जाये?

तुलसी अध्यात्म नीडम् में प्रेक्षाध्यान का शिविर था। दसवां दिन। शिविर सम्पन्न हो गया। लोग जाने लगे। मुंबई के एक दम्पती मंगलपाठ सुनने आए। वे सुबक-सुबक कर रोने लगे। मैंने सोचा–क्या हुआ? मैंने पूछा–'भाई! क्या बात है? आप क्यों रो रहे हैं? क्या किसी ने आपका कुछ अपमान कर दिया? क्या हुआ?'

वे बोले–'नहीं, किसी ने कुछ भी नहीं किया, कुछ भी नहीं कहा।'

'तो फिर क्यों रो रहे हो? आंखों में आंसू क्यों आ रहे हैं?'

भाई बोला–'महाराज! मैं मोहमयी नगरी मुंबई में रहने वाला हूं। मेरे पास बहुत सम्पदा है। मेरी ६० वर्ष की उम्र है। जीवन में जितने पदार्थों का भोग किया जा सके, उतना मैंने किया है। कोई कमी नहीं है घर में। मैंने सब कुछ भोगा है पर इन दस दिनों में जितना आनंद आया, उतना कभी नहीं आया। जब-जब मैंने दर्शन केन्द्र पर अरुण रंग का ध्यान किया, उस समय मुझे जो आनंद मिला, जीवन में आज तक वैसा आनंद नहीं मिला। अब उस आनन्द को छोड़कर जा रहा हूं इसलिए मेरी आंखों में आंसू आ गए। ये कोई दुःख के आंसू नहीं हैं।'



यह कोई कल्पना नहीं, सचाई है, जीवन की घटना है। जिसने कभी ध्यान नहीं किया, क्या वह इस सचाई को स्वीकार करेगा? यह भूमिका का भेद समझ में अंतर पैदा करता है। इसीलिए जम्बूकुमार और प्रभव के बीच एक दूरी बनी हुई है। प्रभव ने कहा–'कुमार! तुम घर को मत छोड़ो, यहीं रह जाओ। तुम यह बात मान लो तो हम यह सारा धन यहीं छोड़ देंगे। एक कौड़ी भी तुम्हारी नहीं ले जाएंगे।'

जम्बूकुमार बोले–'प्रभव! मैं तुम्हें महावीर वाणी का एक श्लोक सुनाना चाहता हूं–

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा।
कामे पत्थेमाणा अकामा जंति दोग्गइं।।

तुम जिस काम-भोग को अमृत बता रहे हो, वे कामनाएं, वे इच्छाएं, वे काम और भोग शल्य हैं, व्रण हैं। अंतर्व्रण, जिसको आज कैंसर कहते हैं। एक शल्य भीतर में चुभ गया और भीतर में घाव हो गया। यह भीतर का घाव है। तुम इसे बहुत बढ़िया कह रहे हो। मैं तुम्हारी बात मानूं या महावीर की बात?'

'प्रभव! महावीर ने कहा–ये काम जहर तुल्य हैं। एक बार तो अच्छा लगता है पर आखिर परिणाम होता है–'मृत्यु'। कुछ सांप आसीविष होते हैं। उनकी दाढ़ में जहर होता है। कुछ सर्प दृष्टिविष होते हैं। एक मिनट तक सूरज के सामने देखा, उसे देखकर जैसे ही किसी मनुष्य के सामने दृष्टि फेंकेगा, आदमी वहीं ढेर हो जायेगा। ये काम भी वैसे हैं। इन कामों की इच्छा करने वाला दुर्गति में जाता है।'

'प्रभव! क्या काम भोगने वाला कोई भी व्यक्ति कभी तृप्त हुआ है? तुम यह प्रमाणित कर दो कि काम से कभी कोई तृप्त हुआ है तो मैं तुम्हारी बात मान लूंगा।'

'प्रभव! मैंने अपनी नवोढ़ा पत्नियों को काम की प्रकृति के बारे में बताया। इन्होंने काम की प्रकृति को जाना। तुम्हें भी मैं काम की प्रकृति का बोध कराना चाहता हूं। काम की प्रकृति क्या है?

आरम्भे तापकान्–जब तक वांछित चीज नहीं मिलती तब तक तनाव रहता है। जिसकी मन में चाह पैदा हो गई और वह मिलता नहीं है तब तक तनाव बराबर बना रहता है।

प्राप्ते अतृप्तिप्रतिपादकान्–जो चाहा, मिल गया तो अतृप्ति उत्पन्न हो जाती है। जैसे-जैसे सेवन करेगा वैसे-वैसे अतृप्ति और बढ़ती चली जायेगी।

अंते सुदुश्त्यजान्–अंत में छोड़ना बड़ा मुश्किल हो जाता है। एक ऐसा बंधन हो जाता है कि आदमी उसे छोड़ नहीं पाता।

किसी व्यक्ति ने एक बार नशा करना शुरू कर दिया, वह जानता है कि इससे नुकसान होता है, यह हानिकर है। कैंसर, अल्सर, हार्ट अटैक होता है, लिवर, फेफड़ा आदि खराब होते हैं–वह यह सब कुछ जानता है पर उसे छोड़ नहीं पाता। वह सुदुस्त्यज हो जाता है। प्रभव! काम की इस प्रकृति को तुम भी समझो।'

'कुमार! आप ठीक कह रहे हैं पर यह तो बताएं कि क्या इस कामना पर कोई नियंत्रण कर सकता है?'

'हां, प्रभव! यही मार्ग तो मुझे सुधर्मा स्वामी ने बताया है।'

'कुमार! काम पर नियंत्रण का कोई उपाय हो सकता है, यह मैं अभी भी नहीं समझ पा रहा हूं। यह शरीर की प्रकृति और यह सोचने का तरीका–कैसे नियंत्रण हो सकता है? सामाजिक जीवन में स्पर्धा, होड़ और ईर्ष्या इतनी प्रबल है कि काम पर नियंत्रण कैसे संभव है?'



'प्रभव! नियंत्रण करना सरल नहीं है। कोई आदमी यह चाहे कि मैं बैठा-बैठा उस पर नियंत्रण कर लूं तो यह कभी संभव भी नहीं है। किन्तु प्रभव! इस दुनिया में अपाय है तो उपाय भी है। निरुपाय कुछ भी नहीं है।'

'प्रभव! तुम जानते हो कि अरणि में से आग निकलती है?'

'हां, मैंने यह सुना है।'

'क्या तुमने उस मूर्ख लकड़हारे की कथा सुनी है जिसने अरणि की लकड़ी के टुकड़े-टुकड़े कर दिए पर वह आग उत्पन्न नहीं कर सका।'

'हां कुमार! मैंने वह कथा सुनी है।'

'प्रभव! किस प्रकार उपाय को न जानने वाले कठिहारे ने अरणि की लकड़ी का चूरा-चूरा कर दिया पर आग उत्पन्न नहीं कर सका और किस प्रकार एक समझदार आदमी ने अरणि के दो टुकड़ों का घर्षण किया और आग उत्पन्न हो गई।'

'कुमार! यह व्यक्ति के ज्ञान और समझ पर निर्भर है।'

'प्रभव! काम पर नियंत्रण का उपाय है। अगर तुम उपाय को जानो तो काम पर नियंत्रण किया जा सकता है। उपाय को जाने बिना इस दुर्दम काम पर नियंत्रण संभव नहीं है। उपायज्ञ होना जरूरी है।'

'प्रभव! दूध में से मक्खन निकाला जाता है, अरणी में से आग निकाली जा सकती है और मिट्टी में से सोना निकाला जा सकता है, वैसे ही कोई उपाय जाने तो काम पर नियंत्रण कर सकता है।'

आज का युग होता तो कहा जाता–जमीन में से पेट्रोल निकाला जा सकता है, गैस निकाली जा सकती है और भी अनेक तत्त्व निकाले जा सकते हैं। शर्त यही है कि उपाय को जानने वाला कोई वैज्ञानिक चाहिए।

'प्रभव! तुम अभी उपाय को नहीं जानते। यदि वह उपाय जानो तो नियंत्रण किया जा सकता है। नियंत्रण का उपाय महावीर ने किया था, गौतम ने किया था, सुधर्मा स्वामी ने किया है। सुधर्मा से ही मुझे नियंत्रण का मंत्र मिला है।'

'कुमार! कैसे संभव है यह? क्या तुम मुझे बताओगे?'

'प्रभव! काम नियंत्रण के लिए अपेक्षित है–इंद्रिय विजय प्राणायाम का प्रयोग। यह उपाय है काम विजय का। तुम इंद्रिय विजय प्राणायाम का प्रयोग करो, कामना पर तुम्हारा नियंत्रण हो जायेगा पर शर्त यही है कि तुम्हें रोज इसका अभ्यास करना होगा। तुम यह चाहो कि अभी नियंत्रण हो जाए तो यह संभव नहीं है। पर मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें प्रयोग कराऊंगा, उपाय बताऊंगा और एक दिन तुम स्वयं मुझे कहोगे–अब मेरा काम पर नियंत्रण हो गया है।'



'ओह!' प्रभव ने अपने मस्तक को दोनों हाथों से दबाते हुए कहा।

'प्रभव! तुम इस तथ्य को जानते हो–बकरी हमेशा चरती रहती है।'

'हां, उसकी भूख कभी मिटती नहीं है।'

'प्रभव! उसको भरपेट खिला दो। दो क्षण बाद उसके सामने चारा लाकर रख दो, वह फिर खाने लग जाएगी? कभी मुंह बंद नहीं करेगी।'

'हां, कुमार! यह उसकी स्वाभाविक प्रकृति है।'

'प्रभव! एक दिन एक राजा के मन में यह कल्पना आई–बकरी के सामने कोई खाने की चीज लाकर रखे और वह न खाये, यह कैसे हो सकता है? राजा ने अपने सांसदों से कहा–कोई भी व्यक्ति ऐसा प्रयोग कर दिखाए कि बकरी के सामने चारा रखा जाए और वह न खाये तो उसको मैं बड़ा पुरस्कार दूंगा।

पुरस्कार की बात से अनेक लोगों के मन में लालसा जाग गई। अनेक लोगों ने प्रयत्न किया पर सफल नहीं हुए। बकरी को खूब खिलाया, पिलाया फिर जैसे ही सामने चारा लाकर रखा तो उसका मुंह चारे पर चला गया।

एक व्यक्ति समझदार और अनुभवी था। वह बकरी को जंगल में ले गया। वहां जैसे ही बकरी चरने लगी, उसने उसके सिर पर एक डंडा जमा दिया। बकरी संभल गई। फिर आगे गई, चरने लगी और फिर एक डंडा जमा दिया। दो दिन तक दिन-रात ऐसा किया कि जैसे ही बकरी चरने लगती, वह उस पर डंडा जमा देता। मार खाते-खाते बकरी का दिमाग बदल गया। मनोविज्ञान की भाषा में कंडीशंड माइंड हो गया। अब बकरी को लगने लगा कि मैं चरूंगी और डंडा पड़ेगा। उसने चरना छोड़ दिया। दो दिन में प्रयोग सफल हो गया। वह उस बकरी को लेकर राजा के सामने आया, बोला–'महाराज! जो आप चाहते थे, वह हो गया है। यह बकरी तैयार है। अब आप इसको चराएं।'

राजा ने अपने सामने चारा मंगाया और बकरी को खुला छोड़ दिया। बकरी खड़ी है पर चारे की ओर मुंह नहीं डाल रही है। उसमें एक चेतना जाग गई, मस्तिष्क का वह प्रकोष्ठ जाग गया–खाने को जैसे ही मुंह खोलूंगी, डंडा तैयार है। वह कुछ क्षण तक खड़ी रही पर चारा खाने के लिए मुंह नहीं चलाया।

राजा ने कहा–'आश्चर्यम्–बड़ा आश्चर्य है। यह कैसे हुआ कि बकरी चर नहीं रही है!'

उसने कहा–'हो गया।'

'कैसे हुआ?'–विस्मय भरे स्वर में राजा बोला।

'महाराज! उपाय जानें तो सब कुछ हो सकता है।'

नहीं आज भी बीज विरल पर बोने वाला कोई-कोई।
आंसू का है मार्ग सरल पर रोने वाला कोई-कोई।।

'महाराज! आज भी बीज बोया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि आज उर्वरा समाप्त हो गई है। लोग कहते हैं–कलिकाल आ गया। कोई कलिकाल नहीं है। आज सतयुग भी चल रहा है। जो चाहता है उसके लिए सतयुग है और जो नहीं चाहता उसके लिए कलियुग। जिस व्यक्ति ने धर्म के मर्म को समझा है, उसके लिए सतयुग चल रहा है। जिसने नशा, व्यसन, बुराई को समझा है, उसके लिए सतयुग में भी कलियुग चल रहा है।'

राजा ने साश्चर्य पूछा–'यह कैसे हुआ?'

उसने अपना प्रयोग बताते हुए कहा–'राजन्! अगर नियंत्रण की शक्ति हाथ में रहती है तो सब कुछ बदला जा सकता है।'

राजा का विस्मय अब भी शांत नहीं हुआ। उसने फिर पूछा–'किया कैसे तुमने?'

'राजन्! जब-जब बकरी ने खाना चाहा तब-तब मैंने उसके सिर पर डंडा लगाया। उसके दिमाग में यह बात बैठ गई कि खाने को मुंह करूंगी और डंडा सिर पर पड़ेगा। उसका खाना छूट गया।'

'प्रभव! बस एक अंकुश अथवा डंडे की जरूरत है। तुम्हारी सारी कामनाएं बदल जाएंगी।'

धर्म और है क्या? धर्म है कामना पर एक अंकुश।

हयरस्सि गयंकुश पोयपडागा भूयाइं, इमाइं अट्ठारस ठाणाइं सम्मं संपडिलेहियव्वाइं भवई।

दशवैकालिक सूत्र की चूलिका में बतलाया गया है कि **हयरस्सि**–घोड़े के लिए लगाम, **गयंकुश**–हाथी के लिए अंकुश और **पोयपड़ागा**–पोत के लिए पताका के समान हैं ये धर्म चिन्तन के स्थान।

'प्रभव! इनको जरा समझो। अंकुश लगेगा तो हाथी मदोन्मत्त नहीं होगा। लगाम हाथ में है तो घोड़ा उच्छृंखल नहीं होगा। पताका ठीक चल रही है तो नौका डगमगाएगी नहीं। यह डंडा लगेगा तो बकरी चरेगी नहीं। अंकुश लगाते रहो, कामनाएं कम होती चली जाएंगी।'

'प्रभव! यह चिन्तन भी बना रहे–ये काम-भोग तनाव पैदा करने वाले हैं। ये आर्तध्यान पैदा करते हैं। जैसे सटोरिये, सट्टा करने वाले, सट्टा जब करते हैं तो इस प्रकार कहते हैं–इस बार इतना खाया, इतना लगाया। उनकी भाषा भी ऐसी ही है। एक बार सट्टा कर लेते हैं पर चौबीस घण्टा दिमाग में उसका तनाव बना रहता है, उसका चिन्तन छूटता नहीं है। बार-बार वही बात दिमाग में आती है, बहुत लोगों को सपना भी वही आता होगा। शायद इसीलिए प्राचीन जैन आचार्यों ने ब्याज को महारंभ और कृषि को अल्पारंभ बताया। आचार्य जिनसेन ने लिखा–ब्याज का धंधा है महारंभ और खेती करना है अल्पारंभ। यह बात मुश्किल से समझ में आती है पर यह बात ठीक है कि उसमें आर्तध्यान बहुत रहता है। जहां आर्तध्यान ज्यादा है वह महारंभ बन जाता है।

आर्तध्यान के अनेक लक्षण हैं। उनमें से एक लक्षण है–प्रिय का वियोग और अप्रिय चीज या व्यक्ति का संयोग। जब कोई प्रिय चला जाता है तब आर्तध्यान होता है। प्रिय की मृत्यु पर दो प्रकार की स्थितियां बनती हैं–या होता है आर्तध्यान या होता है वैराग्य। आर्तध्यान का भी यह बड़ा प्रसंग है। इतने दिन साथ रहे, अचानक सब कुछ चला गया। एक मिनट पहले साथ थे एक मिनट बाद कहां हैं–पता नहीं। धर्म की दृष्टि से देखें तो यह संसार का स्वरूप है। इतने दिन साथ रहे, साथ में खेले, कूदे, खाया-पीया, विनोद किया, सब कुछ किया और आज कहीं पता ही नहीं है। यह सचाई सामने आती है तो आदमी को मुड़ने का, जीवन को समझने का मौका मिलता है। इसलिए वैराग्य का भी बड़ा प्रसंग है। जो लोग इस प्रसंग में धर्म के संस्कार और वातावरण में आते हैं उन्हें आर्तध्यान से मुक्त होकर वैराग्य की ओर सोचना चाहिए। हम वैराग्य को बढ़ाएं तो जीवन बहुत अच्छा हो सकता है। इस आर्तध्यान पर धर्मध्यान के द्वारा नियंत्रण किया जा सकता है।



जम्बूकुमार उत्प्रेरक स्वर में बोला–'प्रभव! तुम तर्क की बात मत सोचो, अनुभव की वाणी सुनो। न जाने कितने आध्यात्मिक पुरुषों, तीर्थंकरों और गणधरों की यह अनुभव वाणी है–काम पर नियंत्रण हो सकता है। जब उस पर नियंत्रण हो गया तो उसका अंत भी हो सकता है, इसलिए प्रभव! तुम थोड़ा गहरे में जाकर चिंतन करो।'

जम्बूकुमार ने बहुत साफ बात बताई पर जब तक मोह का आवरण है, औदयिक भाव है, तब तक पूरी बात समझ में नहीं आती। जब तक क्षायोपशमिक चेतना नहीं जाग जाती, जब तक क्षायोपशमिक भाव प्रबल नहीं होता, उदय भाव की मलिनता दूर नहीं होती तब तक नकारात्मक प्रवृत्तियां कम नहीं होतीं। एक व्यक्ति चोरी करता है, नशा करता है। जब उसे यह कहा जाता है–चोरी करना बुरा है, नशा करना, लड़ाई-झगड़ा करना बुरा है तब उसका तर्क यह होता है कि सारी दुनिया में ऐसा चलता है, सब कर रहे हैं, कितने लोग व्यसनी हैं, कितने लोग संघर्ष, कलह और अपराध कर रहे हैं। क्या बुरा मेरे लिए ही है?

दिल्ली की घटना है। एक व्यापारी से किसी ने कहा–'तुम मिलावट करते हो। मिलावट करना कितना बुरा है?' वह बोला–'सारी दुनिया तो कर रही है। मैं अकेला नहीं करूंगा तो क्या दुनिया का उद्धार हो जायेगा? या तो पूरी दुनिया को छुड़ाओ अन्यथा मुझे अकेले को क्यों कह रहे हो?'

बुराई को त्यागने का उपदेश उसकी समझ में नहीं आता, उसकी चेतना नहीं बदलती। चेतना को बदलने के लिए उपाय का होना जरूरी है। जम्बूकुमार अभी भी प्रभव की ब्रेन वाशिंग में पूर्णतः सफल नहीं हुआ है।

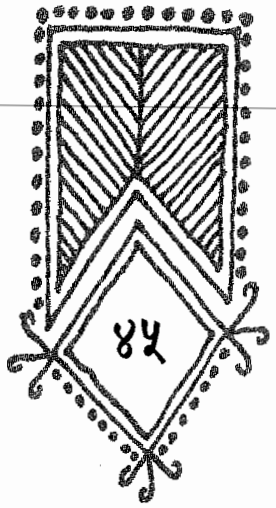
जम्बूकुमार बड़ी गंभीर वाणी से अपनी बात को समझा रहा है और प्रभव अवधानपूर्वक सुन रहा है। उसके मस्तिष्क पर कुछ प्रभाव डालने में सफल हुआ है इसलिए वह कुछ चिन्तन में अवश्य लीन हो गया।

नन्दी सूत्र का एक दृष्टांत है। एक आदमी आवे पर गया। आवे से निकला हुआ एक गर्म-गर्म घड़ा लाया। उसने उस पर पानी की एक बूंद डाली। वह कहां चली गई, पता ही नहीं चला। दूसरी बूंद डाली, उसका भी पता नहीं लगा। तीसरी डाली, चौथी डाली, एक-एक बूंद डालता रहा। डालते-डालते एक क्षण ऐसा आया कि घड़ा गीला हो गया।

प्रश्न हुआ–क्या पहली बूंद ने घड़े को गीला किया? या अंतिम बूंद ने? किसने किया? अगर यह कहा जाए कि अंतिम बूंद ने घड़े को गीला किया तो यह गलत होगा। यह कहा जाए कि पहली बूंद ने घड़े को गीला नहीं किया तो यह भी गलत होगा। एक-एक बूंद ऊपर गिरती गई, गिरती गई और गिरते-गिरते एक क्षण ऐसा आया कि घड़ा बिल्कुल गीला हो गया।

जम्बूकुमार प्रभव को समझा रहा है। अभी तो ऐसा लग रहा है कि गर्म घड़े पर पानी की एक बूंद गिरी है। पता नहीं, वह बूंद कहां चली गई?

क्या ये बूंदें निरन्तर गिरती रहेंगी? क्या एक क्षण ऐसा भी आएगा, जिस क्षण यह लगे–प्रभव का मानस-घट आर्द्र बन गया है?



काव्यशास्त्र का एक प्राणभूत तत्त्व है 'रस'। रस के बिना कविता अच्छी नहीं होती, काव्य का महत्त्व नहीं होता। काव्य पढ़ते-पढ़ते रसानुभूति हो जाए तो काव्य की सफलता। भोजन का भी प्राणभूत तत्त्व है रस। भोजन के प्रकरण में षड्रस–छह रस बतलाए गए हैं। सब रसों में प्रवर रस माना जाता है लवण। उसके बिना भोजन नीरस बन जाता है।

रस होना जीवन की सार्थकता मानी जाती है। एक सामाजिक प्राणी यह मानता है कि रस है तो जीवन अच्छा है। रसयुक्त जीवन सरस बन जाता है। जहां रस नहीं वहां कुछ भी अच्छा नहीं लगता। आदमी नीरस चीज को फेंक देता है।



प्रभव बोला–'कुमार! तुम तो रस को छोड़कर नीरस पथ की ओर जा रहे हो। जीवन में जो रस है उसे त्याग रहे हो। जहां कोई रस नहीं है, कोरा छिलका है, उस मार्ग को चुन रहे हो। यह कैसी समझदारी है? लगता है तुम्हारा चिंतन भी सही नहीं है, दृष्टिकोण भी सही नहीं है।'

'कुमार! ये धर्म के लोग कहते रहे हैं–संसार असार है। सब भोग किंपाक फल के समान हैं। सब इनकी दुहाई देते चले जा रहे हैं किन्तु क्या यह सत्य को झुठलाना नहीं है? एक आदमी भोग रहा है उसको रस आ रहा है, सुख मिल रहा है और तुम कह रहे हो कि यह दुःख है। क्या यह एकांगी दृष्टिकोण नहीं है? क्या यह मिथ्या दृष्टिकोण नहीं है? क्या यह सचाई को झुठलाने का प्रयत्न नहीं है?'

जम्बूकुमार बोले–'प्रभव! तुम शायद पूरी बात जानते नहीं हो। इधर-उधर की सुनी सुनाई बात के आधार पर तुम कुछ कह रहे हो। जो आदमी पूरी बात को नहीं जानता वह सचाई को पा नहीं सकता। पूरा चित्र सामने होना चाहिए।'

एक बार लाओत्से के पास कुछ लोग आए, बोले–'लाओत्से! हमने सुना है कि तुम्हारा घोड़ा भाग गया। यह बड़ी दुःख की बात है।'

लाओत्से महान् दार्शनिक संत था, जिसके नाम से ताओ धर्म चलता है। लाओत्से ने सहज गंभीर मुद्रा में उत्तर दिया–'भाई! पूरा चित्र सामने नहीं है।' इस कथन के साथ ही बात को समाप्त कर दिया।

संवेदना प्रकट करने आए लोग चले गए। लाओत्से ने उनकी संवेदना को भी नहीं स्वीकारा। पंद्रह दिन के अंतराल के बाद वह घोड़ा–जो भाग गया था–दस घोड़ों के साथ फिर आ गया। मित्रों को पता चला, वे फिर आए, बोले–'लाओत्से! तुम बड़े भाग्यशाली हो। घोड़ा अकेला गया था और दस को साथ ले आया।'

लाओत्से बोले–'पूरा चित्र सामने नहीं है।'

मित्र यह उत्तर सुनकर अवाक् रह गए। लाओत्से न दुःख के प्रसंग में दुःखी बने और न सुख के प्रसंग में सुखी। दो मास बाद लाओत्से का पैर जख्मी हो गया। मित्र आये और बोले–'लाओत्से! बहुत बुरा हुआ। तुम्हारा पैर जख्मी हो गया।'

लाओत्से ने वही उत्तर दिया–'पूरा चित्र सामने नहीं है।'

योग ऐसा मिला कि उन्हीं दिनों युद्ध शुरू हो गया। सेना में अनिवार्य भर्ती का आदेश हो गया। वे मित्र फिर आए, बोले–'लाओत्से! तुम बड़े भाग्यशाली हो। तुम्हारा पैर जख्मी हो गया। सेना में भर्ती होने का कोई प्रसंग नहीं आयेगा। हम सब लोगों को जाना पड़ेगा।'

लाओत्से फिर उसी भाषा में बोले–'पूरा चित्र सामने नहीं है।'

पूरा चित्र जब तक सामने नहीं होता तब तक किसी बात का निश्चित उत्तर दिया नहीं जा सकता। पूरा चित्र सामने हो तो आदमी पूरी बात कह सकता है और सुनने वाला पूरी बात सुन सकता है।

जहां इंद्रिय चेतना काम करती है वहां अधूरा चित्र सामने रहता है, पूरा चित्र कभी सामने नहीं आता।

जम्बूकुमार ने कहा–'प्रभव! तुम्हारे सामने भी पूरा चित्र नहीं है। तुम पूरी बात को नहीं जानते। धर्म के लोगों ने यह नहीं कहा कि सब कुछ झूठा है। उन्होंने सत्य को झुठलाया नहीं है। देखो, मैं तुम्हें महावीर का एक वचन सुनाता हूं–

खणमेत्त सोक्खा बहु काल दोक्खा, पगामदुक्खा अनिगाम सोक्खा।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणि अणत्थाणि हु कामभोगा।।

महावीर ने कितना स्पष्ट कहा है–**खणमेत्त सोक्खा**–सुख है, तृप्ति है, रस है पर क्षणिक है। अच्छा खाने को मिलता है सुख का अनुभव है। अच्छा देखने को मिलता है चक्षु को तृप्ति होती है।'

'क्या महावीर ने सचमुच ऐसा कहा है?'

'हां प्रभव! यह महावीर का वचन है। उन्होंने साथ में एक बात यह भी जोड़ दी–सुख है किन्तु क्षणभर के लिए।'

प्रसिद्ध राजस्थानी उक्ति है 'उतर्‌यो घाटी हुयो माटी।' कोई स्वादिष्ट वस्तु खाई, क्षण भर के लिए सुख आता है। कोई एक क्षण के बाद पूछे कि रस कैसा आ रहा है? उत्तर मिलता है–रस समाप्त हो गया, चला गया। एक क्षण के लिए सुख, दूसरे क्षण में सुख समाप्त।

'प्रभव! जो इंद्रिय भोग हैं उनकी एक प्रकृति यह है कि सुख क्षणिक होता है, क्षणभर के लिए होता है दीर्घकाल तक नहीं टिकता। आत्मिक सुख वह है जो चिरकाल तक रहता है और शाश्वत भी हो जाता है सदा बना रहता है।

दूसरी बात है–**बहुकाल दुक्खा**–कोई भी व्यक्ति यह अनुभव कर सकता है–इंद्रिय भोग में एक बार सुख मिलता है, तृप्ति होती है पर परिणाम में दुःख मिलता है।'

इंद्रिय भोग की किसी प्रवृत्ति को देख लें। एक व्यक्ति नशा करता है। एक बार तो ऐसा लगता है कि बहुत अच्छा लगा। जर्दा, पान पराग आदि खाते हैं। एक बार ऐसा स्वाद, ऐसी सुगंध और ऐसी मिठास दे देते हैं कि खाने वाले को बहुत अच्छा लगता है। पत्रिकाओं में विज्ञापन आते हैं तब खाने वाला मुंह फुलाकर ऐसा कहता है मानो इससे बड़ा स्वर्ग का सुख भी नहीं है। विज्ञापन की भाषा को पढ़ कर आदमी मोह में मुग्ध हो जाता है और सोचता है कि यह नहीं खाया तो जीवन का सार चला गया। नशा करते समय भी आदमी शायद यही सोचता है किन्तु वह यह नहीं सोचता कि इसका परिणाम कितना दुःखद होगा।

कुछ दिन पूर्व एक भाई आया। मैंने पूछा–'कैसे आये हो?'

'लड़के का ऑपरेशन करवाकर आए हैं।'

मैंने पूछा–'क्या हो गया?'

'महाराज! पान पराग बहुत खाता था। पेट में गांठ बन गई। ऑपरेशन करवाना पड़ा है।' अनेक लोग कहते हैं–जर्दा बहुत खाया और अब कैंसर हो गया।

'प्रभव! अध्यात्म के आचार्यों ने कभी सत्य को नहीं झुठलाया। उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि इंद्रिय भोग में सुख नहीं होता पर सुख के साथ उन्होंने दो बातें बतला दीं–सुख होता है क्षणिक और दुःख होता है लंबे समय तक।'



आदमी आवेश में होता है। कषाय का आवेश, क्रोध का आवेश प्रबल होता है तो गाली देता है, हाथ उठा लेता है, मार-पीट कर लेता है और सामने वाले व्यक्ति का खून निकाल देता है। उस समय उसे इन सब कृत्यों में भी रस आता है। किन्तु जब परिणाम आता है, पुलिस पकड़ लेती है, कारावास में बंद कर देती है, मुकद्दमे शुरू हो जाते हैं, कोर्ट में जाना पड़ता है तब सोचता है कि अरे, मैंने कितना बुरा काम किया। इंद्रिय भोग की भी यही स्थिति है। क्षणमात्र के लिए अच्छा लगता है और चिरकाल तक दुःख।

दूसरी बात है **पगामदुक्खा अनिगाम सोक्खा**–इन्द्रिय भोग से प्राप्त सुख और दुःख, दोनों की तुलना करो। दुःख तो है एक क्विंटल जितना और सुख है एक राई जितना। इतना अंतर है। सुख तो बहुत थोड़ा होता है और दुःख ढेर सारा हो जाता है।

संसारमोक्खस्स विपक्खभूया–संसार मुक्ति का विपक्ष है। इससे बंधन की मुक्ति नहीं होती, जन्म-मरण का चक्र नहीं मिटता। **खाणि अणत्थाणि हु कामभोगा**–ये काम-भोग अनर्थ की खान हैं। जैसे खान से धातु निकलती चली जाती है वैसे ही इन्द्रिय भोग से अनर्थ निकलते रहते हैं।

'प्रभव! हमने सचाई को झुठलाया नहीं है, सचाई को उजागर किया है। तुम देखो–इंद्रिय चेतना का परिणाम क्या होता है? सुख थोड़ा मिलता है दुःख ज्यादा मिलता है।'

आजकल छोटे-छोटे बच्चों की आंतें खराब हो जाती हैं, दांत खराब हो जाते हैं। माता-पिता आए, ने–'पांच-सात वर्ष का बच्चा है। आंत खराब हो गई इसलिए ऑपरेशन करवाया है।' हमने आश्चर्य से ा–'छोटे बच्चे की आंत खराब कैसे हुई?'

'महाराज! यह टॉफी ज्यादा खाता है इसलिए आंतें खराब हो गईं। डॉ. कहते हैं–आंतें भी खराब हैं, भी खराब हैं।' अब बच्चे को तो परिणाम का पता नहीं क्योंकि उसको टॉफी खाने में मजा आता है, । मिलता है और बड़ा अच्छा लगता है। आजकल इंद्रिय सुख पर ध्यान ज्यादा चला गया। छोटे बच्चे बात छोड़ दें, बड़े-बड़े समझदार लोग भी आइसक्रीम, बर्फ ज्यादा खाएंगे फिर चाहे श्वास की बीमारी दूसरी कोई बीमारी हो जाए। इंद्रिय चेतना को समझना बहुत जरूरी है। इंद्रिय को तृप्ति कितनी मात्रा में नी चाहिए, यह विवेक स्वास्थ्य के लिए भी जरूरी है।

जम्बूकुमार ने कहा–'प्रभव! तुम काम भोग में रस की जो बात कर रहे हो, उसे मैं अस्वीकार नहीं ता पर इस सचाई को तुम समझ लोगे तो तुम्हारा दृष्टिकोण बदल जाएगा। इस सचाई को समझाने के ए तुम्हें एक कहानी भी सुनाना चाहता हूं।'

ए सुख थोड़ा नै दुःख घणा, यांमै रीझ करी कुण खंत रै प्रभवा।
ए काम भोग न ऊसरै, सांभल एक दृष्टंत रै प्रभवा!

'कुमार! मैं कहानियां सुनने और सुनाने का शौकीन रहा हूं। कहानी से गहन बात भी सरसता से समझ आ जाती है।'

छोटे बच्चे नहीं, विद्वान लोग भी कहानी में बड़ा रस लेते हैं। पूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी बार अक्षय तृतीया के कार्यक्रम में आये थे। पूज्य गुरुदेव की सन्निधि में उन्होंने अपने वक्तव्य का प्रारंभ ों शब्दों में किया–'मैं महाप्रज्ञ साहित्य का प्रेमी पाठक हूं। उनकी कहानी के द्वारा ही आज अपनी बात कर रहा हूं।' राजनीतिज्ञ, बड़े-बड़े दार्शनिक सब लोग कहानी को काम में लेते हैं।

'प्रभव! एक आदमी जा रहा था। बहुत लोग साथ में थे। बहुत घना जंगल आया। रास्ता संकरा था। पथ नहीं था। लोग पगडंडियों पर चलते थे। एक आदमी ने जो पगडंडी ली, वह विपरीत दिशा में मुड़ वह अपने साथियों से बिछुड़ गया, अकेला रह गया। कुछ आगे चला तो देखा–एक जंगली हाथी ने आ रहा था। वह डर गया। सोचा–क्या करूं? सामने एक बड़ा पेड़ है। उस पेड़ पर चढ़ जाऊं।'

बहुत वर्ष पहले की बात है। साध्वी मोहनांजी (राजगढ़) असम की यात्रा कर रही थीं। वहां घोर ल में विशालकाय जंगली हाथी सामने आ गया। साध्वीजी वहीं खड़ी हो गईं। इधर साध्वीजी खड़ी हैं उधर हाथी खड़ा है। आमने-सामने दोनों खड़े हैं। दोनों मौन। साध्वी मोहनांजी इस विकट स्थिति में **न्य पुरुष जग जाए'** इस मंत्र समन्वित गीत के पदों को गुनगुनाने लगीं। यह गीत अभय का मंत्र बन ा। गीत की स्वर लहरियों ने पूरे वातावरण में अभय का संचार कर दिया। सस्वर गीत के शक्तिशाली पनों ने विशालकाय हाथी के अवचेतन मन को प्रभावित किया।

साध्वीजी मंत्रपूरित गीत के गायन में तन्मय बनी रहीं। न वह हाथी एक कदम आगे बढ़ा, न साध्वीजी क कदम पीछे रखा। कुछ क्षण बीते। हाथी कुछ पीछे हटा, दूसरी दिशा में मुड़ गया।

व्यक्ति डरता है तो डराने वाला उसके पीछे दौड़ता है। न डरे तो सामने वाला भी खड़ा रह जाता है। सामने सिंह आए, शिकारी कुत्ता आए। यदि व्यक्ति अभय है उससे आंख मिला लेता है, त्राटक कर लेता है तो सिंह कुछ भी नहीं कर पाता। यदि वह डर जाए, भागने लगे तो सिंह उसको मार डालता है।

जम्बूकुमार ने कथा सूत्र को आगे बढ़ाते हुए कहा–'प्रभव! वह व्यक्ति दौड़ा तो हाथी भी पीछे दौड़ा। व्यक्ति किसी तरह पेड़ पर चढ़ गया। हाथी मदोन्मत्त था। हाथी जब मदोन्मत्त होता है तब उसका रूप भयंकर होता है। उसने विशाल सूंड से वृक्ष को ऐसा हिलाया कि सारे वृक्ष को प्रकंपित कर दिया। जब अंधड़ आता है, वृक्ष प्रकंपित हो जाते हैं, गिर भी जाते हैं। जैसे ही हाथी ने वृक्ष को प्रकंपित किया, वह विशाल शाखा उसके हाथ से छूट गई। वह नीचे गिरा, गिरते समय एक शाखा पकड़ में आ गई। वह उस शाखा को पकड़कर नीचे लटक गया। नीचे था कुआं। कुएं में झांक कर देखा तो उसकी सांसें थम गईं। भयंकर जहरीले सांप मुंह बाए खड़े हैं।'

'प्रभव! इस स्थिति में वह शाखा से लटक रहा है। नीचे है कुआं और कुएं में है भयंकर सांप। वे निगलने के लिए तैयार हैं। एक ओर वह हाथी वृक्ष को हिला रहा है दूसरी ओर जिस शाखा को पकड़ रखा है, उस शाखा को दो चूहे कुतर रहे हैं। चारों ओर मौत की परिस्थिति।'

'प्रभव! इस मौत के प्रसंग में भी एक रस आ गया। जैसे ही हाथी ने वृक्ष हिलाया, मधुमक्खियों के छत्ते में छेद हो गया। शहद चूने लगा। उसका मुंह उसी छेद की ओर था। मुंह में एक रस की बूंद आकर गिरी।'

'अरे! यह तो बहुत मीठी है। कहां से आई यह बूंद?' उसने ऊपर देखा तो ऊपर से मधु की बूंदें टपक रही हैं। उसने सारे दुःख को भुला दिया। वह रस में आसक्त हो गया।



'प्रभव! तुम सोचो–क्या स्थिति है? इधर हाथी शाखा को हिला रहा है, नीचे कुआं है। कुएं में भयंकर सांप हैं। दो चूहे उस शाखा को कुतर रहे हैं, काट रहे हैं। क्या वह मृत्यु के मुख में नहीं है?'

'हां, कुमार! वह तो सचमुच मृत्यु की गोद में है।'

'प्रभव! इस भयंकर स्थिति में एक रस आ रहा है, शहद की बूंद आ रही है, मुंह में गिर रही है, वह उसका आस्वाद ले रहा है और बड़ा आनन्द मान रहा है।'

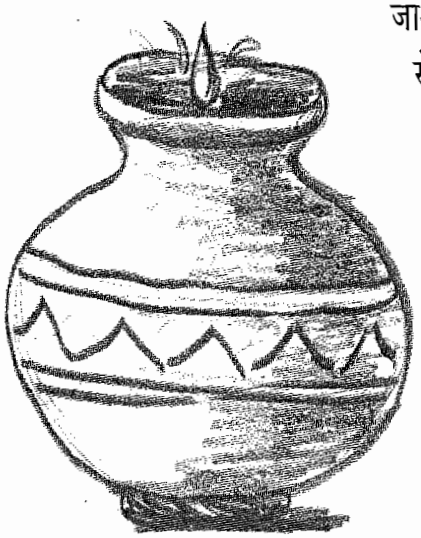
'प्रभव! योग ऐसा मिला कि एक विद्याधर विमान में बैठकर जा रहा था। उसने इस स्थिति को देखा। मन में संवेदना जागी, करुणा आई। विद्याधर विमान को नीचे लाया और बोला–'भैया! तुम बड़े संकट में हो, दुःख में हो। आओ, इस विमान में बैठ जाओ। मैं तुम्हें सकुशल पहुंचा दूंगा।'

वह बोला–'महाशय! आपने बड़ी कृपा की। मैं आपके सहयोग से इस विपत्ति से बच जाऊंगा पर तुम दो-चार क्षण ठहरो। शहद की एक-दो बूंद और आने दो। विद्याधर ठहर गया, कुछ क्षण बीते, उसने फिर कहा–अब चलो। वह पथिक बोला–'नहीं, एक बूंद और आने दो। बड़ा मीठा है, बड़ा रस आ रहा है।'

'प्रभव! वह मौत को भूल रस में इतना आसक्त हो गया कि विद्याधर का उसके जीवन को बचाने का स्वर भी आकर्षित नहीं कर सका। विद्याधर के मन में जो करुणा थी, वह सिमटने लगी। उसने सोचा–मैं

किस आदमी पर करुणा कर रहा हूं? क्या यह करुणा और संवेदना का पात्र है? विद्याधर का मन क्षुब्ध हो उठा–यह कितना मूर्ख आदमी है। ऐसा मूर्ख मैंने कहीं देखा नहीं। मौत के मुंह में तो खड़ा है और कहता है–एक बूंद और आने दो।'

बहुत सारे अज्ञानी लोग होते हैं, वे मरते समय भी कहते हैं–एक इंजेक्शन और लगा दो, एक दवा की पुड़िया और दे दो, एक ग्लूकॉज की शीशी और चढ़ा दो। वह यह नहीं सोचता कि मैं तो मर रहा हूं फिर इसका क्या करना है? काव्यशास्त्र में आता है–मरने वाला व्यक्ति कहता है वैद्यजी के पास जाओ और एक चित्रक-बटी ले आओ। खाने के बाद भोजन ठीक से पच जायेगा। लोग इस कथन का उपहास करते हुए कहते हैं–अरे भाई! तू स्वयं मर रहा है, दम तोड़ रहा है और चित्रक-बटी की याचना कर रहा है।



यह आस्वाद का इतना मोह होता है कि मरणासन्न व्यक्ति से भी छूटता नहीं है।

'प्रभव! किसी भी क्षण मौत के मुंह में गिरने वाला वह पथिक कहता है–एक बूंद और आने दो।'

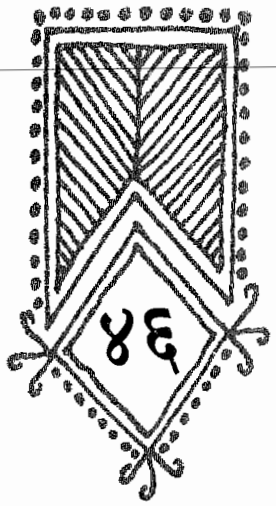
'विद्याधर की करुणा क्षोभ में बदल गई। उसने विमान को ऊपर उठाया और चला गया। पथिक ने आवाज भी दी–'अरे भाई! जाओ मत। मुझे लेकर जाओ।' किन्तु क्षुब्ध विद्याधर ने उसकी प्रार्थना को अनसुना कर दिया।

जैसे ही विद्याधर विमान को लेकर आगे बढ़ा, शाखा टूट गई। वह पथिक कुएं में गिरा और सांप का भोजन बन गया।

जम्बूकुमार ने कहा–'प्रभव! ये काम-भोग मधुबिन्दु के तुल्य हैं। मैं काम-भोग को, इंद्रिय तृप्ति को, इंद्रिय सुख को सर्वथा झुठला नहीं रहा हूं किन्तु तुम सोचो–यह थोड़ा सा सुख, एक बूंद का सुख कितने खतरों से घिरा हुआ है, कितनी समस्याओं से घिरा हुआ है। इस सुख के पीछे दुःख कितना है।'

जम्बूकुमार ने मधु-बिन्दु के दृष्टांत के द्वारा एक जीवन्त चित्र प्रस्तुत कर दिया। उसने कहा–'प्रभव! तुम भोग के क्षणिक सुखों को महत्त्व दे रहे हो पर उसके साथ जुड़ी जो समस्याएं हैं, खतरे हैं, दुःख हैं, उनको झुठला रहे हो। क्या यह उचित है?'

जम्बूकुमार के इस मर्मस्पर्शी कथन ने प्रभव को चिन्तन के लिए विवश कर दिया।



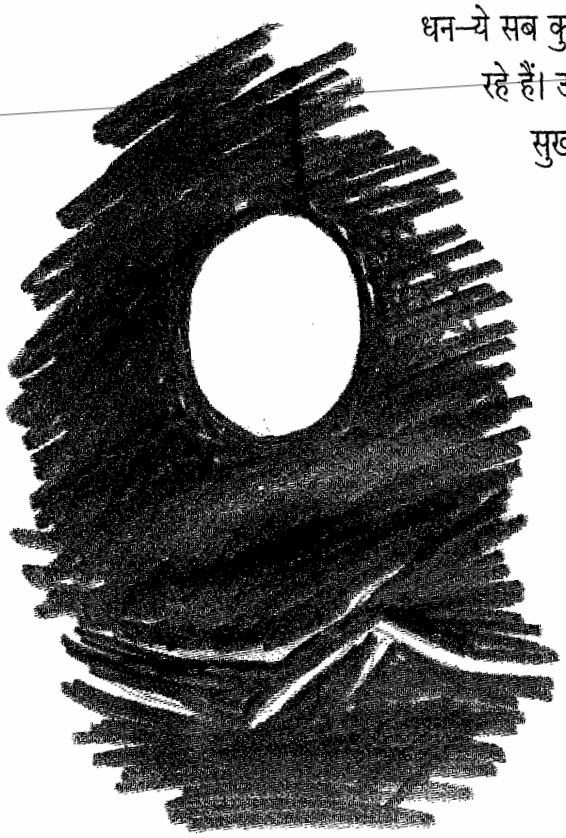


सबका विकास समान नहीं होता और सब दिशाओं में समान नहीं होता। विकास की साधन-सामग्री भी सबको समान नहीं मिलती। यह विविधता प्रकृति है, जगत् का स्वभाव है। एक व्यक्ति के मस्तिष्क का विकास अधिक होता है तो दूसरे व्यक्ति का मस्तिष्क बहुत कम विकसित होता है। एक व्यक्ति में सोचने की, समझने की शक्ति बहुत ज्यादा होती है और दूसरा समझाने पर भी नहीं समझ पाता। यह अंतर सदा रहा है। यह अंतर अपनी आंतरिक स्थिति से जुड़ा हुआ है। आंतरिक क्षमता किसकी कितनी है? जितनी क्षमता है, उतनी प्रगट होती है, शेष अप्रगट रह जाती है। इसलिए हमें हर व्यक्ति की आंतरिक योग्यता और उसके आधार पर होने वाले विकास को देखकर ही निर्णय करना चाहिए।

हम लोग स्थूल बात को देखते हैं, शरीर को देखते हैं, अवस्था को देखते हैं, बाहरी साधनों को देखते हैं किन्तु भीतर को नहीं जानते। बाहर में कौन बड़ा है और भीतर में कौन? बहुत ऐसे लोग हैं जो ६०-७० वर्ष के हैं किन्तु उनका व्यवहार बचकानापन जैसा होता है। कुछ अवस्था में १० वर्ष के हैं किन्तु उनका व्यवहार परिपक्व होता है। ऐसा लगता है कि जैसे कोई अनुभवी आदमी व्यवहार और बातचीत कर रहा है। इस आंतरिक योग्यता को देखना सहज नहीं है।

वे चक्षु बहुत दुर्लभ हैं, जिनसे हम भीतर को देख सकें। फोटोग्राफर फोटो खींचते हैं, रंगरूप का चित्र आता है। आज ऐसे यंत्र भी बन गये, शरीर के भीतर के हर अवयव का फोटो ले लेते हैं। व्यक्ति एक्स-रे के सामने जायेगा। एक्स-रे बाहर का फोटो नहीं लेगा, वह भीतर का फोटो ले लेगा। दो दृष्टियां हैं–एक कैमरे की दृष्टि, एक एक्स-रे की दृष्टि। माइक्रोस्कोप यंत्र का विकास इसलिए हुआ कि सूक्ष्म को देखा जा सके। एक ऐसी दृष्टि, जो बहुत दूर तक देख सके। टेलीस्कोप यंत्र के द्वारा हजारों-हजारों प्रकाश वर्ष की दूरी को भी देख सकते हैं। यह हमारी दृष्टि का विकास है।

जम्बूकुमार के सामने सूक्ष्म और दूरवर्ती–दोनों तथ्य स्पष्ट हैं। प्रभव अभी स्थूल को देख रहा है, आस-पास को देख रहा है। जब कोई व्यक्ति आस-पास को देखता है तब मकान, माता-पिता, परिवार,



धन–ये सब कुछ दिखाई देते हैं। जम्बूकुमार को ये दिखाई नहीं दे रहे हैं। उसको दिखाई दे रही है आत्मा, मोक्ष, आध्यात्मिक सुख।

दोनों का दर्शन भिन्न, दृष्टिकोण भिन्न और चिन्तन भिन्न। फिर भी वार्तालाप और संवाद जरूरी है।

जम्बूकुमार ने प्रभव को मधुबिन्दु का दृष्टान्त बताया और समझाया–देखो, रस कितना अल्प है और खतरा साथ में कितना प्रबल है।

प्रभव इस विषय में मौन हो गया, उसने कहा–'आपका यह कथन उपयुक्त है। बात कुछ समझ में आई है पर अभी भी मेरे तर्क समाप्त नहीं हुए हैं।'

'प्रभव! तुम अपने तर्क प्रस्तुत करो। मैं उन्हें समाहित करूंगा।'

'कुमार! एक बात मेरे समझ में नहीं आ रही है। वह तुम्हारे लिए भी चिन्तन का विषय है। तुम ध्यान दो–'हमारा साहित्य क्या कह रहा है? हमारी भारतीय संस्कृति क्या कहती है?'

प्रभव कहै जम्बूकुमार नै, माता-पिता दिक सहू कोई।
त्यांनै छोड़ चारित्त लिए, त्यांरी आछी गति किम होई।।

'कुमार! तुम्हारे माता-पिता जीवित हैं। माता-पिता को छोड़कर तुम साधु बनना चाहते हो। क्या तुम्हारी अच्छी गति होगी?'

'प्रभव! क्यों नहीं होगी?'

'कुमार! माता-पिता का ऋण होता है। कितना महत्त्वपूर्ण सूक्त है–मातृ देवो भव, पितृ देवो भव–माता-पिता की पूजा करो, उनका ऋण चुकाओ, फिर तुम जो चाहो, वह करना।'

'कुमार! अभी तो तुम्हारे सिर पर ऋण है। माता ने तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया है। पिता ने तुम्हें संरक्षण दिया है। क्या उन्होंने इतना श्रम इसलिए किया था कि तुम थोड़े बड़े होते ही उन्हें छोड़कर चले जाओ? कैसे उचित है ऋण चुकाए बिना दीक्षित होना? पहले कर्जा उतारो, उऋण बनो, फिर साधुपन की बात करो।'

'कुमार! तुम्हारी यह बात समझ में आ गई कि साधु बनना बहुत अच्छा है, वैराग्य बहुत अच्छा है र कम से कम जो पहले करणीय है वह तो करो। उसके बाद साधु बनने की बात करना। मैं यह मानता हूं ाता-पिता का ऋण चुकाए बिना अच्छी गति नहीं होती।'

सामाजिक संस्कृति या वैदिक संस्कृति में इस बात पर बहुत बल दिया गया–माता-पिता का ऋण चुकाओ।

जम्बूकुमार ने प्रभव की ओर उन्मुख होते हुए कहा–'तुम्हारा यह कथन ठीक है कि माता-पिता का कर्जा चुकाना चाहिए, फिर घर छोड़ने की बात करनी चाहिए। पर तुम मुझे बताओ–किसी के पुत्र पैदा हुआ। माता-पिता ने उसे पाला-पोसा। कोई आठ वर्ष की अवस्था में विदा हो गया, कोई सोलह वर्ष की अवस्था में दिवंगत हो गया। अब माता-पिता का कर्जा कौन चुकायेगा? उनकी सेवा कौन करेगा?'

'कुमार! यह तो विवशता की बात है।'

'विवशता तो है पर चला जाता है या नहीं?'

'हां, जाता तो है।'

'प्रभव! तुम प्रकृति का नियम, जगत् का नियम समझो। संबंध का भी योग होता है। एक संबंध कितने काल तक रहेगा, उसका भी एक नियम है। जन्म कुंडली को जानने वाला जान लेता है कि इतने वर्ष के बाद माता-पिता से वियुक्त हो जायेगा।'

'प्रभव! तुम पुराने इतिहास को देखो। एक व्यक्ति ने देवी की आराधना की। देवी प्रसन्न हुई। वरदान मांगने के लिए कहा। उसने कहा–संतान नहीं है, संतान चाहिए। देवी ने कहा–'संतान हो जायेगी पर आठ वर्ष बाद तुम्हारे घर में नहीं रहेगी।'

'प्रभव! इतिहास में कितनी ऐसी घटनाएं हैं। ऐसी स्थितियां बनी हैं कि पुत्र तो दे दिया पर अवधि भी बांध दी कि इतने वर्ष के बाद तुम्हारे घर में नहीं रहेगा। पुत्र होगा पर वह साधना में चला जायेगा, महान पथ पर चला जायेगा।'



'प्रभव! ऐसे पुत्र भी होते हैं, जो माता-पिता के पास रहते हैं और माता-पिता के लिए सिरदर्द भी बने रहते हैं। कभी माता-पिता को सुख नहीं देते। क्या तुम इस तथ्य को अस्वीकार कर सकते हो?'

'कुमार! कोई पुत्र ऐसा भी हो सकता है।'

'प्रभव! इस स्थिति में यदि कोई मुनि बनता है, त्यागी बनता है, घर को छोड़ता है तो यह कर्ज का प्रश्न क्यों उठता है?'

'कुमार! तुम्हारे जैसा समझदार, विनीत और विवेकसंपन्न व्यक्ति इस प्रकार का चिन्तन करता है, तब यह प्रश्न उठता है कि समझदार व्यक्ति ऐसा करेगा तो दूसरों को हम क्या कहेंगे?'

'प्रभव! मैं तुम्हारे इस तर्क से पूर्णतः सहमत नहीं हूं फिर भी मैंने यह सोचा है कि मैं माता-पिता का ऋण लेकर घर को नहीं छोड़ूंगा।'

प्रभव ने सोचा–काम ठीक हो गया। अब जम्बूकुमार दीक्षा नहीं लेगा। मेरा यह तर्क इसके गले उतर गया कि मैं ऋण चुकाये बिना नहीं जाऊंगा। प्रभव बोला–'कुमार! क्या मैं यह मान लूं कि आप भी घर में रहेंगे और मुझे भी घर छोड़ने की बात नहीं कहेंगे।'

'प्रभव! यह किसने कहा कि घर नहीं छोड़ूंगा, साधु नहीं बनूंगा।'

'कुमार! आप कह रहे हैं कि ऋण चुकाए बिना नहीं जाऊंगा और ऋण चुकाना है तो आपको माता-पिता की सेवा में रहना होगा।'

'प्रभव! कोई पुत्र मुनि बनता है और वह माता-पिता को धर्म की दिशा में अधिक प्रेरित करता है तो वह वास्तव में अपना ऋण चुकाता है। दूसरा कोई वैसा ऋण नहीं चुका सकता। माता-पिता अधिक हिंसा में जाते हैं, अधिक लोभ में जाते हैं और पुत्र चाहे सेवा करता है तो वह ऋण नहीं चुका पाता।'

पुराने जमाने में यह स्थिति थी–पिता हुक्का पीता। पुत्र सेवा में रहता। पिता कहता–बेटा हुक्का भरकर लाओ, चिलम लाओ, तम्बाकू लाओ, शराब लाओ। वह लाकर दे देता। जो इस प्रकार सेवा करता है क्या वह ऋण चुकाता है? वह पुत्र जो पिता को इस ओर प्रेरित करे–'पिताजी! हुक्का पीना हानिकारक है। चिलम पीना, शराब पीना ठीक नहीं है।' पिता को इन गलत आदतों से मुक्त करता है, उसका तो ऋण उतरता है अन्यथा ऋण कैसे उतरेगा?

कुछ ऐसे लोग सहायक होते हैं जो मनुष्य को अच्छे रास्ते पर ले आते हैं। एक मालिक को एक समझदार नौकर की जरूरत थी। खोजते-खोजते एक नौकर मिला। उसने कहा–मैं चाकरी करने को तैयार हूं। मालिक बोला–'तुम रह जाओ पर मेरी एक शर्त है कि मैं एक काम कहूं और तुम पांच काम साथ में करो। मैं उस नौकर को चाहता हूं जिसे एक काम का कहा जाए और पांच काम कर दे। मैं वैसा नौकर नहीं चाहता जिसमें अक्ल न हो, जो काम पूरा न करे।'

नौकर ने कहा–'मालिक! जैसी आपकी आज्ञा होगी, जैसा आप कहेंगे वैसा करूंगा। एक के साथ पांच नहीं, दस काम कर दूंगा।' मालिक ने उसे रख लिया।

मालिक को शराब पीने की आदत थी। दूसरे दिन सुबह नौकर से बोला–'जाओ, शराब की बोतल लाओ।'

'जो आज्ञा।' यह कह कर नौकर चला गया। घंटा भर बाद वापस आया, बोतल टेबल पर रख दी और कहा–'मालिक! लो यह शराब की बोतल।'

मालिक ने देखा–'दरवाजे के बाहर कोई खड़ा है। पूछा–बाहर कौन है?'

'मालिक! वैद्यजी हैं।'

'क्यों आए हैं वैद्यजी?'

'मालिक! आप शराब पीएंगे तो बीमार हो जाएंगे। वैद्य की जरूरत पड़ेगी इसलिए साथ में वैद्यजी को ले आया हूं।'

'ये शीशियां क्यों लाए हो?'

'यह दवाई है। आप बीमार होंगे तो दवाई आपको लेनी पड़ेगी।'

थोड़ी देर में नौकर एक कपड़े का थान ले आया। मालिक ने पूछा–'यह क्या है?'

'मालिक! यह कफन है। क्योंकि शराब पीने वाला जल्दी मरता है। अब बार-बार क्यों जाएं बाजार में। मैं साथ में कफन भी ले आया।'

मालिक ने दरवाजे की ओर देखा–बाहर चार-पांच आदमी भी खड़े हैं। फिर पूछा–'ये कौन हैं?'

'मालिक! ये अर्थी उठाने वाले हैं।'

'मालिक! मैंने एक साथ अनेक काम कर दिए–मैं शराब की बोतल ले आया, वैद्य को ले आया, दवाइयां भी ले आया, कफन भी ले आया और अर्थी उठाने वालों को भी ले आया। सब तैयार हैं। अब क्या आदेश है आपका?'

यह सुनते ही मालिक की आंखें खुल गईं। मालिक ने कहा–'शराब इतनी खराब होती है। मुझे अब इसे नहीं पीना है।'

एक नौकर भी ऋण चुका देता है। नौकर ने शराब छुड़ा दी। मालिक का ऋण चढ़ा नहीं, उससे पहले ही उतार दिया।

स्थानांग सूत्र में कहा गया–ऋण उतारने वाले तीन व्यक्ति हैं–

- नौकर मालिक का ऋण उतारता है, मुनीम सेठ का ऋण उतारता है।
- पुत्र पिता का ऋण उतारता है।
- शिष्य गुरु के ऋण से उऋण होता है।

एक पुत्र माता-पिता को धर्म का सहयोग देता है, धर्म के प्रति प्रेरित करता है–**धम्मस्स पडिचोइयाए भवइ**–वह माता-पिता के ऋण से उऋण होता है, उनका कर्जा चुका देता है।

शिष्य गुरु को सहयोग करता है, उनके ऋण से उऋण होता है।

आचार्य भिक्षु ने अंतिम समय में कहा था–'मैंने भारमलजी, खेतसीजी आदि संतों के सहयोग से सुखे-सुखे संयम की साधना की।' उनका ऋण उतर गया।



जम्बूकुमार ने कहा–'प्रभव! मैं इस तथ्य को जानता हूं कि ऋण कैसे चुकाया जाए, ऋण कैसे उतारा जाए। मैं पिता-माता का ऋण उतारे बिना दीक्षा नहीं लूंगा। मैं उन्हें धर्म की ओर प्रेरित करूंगा। अभी तो तुम देखो–क्या-क्या होता है। अभी तो मैं बैठा हूं, मेरी ये आठ नवपरिणीता पत्नियां बैठी हैं, जो अब बहिनें ही हैं। तुम सुबह होने दो, क्या-क्या रंग खिलता है।'

'प्रभव! तुम्हारा यह तर्क व्यर्थ है कि तुम माता-पिता का ऋण चुकाए बिना उनको छोड़ रहे हो, तुम्हारी अच्छी गति कैसे होगी? यदि माता-पिता के पास रहकर भी उनको धर्म की ओर प्रेरित नहीं करता तो न माता-पिता की गति अच्छी होती, न मेरी गति अच्छी होती। मैंने तो वह मार्ग चुना है जिससे मेरी गति भी अच्छी हो और माता-पिता की गति भी अच्छी हो।'

जम्बूकुमार ने बहुत मार्मिक बात कही–'प्रभव! मैं माता-पिता की सुख-सुविधा को नहीं देखता, मैं उनके कल्याण को देखता हूं।'

दो बातें होती हैं–प्रिय और हित या कल्याण। भारतीय चिन्तन में प्रेय और श्रेय–इन दो पर बहुत विचार किया गया। एक है प्रेय का मार्ग और एक है श्रेय का मार्ग।

'प्रभव! प्रियता सब जगह अच्छी नहीं होती। बहुत बार प्रियता हानि भी पहुंचा देती है।'

लड़का बीमार था। वैद्य को दिखाया। वैद्य ने नाड़ी देखकर निदान किया। वैद्य बोला–'देखो एक बात का ध्यान रखना। एक महीने तक इसको मिठाई बिल्कुल मत खिलाना। यदि भूल से भी मिठाई खिलाई तो यह मर जायेगा।'

मां वैद्य के परामर्श के अनुसार औषध देने लगी। बच्चा रोज मिठाई की मांग करता। मां उसे नहीं देती। एक दिन घर में मोदक आए। उस युग में मोदक बहुत प्रिय मिठाई थी। बच्चा बिलखने लगा, बोला–'मां! आज तो लड्डू देना होगा।' बहुत कहा, बार-बार कहा फिर भी मां ने लड्डू नहीं दिया। आखिर बच्चा रोने लग गया। मां को करुणा आ गई। पसीज गई मां। प्रेम तो था ही। प्रेय बलवान बन गया, हित और श्रेय गौण हो गया। मां ने सोचा–एक मोदक खा लेगा तो क्या होगा? वैद्यजी को पता थोड़े ही चलता है। मां ने लड्डू दे दिया। बच्चे ने लड्डू खाया। बीमारी ऐसी थी कि खाते ही प्रगट हो गई। मां घबराई, वैद्यजी को बुलाया। वैद्य ने नाड़ी देखकर कहा–इसने कोई मिठाई खाई है।

मां ने कुछ टालमटोल जवाब दिया। वैद्य ने कहा–'नाड़ी बोल रही है। तुम सच-सच बताओ–इसने मिठाई खाई है या नहीं?'

मां बोली–'हां, मिठाई तो खा ली, मैंने दे दी।'

'मैंने मनाही की थी।'

'हां, पर बच्चा बहुत रोने लग गया। मुझे प्रियता आ गई, प्रेम जाग गया और मैंने मोदक दे दिया।'

वैद्य ने कहा–'अब मेरे पास कोई उपाय नहीं है। अब इसे कोई नहीं बचा सकता।'

कुछ क्षण बीते, बच्चा मर गया।

प्रिय और हित–इस पर भारतीय दर्शन में बहुत चिन्तन हुआ है। जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, वैदिक दर्शन, उपनिषद्–सबमें प्रेय और श्रेय का विवेचन है। प्रारंभ में तो प्रेय का मार्ग अच्छा लगता है, अंत में श्रेय का मार्ग।

भगवान महावीर ने कहा–**अन्नाणी किं काही, किं वा नाहिई छेय पावगं।**

जो अज्ञानी है, वह यह नहीं जानता कि श्रेय क्या है और प्रेय क्या है?

जम्बूकुमार बोला–'प्रभव! तुम श्रेय की ओर ध्यान दो। जब तक श्रेय को नहीं जानोगे तब तक कुछ नहीं होगा।'

एक गुरु के दो शिष्य। दोनों गुरु की सेवा करना चाहते थे पर श्रेय का ज्ञान दोनों को नहीं था। दोनों ही उद्दंड प्रकृति के थे। केवल गुरु के प्रति अनुराग था। व्यक्ति श्रेय को नहीं जानता है तो प्रियता भी हानिकर हो जाती है।

दोनों शिष्य रात को गुरु की पगचंपी करते। दोनों का प्रेम बहुत था गुरु के प्रति। एक सोचता–दोनों पैरों की पगचंपी मैं कर लूं। दूसरा सोचता–मैं कर लूं। पगचंपी के लिए भी आपस में झगड़ पड़ते। गुरु ने कहा–ऐसे लड़ना-झगड़ना ठीक नहीं है। तुम विभाग कर लो–बाएं पैर का तुम करो, दाएं पैर का वह करे। दोनों की पांती कर दी। पांती से करने लगे तो पांती का संस्कार बन गया, चेतना वैसी बन गई। एक दिन रात को पगचंपी कर रहे थे। गुरु को नींद आ गई। नींद में बायां पैर दाएं पर आकर गिरा। बाएं पैर की पगचंपी करने वाले शिष्य ने एक चांटा जड़ा–मूर्ख कहीं का। मेरी ओर क्यों आया?

प्रेय में कितना अविवेक और कितना अज्ञान होता है। वह यह नहीं सोचता कि पैर है किसका? शायद बहुत सारे अनर्थ प्रीति के कारण होते हैं। प्रीति के साथ विवेक होना चाहिए, श्रेय का ज्ञान होना चाहिए।

प्रसिद्ध कथा है। बंदर को राजा से अनुराग हो गया। राजा ने उसे सुरक्षा में रख लिया। हाथ में तलवार दे दी। बंदर खड़ा रहता तलवार लिए। किसी को नहीं आने देता। एक दिन राजा के गले पर मक्खी बैठी। बंदर ने सोचा–राजा के गले पर मक्खी बैठ गई, यह ठीक नहीं है। तलवार का ऐसा झटका दिया कि मक्खी के साथ-साथ राजा की गर्दन भी चली गई।

कोरा प्रेय काम नहीं देता। जब तक श्रेय का दर्शन पुष्ट नहीं होता तब तक प्रेय हितकर नहीं होता।

जम्बूकुमार ने कहा–'जहां श्रेय का ज्ञान नहीं होता, कोरी प्रीति होती है वहां अनर्थ भी घटित होता है। प्रभव! तुमने देखा होगा–प्रीति के कारण पतंगा जलते हुए दीये के पास जाता है और आग में, दीये में झंपापात ले लेता है।'

'हां, जम्बूकुमार!'

'प्रभव! मछली को पकड़ने वाले जाल बिछाते हैं। कील के एक छोर पर मांस लगा देते हैं। मछली उस मांस के लोभ में आती है, मुंह लगाती है और वहीं फंस जाती है। कील उसके मुंह में चली जाती है, वह बंदी बन जाती है।'



अजानन् दाहार्तिं पतति शलभस्तीव्रदहने,
नमी नोऽपि ज्ञात्वा बडिशयुतमश्नाति पिशितं।
विजानंतोप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्,
न मुंचामः कामान् अहह गहनो मोहमहिमा।।

'प्रभव! तुम जरा ध्यान दो। कोरा प्रेय कैसे अच्छा होगा? पतंगे में प्रेय की चेतना प्रबल है। वह प्रियतावश अग्नि में झंपापात ले लेता है और भस्म हो जाता है। मछली मांसयुक्त कांटे पर अपनी जीभ लगाती है, फंस जाती है, कील चुभ जाती है और वह बंदी बन जाती है। इसलिए कोरा प्रेय आदेय नहीं है।'

'प्रभव! हम मनुष्य हैं। हमारे भीतर सोचने की शक्ति है। हम प्रेय को भी जानते हैं और श्रेय को भी। हम दोनों को जानते हुए भी केवल प्रेय में फंस जाते हैं, श्रेय पर ध्यान नहीं देते। **'अहह गहनो मोहमहिमा'**–यह मोह की गहन महिमा है।'

'प्रभव! मैं इतनी बात कहकर अपने वक्तव्य को विराम देना चाहता हूं कि हम मोह में फंसे हुए न

रहें। हमारी विवेक चेतना जागे। हम जान सकें कि यह प्रेय है और यह श्रेय है। हमारे लिए यह प्रिय है और यह कल्याणकारी है।'

'प्रभव! हम मनुष्य हैं। हमें विकसित मस्तिष्क मिला है। क्या हम श्रेय की उपेक्षा करें?'

'नहीं कुमार!'

'प्रभव! श्रेय का ज्ञान एक पशु को भी होता है।'

एक डॉक्टर ने भोज का आयोजन किया। बड़े-बड़े लोगों को बुलाया। भोज का समय। टेबल पर सारा भोजन सजा हुआ है। भोजन शुरू करने का क्षण सामने है। डॉक्टर खड़ा हुआ, बोला–'अतिथिगण! हम भोजन शुरू करेंगे। पर मैं एक बात पूछना चाहता हूं कि हम आदमी की तरह खायें या पशु की तरह?'

सबको बड़ा आश्चर्य हुआ, इतना पढ़ा-लिखा डॉक्टर कैसा प्रश्न कर रहा है? यह कितना विचित्र प्रश्न है कि हम जानवर की तरह खाएं या आदमी की तरह? सब एकदम अवाक् रह गए, उसकी ओर साश्चर्य एकटक देखने लग गये।

किसी ने पूछा–'आप क्या कहना चाहते हैं?'

'महानुभावो! मैं यह कहना चाहता हूं कि जानवर उतना ही खाता है जितनी भूख होती है। आदमी ऐसा व्यक्ति है कि सामने बढ़िया चीज आए तो दुगुना-तिगुना भी खा जाता है। इसलिए मेरा प्रश्न है आज हम आदमी की तरह खाएंगे या जानवर की तरह?'

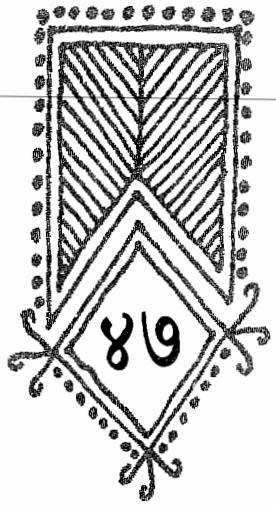
जानवर में भी अपने हित का थोड़ा ज्ञान है। वह ज्यादा नहीं खाता। आदमी में पता नहीं क्या संज्ञा है कि वह अच्छी चीज को खाता चला जाता है।

कुछ दिन पहले मैंने एक ऐसा कथन सुना जिस पर सहसा विश्वास नहीं होता। एक व्यक्ति ने बताया–दो आदमी बारात में खाने में बैठे और ६०० राजभोग खा गये। उस व्यक्ति ने कहा–'मैं वहीं खड़ा था। यह मेरा आंखों देखा सच है।' हम तो सोच भी नहीं सकते, कल्पना भी नहीं की जा सकती।

जिसको प्रेय का ही ज्ञान होता है, श्रेय का ज्ञान नहीं होता, अपने हित का ज्ञान नहीं होता, वह न जाने क्या-क्या कर डालता है।

'प्रभव! तुम माता-पिता का ऋण चुकाने की बात केवल प्रेय की दृष्टि से कर रहे हो। मैं उनके श्रेय को भी देख रहा हूं।' जम्बूकुमार ने अपना वक्तव्य बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत कर दिया।

प्रभव बोला–'कुमार! तुम्हारी बात समझ में आ गई। केवल प्रेय के आधार पर नहीं, श्रेय के आधार पर भी कर्ज चुकाना चाहिए। यह बात गले उतर गई पर मेरे प्रश्न अभी भी शेष हैं। जब तक मेरे प्रश्नों का समाधान नहीं होगा तब तक संतोष कैसे होगा?'





हर व्यक्ति अनेक आयामों में जीता है। पहले वह व्यक्ति है, फिर परिवार, समाज, प्रान्त और राष्ट्र। पहले व्यक्तिगत अवधारणा, फिर सामाजिक अवधारणा अथवा मान्यताएं होती हैं। फिर इसके सामने होती है धर्म की धारणा। सबसे पहले व्यक्ति के सामने समाज की धारणा आती है इसीलिए आर्यरक्षित ने आगम के भी दो विभाग कर दिये–लौकिक और लोकोत्तर। एक लौकिक मान्यता और एक लोकोत्तर सिद्धान्त। वैदिक साहित्य में स्मृतियां लिखी गईं, धर्मसूत्र लिखे गये, कल्पसूत्र लिखे गये। उनमें तात्कालिक समाज की मान्यताओं का चित्रण है। षोडश संस्कार माने गये। जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यंत होने वाले सोलह संस्कारों का निरूपण है। उन सामाजिक धारणाओं में एक धारणा है–**अपुत्रस्य गतिर्नास्ति**। प्रभव के मन में वही धारणा काम कर रही है और वही प्रश्न उठ रहा है।

प्रभव बोला–'कुमार! और सब बातें ठीक हैं पर एक प्रश्न अभी भी मन को कचोट रहा है। मैंने पढ़ा है, जाना है–**अपुत्रस्य गतिर्नास्ति**–जिसके पुत्र नहीं होता उसकी गति नहीं होती इसलिए गृहस्थ का सबसे पहला काम है कि वह संतान पैदा करे, फिर संन्यासी बनने की बात सोचे। तुम तो अभी नवविवाहित हो, तुमने संतान पैदा नहीं की है और पहले ही साधु बनने की बात कर रहे हो–यह कैसी बात है?'

उस युग में यह लौकिक या समाजशास्त्रीय मान्यता थी कि संतान पैदा करना जरूरी है। ये लौकिक मान्यताएं परिस्थिति के साथ बनती बिगड़ती हैं। जैसी परिस्थिति होती है समाज का वैसा सूत्र सामने आ जाता है। एक समय था महावीर का, बुद्ध का। जब श्रमण परंपरा का उत्कर्ष था तब साधु बनने की बात बहुत मान्य हो गई। साधुओं की संख्या भी बहुत बढ़ी। केवल भगवान महावीर के शिष्यों को देखें–१४००० साधु और ३६००० साध्वियां। कितनी बड़ी संख्या! एक फौज बन जाए छोटे राष्ट्र की।

बुद्ध के हजारों शिष्य, आजीवक के हजारों भिक्षु। श्रमण परम्परा में भी अनेक संप्रदाय थे। जैन, बौद्ध, आजीवक, सांख्य, परिव्राजक–सबके हजारों-हजारों की संख्या में संन्यासी। वैदिक संन्यासी भी काफी

संख्या में थे। ऐसा लगता है–लाखों-लाखों साधु बन रहे थे और साधु बनने की होड़-सी चल रही थी। बड़े-बड़े राजा, राजकुमार, श्रेष्ठीपुत्र–साधु बन रहे थे।

उस समय शायद समाजशास्त्रियों ने सोचा होगा–इस प्रकार साधु बनते चले जाएंगे तो समाज का क्या होगा? समाज कैसे चलेगा? तब यह धारणा सामने आई–बिना संतान पैदा किए कोई साधु न बने। एक सिद्धांत विकसित किया गया–**अपुत्रस्य गतिर्नास्ति**–पुत्र के बिना कोई गति नहीं होती। पुत्र का होना जरूरी है। आज विपरीत धारणा चल रही है। कहा जा रहा है–परिवार नियोजन करो। समाज की स्थिति, मान्यता सदा एक जैसी नहीं रहती। उस समय यह अभिप्रेरणा थी–संतान पैदा करो और आज यह अभियान चल रहा है–परिवार का नियोजन करो। हिन्दुस्तान में परिवार नियोजन पर बल दिया जा रहा है। चीन में यह नियम हो गया–एक संतान पैदा करें, पुत्र या पुत्री। स्थिति भी गड़बड़ा गई, थोड़ी समस्या भी पैदा हो गई। परिवार नियोजन की बात इसलिए चल रही है कि आबादी बहुत बढ़ गई है। ये सामयिक सिद्धांत होते हैं, शाश्वत नहीं। परिस्थिति के अनुरूप नीति निर्धारित हो जाती है। आज भी जिन राष्ट्रों में आबादी कम है वहां परिवार-संवर्धन को प्रोत्साहन मिल रहा है। कहा जा रहा है–संतान ज्यादा पैदा करो। जो ज्यादा संतान पैदा करेगा उसको पुरस्कार दिया जायेगा। ये सामयिक मान्यताएं, लौकिक मान्यताएं, समय-समय पर बनती-बदलती रहती हैं। उस समय यह मान्यता थी–संतान पैदा किए बिना गति नहीं होती। ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग में हर बात को धर्म के साथ जोड़ दिया जाता था। इसे भी धर्म के साथ जोड़ दिया गया–**अपुत्रस्य गतिर्नास्ति**–बिना पुत्र के गति नहीं होती।



प्रभव बोला–

पुत्र नहीं कोई थारै, कुण राखसी थांरौ नाम।
पुत्र बिना लक्ष्मी महलायता, ए सगळा छै बैकाम।।
पुत्र बिना घर सूनो अछै, दिश सूनी बिन बंधव जान।
हृदय सूनो मूरख हुवै, दालिद्री सर्व सूनो पिछान।।

'कुमार! जरा सोचो–तुम्हारे कोई पुत्र नहीं है, संतान नहीं है। मुझे यह बताओ–तुम्हारा नाम कैसे चलेगा?'

यह नाम का व्यामोह अथवा मोह प्रबल होता है। व्यक्ति सोचता है–मेरा नाम चलना चाहिए। आज तक किसी का नाम चला नहीं है फिर भी यह नाम का मोह बना रहता है। शायद यह मोह हर जगह काम कर रहा है। मकान पर भी लोग नाम देते हैं, जिससे पता चले कि किसने बनाया है। चबूतरा बनाते हैं तो उस पर भी नाम देते हैं।

हम एक दिन एक गांव में थे। प्रातःकाल का समय। मैं आसन कर रहा था। आसन के पश्चात् कायोत्सर्ग किया

तो सहज ही ध्यान ऊपर चला गया। मैंने देखा–पंखे के दो ताड़ियां हैं। मैंने सोचा–आज तक तो पंखे के तीन ताड़ियां होती थीं, क्या कोई नया आविष्कार हुआ है? बाद में कुछ लोग आये, मैंने पूछा–'भाई! क्या यहां दो ताड़ी के पंखे हैं?'

भाई बोले–'नहीं महाराज! ताड़ियां तो तीन ही हैं।'

'फिर दो कैसे?'

'महाराज! एक ताड़ी नाम लगाने के लिए गई हुई है। उस पर दाता का नाम लिखा जा रहा है।'

एक दिन एक भाई ने सुझाव दिया–'आप जिस पट्ट पर बैठते हैं, उसको ऐसे नहीं, उलटा कर दें।'

मैंने कहा–'क्यों?'

भाई बोला–'महाराज! इधर नाम है, अच्छा नहीं लगता।'

यह एक स्वाभाविक आकांक्षा रहती है कि मेरा नाम चलता रहे।

वस्तुतः नाम किसी का चलता नहीं है। कुरेदा गया नाम भी मिट जाता है। लिखे हुए नाम को कोई पढ़ता भी नहीं है। उस पर धूल जम जाती है फिर भी मन में एक आकांक्षा रहती है।

हम प्राचीन ग्रंथों को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि कितने बड़े-बड़े व्यक्ति हुए हैं। अनेक बहुत समर्थ और शक्तिशाली व्यक्ति हुए हैं पर आज उन्हें कोई जानता ही नहीं है। इतिहास में कोई दो सौ-चार सौ नाम आते होंगे पर उनको भी लोग नहीं जानते फिर भी एक आकांक्षा रहती है। उसी आकांक्षा के आधार पर प्रभव ने जम्बूकुमार से कहा–'कुमार! बताओ पुत्र के बिना तुम्हारा नाम कैसे चलेगा? पुत्र के बिना परिवार और संपदा का क्या होगा? ये इतने बड़े प्रासाद हैं, इतनी सम्पदा है, इन्हें कौन भोगेगा? किसके काम आयेगी यह संपदा? क्या किसी को गोद लोगे?'



जिनके पुत्र नहीं होता, वे किसी संबंधी अथवा प्रिय जन को गोद लेते हैं। यह दत्तक पुत्र भी नाम चलाने के लिए लिया जाता है।

'कुमार! बिना पुत्र के यह सारी संपदा निकम्मी है। तुम सोचते क्यों नहीं हो?'

'कुमार! इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब तुम मरोगे तो पिण्ड-दान कौन करेगा? अंजलि कौन देगा? चिता पर मुखाग्नि कौन लगायेगा? तुम अभी साधु बनने की बात कर रहे हो। पुत्र के बिना होगा क्या?'

'कुमार! पुत्र के बिना घर सूना होता है। जैसे भाई नहीं होता तो दिशाएं सूनी होती हैं, वैसे ही पुत्र के बिना घर सूना होता है। ज्ञान के बिना मस्तिष्क सूना होता है। दरिद्र के लिए पूरा संसार सूना होता है। उसे रहने को मकान नहीं मिलता। बीमार हो जाए तो दवा नहीं मिलती।'

आज तो दवा भी कितनी महंगी है। पूज्य गुरुदेव दिल्ली में विराज रहे थे। एक सेवानिवृत्त अधिकारी आया, बोला–'महाराज! मेरी कथा सुनिए। वस्तुतः वह कथा नहीं, मेरी व्यथा है।'

गुरुदेव ने पूछा–'बोलो, क्या हुआ?'

'गुरुदेव! मैं चालीस हजार रुपये चिकित्सा कराने के लिए लाया था। डॉक्टरों के चक्कर में फंस गया। डॉक्टर ने कहा–चेकअप कराओ, यह टैस्ट कराना है, यह टैस्ट कराना है। लंबी तालिका दे दी। सारे टैस्ट कराए। टैस्ट करवाने में ही मेरे चालीस हजार रुपए लग गये। अब मैं इलाज कैसे कराऊं?'

दरिद्री के लिए बड़ी समस्या होती है कि वह कैसे जीये और कैसे सुख शांति से रह सके? ठीक लेखा–दालिद्री सर्व सूनो संसार–उसके लिए सारा संसार सूना है, कहीं भी भरा हुआ नहीं है।

'कुमार! तुम सोचो, पुत्र के बिना क्या गति होगी? घर का आंगन सूना रहेगा। घर में बच्चा होता है, किलकारियां लगाता है तो घर भरा-भरा लगता है। उसके बिना तो सारा सूना-सूना लगेगा।'

मौलिक मनोवृत्तियों के अनेक वर्गीकरण मिलते हैं। मनोविज्ञान में जैसे १४ मौलिक मनोवृत्तियां मानी जाती हैं वैसे ही प्राचीन विद्वानों ने, भारत के समाजशास्त्रियों ने तीन एषणाएं मानीं–१. वित्तैषणा–धन की एषणा, २. सुतैषणा–पुत्र की एषणा, ३. लोकैषणा–यश की एषणा।

व्यक्ति संतान चाहता है। यह स्वाभाविक मौलिक मनोवृत्ति है। यह कोई कृत्रिम नहीं, कृत नहीं है। यह संस्कारगत धारणा है। आंतरिक आकांक्षा है कि वह संतान चाहता है और जब तक संतान नहीं होती तब तक बड़ी छटपटाहट होती है।

योगी आनंदघनजी की प्रसिद्ध घटना है। आनंदघनजी जैन परम्परा में प्रसिद्ध योगी संत हुए हैं। वे पहुंचे हुए साधक थे। एक बार आनंदघनजी मेड़ता में आये। मेड़ता बहुत प्रतिष्ठित नगर था। लोगों को पता चला–आनंदघनजी आए हैं। भीड़ इकट्ठी हो गई। अध्यात्म का ज्ञान पाने के लिए, बंधन मुक्ति के लिए भीड़ इकट्ठी नहीं हुई। लोगों को यह पता था कि आनंदघनजी स्वर्ण सिद्धि की विद्या को जानते हैं, उनके पास सोना बनाने की विद्या है। यह पता चल जाए तो कौन व्यक्ति वंचित रहेगा? हजारों-हजारों लोगों की भीड़ हो गई। व्यक्ति आते हैं, नमस्कार करते हैं और बोलते हैं–'महाराज! कृपा करो, आशीर्वाद दो।'

आनंदघनजी पूछते हैं–'क्या बात है?'

'महाराज! और कुछ नहीं, यह स्वर्ण सिद्धि की विद्या मुझे सिखा दो।'

अनेक व्यक्ति एकान्त में आते हैं और भावपूर्ण स्वर में प्रार्थना करते हैं–मुझे यह विद्या सिखा दो कि सोना कैसे बनता है? आनंदघनजी को परेशान कर दिया। दिन-रात केवल यही चर्चा। न आत्मज्ञान की चर्चा, न तत्त्वज्ञान की चर्चा, न आत्मा-परमात्मा की चर्चा। केवल एक ही चर्चा–महाराज! सोना बनाने की विद्या सिखा दें।

आनंदघनजी ने सोचा–क्या यह मेरा कोई धंधा है? वे फक्कड़ थे। वहां से चल पड़े। जंगल में चले गये। राजा को पता चला–आनंदघनजी आये थे और चले गये। राजा ने सोचा कि मैं भी वंचित रह गया। राजा जंगल में रानी को लेकर आया, नमस्कार किया। आनंदघनजी अपनी योगमुद्रा में बैठे थे। समय देखकर राजा बोला–'महाराज! कृपा करें।'

'भाई! क्या चाहिए?'

'महाराज! पुत्र नहीं है, उत्तराधिकारी नहीं है। यह राज्य कैसे चलेगा? कृपा करें।'

आनंदघनजी ने मन ही मन सोचा–क्या मेरी साधना का इतना ही उपयोग रहा है कि कोई सोना मांगे, कोई बेटा मांगे। आनंदघनजी बोले–'राजन्! यह मेरा काम नहीं है।'

राजा ने अनुनय की भाषा में कहा–'नहीं महाराज! आपको कृपा करनी होगी। आप राज्य को देखें, राज्य का क्या होगा।'

राजा का बहुत आग्रह रहा। आनंदघनजी ने सोचा–राजा को रुष्ट करना भी ठीक नहीं है। उन्होंने उपाय खोज लिया, कहा–राजन्! ठीक है, लाओ एक कागज लाओ। राजा ने कागज प्रस्तुत कर दिया। आनंदघनजी ने कागज की चिट पर कुछ लिखा और कहा–'महारानी के हाथ पर बांध दो।' उसी समय महारानी के हाथ पर बांध दिया। राजा चला गया। कोई योग था, पुत्र हो गया। पुत्र कुछ बड़ा हुआ। राजा महारानी और पुत्र के साथ आनंदघनजी के पास पहुंचे। राजा बड़ा प्रसन्न था, उसने कृतज्ञता भरे स्वर में कहा–'महाराज! आपकी बड़ी कृपा हो गई। आपने मुझे पुत्ररत्न दे दिया।'–यह कहते हुए राजा ने पुत्र को आनंदघनजी के चरणों में लुटाया।

आनंदघनजी बोले–'राजन्! किसने दिया?'

'आपने दिया है महाराज!'

'मैंने नहीं दिया।'

'महाराज! आप भूल गये। आपने ही तो वह मंत्र ताबीज बना कर दिया था। अब भी वह महारानी के हाथ पर बंधा हुआ है।'

'लाओ, उसे खोलो।'

राजा ने ताबीज खोला। आनंदघनजी ने कहा–'अब इसे पढ़ो।'

उस समय सैकड़ों लोग बैठे थे। मंत्री कागज की चिट को पढ़ने लगा, उसमें लिखा था–'महारानी के पुत्र हो तो आनंदघन को क्या और महारानी के पुत्र न हो तो आनंदघन को क्या?'

सब एकदम अवाक् रह गये। आनंदघनजी बोले–'राजन्! तुम समझे नहीं। मैंने पत्र में कुछ नहीं लिखा। मैंने कहा था–अगर तुम पुत्र चाहते हो तो इन पांच व्रतों को स्वीकार करो–

१. झूठ नहीं बोलूंगा।

२. जनता का शोषण नहीं करूंगा।

३. ज्यादा कर नहीं लूंगा।

४. शिकार नहीं करूंगा।

५. किसी के साथ असद्व्यवहार नहीं करूंगा।

मैंने कहा था–इन व्रतों का पालन करोगे तो हो सकता है कि तुम्हारी कामना सिद्ध हो जाए। तुमने पालन किया या नहीं?'

'हां, महाराज! मैंने अक्षरशः पालन किया।'



'राजन्! यह व्रतों का प्रभाव है। इससे तेरी भावना सिद्ध हो गई। मैं लेना-देना कुछ नहीं करता।'

व्यक्ति में सुतैषणा इतनी प्रबल होती है कि वह उसकी पूर्ति के लिए किसी के भी पास चला जाता है।

तीसरी एषणा होती है यश की। हर आदमी सुयश चाहता है–

विश्रुत प्रसंग है। राजा दिलीप के सामने सिंह खड़ा है। सिंह ने कहा–मैं तुम्हें मारूंगा। उसने कहा–मुझे कोई चिंता नहीं है। सिंह बोला–यदि तुम बचना चाहते हो तो नंदिनी गाय का पीछा छोड़ दो। यदि गाय के साथ-साथ चलते हो तो मैं तुम्हें मार डालूंगा। राजा दिलीप ने कहा–**'यश:शरीरे भव मे दयालु'**–बस तुम मेरे यश:शरीर पर दयालु रहो। तुम मुझे मार दो, कोई चिन्ता नहीं है पर मेरा यश का शरीर बना रहेगा।'

धन, पुत्र और यश–ये तीन एषणाएं हैं, तीन मौलिक मनोवृत्तियां हैं।

प्रभव ने कहा–'कुमार! पुत्र को पैदा किये बिना साधु बनना तुम्हारे लिए बिल्कुल उचित नहीं है।'

जम्बूकुमार बोला–'प्रभव! मैं तुम्हारी बात को जानता हूं। मैं सुतैषणा को भी जानता हूं। पुत्र के बिना क्या गति होती है, उसको भी जानता हूं किन्तु तुम मेरी बात सुनो।'

'प्रभव! तुम कह रहे हो पारिवारिक जीवन को ध्यान में रखकर, द्वैत के जगत् को ध्यान में रखकर। एक जगत् है द्वैत का जगत् और एक जगत् है अकेले का जगत्। दोनों का अपना-अपना दृष्टिकोण, अपना-अपना सिद्धांत और अपना-अपना विचार। मैं तुम्हारी बात का खण्डन करना नहीं चाहता, क्योंकि तुम जिस भूमिका पर खड़े होकर बात कर रहे हो, उसमें यह बिल्कुल सही बात है। द्वैत के जगत् में, दो के जगत् में अगर पुत्र नहीं है तो समस्या पैदा होती है। किन्तु मैं बात कर रहा हूं एक के जगत् की।'

'प्रभव! शरीर के साथ जुड़ा हुआ है तुम्हारा सिद्धांत और आत्मा के साथ जुड़ा हुआ है मेरा सिद्धांत।'

'प्रभव! आदमी जन्मता है तो अकेला आता है या बेटे को साथ लेकर आता है?'

'अकेला आता है।'

'मरता है तब अकेला जाता है या बेटे के साथ जाता है?'

'अकेला जाता है।'

'कोई भी कर्म करता है तो अकेला करता है या बेटे के साथ करता है?'

'अकेला करता है।'

'क्या सुख-दु:ख का संवेदन भी बेटे के साथ करता है।'

'नहीं, अकेला करता है।'

'प्रभव! यह संबंध एक लौकिक संबंध है, सामाजिक संबंध है।'

जम्बूकुमार के सामने आज के युग का चित्र नहीं था, पुराने समाज का चित्र था। आज का होता तो अमेरिका आदि राष्ट्रों की घटना बता देता कि बस बेटा थोड़ा बड़ा हुआ, आत्मनिर्भर बना और माता-पिता से अलग रहने लगा। फिर स्थिति यह होती है कि मिलने का भी सांसा है, मिलने का भी मौका नहीं मिलता।

सूत्रकृतांग सूत्र में कहा गया–**जाय पक्खा जहा हंसा पक्कमंति दिशोदिशि**–हंस के बच्चों को हंसिनी ने पाला-पोसा। जैसे ही पंख आये, **पक्कमंति दिशोदिशि**–वे दिशाओं में स्वतंत्र उड़ जाते हैं। पता ही नहीं कि जीवन में कभी मिलते हैं। सुख-दुःख भी नहीं पूछते। आज की सामाजिक व्यवस्था, पश्चिमी देशों की व्यवस्था भी लगभग ऐसी हो रही है। पुत्र थोड़ा बड़ा हुआ, विवाह हो गया, काम सीख गया फिर कहीं अलग जाकर रहता है। शायद मां-बाप को संभालता ही नहीं होगा, पूछता भी नहीं होगा। ऐसा भी होता है कि पुत्र के घर पिता आयेगा तो होटल में ठहरेगा। घर में ठहरने का अवकाश नहीं है। उस समय यह चित्र नहीं था। उस समय की सामाजिक स्थितियां, सामाजिक मान्यताएं दूसरी थीं।

जम्बूकुमार ने कहा–'प्रभव! मैं उस दुनिया की बात कर रहा हूं जहां यह सिद्धांत है–व्यक्ति अकेला पैदा होता है और अकेला मरता है। अकेला कर्म करता है और अकेला फल भोगता है।'

एक उत्पद्यते तनुमान् एक एव विपद्यते।
एक एव हि कर्म चिनुते सैककः फलमश्नुते।।

'प्रभव! तुम्हारी दुनिया अलग है और मेरी दुनिया अलग।'

'प्रभव! मैं तुम्हें एक घटना सुनाऊं। एक खाती बड़ा कुशल था। अपने कार्य में दक्ष था किन्तु उसे चोरी की लत लग गई। चोरी किए बिना रहा नहीं जाता। उसने सोचा–मैं अपने लड़के को भी यह कला सिखा दूं। एक दिन अपने पुत्र से बोला–'बेटा! चोरी में वही सफल हो सकता है, जो सेंध लगाना जानता है। यह कला मैं तुम्हें सिखाना चाहता हूं।'

बाप जिस धंधे में होता है, बेटा भी वह धंधा अनायास सीख जाता है। लड़का बोला–'अच्छा पिताजी!'



एक दिन रात्रि में वह खाती लड़के को साथ ले गया। एक सेठ का बड़ा घर देखा। वहां जाकर सेंध लगाई। सेंध लगाने से पूर्व खाती ने यह बता दिया–देखो, सेंध लगाओ तो पहले भीतर सिर नहीं, पैर रखो। अगर कोई जाग भी जाए, पकड़ भी ले तो पैर को पकड़ेगा, सिर को काट नहीं पायेगा।'

खाती ने पैर भीतर दिए। योग ऐसा मिला कि भीतर कुछ लोग जग गये। जागृत लोगों ने पैरों को पकड़ लिया, जंजीरों से बांध दिया।

खाती बोला–'आज तो मैं बंध गया हूं। तुम चले जाओ। तुम्हें पहचान न ले।' लड़का घर पर आया, आकर मां को जगाया। मां ने पूछा–'क्या सीख लिया सेंध लगाना?'

'मां! आज तो गजब हो गया। पिताजी पकड़े गये।'

'अरे कैसे हुआ?'

'सेठ के पुत्रों ने पिताजी के पैर भीतर से बांध दिए।'

मां बोली–'बेटा! जा, जल्दी जा, तलवार लेकर जा और पिता का सिर काट ले।'

'मां! ऐसा काम मैं नहीं कर सकता।'

'पुत्र! अगर तुम यह नहीं करोगे तो हम सब मारे जाएंगे।'

'ओह! मां।'

'बेटा! जल्दी कर।'

'बस सिर काट ले जिससे कोई पहचान न सके।'

'मां! बात तो तुम ठीक कह रही हो।'

वह तलवार लेकर गया। सामने फंसे खाती ने देख लिया, बोला–'अरे! क्या कर रहा है?'

'पिताजी! आपका सिर काटूंगा।'

'अरे! मेरा सिर काटेगा?'

'यदि नहीं काटूंगा तो हम सब मारे जायेंगे।'

खाती बहुत गिड़गिड़ाया, बोला–'सिर मत काट। सेठ बहुत दयालु है। छोड़ देगा।'

वह बोला–'मां ने कहा है कि पिता की कोई बात मत सुनना।'

बात करते-करते तलवार ऐसी चलाई कि धड़ अलग और सिर अलग। वह सिर लेकर घर आ गया।

जम्बूकुमार बोला–'प्रभव! तुम यह जानते हो कि जहां दो हैं, स्वार्थ है वहां क्या होता है? तुम्हारी दुनिया दूसरी है और मेरी दुनिया दूसरी है। मैं दूसरी दुनिया की बात कर रहा हूं।'

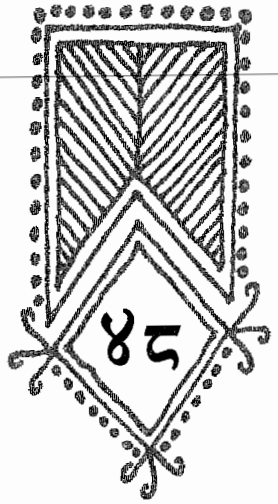
जम्बूकुमार प्रभव को अध्यात्म की गहराई में ले गया, एकत्व अनुप्रेक्षा का मर्म समझाया–'प्रभव! अकेलेपन को मत भूलो। दो में रहते हुए भी अकेले रहो।'

प्रभव का मन भी प्रबुद्ध हो गया, उसने कहा–'कुमार! तुम ठीक बात कहते हो। यह झूठा मोह है। व्यवहार में चलता है कि संतान पैदा करो पर जो इस भूमिका में चला जाए, उसके लिए यह कोई नियम नहीं है। यह बात समझ में आ गई।'

'प्रभव! अब बोलो, क्या परामर्श है।'

'कुमार! आपके निर्णय का औचित्य और आधार मेरी समझ में आ गया है। मेरे प्रायः प्रश्न भी समाहित हो गए हैं। अब केवल एक प्रश्न शेष रहा है। उसका समाधान होने पर मैं भी अपना संकल्प प्रस्तुत करूंगा।'





चिन्तन प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए। चिन्तन के द्वारा ही स्थिति का परिवर्तन होता है। पहले चिन्तन होता है, चिन्तन के बाद निर्णय होता है और फिर उसका व्यवहार होता है। कोई भी स्थिति बदलती है तो वह चिन्तन के द्वारा बदलती है। चिन्तन होता है तभी प्रश्न उठता है, जिज्ञासा होती है और समाधान भी मिलता है।



प्रभव ने कहा–'कुमार! मेरी एक जिज्ञासा प्रबल है। ये आठ बालाएं बैठी हैं। इनका क्या होगा?

जम्बूकुमार ने कहा–'जो मेरा होगा, वह इनका होगा और क्या होगा?'

'क्या ये भी तुम्हारे साथ दीक्षित होंगी?'

'हां।'

'कुमार! तुमने अवश्य ही इन्हें विवश किया है।'

'प्रभव! मैंने कोई जबर्दस्ती नहीं की। अब भी कोई बाध्यता नहीं है। यदि ये दीक्षित न होना चाहें तो घर तैयार है।'

प्रभव ने आश्चर्य की दृष्टि से सबके सामने देखा, सबके मन एक नई उत्सुकता लिए प्रतीत हुए। प्रभव बोला–'क्या आप दीक्षा लेना चाहती हैं?'

आठों नवयौवनाओं ने एक स्वर में कहा–'हम भी साध्वी बनना चाहती हैं।'

'क्या जम्बूकुमार ने तुम्हें साध्वी बनने के लिए विवश किया है?'

'नहीं महानुभाव! विवशता का कोई प्रश्न ही नहीं है। विवशता में कोई साधु-साध्वी बन नहीं सकता और बन जाए तो वह साधु कहलाता भी नहीं है।'

महावीर ने स्पष्ट कहा है–**अच्छंदा जे न भुंजंति न से चाइ त्ति वुच्चई।**

पराधीन होकर, विवश होकर जो भोगों को त्यागता है वह त्यागी नहीं कहलाता।

साहीणे चयइ भोए से हु चाइत्ति वुच्चइ।

जो स्वाधीन होकर अपनी स्वतंत्र इच्छा से भोग का त्याग करता है वह साधु होता है।

'महानुभाव! हम अपनी स्वतंत्र इच्छा से साध्वी बन रही हैं।'

नवयौवनाओं के हावभाव, मनोभाव और मनोबल को देखकर प्रभव को आश्चर्य हुआ। प्रभव बोला–'कुमार! इन सबको तुमने क्या घूंटी पिला दी? कैसे बदला इनको?'

'प्रभव! मैं चमत्कार में विश्वास नहीं करता। मैंने कोई जादुई डंडा नहीं घुमाया। मैंने इनकी चेतना को जगाया है।'

सबसे बड़ी बात है किसी व्यक्ति की चेतना को जगा देना। जब चेतना जग जाती है, तब किसी को कुछ कहने की जरूरत नहीं रहती। अपने आप सारा काम ठीक होता है।

'कुमार! कैसे जगाया तुमने?'

'प्रभव! मैंने इनको जन्म और मृत्यु का रहस्य समझाया, सुख और दुःख का रहस्य समझाया। प्रेय और श्रेय का रहस्य समझाया, ब्रह्मचर्य का रहस्य समझाया और ये अपने आप तैयार हो गईं।'

'प्रभव! जब कोई रहस्य समझ लेता है तो तैयार हो जाता है।'

आचार्य भिक्षु मांढा से विहार कर कुशलपुर की ओर जा रहे थे। मार्ग में कुछ अपशकुन हुए इसलिए उन्होंने दिशा बदल दी। वे नीमली के मार्ग पर आ गए। मुनि हेमराजजी उस समय गृहस्थ अवस्था में थे। वे भी उसी दिशा में जा रहे थे। वे कुछ आगे थे और आचार्य भिक्षु कुछ पीछे चल रहे थे। आचार्य भिक्षु ने आवाज दी–'हेमड़ा! हम भी आ रहे हैं।'

आचार्य भिक्षु की पुकार सुन हेमराजजी एक वटवृक्ष के नीचे रुक गए। मारवाड़ यात्रा में हमने भी उस वटवृक्ष को अनेक बार देखा है। आचार्य भिक्षु के वहां पहुंचते ही हेमराजजी ने वंदना की।

आचार्य भिक्षु ने कहा–'हेमड़ा! आज हम तुम्हारे लिए ही आए हैं।'



हेमराजजी–'स्वामीनाथ! भले पधारे।'

आचार्य भिक्षु–'हेमड़ा! साधुपन लूंगा, साधुपन लूंगा–इस प्रकार ललचाते हुए तीन वर्ष हो गए। अब तू पक्की बात कर।'

'स्वामीजी! साधुपन स्वीकार करने का विचार पक्का है।'

'मेरे जीते जी लेगा या मरने के बाद?'

यह बात हेमराजजी को बहुत अप्रिय लगी। वे बोले–'स्वामीजी! आप ऐसी बात करते हैं। यदि आपको शंका हो तो मुझे नौ वर्ष बाद अब्रह्मचर्य सेवन का त्याग करा दें।'

'तुम्हें त्याग है'–इस प्रकार त्याग करवाकर आचार्य भिक्षु बोले–'तुमने ये नौ वर्ष विवाह करने के लिए ही रखे हैं। इसमें से एक वर्ष तो ब्याह करने में लग जाएगा।'

'हां, स्वामीनाथ! इतना तो लग सकता है।'

'शेष बचे आठ वर्ष। उसमें भी स्त्री एक वर्ष तक अपने पीहर में रहेगी।'

'हां, स्वामीनाथ!'

'शेष बचे सात वर्ष। तुम्हें दिन में अब्रह्मचर्य सेवन का त्याग है।'

'हां, स्वामीनाथ!'

'शेष बचे साढ़े तीन वर्ष। तुम्हें पांच तिथियों में अब्रह्मचर्य का त्याग पहले से है।'

'हां स्वामीनाथ!'

'शेष बचे लगभग दो वर्ष चार मास'–आचार्य भिक्षु ने इस प्रकार काल को समेटते-समेटते प्रहरों और घड़ियों का हिसाब कर बताया–'हेमड़ा! नौ वर्ष में अब्रह्मचर्य सेवन का काल बचा केवल छह मास।'

'हां, स्वामीनाथ! आप ठीक फरमा रहे हैं।'

'हेमड़ा! विवाह के बाद संतान को जन्म देकर यदि पत्नी मर जाती है तब सारी आपदा स्वयं के गले पर आ जाती है। व्यक्ति दुःखी हो जाता है। फिर साधुपन स्वीकार करना कठिन हो जाता है।'

'हां, स्वामीनाथ!'

'हेमड़ा! इसलिए तुम हाथ जोड़ आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करो।'

मुनि खेतसीजी आचार्य भिक्षु के पास खड़े थे, उन्होंने भी प्रेरणा दी–'हाथ जोड़ो और त्याग कर लो।'

मुनि हेमराजजी ने हाथ जोड़े तब आचार्य भिक्षु ने पूछा–'क्या तुम्हें ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करा दूं?'

हेमराजजी बोले–'स्वामीनाथ! स्वीकार करा दें।'

आचार्य भिक्षु ने पंच पदों की साक्षी से अब्रह्मचर्य व्रत का त्याग करवा दिया। मुनि हेमरामजी की दीक्षा का पथ प्रशस्त हो गया।

मुनि हेमराजजी दीक्षा से पूर्व शादी करना चाहते थे और जम्बूकुमार शादी करना ही नहीं चाहता था। जम्बूकुमार की पत्नियां उसे अपने मोहपाश में बांधना चाहती थीं पर जम्बूकुमार ने उन्हें ब्रह्मचर्य का रहस्य समझा दिया।

बहुत लोग मृत्यु के रहस्य को नहीं जानते। जब नचिकेता यम के पास गया तब यम ने कहा–'तुम कुछ मांगो।' नचिकेता छोटा था अवस्था में। उसने कहा–'मुझे मृत्यु का रहस्य समझाओ।'

यम ने कहा–'यह बड़ा गहन विषय है। तुम इसको छोड़ दो, और जो चाहो सो मांग लो।'

उसने हठ पकड़ लिया–'मैं और कुछ नहीं मांगूगा, मुझे तो मृत्यु का रहस्य समझाना होगा।'

बड़ा जटिल है मृत्यु के रहस्य को समझना और समझाना।

'प्रभव! मैंने इनको मृत्यु का रहस्य समझा दिया और साथ-साथ जीवन का रहस्य भी समझा दिया।'

'प्रभव! मैंने कविता की इस भाषा में यह रहस्य नहीं समझाया–

सुख-दुःख क्या है मनोभावना, जिसने जैसा कर माना।
मधुकर ने अपने मरने को था अनंत सुखमय जाना।

मैंने यथार्थ की भाषा में महावीर वाणी के द्वारा समझाया।'

'प्रभव! महावीर ने कहा है–**जे निज्जिण्णे से सुहे**–जितना-जितना आत्मशोधन, जितनी-जितनी निर्जरा, वह है सुख और शेष सारा है दुःख।'

'प्रभव! लोग कहते हैं–खाने में बड़ा सुख मिलता है। वस्तुतः व्यक्ति खाता क्यों है? भूख क्या है? **जठराग्निजा पीड़ा**–भूख का अर्थ है जठराग्नि से उत्पन्न होने वाली पीड़ा। जब वह पीड़ा पैदा होती है, आज की बोलचाल की भाषा में जब पेट में चूहे कुलबुलाते हैं, चूहे लड़ने लग जाते हैं। वह जठराग्नि की वेदना है, कष्ट है उसको शांत करने का उपाय है भोजन। भूख लगे तो भोजन कर लो, जिससे वह पीड़ा एक बार शांत हो जाए। वह भी पूर्णतः शांत नहीं होती। एक बार भोजन किया, भूख शांत हुई और उसी क्षण से फिर भूख लगनी शुरू हो गई। २-४ घंटा बीतते हैं, फिर भूख लग जाती है। आयुर्वेद के आचार्यों ने कहा–एक बार भोजन करने के बाद साढ़े तीन घंटा तक कुछ भी नहीं खाना चाहिए। जब तक पच न जाए, खाया न जाए। भोजन पचा, नीचे उतरा फिर जठराग्नि की पीड़ा शुरू हो गई। यह पीड़ा शांत कहां होती है?

'प्रभव! मैंने यह रहस्य भी समझाया कि काम की अग्नि काम के सेवन से कभी तृप्त नहीं होती।'

राजा ययाति की कथा विश्रुत है। राजा ययाति बूढ़ा होने लगा पर काम वासना शांत नहीं हुई। उसने देव से याचना की। उसे वर मिल गया कि तुम दूसरों की जवानी ले सकते हो। उसने पुत्रों को बुलाया, बुलाकर कहा–'तुम्हारा यौवन मुझे दे दो, जवानी मुझे दे दो।' सभी बड़े पुत्रों ने इंकार कर दिया। छोटा पुत्र था पुरु। उसने सोचा–पिताजी की इच्छा पूर्ति में सहयोगी बनना चाहिए। उसने कहा–'मेरा यौवन आप ले लें।' यौवन ले लिया। ययाति युवा बन गया और पुरु, जो युवा था, बूढ़ा बन गया। अब ययाति युवा बनकर भोग भोग रहा है। हजार वर्ष तक भोगों का आसेवन किया तो भी कामाग्नि शांत नहीं हुई। आखिर ययाति ने पुत्रों को इकट्ठा किया और अपनी अनुभव की वाणी में पुत्रों से कहा–

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव, भूयो एवाभिवर्धते।।

ययाति ने कहा–'यह जो मेरा यौवन कुछ बचा है, मैं पुत्र पुरु को वापस कर रहा हूं। यह इसके कुछ काम आयेगा। मैं अब इसको छोड़कर जंगल में जाना चाहता हूं। अरण्य में साधना करना चाहता हूं। मैंने देख लिया कि काम का दाहज्वर काम के उपभोग से कभी शांत नहीं होता। अग्नि कभी ईंधन से शांत नहीं होती। अग्नि में ईंधन डालो और घी की आहुति दो, वह ज्यादा प्रज्वलित हो जायेगी। ऐसे ही काम-भोग से काम बढ़ता है, कभी घटता नहीं है।'

'प्रभव! मैंने यह सत्य इन सबको समझाया और इन्होंने यह सत्य समझ लिया कि वास्तव में कामनाएं कामना की पूर्ति से कभी शांत नहीं होतीं। कामना की विरति करो, कामना शांत हो जायेगी।'

जो लोग बहुत ज्यादा वासना से पीड़ित होते हैं, उनकी कामना कभी शांत नहीं होती। यदि उनकी चेतना जगा दो तो एकदम परिवर्तन आ जायेगा और ऐसा लगेगा कि जैसे कोई नया जीवन मिल गया है।

कल एक भाई आया, बोला–'ब्रह्मचर्य के बारे में अच्छा साहित्य आना चाहिए।'

मैंने कहा–'क्यों?'

वह बोला–'आजकल जो कॉलेज और विश्वविद्यालय के छात्र हैं वे अज्ञानवश इतनी गलत दिशा में चले जाते हैं कि उनका जीवन बर्बाद हो जाता है। वे जीवन के नियमों को नहीं जानते इसलिए बहुत आवश्यक हो गया है कि ब्रह्मचर्य के बारे में उनको बताया जाए।'

जो ब्रह्मचर्य के बारे में नहीं जानता, वह शायद अपने जीवन की शक्ति के साथ खिलवाड़ करता है। ब्रह्मचर्य के बारे में जितना बल भगवान महावीर ने दिया उतना शायद उस समय के किसी धर्माचार्य ने नहीं दिया। महावीर ने बहुत जागरूक किया था ब्रह्मचर्य के बारे में। कुछ और भी विशिष्ट लोग हुए हैं जिन्होंने ब्रह्मचर्य के अर्थ को समझाया था।

'प्रभव! जीवनी शक्ति की सुरक्षा के लिए ब्रह्मचर्य एक दिव्य औषधि है। वह शक्ति का स्रोत है। मैंने ब्रह्मचर्य का यह रहस्य समझाया है।'

'प्रभव! इन सब रहस्यों को समझाने से इनकी चेतना प्रबुद्ध हो गई।'

जब चेतना बदलती है, सारा दृश्य बदल जाता है। हम जिसकी कल्पना नहीं कर सकते वैसा हो जाता है।



एक कहानी बहुत मार्मिक है। एक संन्यासी का नाम बहुत प्रसिद्ध था। त्यागी, वैरागी, ओजस्वी और शक्तिशाली। लोगों में उनके प्रति आकर्षण और श्रद्धा का भाव था। महारानी ने संन्यासी की यशोगाथाएं सुनीं। उसका मन दर्शन के लिए मचल उठा। राजा संन्यासी के पास स्वयं पहुंचा। उसने प्रार्थना की–'महाराज! मेरी महारानी बाहर आ नहीं सकतीं। आप अंत:पुर में पधारें और महारानी को दर्शन दें।'

संन्यासी बोला–'राजन्! मैं नहीं जा सकता।'

'क्यों महाराज?'

'राजन्! मुझे सोने की गंध आती है। महारानी के सब अलंकरण, आभूषण सोने के हैं और मुझे सोने की बदबू आती है। इसलिए मैं नहीं जा सकता।'

'महाराज! कैसी भोलेपन की बात करते हैं। सोने में तो सुगंध होती है। सोना मिल जाए तो दुनिया निहाल हो जाए। सोने के प्रति कितना आकर्षण है। कितनी चाह है सोने की! आप जो कह रहे हैं वह सही नहीं है। महाराज! सोने में सुगंध ही होती है, दुर्गन्ध तो होती ही नहीं है।'

'राजन्! मुझे दुर्गन्ध आती है।'

'महाराज! आप जैसे फक्कड़ बाबा होते हैं, वे बड़े अक्खड़ होते हैं। कुछ जानते ही नहीं हैं। सोने में गंध होती है। यह आज तक नहीं सुना।'

'राजन्! अब जानना है?'

'हां।'

'तो चलो मेरे साथ।'

संन्यासी ने राजा को साथ में ले लिया। जंगल से शहर की ओर आए। संन्यासी ने लोगों से पूछा–'मोचीवाड़ा कहां है।'

लोगों ने बताया–'उधर है।'

'राजन्! चलो, उधर चलें।'

'महाराज! वहां कहां जायेंगे? आप मेरे महल की ओर चलिए।'

'राजन्! पहले मोचीवाड़ा में जाएंगे।'

राजा क्या करे। वह विवश था। संन्यासी जा रहा है, राजा का हाथ पकड़ा हुआ है। संन्यासी एक मोची के घर के सामने रुका, बोला–'राजन्! चलो, इस घर में चलें।'

राजा ने रूमाल निकाला और एकदम नाक को बंद कर लिया, बोला–'महाराज! कितनी बदबू आ रही है। आप कहां ले जा रहे हैं? क्या आपको बदबू नहीं आती?'

'नहीं, मुझे तो कुछ पता नहीं है।'

'आप भी बड़े विचित्र हैं। आपको सोने की तो बदबू आती है और चमड़े की बदबू नहीं आती।'

संन्यासी ने मोची को बुलाया, बुलाकर पूछा–'तुम्हारे पास रूमाल नहीं है।'

'रूमाल तो है।'

'अरे देखो, राजा ने रूमाल से नाक को बंद कर रखा है। तुमने क्यों नहीं किया?'

'क्यों बंद करूं महाराज!'

'देखो कितनी बदबू आ रही है!'

मोची ने कहा–'कहां है बदबू? कोई बदबू नहीं है। मेरा घर तो साफ-सुथरा है।'

संन्यासी बोला–'राजन्! यह क्या कह रहा है? क्या यह झूठ बोल रहा है? तुम कह रहे हो कि इतनी बदबू आ रही है। नाक-मुंह सिकोड़ रखा है और रूमाल दे रखा है। यह कहता है बदबू नहीं है।'

'महाराज! इसको बदबू कैसे आयेगी? यह तो दिन-रात इसके बीच में रहता है। इसका नाक तो पक्का हो गया है?'

'राजन्! अब तो तुम समझ गए।'

'महाराज! मैं तो कुछ नहीं समझा।'

'राजन्! चमार रात-दिन चमड़े के बीच में रहता है इसलिए इसको बदबू नहीं आती। तुम भी रात-दिन सोने के बीच में रहते हो इसलिए सोने की बदबू नहीं आती। अगर मुझे महल में ले चलो तो तुम्हें जैसे यहां बदबू आ रही है मुझे वैसे वहां बदबू आयेगी।'

राजा संन्यासी का कथन समझ गया।

जहां चेतना बदल जाती है वहां सोना-सोना नहीं रहता। **तृणवत् मन्यते जगत**–सारा जगत् तृण की तरह हो जाता है, सोना मिट्टी की तरह हो जाता है। यह चेतना का ही तो परिवर्तन है कि जिस वस्तु के प्रति भयंकर आकर्षण था, चेतना के बदलते ही वह नीरस लगने लग जाती है।

जम्बूकुमार ने कहा–'प्रभव! मैंने कोई जबर्दस्ती नहीं की है। मैंने तो इनकी चेतना को बदला है। यदि चेतना न बदलती तो भी कोई बात नहीं थी पर बदल गई। इन्होंने सचमुच इस सचाई का अनुभव कर लिया–त्याग, वैराग्य और समभाव की साधना में परम सुख है। एक बार यह अनुभव हो जाता है तो जीवन और चिन्तन की दिशा बदल जाती है।'

सकृदपि यदि समतालवं हृदयेन लिहन्ति।
विदितरसास्तत इह रतिं स्वत एव वहन्ति।।

समता के लव का आस्वाद एक बार भी हृदय से चख लिया, समता के रस का स्वाद एक बार भी अनुभव हो गया और यह पता लग गया कि इसमें रस कैसा है तो फिर कहने की जरूरत नहीं होती। लोग स्वतः ही उस दिशा में गतिशील बन जाते हैं।

जम्बूकुमार ने कहा–'प्रभव! इन्होंने इस रस का अनुभव कर लिया है। संयम-साधना में, त्याग-तपस्या में कितना रस है–मुझे यह बताने की कोई जरूरत नहीं है।'



अब प्रभव मौन हो गया, सारे प्रश्न सम्पन्न हो गये। उसने विनम्रता के साथ सिर झुकाया और बोला–'कुमार! क्या मुझे भी साथ ले लोगे?'

'प्रभव! तुम क्या चाहते हो?'

'मैं भी तुम्हारे साथ साधु बनना चाहता हूं।'

आश्चर्य, महान् आश्चर्य। एक समय का राजकुमार और वर्तमान में चोर पल्ली का स्वामी, जो ५०० चोरों को साथ में लेकर जम्बूकुमार की संपदा को चुराने के लिए आया, वह प्रभव कहता है–जम्बूकुमार! मैं भी तुम्हारे साथ साधु बनना चाहता हूं। क्या यह आश्चर्य नहीं है? वाल्मीकि का चरित्र कैसा था? वह महान् संत बन गया, रामचरित्र का लेखक बन गया। अंगुलिमाल डाकू था। बुद्ध के सम्पर्क में आया, चेतना का परिवर्तन हुआ और अंगुलिमाल संत बन गया। अर्जुनमालाकार प्रतिदिन सात व्यक्तियों की हत्या करने वाला था। उसका हृदय बदला और वह संत बन गया। यह भी कम विलक्षण घटना नहीं है कि प्रभव जैसा चोरों का सरदार साधु बनने की बात कर रहा है।

कुछ लोग कभी-कभी कहते हैं कि बुरे आदमी से बात क्यों करें? वे यह नहीं सोचते कि बुरे आदमी भी कितने अच्छे बन जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव कोलकाता यात्रा संपन्न कर राजस्थान की ओर पधार रहे थे। रास्ते में एक शहर में एक न परिवार के यहां ठहरे। वहां कुछ सेना के अधिकारी आए। गुरुदेव ने बातचीत शुरू की, इतने में घर के ालिक आए, गुरुदेव को वंदना कर धीरे से अंगूठा दबाने लगे। गुरुदेव ने पूछा–'बोलो भाई! क्या बात है।'

वह धीमे से बोला–'महाराज! आप किनसे बात कर रहे हैं। ये तो शराबी आदमी हैं।' गुरुदेव ने बात न ली पर वार्तालाप जारी रखा। गुरुदेव ने प्रसंगवश कहा–'आपमें कोई नशा तो नहीं है?'

'महाराज! एक शराब का नशा तो है।'

गुरुदेव ने उन्हें समझाया, वे खड़े होकर बोले–'अब हमें शराब पीने का त्याग दिला दो।' वे त्याग कर चले गये।

गुरुदेव ने उन सेठजी से पूछा–'सेठजी! बोलो आप कोई बुराई तो नहीं करते? तोल-माप में कमी और ाद्य पदार्थों में मिलावट तो नहीं करते?'

'महाराज! हम तो गृहस्थ हैं। इसके बिना तो काम कैसे चले?'

गुरुदेव ने कहा–'शराब पीते थे वे तो बदल गए लेकिन आप....?'

कभी-कभी ऐसा होता है कि एक सेठ साहूकार अपनी गलत आदतों का परिष्कार नहीं कर पाता और क चोर-डाकू की चेतना रूपान्तरित हो जाती है। इसीलिए कहा जाता है–एक साहूकार के भीतर भी कोई र बैठा होता है और एक चोर-डाकू के भीतर भी कोई साहूकार छिपा रहता है। यदि सेठ-साहूकार के तर कोई चोर नहीं होता तो वह कभी गलत काम नहीं करता और यदि चोर-डाकू के भीतर कोई साहूकार ों होता तो उसमें कभी बदलाव नहीं आ पाता। प्रभव के भीतर साहूकारिता थी, एक आभिजात्यता थी र उसे जम्बूकुमार जागृत करने में सफल हो गया।

जम्बूकुमार ने सोचा–बहुत बड़ा काम हो गया। मैं अकेला था। आठ कन्याएं समझी तो नौ हो गए। ा प्रभव दसवां है।

महल के भीतर तो सारा वातावरण बदल गया पर बाहर ५०० चोर खड़े हैं। नीचे माता-पिता और वार हैं। उनका क्या चिन्तन और दृष्टिकोण रहेगा?

क्या प्रभव का हृदय-परिवर्तन चोरों की हृदय-भूमि में वैराग्य के बीज का वपन कर पाएगा?



समय अपनी गति से चलता है। कभी लगता है कि बहुत जल्दी बीत गया और कभी लगता है कि बहुत लम्बा हो गया। कभी-कभी लोग कहते हैं–रात इतनी बड़ी हो गई कि कटनी मुश्किल हो गई। दिन इतना बड़ा हो गया कि कटना मुश्किल हो गया। दिन तो जितना होता है उतना ही होता है। रात जितनी होती है उतनी ही होती है पर कभी लम्बी लगती है और कभी छोटी। एक आदमी प्रतीक्षा में बैठा है। उसे समय बहुत लंबा लगता है। किसी ने कहा–तुम ठहरो दो मिनट। मैं अभी आ रहा हूं। यदि वह आता नहीं है तो काल बहुत लंबा लगता है।

प्रभव भीतर चला गया। जो साथी चोर थे, उनको लगा–कितना लंबा समय हो गया। उनके हाथ-पैर बंधे हुए थे पर मुंह खुला था। वे आपस में मद्धिम स्वर में वार्तालाप करने लगे–'देखो! अपना सरदार प्रभव तो भीतर महलों में बैठ गया। हम बाहर यहां खड़े हैं। न हाथ हिला सकते, न पैर हिला सकते। खंभे बने हुए खड़े हैं। उसको कोई चिन्ता नहीं है।'

उनके मन में थोड़ा आक्रोश भी आ गया–कैसा है सरदार? स्वयं तो भीतर प्रासाद के वैभव का आनंद ले रहा है और हम बाहर परेशान हो रहे हैं।

दूसरी ओर प्रभव प्रतिबुद्ध हो गया। जम्बूकुमार ने पूछा–'प्रभव! बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है?'

'कुमार! जो आपकी इच्छा है वह मेरी इच्छा है। आप मुनि बनेंगे तो मैं भी आपके साथ मुनि बनूंगा। पर कुछ समय आप ठहरें।'

'किसलिए प्रभव!'

'कुमार! मेरे जो साथी बाहर खड़े हैं उनसे एक बार बात तो कर लें कि वे क्या चाहते हैं।'

'प्रभव! तुम दरवाजा खोलो, आगे चलो।'

दरवाजा खोलते हुए प्रभव बोला–'जम्बूकुमार! तुम भी साथ चलो क्योंकि तुम्हारे बिना कुछ होगा नहीं। हाथ-पैर तो तुमने बांध रखे हैं। तुम नहीं चलोगे तो उन्हें छुड़ायेगा कौन?'

जम्बूकुमार ने प्रभव का अनुरोध स्वीकार किया। प्रभव और जंबू दोनों बाहर निकले तब ऐसा लगा कि जैसे अब तक बादल आया हुआ था, चारों ओर अंधकार था। अब बादल हटा है, प्रकाश हो रहा है।

जैसे ही जम्बूकुमार ने पैर बाहर रखा, उन सबको देखा तो सबके हाथ हिल गये, पैर भी हिल गये। स्तंभनी विद्या का प्रयोग सम्पन्न हो गया। हाथ मुक्त, पैर मुक्त। मुक्त होते ही वे हाथ से गांठों को उठाने लगे।

चोरों ने अपनी ओर आ रहे प्रभव को देखा तो बोले–'स्वामी! जल्दी करो। रात थोड़ी है।'

प्रभव बोला–'साथियो! पोटलियां मत उठाओ। पहले हाथ जोड़ो।'

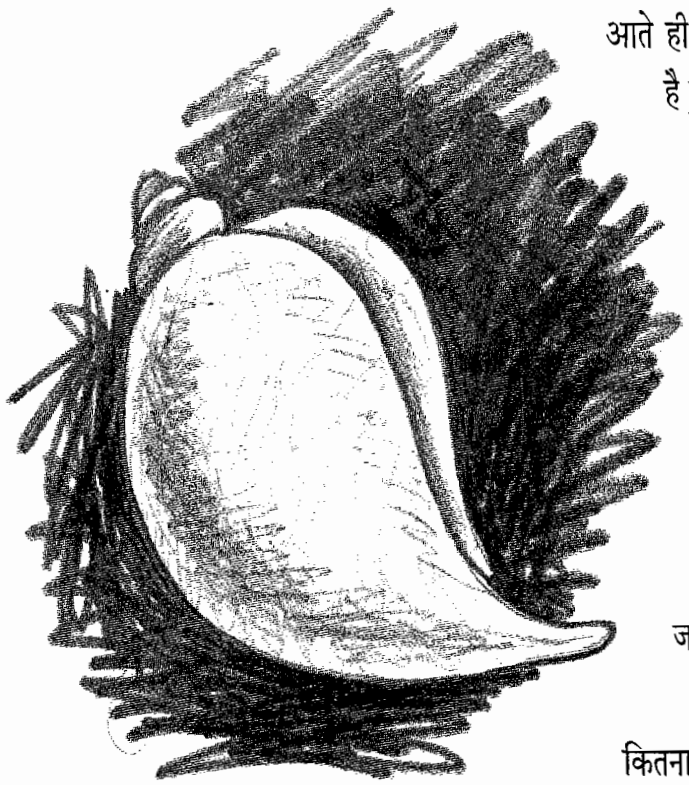
'किसको जोड़ें।'

जम्बूकुमार की ओर इशारा करते हुए प्रभव बोला–'इस दिव्य कुमार को।'

'क्यों जोड़ें?'

'देखो, ये जम्बूकुमार हैं। इसी ने तुम्हारे हाथ बांधे थे। यह जैसे ही बाहर आया, तुम्हारे हाथ खुल गये। अब तुम इन्हें हाथ जोड़ो, पोटलियों को रहने दो।'

प्रभव के निर्देश पर सबने हाथ जोड़कर नमस्कार किया, अभिवादन किया। सबके मन में एक आश्चर्य था कि कैसे स्तंभनी विद्या का प्रयोग हुआ और किसने स्तंभनी विद्या से मुक्त कर दिया पर इस आश्चर्य को समाहित कौन करे? अब वे चलने की स्थिति में हैं।



प्रभव बोला–'कुमार! आश्चर्य है कि तुम्हारे आते ही सब मुक्त हो गये। बड़ी विचित्र विद्या है तुम्हारे पास।'

प्रभव बोला–'कुमार! पहले तो मैं चाहता था कि यह विद्या ले लूं पर अब मुझे यह विद्या नहीं लेनी है।'

'कुमार! आप एक काम करो। मेरे साथियों को समझा दो। तुम्हारी वाणी में कोई जादू है। तुम थोड़ा-सा उपदेश दोगे तो ये भी प्रतिबुद्ध हो जाएंगे, इनका जीवन भी अच्छा हो जाएगा।'

'कुमार! अब मुझे लगता है कि यह कितना गलत रास्ता है। अब तक मेरे सिर पर

भी एक भूत सवार था, एक नशा था, उन्माद था। मुझे यह पता ही नहीं चला कि मैं कितना बुरा काम कर रहा हूं। आज जैसे ही वह नशा उतरा, वह भूत उतरा और मैं अपनी मूल चेतना में आया तो मुझे लगा–अरे! मैं कहां राजकुमार था और कहां चोर बन गया? अब मुझे अपने कृत्यों पर पश्चात्ताप हो रहा है।'

'कुमार! तुम कोई ऐसी वाणी बिखेरो, ऐसा कोई ध्वनि का प्रकंपन करो, जिससे सबके मन प्रकंपित हो जाएं।

'कुमार! जैसे मैं तैयार हो गया, वैसे मेरे साथी तैयार हो जाएं तो दुनिया का एक बड़ा आश्चर्य होगा, एक बड़ा चमत्कार होगा कि पांच सौ दुर्दान्त चोर एक साथ मुनि बन गये।'

अगर आज एक चोर को भी दीक्षा दे दें तो लोग अपवाद करने लग जाएं कि देखो, शिष्यों की कितनी भूख है। कल तो चोर था और आज वह साधु बन गया।

प्रभव ने अनुरोध किया–'कुमार! तुम यह चमत्कार घटित कर सकते हो और तुम्हें यह करना चाहिए।'

चोरों को संबोधित करते हुए प्रभव ने कहा–'अब शांत मुद्रा में रहो। धन की बात छोड़ो, चोरी की बात छोड़ो। जम्बूकुमार सामने खड़े हैं। ये तुम्हें एक प्रतिबोध देते हैं, ज्ञान देते हैं। तुम उस ज्ञान को सुनो।'

'साथियो! तुम्हारे हाथ-पैर खुल गये, केवल इतना ही नहीं हुआ है। जम्बूकुमार ने तो मेरी भीतरी आंख भी खोल दी है। अब तक मेरी वह आंख बंद थी। साथियो! मैं चाहता हूं कि तुम्हारी भी अब भीतरी आंख खुल जाए। इसलिए जम्बूकुमार की बात तुम ध्यान से सुनो।'

संयोजन प्रभव ने कर दिया। सब सुनने के लिए तैयार हो गये, सुनने की मुद्रा में आ गए।

जम्बूकुमार ने कहा–'देखो भाई! तुम चोरी करने आये। तुम सारी संपदा चुराना चाहते थे पर नहीं ले पाये, तुम सोचो–कोई आदमी चोरी क्यों करता है? तुम महावीर की वाणी को ध्यान से सुनो–



अतुट्ठी दोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं।

दुःखी आदमी चोरी करता है। सुखी आदमी कभी चोरी नहीं करता। यह एक ध्रुव सिद्धांत है–जो चोरी करता है वह दुःखी है और जो दुःखी है वही चोरी कर सकता है। सुखी आदमी कभी चोरी नहीं कर सकता।

जम्बूकुमार ने महावीर की वाणी को सामने रखकर प्रतिबोध देना शुरू किया–'बंधुओ! आप सोचते होंगे–हम खूब चोरी में माल लाते हैं और खूब भोग करते हैं। हम दुःखी कहां हैं?'

'भाइयो! तुम यह सच समझ नहीं पा रहे हो कि तुम्हारे मन में तोष नहीं है। कितना ही धन आए, संतोष नहीं होता। जैसे आग में सब स्वाहा होता है वैसे तृष्णा की अग्नि में सब स्वाहा हो जाता है। कहीं संतोष नहीं है। इस अतुष्टि–असंतोष से आदमी दुःखी बनता है।'

महावीर ने सुख के दस प्रकार बतलाए हैं। उनमें सबसे बड़ा सुख है संतोष। पहला सुख है निरोगी काया और दसवां सुख है संतोष। कहा गया–संतोषः परमं सुखं–संतोष परम सुख है। जो असंतुष्ट होता है, असंतोष में जीता है वह दुःखी होता है और दुःखी आदमी चोरी करता है।

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, भावे अतित्तस्स परिग्गहे य।
माया मुसं वड्ढइ लोभ दोसा, तत्था वि दुक्खा न विमुच्चइ से।।

व्यक्ति चोरी करता है तो तृष्णा से अभिभूत हो जाता है। एक तृष्णा, एक अमिट प्यास जग जाती है। वह उस प्यास से पराभूत हो जाता है। वह ऐसी प्यास है कि कितना भी पानी पीयो, कभी बुझती नहीं है।

'भाइयो! वह तृष्णा तुम्हारे भीतर है। तृष्णा के कारण आदमी अदत्तहारी बनता है। एक होता है दिया हुआ लेने वाला। एक होता है बिना दिये लेने वाला। भाइयो! क्या कोई भी आदमी तुम्हें इच्छा से देता है?'

'देता तो नहीं है।'

'तुम बिना दिये लेते हो?'

'हां।'

'तुम यह भी सोचो–बिना दिए धन लेना दूसरे का प्राण लेना है। धन प्राण से भी प्यारा होता है। उसे तुम लूटते हो।

'हां'।

'इसका मतलब है कि तुम उसके प्राण का अपहरण कर रहे हो। वह व्यक्ति कितना दुःखी बनता है, कितना रोता है, कितना कलपता है। क्या स्थिति बनती है! क्या तुम लोग अनुभव करते हो?'

'नहीं कुमार!'

'यदि तुम कोई अच्छे गृहस्थ होते, तुम्हारे घर कोई चोरी करने आता और सारा माल चुराकर ले जाता ो तुम्हें कैसा लगता? क्या तुम्हें पीड़ा नहीं होती?'

'कुमार! अवश्य होती।'

'भाइयो! तुमने अभी 'आयतुला' का सिद्धांत नहीं समझा है। मैंने प्रभव को यह सिद्धांत समझाया है। हावीर का प्रमुख सिद्धांत है **आयतुले पयासु**–सबको अपनी तुला से तोलो, अपनी तराजू से तोलो। तराजू ; एक पल्ले में स्वयं को बिठा लो और दूसरे पल्ले में दूसरे को बिठाओ। फिर दोनों को बराबर तोलो। यह खो कि अगर यह स्थिति मुझमें बीतती तो क्या होता। तुम्हें यह स्पष्ट अनुभव होगा कि दूसरे को पीड़ा ना, दूसरे को सताना, दूसरे के प्राणों को परिताप पहुंचाना बहुत बुरा काम है।'

'भाइयो! तुम इस बात पर ध्यान दो। जो अतृप्त है वह हमेशा इस ताक में रहेगा कि मैं यह ले लूं, वह लूं। यह उठा लूं, वह उठा लूं। उसका यह एक ही ध्यान रहता है क्योंकि उसमें अतृप्ति है, वह तृप्त नहीं ुआ है। वह हमेशा खोजता रहता है कि यह मिल जाये, वह मिल जाये।'

'भाइयो! वह अतृप्त है इसलिए परिग्रह करता है। **मायामुसं वड्ढइ लोभ दोसा**–उसके लिए माया नी पड़ती है। एक चोर को कितनी माया करनी पड़ती है? कैसा जाल रचना पड़ता है? कहां सेंध लगाए, सके घर में घुसे और कहां क्या छुपा हुआ है? कितनी माया रचनी पड़ती है।'

'भाइयो! दिन में थके हुए लोग विश्राम करते हैं, सुख की नींद सोना चाहते हैं। उस समय तुम जाकर ी माया रचते हो। छिपे-छिपे सारा धन उठाकर ले आते हो। क्या यह अच्छा कार्य है?'

'नहीं, यह अच्छा कार्य तो नहीं है।'

'भाइयो! तुम दिन में नहीं आते। रात में छिप कर आते हो। छिप कर चोरी करते हो। तुम इस प्रकार यह निंदनीय कर्म करते हो कि किसी को पता न चले। यदि जनता और प्रशासन को पता चल जाए तो क्या तुम चोरी कर सकते हो?'

'नहीं कर सकते।'

एक नट बड़ा कुशल था। उसका कौशल ऐसा था कि भीत पर एकदम सीधा चढ़ जाता। वह रज्जु पर इस प्रकार चढ़ता कि सब स्तब्ध रह जाते। एक दिन उसका नाटक देखने कुछ चोर भी आ गये। उन्होंने सोचा–यह नट चोर बन जाए, हमारा साथी बन जाए तो फिर सेंध लगाने की जरूरत नहीं रहे। हम इसे सीधा भीत पर चढ़ा देंगे, बड़ा अच्छा हो जायेगा। उससे बातचीत की, धन का प्रलोभन दिया। जहां धन का प्रलोभन आता है वहां नट ही नहीं, बड़े-बड़े सुभट भी पिघल जाते हैं, बड़े-बड़े सत्ताधीश और उच्च आसन पर बैठने वाले लोगों का मन भी पिघल जाता है। नट का मन पिघल गया। वह चोरों की मंडली में शामिल हो गया। एक दिन रात को चोर चोरी करने गए। उन्होंने एक बहुत बड़े सेठ का मकान चुना। उसकी भीत बहुत ऊंची थी। उन्होंने सोचा–हम सीधे तो जा नहीं सकते। उन्होंने नट साथी से कहा–'भैया! तुम ऊपर चढ़ो, भीतर जाओ और दरवाजा खोलो। फिर हम भीतर घुस जाएंगे।'

नट बोला–'मैं तो नहीं चढ़ सकता।'

'अरे! तुम तो इतनी बड़ी भीत चढ़ जाते थे।'

'भाई! बिना नगाड़ा बजाए मैं चढ़ नहीं सकता। जब नगाड़े बजते हैं तब नट का पैर उठता है, नट करतब दिखाता है। तुम नगाड़ा बजाओ, मैं ऊपर चढ़ जाऊंगा।'



क्या चोर कभी नगाड़ा बजाएगा? जहां माया है, कपट, छिपाव है वहां नगाड़ा कैसे बजेगा? न तो नगाड़ा बजा और न वह नट भीत पर चढ़ सका।

'भाइयो! चोर को कितनी माया करनी पड़ती है, कितना झूठ बोलना पड़ता है। चोरी करने वाला इनसे बच नहीं पाता। केवल चोर ही नहीं, कोई साहूकार भी कर की चोरी करे तो उसे भी झूठ बोलना पड़ेगा।'

ये एक नंबर और दो नंबर के खाते क्यों रखे जाते हैं? इसलिए कि धन को छिपाना चाहते हैं, आयकर से बचना चाहते हैं। इसलिए छिपाना भी पड़ेगा और झूठ भी बोलना पड़ेगा।

मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा–माया मृषा बढ़ती है। कुछ मिलता है तो लोभ भी बढ़ जाता है।

जहा लाहो तहा लोहो–जैसे-जैसे लाभ होता है, लोभ बढ़ता चला जाता है।

तत्था वि दुक्खा न विमुच्चइ से–यह दुःख की शृंखला समाप्त नहीं होती। दुःख आगे से आगे बढ़ता चला जाता है। कपट करने में, मायाजाल रचने में बड़ी कठिनाई है। इतना कुछ करने पर भी यह दुःख बराबर बना रहता है कि मैंने जितना चाहा, उतना नहीं मिला। यह चिन्तन तनाव उत्पन्न कर देता है।

'भाइयो! सोचो–जो अपने पास है, क्या आदमी उससे सुखी बनता है? या जो नहीं है उससे दुःखी बनता है?'

हम इस तथ्य पर ध्यान दें। एक आदमी के पास लाख रुपया है। क्या वह लाख रुपए से सुखी बनता ? पहली दृष्टि में ऐसा लगता है कि वह सुखी बनता है। किन्तु वह निरंतर यह सोचता रहता है कि मेरे स लाख है, करोड़ नहीं है। जो नहीं है उससे दुःखी ज्यादा बनता है। जो है उससे सुखी कम बनता है। ा मकान दो मंजिला है, उससे उसको सुख नहीं मिलता। पड़ोसी का मकान पांच मंजिला है उससे दुःखी ादा रहता है। यह एक ऐसी मनःस्थिति है कि जो प्राप्त है, उससे सुख कम पाता है और जो प्राप्त नहीं है, को देखकर दुःखी ज्यादा बनता है।

प्रभव ने संबोध देते हुए कहा–'भाइयो! जो आदमी हिंसा करता है, दूसरे को सताता है, ज्यादा लोभ ता है, झूठ बोलता है वह कभी सुखी नहीं होता।'

चोरों का एक स्वर आया–'फिर सुख कहां है? कौन-सा रास्ता है सुख का?'

जम्बूकुमार ने कहा–'भाइयो! सुख का रास्ता है–संयम। तुम चोरी को छोड़ो, दूसरों को सताने की त छोड़ो, झूठ बोलना छोड़ो, लोभ, लालच को छोड़ो फिर देखो सुख कैसा होता है!'

जम्बूकुमार ने हृदयस्पर्शी भाषा में सुख का रहस्य समझाया। जम्बूकुमार केवल कंठ से नहीं बोलता , उसकी अंतरात्मा बोलती थी, आंतरिक वैराग्य बोलता था। वैराग्य से भावित कोई भी शब्द निकलता तो वह दूसरे को रंग देता है। कुसुंभा गलकर दूसरे को रंग देता है। जम्बूकुमार की आत्मा वैराग्य से इतनी ात-प्रोत थी कि एक-एक शब्द में जादू जैसा था।

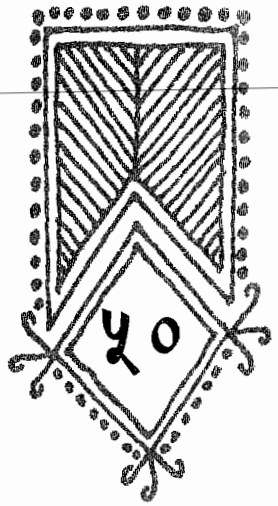
जम्बूकुमार की बात सुनकर सारे चोर स्तब्ध रह गये। पहले उनके हाथ-पैर स्तब्ध थे। वह स्तब्धता ाप्त हो गई, हाथ-पैर बंधन मुक्त हो गए तो अब मन स्तब्ध हो गया। वे एकदम चित्रवत् देखने लग गये, चिन्तन में लीन हो गए–यह किशोर बड़ी गजब की बात कह रहा है। कितना ज्ञानी है यह किशोर! क्या ई पहुंचा हुआ सिद्धयोगी है?

चोरों की चेतना प्रकंपित हो गई। उनके मन में एक उद्वेलन और आंदोलन हो गया।

इस आंदोलन और उद्वेलन का परिणाम क्या होगा?

क्या वे जम्बूकुमार और प्रभव के पथ का अनुगमन कर सकेंगे?

चेतना का प्रकंपन क्या शुभ संकल्प की सृष्टि कर एक नए इतिहास की रचना का पथ प्रशस्त करेगा?



जम्बूकुमार के प्रतिबोध को सुन कर चोरों के कान ही झंकृत नहीं हुए, दिमाग भी झंकृत हो गया, शरीर भी झंकृत हो गया। जैसे बांसुरी या वीणा की झंकार से पूरा शरीर झंकृत हो जाता है वैसे ही मन में उथल-पुथल मच गई।

इन क्षणों में प्रभव आगे आया, बोला--'साथियो! तुमने जम्बूकुमार का प्रवचन सुना। कैसा लगा?'

सब एक स्वर में बोले--'अच्छा लगा।'

'साथियो! तुम ध्यान दो। आज तक हमारी आंखें बंद थीं। हम दूसरों को सताते रहे हैं, दुःख और पीड़ा देते रहे हैं। तुम यह जानते हो कि हमारा धंधा कितना खोटा है। दूसरों को सताना और स्वयं ऐशो-आराम भोगना कितना बुरा काम है। हम चोरी कर धन लाते हैं और स्वयं मौज-मजा करते हैं। दूसरों के मन में दाह पैदा करते हैं। बिना अग्नि उनके चित्त को जला देते हैं। उनके प्राणों को लूटते हैं। हम इसमें सुख मानते हैं। यह कितना बड़ा अज्ञान है।'

'साथियो! मेरी आंख खुल गई है। मैंने तो यह देख लिया है कि हमारा यह कार्य अच्छा नहीं है।'

एक स्वर आया--'स्वामी! आपने क्या सोचा है? अब आप क्या करेंगे?'

'क्या तुम जानना चाहते हो?'

'हां।'

'साथियो! देखो, जम्बूकुमार सिंह की तरह आगे हो गए हैं। इनके आगे तो मैं नहीं हो सकता पर पीछे-पीछे जरूर चलूंगा। मेरे मन में पश्चात्ताप हो रहा है कि मैंने बहुत बुरा काम किया, अन्याय किया, अतिक्रमण किया, दूसरों को सताया, लूटा, सब कुछ किया पर अब....प्रभव कुछ भी नहीं करेगा।'

औ जिम सिंह आगल संचरै, हूं पिण इण री लार।
काम भोग सर्व छांड नै, कर देवूं खेवो पार।।

'साथियो! अब प्रभव बदल गया है। अब प्रभव चोरी नहीं करेगा। अब प्रभव जनता को व्यथित नहीं करेगा।'

जब चेतना का रूपान्तरण होता है, आत्मतुला की अनुभूति हो जाती है, आत्मा की समानता की अनुभूति हो जाती है, दूसरे की पीड़ा को अपने समान देखने लग जाता है तब वह अन्याय कर नहीं सकता, किसी को सता नहीं सकता, किसी को दुःखी नहीं बना सकता। प्रभव भी इसी प्रवाह में बोल रहा था–'अब प्रभव चोरी नहीं करेगा। अब प्रभव चोरों का स्वामी नहीं रहेगा। अब प्रभव चोरों को संरक्षण नहीं देगा।'

'साथियो! मैं मानता था कि मैं कितना सुखी हूं! मेरे पास चोरों की एक बड़ी सेना है। मेरे पास बिना कमाये मुफ्त का धन आता है। दूसरे लोग तो श्रम करते हैं, पसीना बहाते हैं तब धन आता है और हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता। सीधा धन मिलता है। कोई कमी नहीं रहती। समझता था कि इस दुनिया में मेरे समान कोई सुखी नहीं है। अब भ्रांति टूट गई है, भ्रम मिट गया है, आंखें खुल गई हैं।

जम्बूकुमार तणा सुख देखता, म्हारा सुख अल्पमात।
ओ ईसड़ा सुख छोड़े निकलै, आ अचरज वाली बात।।

साथियो! यह कितना बड़ा आश्चर्य है!'

महाभारत के समय युधिष्ठिर से यक्ष ने प्रश्न पूछा, जो यक्ष-प्रश्न के नाम से प्रसिद्ध है। उसका प्रश्न था–**किमाश्चर्यमतःपरं**–बताओ, इससे बड़ा आश्चर्य क्या है। युधिष्ठिर ने कहा–

अहन्यहनि भूतानि, गच्छंति यममंदिरे।
शेषाः जीवितुमिच्छंति किमाश्चर्यमतःपरं।।

प्रतिदिन प्राणी मरते हैं और यम मंदिर में चले जाते हैं। जो शेष बचे हैं वे सोचते हैं–मरने वाले दूसरे हैं, हम तो कभी नहीं मरेंगे। वे रोज देखते हैं कि अर्थियां निकल रही हैं, लोग श्मशान में ले जा रहे हैं, चिताएं धूं-धूं कर जल रही हैं। आंखों से रोज यह सब देखते हैं फिर भी सोचते हैं–हम तो स्थिर रहेंगे, अमर बने रहेंगे। **किमाश्चर्यमतःपरं**–इससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा?

प्रभव बोला–'साथियो! इससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा? जम्बूकुमार को इतना सुख प्राप्त था जिसकी हम कल्पना नहीं कर सकते। जम्बूकुमार के पास जितना धन है, इतना धन कहीं देखा है?'

'नहीं, स्वामी।'

'साथियो! इसका भव्य प्रासाद देखो, इसका वैभव देखो, इसका रूप यौवन देखो, इसका मान-सम्मान देखो। इसकी नवपरिणीता आठ पत्नियां भीतर हैं। उन अप्सरा तुल्य पत्नियों को देखो। जम्बूकुमार इन सबको छोड़ रहा है। **किमाश्चर्यमतःपरं**–इससे बड़ा और क्या आश्चर्य होगा?'

'साथियो! मैं यह सब देखकर दंग रह गया। मेरा सिर झुक गया इस नवयुवक के सामने।'

'बंधुओ! मैंने यह निर्णय कर लिया है कि मैं भी जम्बूकुमार के पदचिह्नों पर चलूंगा। यह मुनि बनेगा तो मैं भी मुनि बनूंगा। अब बोलो तुम्हारी क्या इच्छा है?'

इस हितकर उपदेश ने चोरों के हृदय का स्पर्श किया। उनकी चिन्तनधारा में बदलाव आया। उन्होंने

सोचा–आज सचमुच हमें यह उपदेश शुभंकर लग रहा है। अब तक अज्ञान का अंधकार हमारी आंखों में छाया हुआ था। हम खुली आंखों से भी सचाई को नहीं देख रहे थे। अज्ञानवश हमने कितने लोगों को सताया, कितने लोगों को दुःखी बनाया। इस थोड़े से जीवन के लिए हमने घोर दुष्कर्म किए हैं। आज प्रभव और जम्बूकुमार ने अज्ञान तिमिर से अंधी बनी हुई आंखों में ज्ञानांजन शलाका से ऐसा अंजन आंजा है कि हमारे अंतश्चक्षु उद्घाटित हो गए हैं। ये सचमुच हमारे गुरु हैं, हितचिन्तक हैं। हमें इनकी बात को शिरोधार्य करना चाहिए–

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

हमारा स्वामी प्रभव जो कह रहा है, वह बिल्कुल सही बात है। हमें भी सोचना चाहिए, चिंतन करना चाहिए। मन में एक उद्वेलन, आंदोलन और प्रकंपन हो गया।

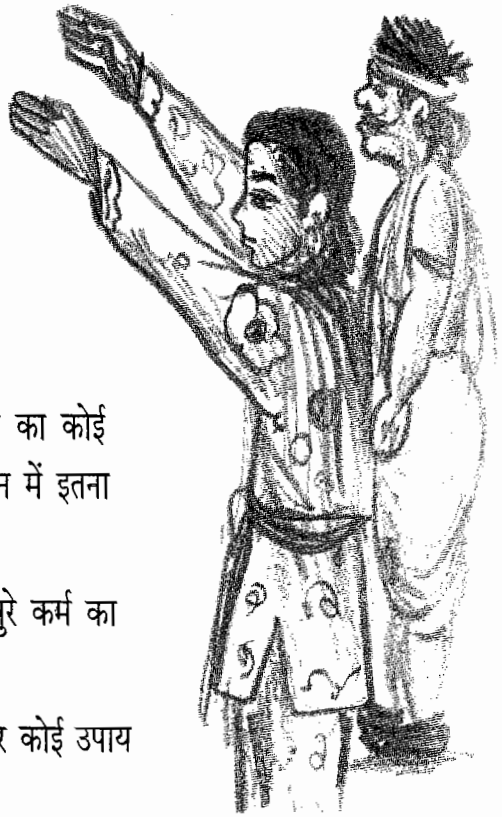
प्रभव ने उन्हें पुनः उत्प्रेरित किया–'बंधुओ! चोरी हम करते हैं, बुरा काम हम करते हैं। उससे जो धन दौलत मिलती है, उसे पूरा परिवार भोगता है। मुझे आज यह बोध भी मिला है कि चोरी का पाप केवल हमें लगेगा, कर्म का बंध केवल हमारे होगा, दुःख केवल हम भोगेंगे। इस दौलत के सुख को भोगने वाले परिवार के सब लोग हैं किन्तु कर्म का बंध और दुःख हमारे ही हिस्से में आएगा।'

'साथियो! मैं तुम्हें एक घटना सुनाऊं?'

'हां, स्वामी!'



प्रभव ने घटना सुनानी शुरू की–'एक डाकू रोज डाका डालता था। एक दिन वह संत के पास चला गया। संत ने उसके मुख को देखा, आकार-प्रकार को देखा तो समझ गये कि यह कोई दुर्दान्त डाकू है। संत ने पूछा–'भाई कहां से आए हो?'



'जंगल में रहता हूं।'

'क्या काम करते हो?'

'महाराज! आपसे क्या छिपाऊं? मैं डाकू हूं।'

'भाई! यह तो बहुत बुरा काम है।'

'महाराज! क्या करें। बड़ा परिवार है। आजीविका का कोई साधन नहीं है। मैं अकेला कमाने वाला हूं। एक-दो दिन में इतना मिल जाता है कि वर्ष भर की चिन्ता मिट जाती है।'

'भाई! वर्तमान की चिन्ता तो मिट जाती है पर बुरे कर्म का परिणाम भी तो बुरा होता है?'

'हां, महाराज! पर परिवार के भरण-पोषण का और कोई उपाय नहीं है।'

'भाई! तुम इस सचाई को समझो कि अपने कर्म का परिणाम स्वयं व्यक्ति को भोगना होता है। तुम कर्म कर रहे हो तो दुःखी भी तुम बनोगे। भोग तो सब कर रहे हैं पर तुम्हारे दुःख में कोई सहभागी नहीं है।'

'महाराज! आपका यह कथन सही नहीं लगता। परिवार के सभी सदस्य मेरे हर सुख-दुःख में सहभागी बनते हैं। मुझे कभी अकेलापन अनुभव नहीं होता।'

'भाई! तुम एक काम करो। घरवालों के पास जाओ, उनसे पूछो–मैं डाका डालता हूं, बुरा काम करता हूं मुझे पाप का भी बंध होता है। जब पाप कर्म भुगतना पड़ेगा तब आप भी उसमें भागीदार बनेंगे?'

'महाराज! वे अवश्य बनेंगे।'

'तुम मेरा कहना मानो, एक बार घर जाओ, अपने परिवारजनों से पूछो। तुम्हारा कथन कितना सच है, इसकी परीक्षा भी हो जाएगी।'

संत के आग्रह पर डाकू तत्काल घर आया। परिवारजनों से बातचीत की, पूछा–'भाई! यह डाका डालना बुरा है, आप सब जानते हैं?'

'हां, बड़ा पाप का बंध होता है।'

'इसे भुगतना भी पड़ेगा, तुम यह सचाई भी जानते हो।'

'हां, हम यह भी जानते हैं।'

'जब पाप भुगतना पड़ेगा तब तुम हिस्सा बंटाओगे या नहीं?'

सब एक साथ बोले–'नहीं, हम उसमें हिस्सेदार नहीं हैं। यह खोटा धंधा तुम करो तो तुम ही उसके परिणाम भोगो।'



'अरे थोड़ा हिस्सा तो बंटाओगे?'

'बिल्कुल नहीं।'

डाकू की आंखें खुल गईं। वह उन्हीं पैरों दौड़ता हुआ संत के पास आया, बोला–'महाराज! उनका स्पष्ट उत्तर है कि हम हिस्सेदार नहीं बनेंगे।'

संत ने कहा–'भाई! मैंने यही तो कहा कि कर्म तो तुम अकेले करते हो, कर्म से प्राप्त दौलत का भोग सब करते हैं, किन्तु जब कर्म भुगतना पड़ेगा तब कोई आड़े नहीं आयेगा।'

संत ने अच्छा जीवन जीने की प्रेरणा दी। डाकू को जीवन-सत्य का बोध हुआ। उसकी जीवन-धारा बदल गई।

प्रभव ने कहा–'साथियो! देखो, हमारी भी यही दशा है। हम लोग चोरी करते हैं और परिवार के हजारों लोग उसको खाते हैं, पीते हैं, मौज करते हैं। किन्तु बुराई का फल केवल हमें भुगतना पड़ेगा।'

प्रभव और जंबू ने ऐसे वातावरण का निर्माण किया कि चोरों का मन बदल गया। वातावरण का भी ऐसा असर होता है, मन बदल जाता है। प्रतिदिन सैकड़ों लोग दर्शनार्थ आते हैं। आने के बाद बहुत लोगों का मन बदल जाता है। कारण क्या है? पहली बात–सम्यक् जानकारी होती है। दूसरी बात–प्रेरणा मिलती है। तीसरी बात–पूज्य गुरुदेव के आभामंडल का प्रभाव। ऐसा एक वातावरण होता है कि आने वाले का मन बदल जाता है। न जाने कितने लोगों ने पान-पराग, जर्दा, शराब आदि नशे को छोड़ा है, कितने लोगों ने अपने मन को बदला है, आदत में परिवर्तन किया है। सचमुच व्यक्ति में बदलाव आता है। चेतना को कोई जगाने वाला हो तो आदमी जाग जाता है और कोई जगाने वाला न हो तो सोया रह जाता है। सम्यक् जानकारी के अभाव में व्यक्ति गलत रास्ता ले लेता है। जब तक ज्ञान सही नहीं होता, आचरण अच्छा हो नहीं सकता।

प्रभव ने कहा–'साथियो! जम्बूकुमार ने मुझे बंध और मोक्ष का तत्त्व समझाया। सुख क्या है, दुःख क्या है? इसका बोध दिया। इनको समझे बिना कोई आदमी वैरागी नहीं बन सकता और वैरागी बने बिना कोई बुराई को नहीं छोड़ सकता।'

हम यह न मानें कि दीक्षा लेने वाला ही वैरागी होता है। हर आदमी को वैरागी होना जरूरी है। कोरा राग गलत रास्ते की ओर ले जाता है। जहां राग ही राग है वहां कोई नियंत्रण नहीं रहता, कोई नियामक तत्त्व नहीं रहता। व्यक्ति फंसता चला जाता है। जहां वैराग्य की रेखा खिंच गई वहां व्यक्ति बुराई में नहीं जायेगा। वह सोचेगा–यह बुरा काम है। मुझे नहीं करना है। मुझे अण्डा नहीं खाना है क्योंकि यह बुरा काम है। मुझे मांस नहीं खाना है, शराब नहीं पीना है क्योंकि यह बुरा है। आज के डॉक्टर स्वास्थ्य की दृष्टि से इनका आसेवन न करने का परामर्श देते हैं। धर्म के साथ केवल स्वास्थ्य की दृष्टि नहीं है, उसका दृष्टिकोण है–इससे चेतना विकृत बनती है। जब चेतना बिगड़ जाती है तब क्या सही है, क्या झूठ है, इसका भी पता नहीं चलता।



पूज्य कालूगणी जब गांवों में पधारते, ग्रामीणों के बीच व्याख्यान देते तब पूज्य गुरुदेव फरमाते–'भाइयो! शराब पीने से चेतना बिगड़ जाती है।' व्यक्ति शराब पीकर घर में गया। सामने पत्नी बैठी है। वह बोलता है–मां! क्या कर रही हो? सामने होती है मां और कह देता है–प्रिये! क्या कर रही हो? मां को पत्नी और पत्नी को मां समझ लेता है।

एक शराबी बहुत शराब पीकर आया। पत्नी ने देखा–जगह-जगह खून आ रहा है, खरोंचे आई हैं। अवश्य ही कहीं गड्ढे में गिरे हैं। पत्नी ने मलहम हाथ में थमाते हुए कहा–'यहां चोट लगी है, खून आ रहा है। यह मलहम लगा लो।'

पत्नी मलहम देकर चली गई। वह मलहम लगा कर सो गया। सुबह उठा तो देखा कपड़े खून से सने हुए हैं। पत्नी ने पूछा–'क्या आपने मलहम लगाई नहीं?'

'लगाई थी।'

'जहां खरोंच है, वहां बिल्कुल लगी हुई नहीं है। कहां लगाई?'

पत्नी ने कांच की ओर देखा तो मलहम कांच पर लगी हुई थी। नशे में पता ही नहीं चलता।

चेतना को स्वस्थ रखने के लिए ज्ञान का होना बहुत जरूरी है। भगवान महावीर का वचन है–**पढमं णाणं तओ दया**–पहले ज्ञान और फिर आचरण। जब ज्ञान ही नहीं है तो आचरण कैसे होगा? बिना जाने ठीक आचरण नहीं होता। पहले जानना जरूरी है।

प्राचीन घटना है। एक मुमुक्षु भाई की दीक्षा होने वाली थी। वे मेवाड़ में संतों के दर्शनार्थ गए। वे जिस क्षेत्र के थे, वहां आम नहीं होते थे इसलिए उन्होंने कभी आम नहीं देखा था।

मेवाड़ में यह पद्धति प्रचलित है–भोजन के साथ थाली में आम भी रख देते हैं। इसलिए कि रोटी खाओ और आम को चूसते चले जाओ। मुमुक्षु ने सोचा–यह क्या चीज है? कैसे खाऊं? मुमुक्षु भाई आम को हाथ में लेता है इधर-उधर करता है पर उसे खाता नहीं है। पास में भोजन कर रहे भाई ने अपने थाल में रखे हुए आम को हाथ में लेकर दिखाते हुए कहा–'वैरागीजी! यह आम है। इसका ऊपर से नाका तोड़ो और इसको ऐसे चूसो। यह बहुत स्वादिष्ट फल है।'

मुनि घासीरामजी स्वामी धर्मसंघ के तत्त्वज्ञानी संत थे। सिद्धांतों के गहरे जानकार थे। वे मेवाड़ क्षेत्र के थे। दीक्षा से पूर्व वे वैरागी अवस्था में सुजानगढ़ आए। सुश्रावक लोढ़ाजी ने भोजन के लिए निमंत्रण दिया। भोजन की कटोरी में खीर परोसी। खीर पर बादाम, पिस्ता की कतरन थी। वैरागी शेष सब खाद्य वस्तु खाते रहे पर खीर को नहीं छुआ। पास बैठे व्यक्ति ने पूछा–'वैरागीजी! यह खीर क्यों नहीं खाते?'

'भाई! क्या खाएं? इसके ऊपर तो लट ही लट पड़ी है।'

पदार्थ का ज्ञान नहीं होता तो पिस्ता, बादाम की कतरन 'लट' बन जाती है।

यह व्यवहार की बात है। तत्त्व की बात यह है–जो जीव को नहीं जानता, अजीव को नहीं जानता वह संयम को कैसे जानेगा? इसलिए तत्त्वज्ञान का होना बहुत जरूरी है। जब ज्ञान होता है तब सचमुच नेत्र खुल जाता है।

जो जीवे वि न याणाई, अजीवे वि न याणई।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो णाहिई संजमं।।

प्रभव का नेत्र खुला, सारे वातावरण में एक अकल्पित बदलाव आया, ५०० चोरों के नेत्र भी खुल ए। उन्होंने सोचा–आज तक सब चौर्य-कर्म के सहायक मिले। यह कहने वाला कोई नहीं मिला–चोरी करना रा है। सबने यही कहा–यह बड़ा अच्छा काम है, सीधा धन आता है। धन लूट कर लाओ, फिर खूब मजा रो, आनंद लो, कोई चिंता नहीं। आज तो सचमुच एक नया प्रभात हो रहा है। यह प्रत्यूष काल है। सूरज की रणें आने वाली हैं। इस समय एक नव अरुणाभा का प्रसार हो रहा है। सबका मन बदल रहा है।

बड़ा कठिन काम है मन को बदल देना। समर्थ आदमी जबर्दस्ती अपनी बात मनवाता है, डंडे के बल मनवा लेता है पर मन को बदल देना बहुत बड़ी बात है। हृदय-परिवर्तन हो जाना, हृदय का बदल जाना ा दुष्कर काम है।

जम्बूकुमार ने आठ नवपरिणीता बहुओं का मन बदल दिया, प्रभव का मन बदल दिया। जम्बूकुमार और प्रभव दोनों ने ५०० चोरों का मन बदल दिया। ऐसा लगा जैसे कोई अमृत की बूंद गिरी, उनसे चित्त आप्लावित और आनंदमय हो गया। वे सब अतीत को विस्मृत कर शुभ भविष्य का संकल्प सजाने लगे।

प्रभव ने सोचा–मैं एक बार इनकी परीक्षा तो कर लूं। क्या सचमुच आंतरिक संकल्प प्रस्फुट हुआ है?

प्रभव बोला–'साथियो! दिन उगने वाला है। यह धन की पोटलियां, गट्ठर बंधे हुए पड़े हैं। इनको उठाओ। हम चलें।'

सारे चोर एक स्वर में बोले–'स्वामी! अब धन किसको चाहिए। 'वोसिरे-वोसिरे'–इन पोटलियों को यहीं वोसिराते हैं, छोड़ते हैं। ये जिसकी हैं उसको भी नहीं चाहिए तो हमें क्यों चाहिए? आज से हमारे लिए यह सोना–**तृणवत् सर्वकंचनं**–तिनके की तरह है। हमें धूल और सोने में कोई अंतर नहीं लग रहा है। जैसी धूल वैसा सोना और जैसा सोना वैसी धूल। अब हमारा मोहभंग हो गया है।'

'बोलो, तुम क्या चाहते हो?'

'स्वामी! हम सब भी तुम्हारे साथ हैं।'

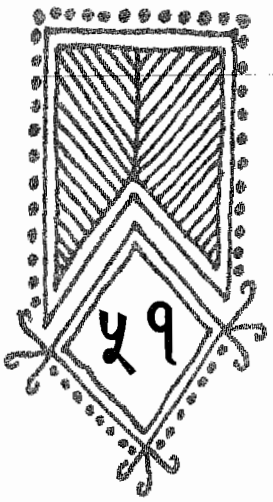
तुम चलो संधान लेकर, हम तुम्हारे साथ में हैं।

'तुम साधु बनो तो हम भी साधु बनेंगे।'

एक फौज तैयार हो गई साधु बनने वालों की।....

यह कैसी रात है, जो परिवर्तन का विलक्षण इतिहास रच रही है।







इतिहास में कुछ घटनाएं विरल होती हैं। कभी-कभी कोई प्रसंग बनता है तब विचित्र घटनाएं सामने आती हैं। अतीत में हजारों मुनि बने हैं, भविष्य में बनेंगे किन्तु जम्बूकुमार का मुनि बनना एक विरल घटना हैं। भगवान ऋषभ ने दीक्षा ली तब ४००० लोगों ने उनके साथ अभिनिष्क्रमण किया। यह आश्चर्य की बात है कि प्रथम बार दीक्षा हो रही थी और ४००० शिष्य बिना निमंत्रण के साथ हो गये पर चोर उनमें एक भी नहीं था। अनेक तीर्थंकर दीक्षित हुए, उनके साथ भी अनेक व्यक्ति साधु बने। भगवान महावीर के साथ कोई दीक्षित नहीं हुआ। वे अकेले ही संन्यास के पथ पर चल पड़े। ऐसे व्यक्ति भी हुए हैं, जिनके साथ सैकड़ों लोग दीक्षित हुए किन्तु कभी किसी के साथ कोई चोर दीक्षित हुआ हो, यह इतिहास में उल्लेख नहीं मिलता। पूरे इतिहास काल में अकेला जम्बूकुमार ही ऐसा है जो स्वयं दीक्षित हो रहा है और उसके साथ चोरों का परिवार दीक्षित होने के लिए संकल्पित हो रहा है। यह एक विरल आश्चर्यकारी घटना है।

वह रात उद्‌बोध, संबोध और प्रतिबोध की रात थी। एक ओर सारी दुनिया सोई हुई थी दूसरी ओर जम्बूकुमार के भव्य प्रासाद में चैतन्य जागरण का महान् अभियान चल रहा था। जम्बूकुमार का वह अभियान सफल हो गया। अब प्रतीक्षा हो रही है सूर्योदय की। कब सूरज उगे और कब हम माता-पिता के पास जाएं। सूर्य भी शायद इस प्रतीक्षा में रहा होगा कि कब जम्बूकुमार का अभियान संपन्न हो और कब मैं अभिनिष्क्रमण का वर्धापन करूं।

जैसे ही पूर्वांचल में सूर्य आया, सूर्य की रश्मियां पृथ्वी पर बिखरीं, धरती पर अरुणाभ प्रकाश फैला। जम्बूकुमार ने प्रभव से कहा–'प्रभव! चलो। हम मुख्य प्रासाद में चलें। माता-पिता से मिलना है, माता-पिता को प्रणाम करना है।'

वे सोपान वीथी से नीचे उतरे। माता-पिता भी सूर्योदय से पूर्व जागृत हो गये। वे प्रातःकर्म से निवृत्त होकर पुत्र-पुत्रवधुओं की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके दिमाग में यह विचार स्फुरित हो रहा था कि देखो, अब

क्या होता है? क्या समाचार आता है? कुछ क्षण बाद उन्हें प्रासाद के भीतर हलचल और कोलाहल-सा सुनाई दिया। उसे सुनकर माता-पिता बाहर आये, बाहर आते ही देखा–घर चारों तरफ मनुष्यों से भरा है। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। इतने लोग कहां से आ गये? कौन हैं ये लोग? क्यों आए हैं ये लोग?

उनके आश्चर्य का उपशमन हो, उससे पूर्व ही उन्होंने देखा–जम्बूकुमार आ रहा है। उसके साथ एक अनजाना चेहरा है और पीछे-पीछे आठ नव-वनिताएं हैं। जम्बूकुमार ने मां को नमस्कार किया।

मां बोली–'जम्बूकुमार! आज यह क्या हुआ है? ये कौन लोग हैं? सारा घर भरा हुआ है। ऊपर-नीचे चारों तरफ आदमी ही आदमी हैं। क्या तुमने बुलाया है?'

'हां, मां! मैंने ही नहीं, आपने भी बुलाया है।' जम्बूकुमार ने मृदु स्वर में उत्तर दिया।

'अरे, किसने न्योता दिया? विवाह तो कल हो चुका।'

'हां, मां!'

'विवाह का भोज भी हो गया।'

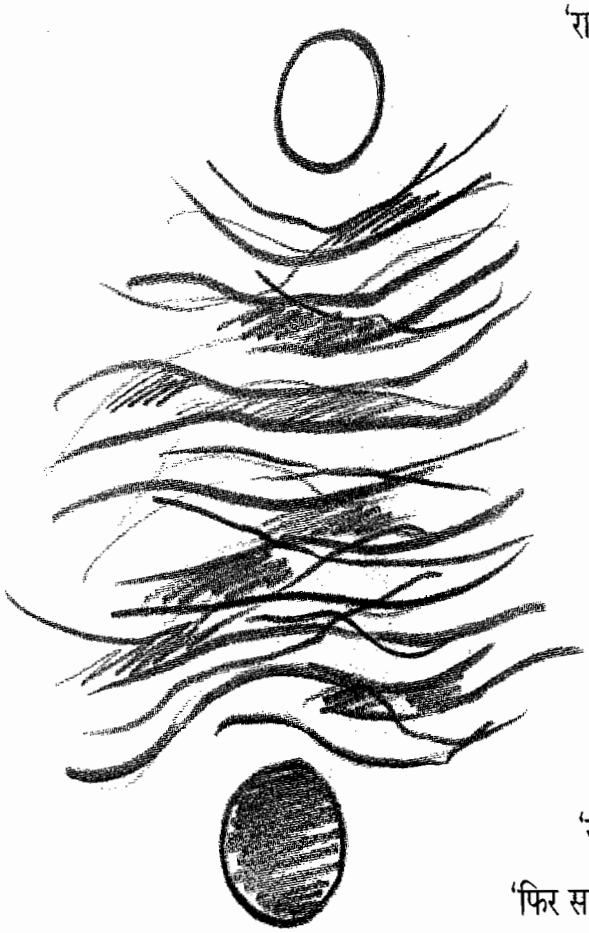
'हां, मां!'

'तो ये क्यों आए हैं?'

'मां! हमने बुलाया है इसलिए आए हैं?'

'कब बुलाया?'





'रात को।'

'क्या निमंत्रण दिया था?'

'हां, मां!'

'किसने निमंत्रण दिया?'

'मां! यह धन तो चोरों के लिए निमंत्रण है।'

'ओह!'–मां के मुख से खेदसूचक ध्वनि फूट पड़ी।

'मां! जहां धन है वहां चोर-डाकू के लिए खुला निमंत्रण है। ये धन वैभव के लिए आए हैं।'

'क्या ये सारे चोर हैं?'

'नहीं, अभी तो ये साहूकार हैं।'

'क्या ये व्यापार धंधा करते हैं?'

'नहीं मां।'

'फिर साहूकार कैसे हुए?'

'मां! अब ये साहूकार बन गए हैं।'

'जम्बूकुमार! रहस्य की बात क्यों कर रहा है? साफ-साफ क्यों नहीं बताता कि ये कौन हैं? क्यों आए हैं।'

'मां! मैं तो साफ-साफ बात कह रहा हूं कि ये कभी चोर थे।'

'क्यों आए हैं?'

'चोरी करने आए हैं।'

'चोरी करने आए हैं?'

'हां, मां!'

'अब क्या होगा?'–मां ने यह कहते हुए गहरा निःश्वास छोड़ा।

'मां! धन में सबका हिस्सा होता है। इतना धन घर में आया है। हम इतने धन का क्या करेंगे? यह सारा हमारे तो काम आएगा नहीं।'

यदि कोई व्यक्ति अकेला धन को भोगना चाहे तो वह तनाव में जीयेगा या आर्तध्यान में जीयेगा। वह उसे भोग भी नहीं पायेगा। आगम वाङ्मय में इस प्रकार की घटना का उल्लेख है–एक बहुत लोभी, लालची आदमी था, वह हमेशा धन की ही चिन्ता करता, धन की सुरक्षा में दिन-रात लगा रहता। वह मरकर उसी घर में सांप हो गया। वह सर्पयोनि में भी उसी धन के पीछे घूमता रहता है।

जम्बूकुमार ने कहा–'मां! हमने ही तो चोरों को निमंत्रण दिया है। इतने धन की जरूरत क्या थी? पर जब इतना धन आ गया तो ये चोर अपने आप आ गये।'

मां घबराई, पिता भी घबराया, बोला–'अरे! इतने चोर हैं। हमारा तो पता ही क्या चलेगा?'

जम्बूकुमार आश्वस्त करते हुए बोला–'मां! पिताश्री! घबराने की कोई जरूरत नहीं है। तुम चिंता मत करो। अब ये साहूकार बन गए हैं। तुम्हारे धन का कतरा भी नहीं लेंगे।'

माता-पिता ने संतोष की सांस ली।

जम्बूकुमार ने अपनी भावना को दोहराते हुए कहा–'मां! अब तुम अपने वचन पर ध्यान दो। मेरी इच्छा नहीं थी कि मैं शादी करूं पर तुम्हारी प्रबल इच्छा थी, तुमने कहा था–'जम्बूकुमार! एक बार शादी कर लो फिर चाहे मुनि बन जाना।' मैंने अनमने मन से तुम्हारी बात मान ली, विवाह कर लिया।'

'मां! मैंने कहा था–पहले दिन विवाह होगा और....दूसरे दिन मैं साधु बनूंगा, अब मुझे आप आज्ञा दें।'

यह सुनते ही मां को अपना सपना चूर होता-सा प्रतीत हुआ। मां ने सोचा था–पूरी रात सामने है। ये आठ पत्नियां जम्बूकुमार को समझा देंगी। जम्बूकुमार इनसे प्रभावित हो जायेगा और हमारा काम बन जायेगा किन्तु जम्बूकुमार बात तो अभी भी वही कर रहा है, जो परसों कर रहा था।

जम्बूकुमार बोला–'मां! मेरी एक बात सुनो–

विरत बिहूणी जे घणी, निश्चै निरफल जाय।
मन ऊब्यो है मांहरो, मत दीज्यो अंतराय।।

मां! व्रत के बिना एक-एक पल विफल जाती है, एक-एक घड़ी फालतू जाती है, अर्थहीन बन जाती है।'

'मां! मेरे मन में एक तड़प लग गई है। जो तड़प लग जाती है, वह पूरी नहीं होती है तो बड़ी छटपटाहट और बेचैनी होती है।'

'मां! कृपा करो। अब अंतराय मत देना। एक बार मैंने तुम्हारी बात मान ली, अनिच्छा से मान ली पर अब कोई ऐसी बात मत कहना, जिससे अंतराय आए।'

'मां! तुम जानती हो कि अंतराय अच्छी नहीं होती। धर्मान्तराय–धर्म की अंतराय देना, धर्म में विघ्न डालना तो बिल्कुल अच्छा नहीं होता क्योंकि धर्म ही तो कल्याणकारी है। जहां आदमी सब जगह विफल होता है, वहां धर्म की शरण में सफल होता है।'

कल ही एक भाई आया, उसने कहा–'मैंने सब जगह उपचार करा लिए। डॉ. कहते हैं–हमारे पास कोई इलाज नहीं है। बस अब तो एक धर्म ही शरण है और इस शरण में आये हैं।' उन्होंने कहा–'इस शरण से हमारा काम हो गया, सफलता भी मिल गई। धर्म के प्रभाव से बड़ी विचित्र घटनाएं होती हैं। अंतिम शरण है धर्म। जहां और शरण काम नहीं देती, सब अशरण बन जाते हैं वहां धर्म की शरण, अपने मनोबल की शरण, अपनी आस्था की शरण काम देती है।

गाथा
परम विजय की

जम्बूकुमार बोला–'मां! तुम महावीर की वाणी पर ध्यान दो।

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिणियत्तइ।
अहम्मं कुणमाणस्स, विफला जंति राइओ।।

रात चली जा रही है। जो रात बीत गई, वह लौटकर कभी नहीं आती। जो आदमी अधर्म करता है, उसकी रातें फालतू चली जाती हैं।'



जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिणियत्तइ।
सुहम्मं कुणमाणस्स सफला जंति राइओ।।

'मां! जो रात चली जाती है वह लौटकर नहीं आतीं किन्तु जो आदमी धर्म का आचरण करता है, उसकी हर रात सफल होती है, हर घड़ी सफल होती है, हर पल सफल होता है। उसका कोई भी पल विफल नहीं होता।'

'मां! धर्म के बिना, संयम के बिना दिन और रात बीतती है तो उसका क्या अर्थ होता है?'

यस्य धर्मविहीनानि, दिनान्यायांति यांति च।
स लोहकारभ्रस्त्रेव, श्वसन्नपि न जीवति।।

'मां! जिस आदमी का दिन धर्म के बिना बीतता है, वह सांस तो लेता है पर जीता नहीं।'

क्या यह संभव है कि व्यक्ति सांस तो ले और जिन्दा न हो। जीवन का लक्षण क्या है? कोई भी जीवन की परीक्षा करते हैं तो सबसे पहले रुई का फोआ नाक के छिद्र पर लगाते हैं और देखते हैं–सांस आ

रही है या नहीं? डॉक्टर सांस और हृदय की धड़कन को देखता है। सांस है तो जीवित माना जाता है। सांस बंद तो जीवन समाप्त। पर कवि कहता है–सांस तो लेता है पर जिन्दा नहीं है।

कवि ने बड़ी युक्ति के साथ समर्थन किया है और उदाहरण के द्वारा उसको प्रमाणित किया है। उसने कहा–आपने लोहार की धौंकनी देखी होगी। लोहार जब धौंकता है, वह सांस इतना जोर से लेती है कि दूर तक आवाज सुनाई देती है। उसके आधार पर एक प्राणायाम का नाम ही भ्रस्त्रिका हो गया। लोहार की धौंकनी का संस्कृत में नाम है भ्रस्त्रा। एक प्राणायाम जो जोर-जोर से लिया जाता है उसका नाम है भ्रस्त्रिका। वह धौंकनी सांस तो लेती है पर जिन्दा नहीं है। वैसे ही जो आदमी धर्मशून्य होता है, धर्म के बिना जिसका जीवन चलता है वह सांस तो लेता है पर जिन्दा नहीं है।

जम्बूकुमार बोला–'मां! अब अंतराय मत दो। मुझे जल्दी स्वीकृति दो, आज्ञा दो क्योंकि जिनशासन में आज्ञा के बिना संयम प्राप्त नहीं होता। कोई-कोई प्रत्येक-बुद्ध होता है जो अपनी इच्छा से चल पड़ता है किन्तु एक गच्छ में, संघ सामाचारी में कोई दीक्षित होता है तो वह माता-पिता और परिवार की स्वीकृति-पूर्वक दीक्षित होता है। आप सब खड़े हैं। मुझे स्वीकृति दें।'

मां और पिता ने सारी बात सुनी। मन में तूफान उत्पन्न हो गया। मां की स्थिति बहुत विचित्र बन गई। भीतर में भयंकर उद्वेलन है फिर भी अपने आप को बाहर से शांत कर मां बोली–'बेटा! तुम दीक्षा की बात कर रहे हो। तुम्हारी भावना ठीक है। मैं रोकना भी नहीं चाहती पर मेरे प्रश्न का पहले उत्तर दो।'

'मां! क्या प्रश्न है आपका?'

'जंबू! तुम दयालु माता-पिता को छोड़ रहे हो। हितैषी भाई-भगिनी को छोड़ रहे। सहयोगी मित्रों और सहायकों को छोड़ रहे हो। सदा छाया की तरह साथ रहने वाली प्रियाओं को त्याग रहे हो। इस भव्य प्रासाद को छोड़ रहे हो। ये सब तुम्हें वहां कहां मिलेंगे?'

'मां! तुम जिनके लिए यह कह रही हो, वे सब अशाश्वत हैं। आज हैं, कल नहीं हैं। आज जिनका संयोग हुआ है, उनका किसी क्षण वियोग हो सकता है। मां! अध्यात्म-मार्ग में मुझे ऐसे माता-पिता, भ्राता और सुहृद मिले हैं, जिनका कभी वियोग नहीं होता।'

'जंबू! अध्यात्म में तो व्यक्ति अकेला होता है। वहां कहां हैं माता-पिता और कहां हैं मित्र-सुहृद?'

'मां! क्या तुम जानना चाहोगी?'

'हां, जंबू! मैं जानना चाहती हूं कि कौन हैं वे, जिनका कभी वियोग नहीं होता।'

'मां! वे मेरे चिर-सहचर बने रहेंगे।'

'जंबू! मैं उनके नाम जानना चाहती हूं।'

'मां! तुम ध्यान से सुनो–

पिता योगाभ्यासो विषयविरतिः सा च जननी, विवेक सौदर्यः प्रतिदिनमनीहा च भगिनी।
प्रिया शांतिः पुत्रो विनय उपकारः प्रिय सुहृत्, सहायो वैराग्यं गृहमुपशमो यस्य स सुखी।।

'मां! योगाभ्यास मेरे पिता हैं। विषय-विरति मेरी मां हैं। विवेक मेरा सहोदर है। अनासक्ति मेरी बहिन है। शांति मेरी प्रिया है। विनय मेरा पुत्र है। उपकार मेरा मित्र है। वैराग्य मेरा सहायक है। उपशम मेरा घर है।'

'मां! मुझे ये सब प्राप्त हैं इसलिए अकेला होते हुए भी अकेला नहीं हूं। मां! जिनको ये सब प्राप्त हो जाते हैं, वह सदा सुखी रहता है, कभी दुःखी नहीं बनता।'

'जंबू! तुमने तो अपने सुख के साधन ढूंढ़ लिए पर तुम मुझे यह बताओ–तुम्हारे पीछे जो ये आठ खड़ी हैं उनका क्या होगा? क्या तुम्हें इनकी कोई चिंता नहीं है?'

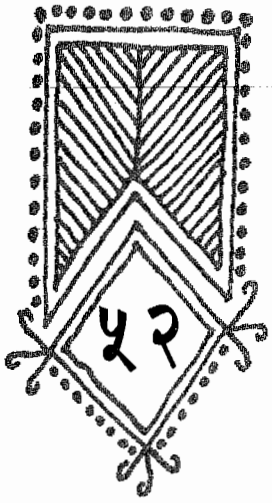
गृहस्थ जीवन में एक के बाद एक चिंता उभरती चली जाती है। पहली चिन्ता यह थी–तुम एक बार शादी कर लो तो यह घर-आंगन कुंआरा नहीं रहेगा। फिर तुम दीक्षा ले लेना। अब नई समस्या पैदा हो गई।

समस्या का अंत कभी इस दुनिया में हो नहीं सकता। यह एक ध्रुव सत्य है। कोई आदमी यह सोचता है कि सारी समस्याएं सुलझ गईं तो यह भ्रांति है चिंतन की। केवल एक ही स्थान है, जहां समस्या सुलझती है। वह स्थान है–'आत्मावलोकन', 'आत्मप्रेक्षा', अपने आपको देखना। अपने आपको देखना शुरू करें, कोई समस्या नहीं है। बाहरी जगत् में हमारी चेतना आये तो ढेर सारी समस्या पैदा होती है।

मां ने एक नई समस्या खड़ी कर दी–'बेटा! मुझे बताओ, इनका क्या होगा। एक पंक्ति खड़ी है पूरी तुम्हारे पीछे। ये कैसे अपना दिन बितायेंगी? तुम तो साधु बन जाओगे और ये पीछे रहेंगी। अब मैं इनको कैसे रखूंगी? कैसे समझाऊंगी? कैसे इनके दुःख को मिटाऊंगी? ये रोती-कलपती रहेंगी? मुझे दया आयेगी। मेरी क्या दशा होगी? तू साधु बन रहा है अहिंसा के लिए। क्या यह हिंसा नहीं है?'

जम्बूकुमार ने कहा–'मां! तुम यह प्रश्न मुझसे क्यों पूछती हो? यह प्रश्न तुम अपनी बहुओं से पूछो। वे क्या कहती हैं और उनकी क्या मानसिकता है? वे तुम्हारे सामने खड़ी हैं। तुम्हारी जिज्ञासा और व्यथा का उपशमन वे स्वयं करेंगी।'







समुदाय का एक शिष्टाचार होता है। जो नागरिक हैं, नगर में रहने वाले हैं और जिन्हें बहुत कुछ जानने को मिलता है उनका एक शिष्टाचार होता है। शिष्टाचार गांव में भी होता है। गांव में भी बहुत समझदार लोग होते हैं। वहां भी एक शिष्ट आचार है। कैसे चलना, कैसे बैठना, कैसे खड़ा होना–ये सब शिष्टाचार के घटक हैं। धर्मसभा की मर्यादा को जानना भी शिष्टाचार का एक अंग है।

एक शब्द है 'शिष्टता'। दूसरा शब्द है 'विनय'। शिष्टता को प्राचीन भाषा में कहा जा सकता है लोकोपचार विनय। एक विनय होता है भीतर का। विनय का एक प्रकार है लोकोपचार विनय–लोगों में कैसा व्यवहार अच्छा लगता है।

यह जम्बूकुमार का शिष्टाचार और लोकोपचार विनय है कि वह बड़ी शिष्टता के साथ मां के सामने बद्धांजलि खड़ा है और कह रहा है–'मां! अब देरी मत करो। एक-एक पल भारी हो रहा है। शीघ्र आपकी स्वीकृति मिले और मैं मुनि बनूं।'

मां ने प्रश्न रखा नवविवाहिता बहुओं का–'बेटा! इनका क्या होगा?'

जम्बूकुमार ने कहा–'मां! ये क्या चाहती हैं, पहले तुम यह जान तो लो।'

मां ने उनकी ओर मुड़कर देखा और कहा–'बेटी! क्या चाहती हो तुम?'

'मां! हम आत्मा को देखना चाहती हैं।'

मां ने सोचा–यह रटा-रटाया उत्तर हो गया। जम्बूकुमार कहा करता था–मैं आत्मा को देखना चाहता हूं और ये कुछ जानती नहीं हैं, भोली कन्याएं हैं, ये भी कहने लग गईं कि आत्मा को देखना चाहती हैं।

'आत्मा को देखना चाहती हो पर आत्मा है कहां? क्या है आत्मा? किसने तुम्हें यह झूठी बात बतला दी?'

समुद्रश्री, जो सबसे बड़ी थी, बोली–'मां! कल तक तो वही हम सोचते थे जो आप कह रही हैं। यह आत्मा आत्मा कुछ नहीं है, सब झूठी बातें हैं। पर प्रियतम में ऐसा कोई चमत्कार है कि एक रात में ही हमें आत्मा का दर्शन करा दिया। हमें आत्मा का दर्शन हो गया।'

क्या इतनी जल्दी चेतना का परिवर्तन हो सकता है? हमारी चेतना के अनेक स्तर हैं–ज्ञान चेतना, कर्म चेतना और कर्मफल की चेतना। किसी एक चेतना पर ध्यान अटक जाये तो एक परिवर्तन घटित होता है।

सन् १९७९ की घटना है। हम लोग नोहर में थे। रात्रिकालीन प्रवचन में मैंने दर्शन केन्द्र की चर्चा की। मैंने कहा–'दर्शन केन्द्र वह स्थान है, जहां आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है।' प्रवचन संपन्न हो गया। जैन, जैनेतर हजारों लोग थे। दूसरे दिन दोपहर को हम साध्वियों के प्रवास स्थल से लौट रहे थे। अग्रवाल समाज की पांच-सात महिलाएं, जो कीर्तन-भजन में ज्यादा रस लेती हैं, सड़क पर खड़ी हो गईं और बोलीं–'महाराज! ठहरो, दो मिनिट ठहरो।' हम ठहर गये। वे बोलीं–'महाराज! रात आपने बताया कि यहां मस्तक पर ध्यान करने पर आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है। महाराज! हमें और कुछ नहीं चाहिए, हमें तो आप सांवरिये का साक्षात्कार करा दीजिए।' यह कहते-कहते वे जैसे रोने लग गईं। उनकी भावना इतनी प्रबल थी कि एक उत्सुकता जाग गई और गद्‌गद हो गई, आंखों में आंसू आ गये। वे बोलीं–'महाराज! हमें तो अब सांवरिये का दर्शन ही करा दो।'

चेतना बदलती है, चेतना का रूपान्तरण होता है। एक शब्द ऐसा काम करता है कि आदमी की चेतना बदल जाती है।



प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का प्रसंग विश्रुत है। वे मुनि बन गए। ध्यान साधना में लीन थे। सम्राट श्रेणिक भगवान महावीर के दर्शनार्थ जा रहे थे। अग्रिम पंक्ति में चल रहे एक व्यक्ति ने उन्हें संबोधित कर कहा–'पाखंडी कहीं का! आकर ध्यान में खड़ा हो गया। वहां राज्य पर शत्रुओं का आक्रमण हो रहा है।'

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि वृक्ष के नीचे ध्यान की मुद्रा में खड़े थे। अब ध्यान में खड़े-खड़े संग्राम में लड़ने लग गये और मारने लग गये। यह शब्द का ही तो चमत्कार था। काफी देर तक युद्ध किया। श्रेणिक की सेना के पीछे-पीछे सुमुख चल रहा था। वह बोला–'राजर्षि! धन्य हैं आप! आपने राज्य छोड़ा है। मुनि बने हैं।' जैसे ही राजर्षि प्रसन्नचन्द्र ने सुना, सोचा–'अरे! मैं कहां चला गया। मैं तो अब साधु बन गया हूं। मैंने राज्य छोड़ दिया। किसका राज्य, किसका बेटा, किसका युद्ध। वे तत्काल संभले।'

जब वे ध्यान में युद्ध कर रहे थे, संक्लिष्ट परिणाम धारा थी। उस समय महावीर ने एक प्रश्न के उत्तर में कहा–अगर राजर्षि अभी मरे तो सातवें नरक में जा सकता है। संभलते ही स्थिति ऐसी बनी की कि महावीर बोले–प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को केवलज्ञान हो गया है।

चेतना का आरोहण-अवरोहण–दोनों होता है। चेतना कहां जाती है, हमारा चित्त कहां जाता है, उस पर बहुत कुछ निर्भर है। जब कोई निमित्त मिलता है, चेतना बदल जाती है।

आठों कन्याओं की चेतना का रूपान्तरण हो गया। परिवर्तन नहीं, रूपान्तरण। एक रूप ही दूसरा बन गया। नया जन्म और नया अवतार हो गया। वे बोलीं–'मां! आप हमारी चिंता न करें। जम्बूकुमार ने हमें ऐसा सत्य दिया है, ऐसा रत्न दिया है कि अब इन बहुमूल्य रत्नों की हमें कोई अपेक्षा नहीं है।'



प्राचीन जमाने में एक-एक घर में इतने रत्न होते थे कि आज तो कल्पना भी नहीं कर सकते। जिन्होंने जगतसेठ का नाम सुना है, जगड़ूशाह का नाम सुना है, जिन्होंने भैंसाशाह का नाम सुना है, जिन्होंने भामाशाह का नाम सुना है जो जैन श्रावक थे, वे इतने धनी और सम्पन्न थे। जगड़ूशाह ने जब अपना रत्न भण्डार दिखाया तो बादशाह के अधिकारी चकित हो गये। जगड़ूशाह बोला–'चिंता मत करो। गुजरात में अकाल है तो पूरे गुजरात को मैं अनाज दूंगा।'

कन्याएं बोलीं–'मां! आपके घर में रत्न बहुत हैं किन्तु अब वे हमारे लिए व्यर्थ बन गये हैं।'

'मां! मोहग्रस्त आदमी इन पत्थर के टुकड़ों को रत्न मानते हैं।'

'मां! हमारा मोह भंग हो गया है। हमें इन रत्नों में कोई सार दिखाई नहीं देता। एक रात में प्रियतम ने हमें अनुत्तर तीन रत्नों का ज्ञान करा दिया है। वह रत्नत्रयी है सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र।'

रत्न रखने वाले, रत्नों का धंधा करने वाले, रत्न का काम करने वाले, उन्हें जड़ाने और पहनने वाले यह भी जानें कि रत्न सिर्फ वे ही नहीं हैं। तीन रत्न सर्वश्रेष्ठ हैं और वे हैं–सम्यक् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र।

सम्यक् दर्शन से बड़ा दुनिया का कोई रत्न नहीं है। जिसका दृष्टिकोण सही हो गया, उसे महान् रत्न उपलब्ध हो गया।

सीकर से एक भाई आया। वह जैन नहीं था। पहली बार दर्शन किए। उसने कहा–'मैं राजस्थान पत्रिका का तत्त्वबोध पढ़ता हूं। आपके विचारों से मुझे नया चिन्तन मिला है। कुछ समस्या है उसे सुलझाने आया हूं।'

मैंने कहा–'बोलो, क्या समस्या है?'

'महाराज! समस्या यह है कि मुझे निरंतर बुरे विचार आते हैं। निरंतर नकारात्मक दृष्टिकोण, निषेधात्मक दृष्टिकोण, नेगेटिव ऐटिट्यूड बना रहता है। बड़ा दुःखी हूं। इससे कैसे मुक्ति पा सकता हूं?'

बहुत लोग हैं जिनमें निराशा, हताशा और उदासी रहती है, बुरे विचार, बुरे सपने आते रहते हैं।

उसने कहा–'महाराज! दिन में बुरे विचार आते हैं और रात को बुरे सपने आते हैं।'

यही समस्या कल एक युवती ने रखी–'मुझे बुरे सपने बहुत आते हैं। मैं क्या करूं?'

यह जटिल समस्या है। अगर यह नकारात्मक दृष्टिकोण बदल जाये, यह मिथ्या दृष्टिकोण बदल जाये, दर्शन सम्यक् हो जाये तो उससे बड़ा दुनिया में कोई धनी नहीं होता। बड़े-बड़े धनी लोग उनके चरणों में सिर टिकाते हैं, जिनका दृष्टिकोण सम्यक् बन गया है।

एक राजा ने सुना–शहर में संन्यासी आया है। गलियों में, खेत-खलियानों में घूमता रहता है। जहां अनाज के दाने बिखरे रहते हैं, उनको चुग-चुग कर खाता है। राजा को बड़ी दया आई। राजा ने अपने अधिकारियों से कहा–'तुम जाओ और उस संन्यासी को कुछ धन दे आओ, जिससे वह ठीक खा सके।'

अधिकारी गये, बोले–'महाराज! राजा ने हमें भेजा है। यह धन तैयार है। आप इसे स्वीकार करें और अच्छी तरह खाना तो खा लें।'

संन्यासी ने कहा–'मुझे बिल्कुल नहीं चाहिए। कोई आवश्यकता नहीं है।'

अधिकारी निराश लौट गए। राजा ने सोचा–बड़ा विचित्र भिखारी है। जिसके पास कुछ भी खाने को नहीं है, दाने बीन-बीनकर खाता है और धन देते हैं तो लेता नहीं है। भिखारी भी और ठेंगारी भी। खाता है चुग-चुगकर और अपना एक अहंकार भी रखता है, कुछ लेता नहीं है।

राजा स्वयं आया, नमस्कार कर बैठ गया, बोला–'महाराज! आपके पास खाने को कुछ नहीं है। आप ऐसे दाने बीन-बीन कर खाते हैं। थोड़ा-सा हमारा धन ले लो। आपका काम ठीक चल जायेगा।'

बड़े पहुंचे हुए संत थे, बोले–'राजन्! तुम मुझे देना चाहते हो?'

'हां, देना चाहता हूं।'

'किन्तु मैं भिखारी नहीं हूं और मैं लेना नहीं चाहता।'

'आप क्यों नहीं लेना चाहते?'

'क्योंकि मैं बहुत समृद्ध और समर्थ हूं।'

'आपकी समृद्धि कहां है?'

'राजन्! मेरे पास स्वर्ण सिद्धि की विद्या है। मैं चाहूं तो सारे लोहे को सोना बना दूं।'

यह सुनते ही राजा की आंखें खुल गईं। वह विनय से झुका, नमस्कार किया और बोला–'महाराज! यह स्वर्ण सिद्धि की विद्या तो आप मुझे भी सिखा दो।'

राजा का अनुरोध आग्रह में बदल गया–'आप मुझे यह सोना बनाने की कला सिखा दें।'

संन्यासी सुनता रहा, कुछ बोला नहीं। काफी देर राजा ने मिन्नतें की। संन्यासी बोला–'राजन्! अब बताओ–भिखारी तुम हो या मैं? कौन है भिखारी?'

राजा मौन हो गया।



जिसके पास सम्यक् दर्शन है, वह सबसे ज्यादा धनी होता है। वह इतना सुख और शांति का जीवन जीता है जितना दुनिया में कोई नहीं जी सकता। जिसका दृष्टिकोण सही बन गया, वह हर बात को ठीक सोचता है, ठीक देखता है, ठीक कार्य करता है। वह विधायक भाव में जीता है। न कोई ईर्ष्या, न कोई द्वेष, न कोई स्पर्धा, न कोई हीनता की भावना, न कोई अहंकार की भावना–केवल आत्मा के साक्षात् की भावना। सम्यक् दर्शन का मतलब है आत्मा का ज्ञान होना, आत्मा को देखने की मन में ललक पैदा हो जाना। यह सम्यक् दर्शन सबसे बड़ा रत्न है।

दूसरा रत्न है सम्यग् ज्ञान। जब तक दर्शन सही नहीं होता, ज्ञान भी सही नहीं होता। ज्ञान तब सही होता है जब दर्शन सही होता है।

एक आदमी के प्रति दृष्टिकोण बन गया–यह आदमी अच्छा नहीं है। अब वह व्यक्ति कोई भी काम करेगा तो संशय पैदा होगा। अच्छी बात कहेगा तो भी गलत ली जायेगी। सास के मन में बहू के प्रति और बहू के मन में सास के प्रति दृष्टिकोण गलत बन गया तो फिर कोई भी बात कहेगी तो उलटी ली जायेगी, बात सुलटी नहीं होगी। पुत्र का पिता के प्रति दृष्टिकोण गलत बन गया तो फिर पिता कोई हित की बात

कहेगा तो उसमें भी अहित की बात लगेगी। दृष्टिकोण ही गलत है तो ज्ञान सही नहीं होगा। शिष्य का गुरु के प्रति दृष्टिकोण गलत बन गया तो जो भी गुरु कहेगा, शिष्य सोचेगा–कहीं मेरे अहित के लिए तो नहीं कह रहा है। मुझे ऐसा क्यों कहता है? यदि दृष्टिकोण सही है तो फिर गुरु चाहे कुछ भी कहे, उसे लगेगा–मेरे हित के लिए कहा जा रहा है। उत्तराध्ययन सूत्र में इस मनोवृत्ति का सुन्दर चित्रण है–

खड्डुया मे चवेडा मे, अक्कोसा य वहाय मे।
कल्लाणमणुसासंतो, पावदिट्ठी त्ति मन्नई।।

जो पापदृष्टि है जिसका दृष्टिकोण सही नहीं है, वह गुरु की हितकर बात को भी सम्यक् नहीं लेता। गुरु कोई हित की बात कहते हैं तो शिष्य सोचता है–**खड्डुया मे**–ठोला मार रहा है। **चवेडा मे**–चांटा जड़ रहा है। **अक्कोसा य**–आक्रोश कर रहा है, गाली दे रहा है, कड़वी बात कह रहा है। **वहाय मे**–मुझे ऐसी बात कह रहा है जैसे कोई चाबुक मार रहा है। कल्याण की बात भी बुरी लगती है। क्यों लगती है? गुरु कोई अनिष्ट करना नहीं चाहते पर इसलिए लगती है कि दृष्टिकोण सही नहीं है। दृष्टिकोण सही नहीं होगा तो ज्ञान भी सही नहीं होगा। दृष्टिकोण सही होता है तो फिर हर बात सही लगती है। वह गुरु के कठोर अनुशासन में भी अपना हित और कल्याण देखता है। उसे गुरु की अप्रिय बात भी हितकर प्रतीत होती है।

बहुत महत्त्वपूर्ण रत्न है सम्यक् दर्शन। दृष्टिकोण सही है तो ज्ञान सही हो जाएगा। जिस व्यक्ति का दर्शन सम्यक् है, ज्ञान सम्यक् है उसका चारित्र अपने आप सम्यक् हो जायेगा। ये तीन सबसे बड़े रत्न हैं।

समुद्रश्री बोली–'मां! मुझे और मेरी इन सात बहिनों को ये तीन रत्न मिल गये हैं। प्रियतम ने हमें तीन रत्नों का प्रसाद दिया है। अब कोई आकांक्षा नहीं है, कोई चाह नहीं है। न घर की, न परिवार की, न धन की, न गहनों की और न साड़ियों की–हम चाह से मुक्त हैं।'

'मां! आप हमारी भी बात सुनें। केवल प्रियतम को ही नहीं, हमें भी आज्ञा दें। हम भी साध्वी बनना चाहती हैं।'

सास-श्वसुर दोनों यह सुनकर अवाक् रह गए, सोचा–यह क्या हुआ? एक रात में इतना परिवर्तन कैसे आ गया? सारा दृश्य बदल गया, सारा जगत् बदल गया, सारी दुनिया बदल गई। अब क्या करें?

मां बोली–'बेटा! मैंने जो बात कही थी वह मेरी भ्रांति थी। पर यह तुम्हारे साथ कौन खड़ा है?'

'मां! इसका नाम है प्रभव। यह चोरों का स्वामी है। बड़ा शक्तिशाली है। बड़े-बड़े राजा लोग इसके नाम से कांपते हैं। इसके सामने कोई आ नहीं सकता, इतनी शक्तिशाली फौज है इसके पास। यह चोरों का सरदार है, राजपुत्र है।'

'जम्बू! राजकुमार यहां कैसे?'

'मां! मैंने तुम्हें बताया था कि ये सब चोरी करने आये हैं। ये ५०० चोर सामने खड़े हैं, उनका यह मालिक है।'

'अब क्या होगा?'

'मां! तुम इनसे स्वयं पूछो।'



मां ने पूछा–'बोलो प्रभव! तुम क्या चाहते हो?'

'कुछ भी नहीं चाहता।'

'धन चाहते हो तो ले जाओ।'

'नहीं बिल्कुल नहीं चाहता।'

'तो फिर क्या चाहते हो?'

'मां! जम्बूकुमार के पीछे-पीछे चलना चाहता हूं।'

मां-पिता ने सोचा–क्या यह कोई सपना है? क्या कोई माया है? इंद्रजाल है? इंद्रजाल में ऐसा होता है कि जो नहीं दिखने का दृश्य है, वह दिखने लग जाता है। क्या किसी ने सियालसिंगी फेर दी है? जो तंत्र को जानने वाले हैं वे जानते हैं–सियालसिंगी फेरो तो सब वश में हो जाए। जैसे गंधहस्ती के आने पर सारे हाथी निर्वीर्य हो जाते हैं, वश में हो जाते हैं, वैसे ही सियालसिंगी से लोग वश में हो जाते हैं। मैंने भी सियालसिंगी को देखा है। एक तांत्रिक मुझे दिखाने के लिए लाया भी था। बड़ा महत्त्व माना जाता है तंत्र शास्त्र में। ऐसा लगता है–जम्बूकुमार ने सियालसिंगी फेर दी है सब पर। सबके सब उसके वश में हो गए हैं, सबकी एक ही आवाज है, जैसे कोई घुट्टी पिला दी है। जो बात जम्बूकुमार बोल रहा है वही बात आठों बहुएं बोलने लग गईं, वही बात यह प्रभव बोलने लग गया और वही बात ये सारे चोर बोल रहे हैं। चारों तरफ से यही आवाज आ रही है–साधु बनना है, साधु बनना है, आत्मा को देखना है।



अब हम केवल दो बचे हैं। हम क्या करें? एक द्वन्द्व खड़ा हो गया, मन में आंदोलन हो गया। दिमाग कंपित-सा हो गया। वे दो-चार मिनट अवाक् खड़े रहे।

जम्बूकुमार बोला–'मां! पिताश्री! जल्दी करें। घड़ी बीत रही है। हमें सुधर्मा स्वामी के पास जाना है। मां! आप हमें आज्ञा दें और बहुत आनंद से रहें।'

मां ने कहा–'बेटा! मां-पिता को छोड़कर सब जा रहे हो?'

'मां! क्या करूं? मेरी विवशता है। मैंने इस सत्य को देख लिया है–

सर्वे पितृभातृपितृव्यमातृ-पुत्रांगजास्त्रीभगिनीस्नुषात्वं।
जीवाः प्रपन्नाः बहुशस्तदेतत् कुटुम्बमेवेति परो न कश्चित्।।

आज सब जगह मुझे माता-पिता ही दिखाई दे रहे हैं। मैं क्या करूं? अब मेरी दुनिया बदल गई है। अब मैं अपना निश्चय नहीं बदल सकता। आप सुखपूर्वक घर में रहें। आपकी सारी व्यवस्था होगी। कोई

चिन्ता की बात नहीं है। इतना अपार धन है, सब कुछ है, कोई कमी नहीं है। आप निश्चिंत होकर जीवन-यापन करें, यथाशक्य धर्मध्यान भी करते रहें। मैं मुनि बनकर भी आपके आध्यात्मिक विकास का चिन्तन करूंगा। आपकी सद्गति हो, इसके लिए जागरूक रहूंगा।'

जम्बूकुमार की उदात्त विचारधारा को सुनकर माता-पिता का मन भी बदलने लगा। वे निर्णय की स्थिति पर पहुंच गए। दोनों एक साथ बोले–'जम्बूकुमार! तुम जा रहे हो, बहुएं जा रही हैं, ये सब जा रहे हैं तो हम फिर क्या करेंगे?'

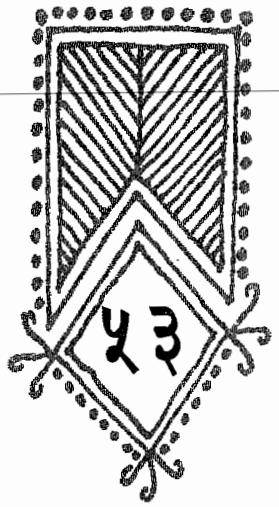
साहाहिं रूक्खो लहए समाहि छिन्नाहि साहाहिं जहेव खाणु।

जब शाखा प्रशाखा होती है तब वृक्ष सुंदर लगता है। जब सारी शाखाएं काट देते हैं, तब वृक्ष कोरा ठूंठ बन जाता है। रात को देखें तो किसी को भूत-सा लगता है। हम ठूंठ बनकर घर में रहना नहीं चाहते, हम भूत बनकर घर में रहना नहीं चाहते। हमारी सारी शाखाएं जा रही हैं तो हमारा भी निर्णय यही है कि हम भी साधु बनेंगे।

५०० चोर, जम्बूकुमार और प्रभव, माता-पिता और आठ कन्याएं–पांच सौ बारह व्यक्ति तैयार हो गये। जम्बूकुमार ने कहा–'हम सब सुधर्मा की सभा में चलें और दीक्षा के लिए प्रार्थना करें।'

कन्याओं ने अनुरोध किया–'स्वामी! पहले हमारे माता-पिता को बुलाएं, उन्हें सूचना दें कि हम सब दीक्षित हो रहे हैं।'

'स्वामी! आपने अपने माता-पिता की स्वीकृति प्राप्त कर ली है और उन्हें तैयार भी कर लिया है। हम भी अपने माता-पिता से स्वीकृति लेना आवश्यक मानती हैं। हमारा प्रयत्न भी यही होगा कि हमारे माता-पिता भी इस महान् पथ के पथिक बनें।'



आकर्षण और विकर्षण–ये दो शब्द हमारी मानसिक अवस्था को बतलाते हैं। किस वस्तु के प्रति हमारा आकर्षण है? किस वस्तु के प्रति हमारा विकर्षण है? हम किस वस्तु से अलग रहना चाहते हैं, दूर रहना चाहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इसका निरीक्षण कर सकता है कि मेरा ज्यादा लगाव, ज्यादा आकर्षण किसके साथ है। किसी का मकान के प्रति बहुत होता है। अच्छा बढ़िया घर बना लें, बड़ा आकर्षण रहता है। किसी का वस्त्र के प्रति आकर्षण रहता है, किसी का भोजन के प्रति रहता है, किसी का अपने परिवार के सदस्य के प्रति रहता है, किसी का मित्र के साथ रहता है। आकर्षण की कोई एक निश्चित परिभाषा नहीं की जा सकती। अनेक व्यक्तियों का अनेक वस्तुओं के साथ भिन्न-भिन्न आकर्षण होता है।

अलक्ष्यं लक्ष्यसंधानं–एक प्रयोग होता है ध्यान में–देखो बाहर और लक्ष्य भीतर रहे। आंख खुली है। दूसरों को यह लगता है कि किधर देख रहा है और वह देख रहा होता है अपने भीतर। अलक्ष्यं लक्ष्यसंधानं– यह ध्यान का बहुत विशिष्ट प्रयोग माना जाता है। इसमें चौबीस घंटा ध्यान एक केन्द्र पर लगा रहता है।

एक होता है अजपाजप। एक जप बोलकर किया जाता है–'णमो अरहंताणं', 'ऊं अर्हम्', 'ऊं भिक्षु' 'ऊं शांति' आदि। एक होता है अजपाजप। बोलने की जरूरत नहीं होती। ऐसा अभ्यास हो गया कि वह जप प्राण के साथ जुड़ गया। वह २४ घंटा चलता है, नींद में भी चलता रहता है। भोजन करो तो चलता रहता है। किसी के साथ बात करो तो जप चलता रहता है। वह होता है अजपाजप।



जम्बूकुमार के आत्मा का अजपाजप हो गया। हर समय उसका ध्यान आत्मा पर टिका हुआ है।

बहुत कठिन है आत्मा पर केन्द्रित होना। इसलिए कठिन है कि दिखाई दे रहा है, वह सारा पुद्गल ही पुद्गल है। मकान दिखाई दे रहा है, वह पुद्गल है। कपड़ा, पत्थर आदि दिखाई दे रहा है, वह पुद्गल है। यह शरीर दिखाई दे रहा है, वह पुद्गल है। आदमी पुद्गल के प्रति आकृष्ट होता है। यह स्वाभाविक बात है–**'पुद्गलैस्पुद्गलाः तृप्तिं यान्त्यात्मा पुनरात्मना'।**

पुद्गल पुद्गल से तृप्त होता है और आत्मा आत्मा से तृप्त होती है।

जम्बूकुमार का दर्शन बदल गया। वे पुद्गल से ऊपर उठ गये। उन्हें चारों तरफ आत्मा ही आत्मा दिखाई देने लग गई पर उस दिशा में प्रस्थान में अभी भी व्यावहारिक कठिनाइयां बनी हुई हैं। सबका मत रहा–'ये जो आठ नवोढ़ाएं हैं, इनके माता-पिता को बुलाओ, उनकी आज्ञा भी लो।'

जम्बूकुमार ने इस मत को अधिमान दिया। तत्काल संदेशवाहक भेजे। सब एक जगह रहते नहीं थे। सबके घर भी पास-पास नहीं थे इसलिए आठ जगह अलग-अलग संदेशवाहक भेजे। संदेशवाहक पहुंचे, संदेश दिया। माता-पिता ने संदेश पढ़ा–'जम्बूकुमार आठों नववधुओं के साथ साधु दीक्षा ग्रहण कर रहा है। इसलिए आप दीक्षा उत्सव में शामिल हो जाएं।'

उस समय न बरनोला निकाला, न बाजे-बजाए, न आवभगत की, उसका कोई अवकाश भी नहीं रहा। केवल दीक्षा पूर्व जुलूस में आमंत्रित किया।

संदेश को पढ़ते ही प्रतिक्रिया हुई–'यह क्या हुआ? हम तो सोचते थे कि हमारी कन्याएं वहां जायेंगी और जम्बूकुमार को वश में कर लेंगी, समझा लेंगी पर लगता है कि काम बना नहीं। धोखा ही हुआ है।' माता-पिता पहुंच गए। बैठे, बातचीत शुरू हुई। उन्होंने पूछा–'बोलो, क्या बात है?'

जम्बूकुमार ने विनत स्वर में कहा–'दीक्षा की तैयारी है।'

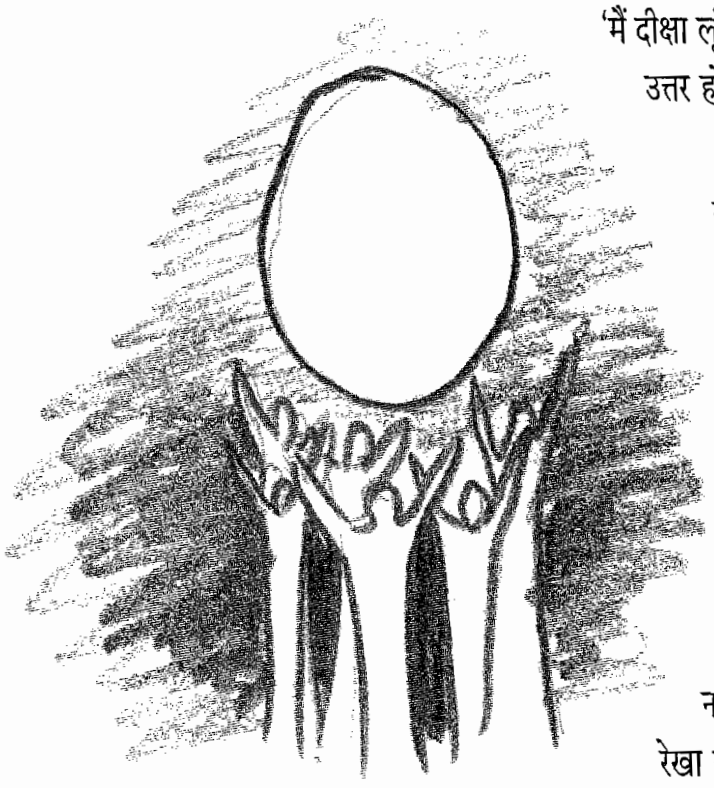
'कब?'

'आज और अभी।'

'आज तो ठहरो, कल हो जाए।'

'कल कभी नहीं आता।'

पाली में सन् १९९० में चौमासा था। वहां प्रतिदिन एक छोटा लड़का आता, दर्शन करता और कहता– 'मैं दीक्षा लूंगा।' हम पूछते–'कब लोगे?' उसका उत्तर होता–'आज नहीं, कल।'



उसका 'कल' अब तक भी चल रहा है, कभी आया ही नहीं। कल कभी आता ही नहीं है।

जम्बूकुमार ने कहा–'दीक्षा कल नहीं, आज हो रही है।'

सबने अपनी-अपनी पुत्रियों की ओर देखा। उन्हें अनुभव हुआ– सबके चेहरे उल्लास से भरे हैं, कोई खिन्न नहीं है, उदास और हताश नहीं है। किसी के चेहरे पर विषाद की रेखा नहीं है। सब बहुत प्रसन्न हैं।

एक पिता बोला–'जम्बूकुमार! दीक्षा ले रहे हो।'

'हां।'

'हमने पहले ही कहा था कि दीक्षा और इन कन्याओं के साथ विवाह–दोनों विरोधी बात है। हमने सोचा था–शायद तुम्हारा यह एक बचकानापन है। तुम मान जाओगे पर लगता है–तुमने अपनी जिद नहीं छोड़ी। तुम क्या सचमुच दीक्षा ले रहे हो?'

जम्बूकुमार बोला–'पिताश्री! सचमुच और क्या होता है? तैयारी है।'

पिता ने अपनी पुत्री की ओर मुंह किया, पूछा–'तुम क्या करोगी पीछे?'

वह विश्वास भरे स्वर में बोली–'पिताश्री! पीछे कौन है? सब साथ हैं।'

'क्या तुम भी साध्वी बनोगी?'

'हां, पिताश्री!'

'क्यों बनोगी?'

'पिताश्री! प्रियतम ने मेरी आंख खोल दी।'

'क्या इतने दिन बंद थीं?'

'हां, बंद थीं इसलिए आपके साथ रही। अब आंख खुल गई तो इनके साथ जा रही हूं।'

'दीक्षा क्यों ले रही हो तुम?'

'पिताश्री! मुझे भेद-विज्ञान हो गया है।'



भेद-विज्ञान साधना का बड़ा सूत्र है। भेद-विज्ञान का एक अर्थ है कायोत्सर्ग। 'आत्मा भिन्न शरीर भिन्न', इसका ज्ञान हो जाना–उसका नाम है भेद-विज्ञान।....आचार्य कुंदकुंद और उनकी परंपरा के आचार्य अमृतचन्द्र ने समयसार कलश में बहुत मार्मिक लिखा–

भेदविज्ञानतो सिद्धा, सिद्धा य किल केचन।
भेदाविज्ञानतो बद्धाः, बद्धा ये किल केचन।।

आज तक भी जितने जीव सिद्ध हुए हैं, मोक्ष में गये हैं वे सब भेद-विज्ञान से ही सिद्ध हुए हैं। जो आज तक बद्ध हैं, वे ही हैं, जिन्हें भेद-विज्ञान नहीं हुआ है। जैसे ही भेद-विज्ञान होता है, मोह की जंजीरें टूट जाती हैं, सांकल और बंधन टूट जाते हैं, दुनिया का दृश्य बदल जाता है।

'पिताश्री! प्रियतम ने मोह की जंजीरें तोड़ दीं, भेद-विज्ञान करा दिया और हमें यह अनुभव करा दिया–तुम आत्मा हो, शरीर नहीं हो।'

तुम आत्मा हो, शरीर नहीं–यह साधना का बड़ा महत्त्वपूर्ण सूत्र है, इसका प्रयोग चेतना को ऊर्ध्वमुखी बना देता है। हर बात में यह सोचो–मैं आत्मा हूं, शरीर नहीं हूं।

एक महिला आई, बोली–'महाराज! आज घर में लड़ाई हो गई, कलह हो गया, बोलचाल हो गई। मैंने अपनी समस्या योग शिक्षिका से बताई, योग शिक्षिका कहती है–तुम शरीर में चली गई। जब-जब शरीर

में जाती हो तब-तब लड़ाई होती है, कलह और संघर्ष होता है और जब-जब आत्मा में आती हो, सारी लड़ाइयां समाप्त हो जाती हैं।' शरीर में जाने का मतलब है–मोह में चले जाना और शरीर से ऊपर उठने का मतलब है–वीतरागता की ओर चले जाना। जब-जब आदमी शरीर में जाता है तब हिंसा, झूठ, वासना, चोरी, कलह, कदाग्रह, राग, द्वेष, ईर्ष्या–ये सारी घटनाएं घटित होती हैं। जब-जब आत्मा में आता है तब उसका प्रतिपक्ष हो जाता है और वह है भेद-विज्ञान।

अच्छा जीवन जीने का यह बड़ा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। एक आदमी खेती करने जाता है, सफाई करता है, पौधों को काटता है या वृक्ष के पास फल लेने जाता है या बाड़ी में जाकर साग-सब्जी के पौधों को तोड़ता है। एक क्रम यह है–सीधा गया, तोड़ लिया। एक प्रथा यह चलती है, आज भी कुछ लोग करते हैं–पौधे के पास जाकर कहेंगे, 'भाई! तुम क्षमा करो। मैं तुम्हारे साथ उचित व्यवहार नहीं कर रहा हूं किन्तु मेरे जीवन की आवश्यकता है इसलिए ऐसा व्यवहार कर रहा हूं। मेरा और कोई उद्देश्य नहीं है। मैं अनावश्यक हिंसा बिल्कुल नहीं करूंगा। तुम मुझे क्षमा करना।' विनम्रतापूर्वक यह कहकर उस पौधे को तोड़ते हैं।

भावना में कितना अंतर आ गया। एक ओर प्रमाद है तो एक ओर जागरूकता है, मन में अनावश्यक हिंसा न करने की भावना है। आचार्य भिक्षु ने इस सिद्धांत को बहुत अच्छी तरह से समझाया। एक पश्चिमी लेखक ने लिखा–'अल्प-हिंसा अच्छी है।' थोड़ी हिंसा करना जैनों की दृष्टि से अच्छा है। हमने इस पर टिप्पणी की–यह लेखन ठीक नहीं है। इस पर आचार्य भिक्षु का दृष्टिकोण स्पष्ट है–थोड़ी हिंसा करना अच्छा नहीं है। हिंसा का अल्पीकरण करना अच्छा है। भाषा और भाव में बहुत अंतर आ गया। हम हिंसा को अच्छा नहीं मान रहे हैं किन्तु हिंसा के अल्पीकरण को अच्छा मान रहे हैं, हिंसा को कम करना अच्छा है।

भगवान महावीर का सिद्धांत है–आवश्यक हिंसा भी धर्म नहीं है। वह करनी पड़ती है। अपनी विवशता को स्वीकार करो और सामने वाले प्राणी से क्षमा मांगो–विवश होकर मुझे यह करना पड़ रहा है।

यह एक भेद-विज्ञान की भावना है। जब भेद-विज्ञान आ गया–मैं आत्मा हूं। मुझे आत्मा में रहना है और यह शरीर तो साधन है, इसको मात्र चलाना है, और कुछ नहीं। जिसमें यह भेद-विज्ञान हो गया, वह खायेगा तो किस भावना से खायेगा? भावना यह होगी–'व्रणसंजन एव भूयं'–जैसे शरीर के व्रण हो गया। व्रण को ठीक करने के लिए गुड़-आटे की लूपरी बांधते हैं। क्या व्रण के लिए लूपरी अथवा हलवा खिलाते हैं? नहीं, व्रण का उपचार करते हैं। आजकल पेट्रोल डालते हैं कार में, पुराने जमाने में गाड़ी के खंजन लगाते थे इसलिए कि चक्का घिसे नहीं, ठीक से चलता रहे। साधक इसी भावना से भोजन करे कि मात्र शरीर चलता रहे और ध्यान आत्मा में रहे।

कन्याएं बोलीं–'पिताश्री! प्रियतम ने भेद-विज्ञान का मर्म हमें समझा दिया है इसलिए अब हम आत्मस्थ हैं, शरीरस्थ नहीं हैं।'

एक होता है शरीरस्थ और एक होता आत्मस्थ। जो शरीरस्थ होता है, वह शरीर में ही रहता है, शरीर ही जीता है, उसका आत्मा की ओर ध्यान ही नहीं जाता। जो आत्मस्थ होता है, वह आत्मा में रहता है, आत्मा में जीता है। वह शरीर को आत्मा का आवास मात्र मानता है।'

'पिताश्री! हम आत्मस्थ हैं, आत्मा में रह रही हैं। हमारा दृष्टिकोण बदल गया है इसलिए पिताश्री! आप चिंता न करें। मैं पीछे नहीं रहूंगी, प्रियतम के साथ-साथ रहूंगी, सहभागिनी बनूंगी।'

पिता ने सोचा–एक दिन में कायाकल्प हो गया। इतना ज्ञान कहां से आ गया? इतनी जानकारी कहां से आ गई? कल तक तो राग से रंजित थी, प्रेमालाप और प्रियमिलन की आकांक्षा थी, आज दूसरा ही राग आलाप रही है। राग कैसे विराग में बदल गया?

आठों पिताओं और माताओं ने अपनी-अपनी पुत्रियों से पूछा। सबका एक ही उत्तर था–'हमारे मन में एक ललक पैदा हो गई है कि हमें आत्मा का साक्षात्कार करना है।'

'पिताश्री! माताश्री! हमने आपको देखा है, मकान को देखा है, परिवार को देखा है, धन और गहनों को देखा है, न जाने कितने पदार्थों को देखा है पर एक चीज को नहीं देखा, जो आज तक अदृश्य और अदृष्ट बना हुआ है, वह है हमारी आत्मा।'

'पिताश्री! आश्चर्य है कि बाहर तो सबको देख रहे हैं किन्तु जो हमारे भीतर है, उसको हम नहीं देख रहे हैं। अब हम उस दिशा में जाना चाहती हैं, जहां शरीर में अवस्थित आत्मा को देख सकें। जहां हम दूध में घी को देख सकें।'

'पिताश्री! दूध को तो हम देखते हैं पर उसमें छिपे घी को हम नहीं देखते। मक्खन कहां दिखाई देता है? हम दूध में छिपे घी और मक्खन को पाना चाहती हैं?'

पिता ने कहा–'साधु बनने से क्या होगा? तुम यदि आत्मा को देखना चाहती हो तो घर में रहकर ही देख सकती हो। साध्वी क्यों बन रही हो?

'पिताश्री! ऐसे आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। प्रियतम ने हमें यह रहस्य समझा दिया है कि आत्मा को देखना है तो क्या-क्या करना होगा।'

'पिताश्री! मैं आपको एक कहानी सुनाती हूं।'



'एक गांव में एक दार्शनिक तत्त्ववेत्ता आया। उसने अपने प्रवचन में आत्म-साक्षात्कार की बहुत गाथा गाई। एक युवक बोला–'महाशय! इस चर्चा को बंद करो। तुम बलपूर्वक यह कहते हो कि आत्मा है। यदि हथेली में लेकर आत्मा को दिखा दो तो मैं मानूं कि आत्मा है। नहीं तो यह केवल झूठी बकवास है।'

युवक के तर्क ने सारे वातावरण को बदल दिया। कुछ लोग कहने लगे कि युवक की बात ठीक है। देखते हैं–दार्शनिक क्या करता है? यदि यह आत्मा को दिखा देगा तो इसकी कथा सही है। अन्यथा मानेंगे कि झूठी बकवास है।

दार्शनिक ने कहा–'युवक! मुझे बोलते हुए बहुत देर हो गई। मेरे कंठ सूख रहे हैं। गर्मी का मौसम है। कुछ भूख भी लगी है। तुम एक गिलास दूध ले आओ फिर मैं तुम्हें आत्मा को हथेली में रखकर दिखा दूंगा।'

युवक तत्काल गया और एक गिलास दूध ले आया।

दार्शनिक ने गिलास हाथ में ले ली। उसने गिलास के भीतर झांकना शुरू किया और कुछ क्षण तक झांकता ही चला गया।

युवक बोला–'महाशय! आप क्या कर रहे हैं? आप जल्दी दूध पीएं और आत्मा को दिखाएं।'

'युवक! मैंने सुना है–दूध में घी होता है, मक्खन होता है। मैं देख रहा हूं कि वह कहां हैं? मुझे अभी वह दिखाई नहीं दिया।'

युवक ने उपहास के स्वर में कहा–'तुम कैसे दार्शनिक हो? इतनी छोटी-सी बात भी नहीं जानते।

महाशय! दूध में मक्खन भी होता है, घी भी होता है किन्तु क्या वह ऐसे दिखाई देगा?'

दार्शनिक–'तो कैसे दिखाई देगा?'

'महाशय! देखने का एक तरीका होता है। अभी कोरी दर्शन की पोथियां पढ़ी हैं, व्यवहार का ज्ञान नहीं सीखा है।'

'युवक! तुम बता दो कि घी का कैसे पता चलता है?'

'महाशय! पहले गर्म करो, तपाओ फिर दूध को जामन देकर जमाओ, दही बनाओ, फिर दही को मथो तब मक्खन निकलेगा।'

दार्शनिक–'युवक! तुमने बहुत अच्छी बात बताई। अब तो तुम्हारे प्रश्न का समाधान हो गया?'

युवक–'क्या समाधान हो गया? आपने उत्तर कहां दिया है? न तो आपने दूध पीया और न आत्मा को दिखाया।'

'युवक! तुमने स्वयं अपने प्रश्न का उत्तर दे दिया?'

युवक (आश्चर्य के साथ)–'मैंने क्या दिया?'

'युवक! आत्मा ऐसे हाथ में दिखाई नहीं देती। पहले अपने आपको तपाओ, तपस्या करो फिर जमाओ। यह मन बड़ा चंचल है। जामन देकर मन को जमाओ, फिर मंथन करो, बिलौना करो। आत्मा हाथ में दिख जायेगी।'

'पिताश्री! तपाये बिना, जमाये बिना और मंथन किये बिना आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। यह सीधा काम नहीं है इसीलिए साध्वी बनना जरूरी है, साधु बनना जरूरी है।'

'पिताश्री! बिना तपस्या के आत्म साक्षात्कार कैसे संभव है?'

पुत्रियों ने बात इस प्रकार प्रस्तुत की कि उनका दिमाग भी घूमने लग गया। उन्होंने सोचा–हम इतने बड़े हो गये पर ऐसी तत्त्वज्ञान की बात हमने कभी नहीं सुनी। एक रात में ही जम्बूकुमार ने कैसी भांग की ठंडाई पिलाई है कि इनकी दुनिया ही दूसरी बन गई है।

होली पर्व के दिनों में कभी-कभी लोग भांग की ठंडाई बनाते हैं, पिलाते हैं। उसे पीते ही व्यक्ति बेसुध-सा हो जाता है। ऐसे अभूतपूर्व दृश्य दिखाई देने लग जाते हैं कि सिर चकराने लग जाता है। मैंने भी यह अनुभव किया है। जब मैं वैरागी था। दस वर्ष की अवस्था रही होगी। एक बार रामगढ़ गया। रामगढ़ के एक प्रसिद्ध सेठ थे पौद्दार जाति के। उनसे हमारे संसारपक्षीय संबंधी छाजेड़ परिवार के अच्छे संबंध थे। उनको पता लगा–एक छोटा बच्चा है, वैरागी है, साधु बनने वाला है। उनकी ओर से हमें भोज दिया गया।

भोज में ठंडाई बनाई। ठंडाई में भांग थी। मैंने वह ठंडाई पी ली। ठंडाई पीने के बाद दुनिया बदलने लगी, सारा सिर चकराने लग गया। ऐसा लगा कि दुनिया क्या है? बहुत विचित्र स्थिति बन गई। बड़ी मुश्किल से मुझे संभाला गया।

पिता-माता ने सोचा–ऐसी कोई घुट्टी या ठंडाई पिलाई है कि सबका दिमाग बदल गया है। ये कन्याएं, जो कुछ नहीं जानती थीं, आज ऐसा लगता है कि पूरी तत्त्ववेत्ता बन गई हैं।

माता-पिता ने जम्बूकुमार से भी बात की। जम्बूकुमार ने सारा तत्त्व समझाया--'सास-श्वसुरजी! आप सब बैठे हैं। ये आपकी कन्याएं हैं, पुत्रियां हैं, इनको स्वीकृति दें और मैं भी आपका दामाद बन गया। मुझे भी स्वीकृति दें। मैं दीक्षा लेना चाहता हूं, ये भी दीक्षा लेना चाहती हैं और मेरे माता-पिता भी मेरे साथ ही मुनि और साध्वी बनना चाहते हैं। केवल आपकी स्वीकृति की जरूरत है।'

कन्याओं के माता-पिता ने सारा वातावरण देखा। उसका ऐसा असर हुआ कि उनका भी मन बदल गया। उन्होंने सोचा–ये दूधमुंही बच्चियां, जिनकी अवस्था १५ वर्ष है, जम्बूकुमार स्वयं भी १६ वर्ष का है। ये सब साधु बन रहे हैं, इसके माता-पिता भी बन रहे हैं तो हम क्यों पीछे रहें? हमने संसार को देखा है, भोगा है, सब कुछ किया है, आखिर तो एक दिन त्याग के मार्ग पर जाना ही होगा। बिना त्याग किये यह धन का चिपकाव, सत्ता का चिपकाव छूटेगा नहीं।

इस तथ्य को हम सब जानते हैं कि जहां धन, कुर्सी, सत्ता का चिपकाव होता है वहां कैसा दंगल होता है? यह कभी सहसा छूटेगा। आखिर एक दिन तो विसर्जन करना है, छोड़ना है, त्यागना है। एक द्रुतगामी त्वरित चिंतन शुरू हो गया और वह एक निश्चय में बदल गया। तर्कशास्त्र में आता है–**उत्पलशतपत्रभेदवत्**–एक सूई से छेद किया और कमल के सौ पत्ते एक साथ बिंध गए। ऐसा लगता है–सबके हृदय एक साथ बिंध गये। चिन्तन का क्रम तो रहा है पर क्रम का पता नहीं चलता। चिंतन इतना तेज गति से चला और सबने निर्णय ले लिया। एक सामूहिक निर्णय हो गया। आठ माता और आठ पिता–सोलह का एक स्वर उठा–'हम भी तुम्हारे साथ हैं।'



जम्बूकुमार ने साधुवाद देते हुए कहा–'माताश्री! पिताश्री! बहुत अच्छी बात है। स्वागतम् सुस्वागतम्। स्वागत है आपका। क्या सचमुच साधु बनना चाहेंगे?'

'हां।'–यह कहते हुए सबके मुख दमक उठे।

जम्बूकुमार प्रसन्न हुआ। पुत्रियों को भी बड़ी प्रसन्नता हुई कि हमारे माता-पिता उसी अच्छे मार्ग पर जा रहे हैं, जिस पर जाने के लिए हम तत्पर हैं।

हमने उस युग को देखा है, जब पिता-मां, बेटा-बेटी, चार-पांच व्यक्ति एक साथ दीक्षा ले लेते थे। पति-पत्नी की एक साथ दीक्षा होती थी। जब मैंने दीक्षा ली, उस युग में अनेक संत अपनी पत्नियों के साथ दीक्षित हुए लेकिन जम्बूकुमार के साथ एक पूरा काफिला जुड़ गया है।

नौ माता, नौ पिता, आठ पुत्रियां, एक पुत्र, चोरों का सरदार प्रभव और पांच सौ चोर–सबका एक ही स्वर–हम सब साधु बनेंगे।

अकेले जम्बूकुमार ने ऐसे प्रभावक और सम्मोहक वातावरण का निर्माण किया कि उसके साथ ५२७ व्यक्ति तैयार हो गए।



जम्बूकुमार ने पूछा–'कब दीक्षा लेनी है आपको?'

'शुभस्य शीघ्रम्–आप जब कहें, हम तभी तैयार हैं। शुभ कार्य में देरी क्यों?'

'अभी आप घर से आए हैं। घर को संभालना है, व्यवस्था करना है।'

'नहीं, व्यवस्था सब हो जायेगी।'

'क्या दीक्षा अभी लेनी है?'

'हां, आपके साथ ही लेनी है।'

माता-पिता ने बात कल पर नहीं छोड़ी। व्यक्ति कल पर छोड़े तो बात लंबी हो जाती है।

कंजूस आदमी को किसी को देना होता है तो वह कल पर छोड़ देता है। एक बारहठजी ने विरुदावली गायी। सेठ राजी हो गया, बोला–'पगड़ी दूंगा।' बारहठ बड़ा खुश हुआ। वह दूसरे ही दिन सेठ के घर पहुंच गया, बोला–'सेठ साहब! आपने पगड़ी देने के लिए कहा था, पगड़ी दो।'

'अरे, कब कहा था?'

'आपने कल ही तो कहा था।'

'अरे भोला कहीं का! तुम आज ही आ गए। तुम समझते नहीं हो–

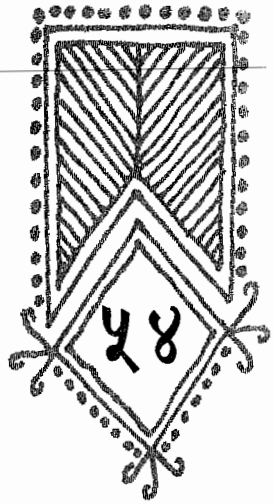
हम बांध पूत बांध पोते परपोते बांध,
वही पाग फिर हम तुमको दिलाएंगे।

अरे भाई! पगड़ी मैं बांधूंगा, फिर मेरा बेटा बांधेगा, फिर मेरा पोता बांधेगा, फिर मेरा परपोता बांधेगा। उसके बाद वही पाग मैं तुमको दूंगा।'

जम्बूकुमार ने दीक्षा के लिए कल की प्रतीक्षा नहीं की। आज और इसी क्षण को चुना।

५२८ व्यक्तियों की एक सेना तैयार हो गई। वह प्रस्थान कर रही है सुधर्मा की सभा में जाने के लिए।

इस प्रस्थान ने राजगृह नगर में एक आश्चर्य और कुतूहल के वातावरण का निर्माण कर दिया।



उत्सुकता समय को बहुत लंबा कर देती है। कोई काम करना होता है और वह साधारण ढंग से चलता है तो समय की लंबाई का बोध नहीं होता। उत्सुकता बढ़ी हुई होती है तो एक-एक पल भारी बनता है। यही तो अनेकांत का सापेक्षवाद है। पूछा जाए–काल छोटा या बड़ा? इसका एकान्ततः उत्तर नहीं दिया जा सकता। काल तो अपनी गति से चलता है पर अनुभूति में लंबाई और छोटाई का अंतर आ जाता है। एक काल बहुत लंबा लगता है, एक बहुत छोटा लगता है।

आइन्स्टीन से उसकी पत्नी ने पूछा–'आपका यह सापेक्षवाद क्या है?' आइन्स्टीन ने कहा–'देखो, जब कोई अपने प्रिय व्यक्ति के पास बैठता है तो उसे एक घंटा भी दो मिनट जैसा लगता है। उसी को जलती हुई भट्ठी के पास ले जाकर बिठा दें तो दो मिनट भी घंटा जितना लगता है।'



जम्बूकुमार सहित सब तैयार हो गये तो पल-पल बड़ा लगने लगा। सबमें एक त्वरा हो रही है–जल्दी चलो, सुधर्मा स्वामी की सभा में चलो।

प्रस्थान शुरू हुआ। जनता को पता लग गया–जम्बूकुमार दीक्षा के लिए जा रहा है। कौतूहलपूर्ण आश्चर्य हुआ–कल तो विवाह हुआ, इतना दहेज आया और आज मुनि बन रहा है, सब छोड़ रहा है।

न जाने कितने लोगों के मन में लार टपकी होगी–काश! इतना धन हमें मिलता तो हम कभी छोड़ते ही नहीं। कितना धन मिला, दहेज में अपार संपदा मिली, उसे छोड़ रहा है।

कुछ लोगों ने जम्बूकुमार की समझ पर टिप्पणी करते हुए कहा–इतना धन छोड़कर साधु बनना–यह कैसी समझ है!

जो लोग धन के लोभी हैं, धन में आसक्त हैं उनके यह बात कभी समझ में नहीं आती कि कोई व्यक्ति इतना धन छोड़ सकता है! वे यह सोच भी नहीं सकते किन्तु जो विरक्त हैं, अनासक्त हैं, उनके मुख से साधुवाद के स्वर प्रस्फुटित हो रहे हैं–'जम्बूकुमार ने बड़ा कार्य किया है। अपार धन-वैभव, नव विवाहित कन्याओं का त्याग कर सचमुच एक आदर्श उपस्थित किया है।'

चर्चा और परिचर्चा के मध्य जम्बूकुमार ने घर से अभिनिष्क्रमण किया। उसके पीछे आठ कन्याएं, ाट्ठारह माता-पिता और ५०१ चोर। बीच में सैकड़ों लोग मिलते हैं, परस्पर पूछते हैं–'कौन हैं?'

'जम्बूकुमार! दीक्षा ले रहा है।'

'ये सारे कहां जा रहे हैं?'

'ये सब साधु बनने जा रहे हैं।'

'क्या सब साधु बनेंगे?'

'हां, सब साधु बनेंगे।'

लोग आश्चर्य के साथ मुंह में अंगुली डालते हैं, साधुवाद देते हैं।

लोगों की आकांक्षा, जिज्ञासा, प्रश्न और समाधान के बीच से गुजरते हुए ५२८ मुमुक्षुओं ने सुधर्मा वामी की सभा में प्रवेश किया।

आज की विधि प्राचीन विधि से भिन्न है। पहले मुमुक्षु संस्था में भरती होते हैं, फिर प्रतिक्रमण का ादेश होता है, दीक्षा का आदेश होता है, उसके पश्चात् दीक्षा होती है।

उस युग में न तो कोई प्रतिक्रमण का आदेश हुआ, न पारमार्थिक शिक्षण संस्था में प्रवेश किया। उस ग में पारमार्थिक शिक्षण संस्था ही नहीं थी। न वैरागी बने, न बरनौले खाये। प्रासाद से अभिनिष्क्रमण किया, सुधर्मा सभा में पहुंचे, वंदना की, खड़े हुए, खड़े होकर विनत स्वर में बोले–'भंते! हम सब दीक्षा ना चाहते हैं। आप अनुग्रह करें, हम सबको दीक्षित करें।'

सुधर्मा स्वामी सर्वज्ञ थे। उन्हें सब ज्ञात था। उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ किन्तु दूसरे साधुओं को रूर आश्चर्य हुआ–इतने वैरागी एक साथ कहां से आ गये? कभी दस-बीस साथ में दीक्षा होती है और भी बत्तीस एक साथ हो जाती है पर इतने वैरागी, पांच सौ से अधिक वैरागी एक साथ कहां से आये ? साधु-साध्वियों में भी एक फुसफुसाहट शुरू हो गई। जम्बूकुमार साधु बनेगा–यह बात तो हमने सुनी किन्तु जम्बूकुमार के साथ इतने लोग दीक्षा लेंगे। यह तो हमने कभी सुना ही नहीं। आज अचानक कैसे ा गये?

जिज्ञासा थी साधु-साध्वियों में। उन्होंने एक सद्गृहस्थ से पूछा–'भाई! ये सारे कौन हैं?'

सद्गृहस्थ ने बताया–जम्बूकुमार है, उसकी आठ पत्नियां हैं, सबके माता-पिता हैं और पांच सौ र हैं।'

'अरे! चोर आये हैं दीक्षा लेने के लिए?'

सबका ज्ञान समान नहीं होता, सबका चिन्तन समान नहीं होता। उलझन में पड़ गए–चोर और दीक्षा ने आये हैं। कैसे होगा? बड़ी असमंजस की स्थिति बन गई।

सम्राट श्रेणिक के समय की घटना है। अभयकुमार प्रधानमंत्री था। उस समय एक कठिहारे ने दीक्षा ा। लकड़हारा–जो कल तक जंगल में ईंधन, लकड़ियां काटकर लाता था–साधु बन गया। वे मुनि जिधर जाते, लोग आदर सम्मान नहीं देते, कहते–'देखो यह लकड़हारा है। लकड़ियां बीनता था, लकड़ियां

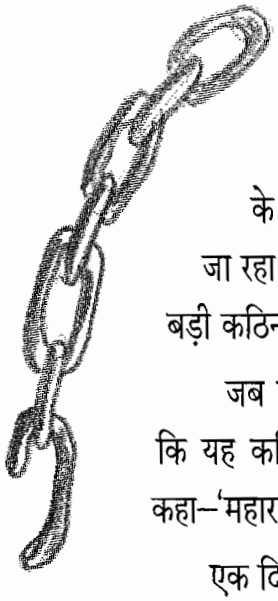
काटकर लाता था। आज साधु बन गया।' वह मुनि इन वाक्यों को सुन परेशान हो गया। उसने अपनी समस्या गुरुदेव के सामने प्रस्तुत की। आचार्यश्री ने अभयकुमार से कहा–'यह लकड़हारा मुनि बन गया। बड़ा अच्छा साधु है किन्तु लोग इसकी अवज्ञा करते हैं, अवहेलना करते हैं। इसका उसके मन पर थोड़ा असर भी हो जाता है। हम यहां से विहार कर दें, यहां न रहें।'

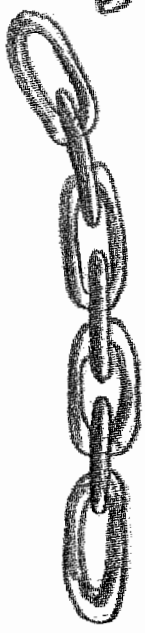
जानकार क्षेत्र में रहने में थोड़ी कठिनाई होती है। इसीलिए कहा गया–परिचित क्षेत्र में जल्दी नहीं जाना चाहिए। अतिपरिचित क्षेत्र में तो बिल्कुल नहीं जाना चाहिए।

अतिपरिचयादवज्ञा कस्य नो मानहानिः–अति परिचय की स्थिति में किसकी अवज्ञा नहीं होती, किसकी मानहानि नहीं होती?

चांद रात को रहे तो ठीक है। दिन में रहता है तो कोरा बादल का टुकड़ा-सा बन जाता है। जैसे सूरज रात को नहीं दिखता वैसे चांद भी दिन में न आता तो ठीक रहता पर चांद ने मोह कर लिया, अतिपरिचय कर लिया। अतिपरिचय होने से मानहानि होती है। लोग ध्यान ही नहीं देते, समझते हैं–आकाश में कोई बादल का टुकड़ा खड़ा होगा।







मेरी दीक्षा के नौ मास बाद मुनि बुद्धमल्लजी की दीक्षा हुई। पूज्य कालूगणी राजगढ़ पधारे। राजगढ़-सादुलपुर में हम बाहर जंगल में जाते तो रास्ते में वही स्कूल आती, जिसमें मुनि बुद्धमल्लजी पढ़े थे। स्कूल के छात्र, जो उनके साथ पढ़ने वाले थे, जोर-जोर से बोलते–'यह बुधिया जा रहा है, बुधिया जा रहा है।' मुनिजी को बड़ा अटपटा लगता। परिचित क्षेत्र में बड़ी कठिनाई होती है। अपरिचित रहें तब तक ठीक है।

जब परिचय हो गया कि चोर है तब बड़ा कठिन लगा। जब परिचय हो गया कि यह कठिहारा है तो लोगों के मन में भावना दूसरी बन गई। अभयकुमार ने कहा–'महाराज! आप विहार न करें। मैं इसका उपाय कर दूंगा।'

एक दिन अभयकुमार ने सामंत, मंत्री–सबको बुला लिया। वह सबसे घिरा हुआ बाजार में जा रहा था। एक निश्चित योजना थी। उधर से वह लकड़हारा मुनि आया। लोगों का ध्यान उसकी ओर चला गया–वह कठिहारा आ रहा है। अभयकुमार तत्काल अपने रथ से नीचे उतरा। अभयकुमार उतरे तो कौन रथ पर बैठा रह सकता है? जितने मंत्री, सामंत थे, सब नीचे उतर गये। अभयकुमार सीधा लकड़हारा मुनि के पास गया। जाकर प्रदक्षिणा पूर्वक तीन बार उठ-बैठकर वंदना की। सारे सामंत, मंत्री देखते रह गये–महामंत्री अभयकुमार क्या कर रहा है? हंसी के फव्वारे भी छूट गये। सामने तो कोई नहीं आया पर पीछे से हास्य और मखौल शुरू हो गया। अभयकुमार ने देख लिया। वह बड़ा चतुर था।

राज्यसभा का समय। सम्राट श्रेणिक और महामंत्री अभयकुमार अपने आसन पर बैठे। अभयकुमार ने राजसभा के सदस्यों की ओर उन्मुख होते हुए यह प्रसंग उपस्थित



ाया–'आज मार्ग में एक साधु मिला। मैंने उसकी वंदना की। आप सब मुसकरा रहे थे, हंस रहे थे। मैं ानना चाहता हूं कि हंसी का कारण क्या है?'

अभयकुमार ने यह पूछा तो सब घबरा गये। क्योंकि वह बड़ा प्रभावशाली था, इतना बुद्धिमान था कि ब उसका लोहा मानते थे। यह मानते थे कि अभयकुमार प्रसन्न है तो भगवान भी प्रसन्न हैं। अभयकुमार ाराज है तो कोई बचाने वाला नहीं है। एकछत्र अनुशासन चलता था। एक सभासद बोला–'महामंत्री! क्षमा रें, गलती हुई है।'

'क्यों हुई?'

'हमारे मन में आया कि कल तक तो यह लकड़हारा था, लकड़ियां काटकर लाता और बेचता। आज ाधु का वेश पहन लिया। आप उसके सामने जाकर इस प्रकार झुकते हैं। हमें यह देखकर हंसी आ गई।'

बात को मोड़ देते हुए अभयकुमार बोला–'आज मैं एक आदेश देना चाहता हूं। राज्यसभा या मंत्री ारिषद् का कोई सदस्य कल से अग्नि का सेवन नहीं करेगा। कच्चा पानी नहीं पीयेगा। कच्चे पानी का उपयोग नहीं करेगा। ब्रह्मचारी रहेगा।'

'कब तक....?'

'जब तक पुनः आज्ञा न हो तब तक यह आदेश दिया जाता है।'

सब घबराए, बड़ी समस्या हो गई। जो खुले रहने वाले थे, उन्हें नियम में बांध दिया। एक दिन भी बड़ी मुश्किल से बीता। दूसरे दिन आए और क्षमायाचना की–'आप क्षमा करें। हमसे तो रहा नहीं जा सकता।'

महामंत्री ने कहा–'देखो, यह बहुत लाभ कमाने का अवसर है। जो जीवन भर कच्चे पानी का आसेवन नहीं करेगा, अग्नि का सेवन नहीं करेगा और ब्रह्मचारी रहेगा उसे मैं तीन करोड़ सोनैया दूंगा।'

दूसरे दिन फिर आए, बोले–'महामंत्री! क्षमा करें। हम नहीं रह सकते।'

'अरे! तीन करोड़ सोनैया मिल रहा है?'

'चाहे पांच करोड़ मिल जाए, हम तो रह नहीं सकते। बिल्कुल संभव नहीं है हमारे लिए।'

महामंत्री अभयकुमार बोला–'तुम कहते हो कि यह भिक्षु लकड़हारा था, गरीब आदमी था, लकड़ियां बेचकर रोटियां खाता था, आज साधु बन गया। इसने क्या त्याग किया? सभासदो! इसने कम से कम तीन करोड़ सोनैया का तो त्याग किया है, जो तुम नहीं कर सकते। जो साधु अहिंसक बनता है, सत्यव्रती, अचौर्यवादी, ब्रह्मचारी, अपरिग्रही बनता है उसने कम से कम पांच करोड़ सोनैया का तो त्याग कर ही दिया है। तुम ऐसे त्यागी का मखौल करते हो?'

सबका मन बदल गया, सबने पश्चात्ताप के स्वर में कहा–'हमने गलती की है। आप क्षमा करें। हम पर यह प्रतिबंध न लगाएं। नहीं तो जीना दूभर हो जायेगा।'

यही प्रश्न सुधर्मा की सभा में प्रस्तुत हो गया–ये तो चोर हैं। ये क्या साधु बनेंगे? चोरों को साधु बना रहे हैं। ये क्या साधना करेंगे? क्या दीक्षा के लिए कोई भला आदमी मिलता नहीं है? कोई साहूकार मिलता नहीं है?

वह सुधर्मा का समय था। चौथा अर था इसीलिए केवल थोड़ा-सा ऊहापोह हुआ। अगर आज ऐसा हो जाये, किसी चोर को दीक्षा दे दें तो बवंडर हो जाये। समाचार-पत्रों में ऐसे समाचार छपे, एक के बाद एक न्यूज निकलती चली जाए और एक भयंकर वातावरण बन जाए। किन्तु समय का अन्तर होता है, देश का अन्तर होता है, चिन्तन का अन्तर होता है। थोड़ी बात तो हुई पर आगे नहीं बढ़ सकी।

सुधर्मा ने कहा–'देवानुप्रियो! दीक्षा लेना चाहते हो?'

सब खड़े हो गये, बोले–'हां, दीक्षा लेना चाहते हैं।'

पुरानी प्रथा अलग थी, पद्धति अलग थी। सुधर्मा ने कहा–'**अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि**–यथासुखम्! तुम्हारी दीक्षा लेने की इच्छा है तो विलम्ब मत करो।

एक साथ पूरी सेना खड़ी हो गई, ५२८ वैरागियों की एक पंक्ति खड़ी हो गई।

सुधर्मा स्वामी ने सबके आभामंडल को देखा। प्राचीन पद्धति रही है–गुरु किसी को शिष्य बनाता तो उसके आभामंडल को देख लेता। सुधर्मा स्वामी अतिशय ज्ञानी थे, सर्वज्ञ थे। अच्छा अनुभवी, जानकार गुरु होता है उसे भी पूछने की ज्यादा जरूरत नहीं पड़ती। वह आभामंडल को पढ़ लेता है। व्यक्ति का आभामंडल जितना प्रमाण होता है, मुंह की वाणी उतनी प्रमाण नहीं होती। यह व्यक्ति कैसा है? किस प्रकार रहेगा? इसका चरित्र कैसा है? इसका जीवन कैसा है? इसकी मनोवृत्ति कैसी है? इसकी भावधारा कैसी है? पूरा अध्ययन आभामंडल से हो जाता है। आभामंडल यानी लेश्या का चक्र।



छह लेश्याएं होती हैं–कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या। इन लेश्याओं का, एक पुद्गल का आभामंडल हर व्यक्ति के शरीर पर रहता है। जो व्यक्ति पवित्र मन, पवित्र विचार, पवित्र भावधारा वाला होता है उसका आभामंडल बहुत तेजस्वी, व्यापक और अच्छा होता है। एक व्यक्ति बैठता है तो उसके आभामंडल से पूरा कमरा भर जाता है। उसमें दूसरा कोई जाकर बैठता है तो उसको बड़ी शांति का अनुभव होता है और एकदम समाधान हो जाता है।

हम लोग सन् १९९४ में दिल्ली में थे। पूना से एक डॉक्टर आए जो आभामंडल विशेषज्ञ थे। उन्होंने प्रेक्षाध्यान का साहित्य पढ़ा, लेश्याध्यान और आभामंडल पुस्तक पढ़ी। पढ़ने के बाद स्वतः अभ्यास शुरू कर दिया। उसने कहा–'आचार्यश्री! मैं अब चिकित्सा करता हूं, निदान करता हूं। यंत्रों के सहारे नहीं रहता। मैं आभामंडल का फोटो लेता हूं। जैसे एक अंगूठे का फोटो लिया। उसका विश्लेषण करने से मुझे पता लग जाता है कि कौन-सी बीमारी है। यह निदान के प्रचलित स्रोतों से ज्यादा प्रभावी है। एक अंगुष्ठ के फोटो से बीमारी ध्यान में आ जाती है।'

गुरुदेव की सन्निधि में एक दिन उनका वक्तव्य रखा गया। अपने वक्तव्य में उन्होंने एक बात कही–'गुरुदेव! आपके पास सैकड़ों महिलाएं बैठी रहती हैं, बोलती नहीं हैं। सेवा में महीनों तक रहती हैं और एक शब्द भी बोलने का काम नहीं पड़ता। मूक भाव से बैठी रहती हैं। घंटा, दो घंटा बैठती हैं, चली जाती हैं। फिर भी उनको बड़ा सुख मिलता है। इसका कारण क्या है?'

आज ही एक बहिन ने कहा–'पांच-सात महीना हो गया। गुरुदेव के दर्शन नहीं हुए। मैं तो छटपटाने लग गई, मैंने कहा–मुझे जल्दी वहां ले जाओ।' यह क्या है?

आभामंडल विशेषज्ञ ने कहा–'आपका आभामंडल इतना प्रभावशाली है कि आसपास में बैठने वाला व्यक्ति तोष का अनुभव करता है। चाहें आप एक शब्द भी न बोलें तो भी उसको बहुत शांति का अनुभव होता है।'

जिस व्यक्ति का आभामंडल पवित्र होता है उसके पास आने पर मन का वैर, विरोध, शंकाएं, कुशंकाएं, दुर्भावनाएं सब समाप्त हो जाती हैं। इसीलिए तो कहा गया–जहां तीर्थंकर का, केवली का आभामंडल होता है वहां सांप और नेवला, बकरी, हिरण और सिंह सब पास में आकर बैठ जाते हैं, वैर भाव भूल जाते हैं। शेर बैठा है, खरगोश या हिरण आकर शेर पर चढ़ता है तो भी वैर नहीं होता। खाने की बात मन में नहीं आती। यह परिवर्तन कैसे होता है? उस समय दिमाग का सारा चिन्तन बदल जाता है। जो चिन्तन की उर्मियां, तरंगें उठती हैं वे शांत होती हैं। मन में कोई वैर का भाव ही नहीं आता। यह आभामंडल का, लेश्या का परिवर्तन है।

सुधर्मा स्वामी ने देखा–ये कभी चोर थे पर अब इनका आभामंडल एकदम बदल गया है। ये सब योग्य हैं।

सुधर्मा स्वामी ने इस आगम सूक्त का उच्चारण किया होगा–**करेमि भंते! सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए कायेणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।**

दीक्षा के लिए सन्नद्ध ५२८ व्यक्तियों ने इस आगम-सूक्त का पुनः उच्चारण किया। सावद्य योग का तीन करण तीन योग से प्रत्याख्यान किया और....सब मुनि बन गए, सुधर्मा के शिष्य बन गये।

भगवान महावीर ने एक प्रणाली बनाई थी नवदीक्षित के शिक्षण की। नवदीक्षित मुनि शैक्ष कहलाता है। शैक्ष को सबसे पहले सिखाया जाता है व्यवहार-बोध। भगवान महावीर ने स्वयं श्री मेघकुमार को यह बोध कराया था–**देवाणुप्पिया एवं चरियव्वं एवं चिट्ठीयव्वं एवं निसियव्वं एवं भुंजियव्वं एवं भासियव्वं।**

देवानुप्रिय! तुम्हें ऐसे चलना है, ऐसे खड़ा होना है। ऐसे बैठना है, ऐसे सोना है, ऐसे खाना है, ऐसे बोलना है। चलना, खड़ा होना, बैठना, सोना, खाना व बोलना–ये छह बातें आरम्भ में सिखाई जातीं।

आज तो माता-पिता सोचते हैं कि बच्चों को इंग्लिश मीडियम स्कूल में भेज दिया जाये। वे उसे वहां भेज कर निश्चिंत हो जाते हैं, फिर वे पता ही नहीं करते कि लड़का क्या कर रहा है, क्या खा रहा है! कैसी रुचि है? कैसा आचरण है? इस ओर ध्यान देना जरूरी नहीं समझते। इन दिनों बहुत माता-पिता, परिवार वाले आए, पूछा–'कभी बच्चों को यह बताया कि नवकार मंत्र गिनना है।' बोले–'नहीं, यह तो नहीं बताया।'

उसके विकास की दृष्टि से और सब चिंता करते हैं। क्या करेंगे? कहां पढ़ेंगे? आजीविका की सारी चिंता करते हैं पर उनके जीवन की चिंता नहीं करते।

जैन धर्म में शिक्षण की यह प्रशस्त परम्परा रही। नवदीक्षित मुनि मेघकुमार को स्वयं भगवान महावीर ने सिखाया–देवानुप्रिय! तुम्हें इस प्रकार संयमपूर्वक कार्य करना है। सुधर्मा स्वामी ने सब साधुओं को यह

कहं चरे कहं चिट्ठे, कहमासे कहं सए।
कहं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधई।
जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधई।।

जयं चरे–संयमपूर्वक चलो, **जयं चिट्ठे**–संयमपूर्वक खड़े होओ, **जयमासे**–संयमपूर्वक बैठो, **जयं सए**–संयमपूर्वक सोओ। **जयं भुंजे**–संयमपूर्वक खाओ। **जयं भासे**–संयमपूर्वक बोलो।

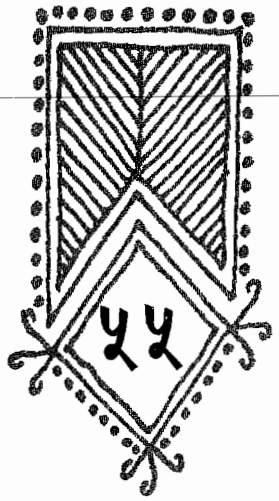
संयमपूर्वक बैठना, संयमपूर्वक सोना और संयमपूर्वक खाना–इनका बहुत बड़ा विज्ञान है।

सुधर्मा स्वामी ने सब शैक्ष साधुओं को स्थविरों के पास सौंप दिया। शैक्ष साध्वियों को महासती के निर्देशन में साधना का निर्देश दिया। जंबू के शिक्षण का दायित्व स्वयं सुधर्मा ने लिया। दोनों का गहरा संबंध है। वह संबंध कोई आज का नहीं है, पांच जन्म से बराबर चल रहा है। एक जन्म में भवदेव और भावदेव दोनों भाई। फिर दोनों मरकर देव हुए। वहां से च्यवन कर फिर राजकुमार बने। वहां से मरकर फिर देव हुए और पांचवें भव में एक सुधर्मा बन गया, एक जंबू बन गया।

यह जो आकर्षण होता है, न जाने कितने जन्मों के संस्कार उसके पीछे रहते हैं, बोलते हैं। आकर्षण अकारण नहीं होता, अहेतुक नहीं होता। हम वर्तमान को जानते हैं, अतीत को नहीं जानते–मेरा किसके साथ क्या संबंध रहा है? यह मत जानो पर आकर्षण से पता लग जाता है। इसके प्रति इसका ज्यादा आकर्षण है तो जरूर कोई न कोई संबंध रहा है।

सुधर्मा स्वामी ने स्वयं जम्बूकुमार को तैयार करना शुरू किया। उनको भी योग्य शिष्य की अपेक्षा थी। आचार्य के सामने सबसे बड़ा प्रश्न होता है अपने उत्तराधिकारी का। परम्परा को चलाना है तो योग्य उत्तराधिकारी की खोज जरूरी है। यदि योग्य उत्तराधिकारी मिल जाए तो आचार्य का जीवन सफल है और न मिले तो समस्या रहती है। जंबू की दीक्षा से सुधर्मा को परम संतोष का अनुभव हुआ। उनके मुख पर आश्वस्ति और निश्चिंतता की रेखाएं उभर आईं....और....उन्होंने ज्ञान-वैभव को संक्रांत करने का निश्चय कर लिया।







सफलता के लिए तीन बातें आवश्यक होती हैं। सबसे पहली बात है–लक्ष्य का निर्धारण। एक लक्ष्य निश्चित करना चाहिए कि मुझे कहां पहुंचना है। जब तक लक्ष्य स्पष्ट नहीं होता, कुछ भी नहीं होता। क्या बनना है, कहां जाना है, कहां पहुंचना है–यह लक्ष्य स्पष्ट हो तो आगे विकास हो सकता है।

आजकल बहुत बच्चे प्रारंभ में अपना लक्ष्य निर्धारित कर लेते हैं। कोई कहता है–मुझे डॉक्टर बनना है। कोई कहता है–मुझे इंजीनियर बनना है, मुझे व्यापारी बनना है। उनकी उस दिशा में फिर गति हो जाती है। बिना लक्ष्य के कुछ नहीं होता। जब पता ही नहीं है कि कहां जाना है तो विकास कैसे होगा? लक्ष्य प्राप्त कैसे होगा?

दूसरी बात है–लक्ष्य की पूर्ति के साधन क्या हो सकते हैं? अलग-अलग लक्ष्य की पूर्ति के साधन अलग-अलग होते हैं। लक्ष्य है डॉक्टर बनना और पढ़ रहा है कॉमर्स कॉलेज में तो डॉक्टर कैसे बनेगा? डॉक्टर बनना है–यह लक्ष्य बना लिया तो उसे मेडिकल कॉलेज में भरती होना होगा। बनना है इंजीनियर और भरती हो गया मेडिकल कॉलेज में। यह गलत साधन हो गया।

लक्ष्य की पूर्ति के अनुरूप साधन होना चाहिए।

तीसरी बात है प्रयत्न। उसके अनुरूप प्रयत्न भी होना चाहिए। लक्ष्य तो बहुत बड़ा बना लिया और प्रयत्न बहुत छोटा है तो व्यक्ति वहां तक पहुंच नहीं सकता। जितना बड़ा लक्ष्य है उतना ही बड़ा प्रयत्न चाहिए।

लक्ष्य, लक्ष्य पूर्ति का साधन और लक्ष्य पूर्ति के लिए प्रयत्न–तीनों मिलते हैं तो आदमी निश्चित ही एक दिशा में आगे बढ़ सकता है, गति कर सकता है।

लक्ष्य छोटा नहीं बनाना चाहिए। जो छोटा लक्ष्य बनाता है, वह रुक जाता है। लक्ष्य तो बड़ा हो, जिससे लंबे समय तक उसकी साधना चले। लक्ष्य बनाया कि जैन विश्व भारती की परिक्रमा करना है तो वह लक्ष्य एक घंटा में पूरा हो गया। लक्ष्य इतना बड़ा हो कि जीवन भर उसकी प्राप्ति का प्रयत्न चलता रहे। उसमें से विकास निकलता है, सफलता मिलती है।

उसके पैर ठिठुर जाते हैं, जिसने छोटा लक्ष्य बनाया।

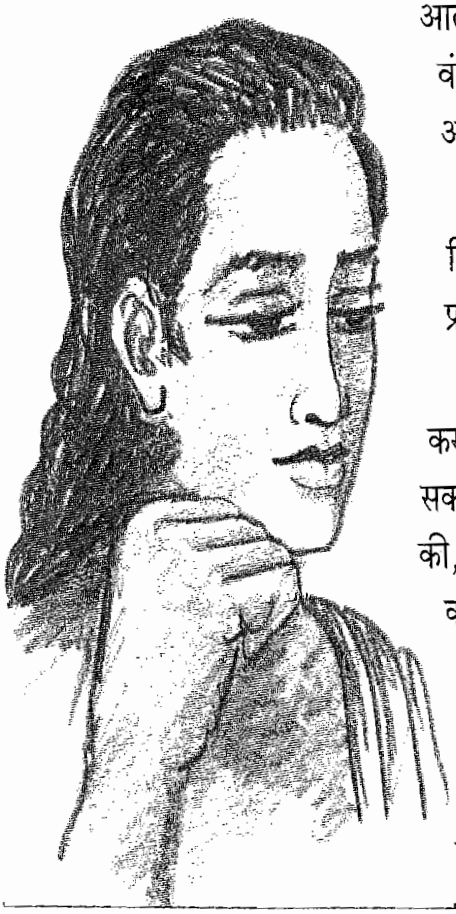
छोटा लक्ष्य बनाया, कुछ चला और पैर ठिठक गये। आगे कहां जायेगा?

व्यक्ति ने लक्ष्य बनाया–चन्द्रमा पर पहुंचना है। लक्ष्य बनाया–चन्द्रमा या आकाश में खेती करना है। अभी वैज्ञानिकों का एक लक्ष्य है कि आकाश में खेती करना है। पृथ्वी बहुत भर गई। आदमियों के लिए स्थान कम है। अब खेती कहां होगी? आकाश में खेती होगी। आकाश में यात्रा तो शुरू हो गई और खेती भी हो सकती है। नगर कहां बसाये जाएंगे? आकाश में बसेंगे, समुद्र के नीचे बसाए जाएंगे। मुंबई बहुत भर गया। अब नया मुंबई बसाना है तो फिर समुद्र के तल में नीचे नगर बसाया जायेगा।

लक्ष्य बड़ा बनाते हैं तो विकास होता रहता है।

उपनिषद् का एक सुन्दर वाक्य है–**यः आत्मवित् स सर्ववित्।** जो आत्मा को जानता है, वह सब कुछ जानता है–**यः आत्मज्ञ सः सर्वज्ञ।** आचारांग का सूत्र है–**से आयवं**–वह आत्मवान होता है, जो आत्मा को साक्षात् देखता है। केवली हुए बिना आत्मा का साक्षात्कार कभी नहीं होता। केवली के सिवाय आत्मा को कोई साक्षात् देख नहीं सकता। मूर्त वस्तु को अवधिज्ञानी देख सकता है। विशिष्ट अवधिज्ञानी, परम अवधिज्ञानी या सर्वावधिज्ञानी परमाणु को देख सकता है। परमाणु इतना सूक्ष्म है, उसका साक्षात्कार कर सकता है पर कोई भी छद्मस्थ क्षायोपशमिक ज्ञान वाला अमूर्त द्रव्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता। आत्मा अमूर्त है। न वर्ण, न गंध, न रस और न स्पर्श। कुछ भी नहीं, अमूर्त। उसको छद्मस्थ नहीं देख सकता। अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी नहीं देख सकता। मात्र केवलज्ञानी ही आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है इसीलिए जम्बूकुमार के लक्ष्य की एक ही भाषा है–मुझे आत्मा का साक्षात् दर्शन करना है, मुझे केवली बनना है। णाणा वंजणा–व्यंजन नाना है, णाणा घोसा–घोष नाना है किन्तु अभिधेय एक है। दोनों के तात्पर्य में कोई अंतर नहीं है।



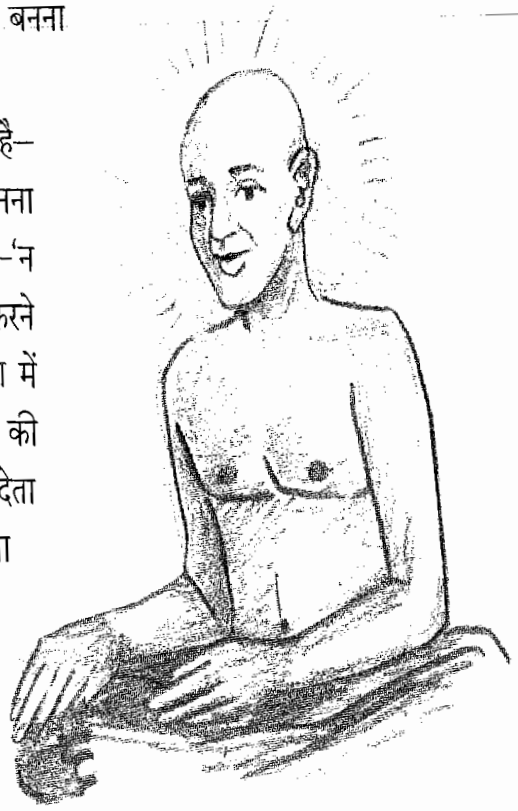


जंबू स्वामी का लक्ष्य की दिशा में प्रस्थान हो गया। उस दिशा में चलना है। अब जरूरत है साधन की और जरूरत है प्रयत्न की।

सुधर्मा का योग मिला। सुधर्मा से बढ़कर कौन उपलब्ध करा सकता है साधन? जो स्वयं केवली हैं वे ही तो रास्ता बता सकते हैं। सुधर्मा जिन्होंने भगवान महावीर की साक्षात् उपासना की, महावीर की सन्निधि में रहे, महावीर के गणधर बने और गण का संचालन किया। द्वादशांगी की रचना की, महावीर के साथ एकदम निकट का संबंध रहा। ऐसा साक्षात् योग मिलना बहुत कठिन है।

सुधर्मा स्वामी ने पूछा–'जंबू! बोलो क्या बनना चाहते हो?'

कोई मुनि बनता है तो आचार्य पूछते हैं–'तुम क्या बनना चाहते हो? क्या करना चाहते हो?'



अलग-अलग रुचि होती है। कोई कह देता है–'महाराज! मैं ज्यादा पढ़ तो नहीं सकता। तपस्वी बनना चाहता हूं, तपस्या करना चाहता हूं।' कोई कह देता है–'न मुझसे तपस्या होगी और न मैं कोई ज्यादा अध्ययन करने की क्षमता रखता हूं। मैं तो सेवा करना चाहता हूं। सेवा में मुझे संलग्न कर दें।' कोई कहता है–'महाराज! मेरी पढ़ने की बहुत इच्छा है, श्रुत को पढ़ने की इच्छा है।' कोई कह देता है–'महाराज! मुझे तो ध्यान में रुचि है। मैं ध्यान करना चाहता हूं।'

स्वाध्याय का मार्ग, ध्यान का मार्ग, तपस्या का मार्ग, सेवा का मार्ग–ये सब अलग-अलग मार्ग हैं। सब अपनी-अपनी रुचि, अपनी-अपनी क्षमता और अपनी-अपनी भावना के अनुरूप निवेदन करते हैं और आचार्य उसे यथोपयुक्त नियोजित करते हैं। यदि बिना रुचि को जाने यत्र-तत्र नियोजित किया जाता है तो समस्या हो सकती है।

अध्ययन के क्षेत्र में भी जहां एक ही कोर्स सबको कराया जाता है वहां समस्या होती है। यद्यपि चुनाव की स्वतंत्रता है। आज का छात्र अपनी रुचि के अनुरूप विषय का चयन करता है। कोई कॉमर्स में जाता है, कोई मेडिकल में जाता है, कोई इंजीनियरिंग में जाता है। अलग-अलग रुचि है। साइन्स की भी अनेक शाखाएं हैं। विद्यार्थी अलग-अलग चुनाव करता है। अपनी रुचि के अनुसार चुनाव करना स्वतंत्रता और विकास के लिए भी बहुत आवश्यक है।

जंबू ने कहा–'भंते! मेरी भावना है आत्मा का साक्षात्कार करूं। आप मुझे ऐसा पथ दर्शन दें, मार्ग बताएं कि मैं आत्मा को देख सकूं।'

आत्मा को देखना बड़ा महत्त्वपूर्ण है। आज विज्ञान का इतना विकास हो गया कि कहां से कहां देख लेया जाता है पर आत्मा को देखने का कोई साधन अभी विकसित नहीं है। और तो सब दिखाई देता है र आत्मा दिखाई नहीं देती। टेलीस्कोप के द्वारा दूरतम नीहारिका को देखने की शक्ति आ गई है। एक ाइक्रोस्कोप के माध्यम से एक सूक्ष्म कीटाणु को देखने की क्षमता विकसित हो गई। टेलीस्कोप के द्वारा ीहारिकाओं को, जो सैकड़ों प्रकाशवर्ष की दूरी पर हैं–देख लेते हैं। एक प्रकाशवर्ष कितना बड़ा होता । जैन आगमों में सागर का वर्णन आता है। पल्योपम सागरोपम कितना बड़ा काल है और योजनों की कितनी बड़ी दूरी है। प्रकाशवर्ष तो आश्चर्यकारी बन गया यानी एक सेकंड में प्रकाश की गति एक लाख छयासी हजार माइल। एक मिनट, एक घंटा, एक दिन, एक रात–कब पूरा प्रकाशवर्ष होगा। कितना बड़ा

है प्रकाशवर्ष। जिसकी कल्पना सामान्य आदमी नहीं कर सकता। ऐसे सैकड़ों-सैकड़ों प्रकाशवर्ष की दूरी पर जो नीहारिकाएं हैं, उन्हें टेलीस्कोप से देख लेता है। इतनी दूरदर्शन की क्षमता, इतनी सूक्ष्म दर्शन की क्षमता वैज्ञानिक जगत् में आ गई है, फिर भी आत्मा को देखा नहीं जा सकता। आत्मा परम सूक्ष्म है अमूर्त है उसे नहीं देखा जा सकता। उसे केवल केवलज्ञान के द्वारा ही देखा जा सकता है।

सुधर्मा ने देखा कि प्रश्न लक्ष्य के अनुरूप है। जम्बूकुमार में योग्यता है और यह साक्षात्कार कर सकता है। जब क्षमता लगती है तो आचार्य वैसा मार्गदर्शन दे देते हैं।

सुधर्मा स्वामी ने जम्बूकुमार को वह पथ बता दिया–'जम्बूकुमार! तुम स्वाध्याय करो किन्तु तुम्हारे लिए कुण्ड से पानी भरना कोई जरूरी नहीं है। कुण्ड से पानी भरने वाले तो बहुत होते हैं। कुएं में स्रोत होता है पानी का। तुम उस मूल स्रोत का उद्घाटन करो, जिससे सारा श्रुत अपने आप आ जाए।'

एक है श्रुत और एक है श्रुत का उद्गम स्थल। गंगा का प्रवाह और गंगोत्री। गंगा का प्रवाह तो हर जगह चलता है, अनेक शहरों के पास से गुजरता है पर मूल स्रोत है गंगोत्री। गंगोत्री ठीक है तो गंगा का प्रवाह चलता रहेगा और गंगोत्री न हो तो कुछ भी नहीं। बहुत सारी बरसाती नदियां मेवाड़, मारवाड़ में आती हैं। एक साथ बहुत पानी आ जाता है पर थोड़े दिन बाद सूखी की सूखी रह जाती हैं क्योंकि उनका स्रोत बलवान नहीं है। गंगा यमुना का स्रोत बलवान है इसलिए बारह मास पानी निरंतर प्रवहमान रहता है।

'जम्बूकुमार! तुम उस स्रोत तक पहुंचो, स्रोत को प्रगट करो।'

'भंते! आप ठीक कह रहे हैं। मैं यही चाहता हूं। उसके लिए आप मुझे मार्गदर्शन दें कि वह स्रोत कैसे प्राप्त हो सकता है? और मैं वहां तक कैसे पहुंच सकता हूं?'



सुधर्मा स्वामी ने मार्ग सुझाते हुए निर्देश दिया–'जंबू! प्रारंभिक मार्ग है भावविसोहि–भाव की विशुद्धि। दूसरा मार्ग है–धर्मध्यान और शुक्लध्यान। शुक्लध्यान तक पहुंचे बिना कोई आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता। आत्म साक्षात्कार के लिए शुक्लध्यान में जाना ही होगा। उसके सिवाय कोई उपाय नहीं है।'

दो रास्ते बन गये–एक आत्मा के साक्षात्कार का और एक आत्मा से पराङ्मुख होने का, पदार्थ के साक्षात्कार का। एक है आर्तध्यान और रौद्रध्यान का रास्ता। दूसरा है धर्मध्यान और शुक्लध्यान का रास्ता। जो व्यक्ति आर्तध्यान में रहता है, कभी आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता। जो व्यक्ति रौद्रध्यान में रहता है, कभी आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता। इसीलिए भगवान महावीर ने कहा था–**अट्टरुद्दाणि वज्जेज्जा धम्मसुक्काणि झायए**–आर्त-रौद्र ध्यान का वर्जन करो, धर्म शुक्लध्यान का प्रयोग करो।

व्यक्ति आर्तध्यान में रहेगा तो निरन्तर प्रिय का वियोग, अप्रिय का संयोग–यह चिन्तन चलेगा। प्रिय व्यक्ति, प्रिय वस्तु का वियोग हो गया तो ध्यान उसमें लगा रहेगा, आत्मा की बात कभी सामने नहीं आयेगी।

बहुत लोगों का वस्तु पर इतना मोह होता है कि उसे छोड़ना मुश्किल हो जाता है। हिन्दुस्तान की मनोवृत्ति संग्रह की कुछ ज्यादा है। बस घर में कुछ आ गया तो कबाड़खाना भरा रहेगा, फेंकना नहीं जानते, छोड़ना नहीं जानते, त्यागना नहीं जानते। एक मोह हो जाता है। छोटी-छोटी चीज भी घर में पड़ी रहेगी,

चाहे वह जीवनभर भी काम न आए। यह जो संग्रह की मनोवृत्ति है, पदार्थ से चिपकने की जो मनोवृत्ति है, यह आर्तध्यान पैदा करती है।

रौद्रध्यान क्रूरता का ध्यान है। क्रूरता, हिंसा जैसे आतंकवाद चलता है किसी को बिना मतलब मार दिया, हत्या कर दी या किसी को लूट लिया, किसी का अपहरण कर लिया, चोरी कर ली। धन का गबन कर लिया। यह हिंसानुबन्धी, स्तेयानुबन्धी रौद्रध्यान है। जिस व्यक्ति को आत्मा का साक्षात्कार करना है उसे इन दोनों से बचना पड़ता है।

सुधर्मा स्वामी ने जंबू स्वामी को तीसरा मार्ग बताया–'अगर आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते हो तो तुम्हें भेद-विज्ञान का अभ्यास करना होगा। जब तक भेद-विज्ञान का अभ्यास नहीं होता, आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता।'

पदार्थ और चेतना, पदार्थ और आत्मा दो हैं। मैं रोटी खा रहा हूं। रोटी अलग है और रोटी खाने वाला अलग है। मैं पानी पी रहा हूं। पानी अलग है और पानी पीने वाला अलग है। इससे भी आगे जाएं–मैं श्वास ले रहा हूं। श्वास अलग है और श्वास लेने वाला अलग है। श्वास में तीन बन जाते हैं–एक श्वास, एक श्वास प्राण और एक श्वास को लेने वाला। श्वास है ऑक्सीजन वायु, जो हम बाहर से लेते हैं। श्वास को लेने वाली हमारी शक्ति है, उसका नाम है श्वास प्राण। जिनको पचीस बोल याद हैं, वे जानते हैं–दस प्राणों में एक प्राण है श्वासोच्छ्वास प्राण। श्वास अलग है, श्वासप्राण अलग है और श्वास को लेने वाला व्यक्ति अलग है। इन तीनों के भेद को समझना भेद-विज्ञान है।

दो पद्धतियां होती हैं–एक संश्लेषण की और एक विश्लेषण की। भेद-विज्ञान में विश्लेषण करना होता है–मैं श्वास नहीं हूं। मैं श्वास ले रहा हूं पर मैं श्वास नहीं हूं। जो शक्ति श्वास ले रही है, वह श्वास प्राण है। मैं श्वास प्राण भी नहीं हूं। वह भी एक मध्य का रास्ता है। मैं चेतना हूं, द्रष्टा हूं, देखने वाला हूं–श्वास आ रहा है, श्वास जा रहा है। इसका द्रष्टा, साक्षी मैं हूं पर मैं श्वास नहीं हूं, श्वास प्राण नहीं हूं। यह भेद-विज्ञान की पद्धति विश्लेषणात्मक पद्धति है।

विज्ञान की पद्धति विश्लेषणात्मक है–एक-एक चीज को अलग कर देना। एक चीज गई लेबोरेट्री में, प्रयोगशाला में। वहां उसका रासायनिक विश्लेषण होता है। इसमें क्या-क्या है–यह विश्लेषण आजकल प्रयोगशाला में होता है। प्राचीनकाल में कुछ ऐसे लोग थे जिनकी जीभ प्रयोगशाला बनी हुई थी। उस समय इंद्रियों का इतना आश्चर्यकारी विकास था कि आज भुला दिया गया। जीभ बहुत बड़ी प्रयोगशाला है। आगम के व्याख्या ग्रंथों में एक घटना का उल्लेख है।

एक राजा ने सोचा–कौशल के राजा को मुझे जीतना है। जीतने का लक्ष्य होता है तो पूरा ध्यान देना होता है, विचार करना पड़ता है। उसने पहले ध्यान दिया कि उसके पास कोई अनुभवी मंत्री है या नहीं? अगर मंत्री अनुभवी है और सेनापति शक्तिशाली है तो जीतना बड़ा मुश्किल है। राजा ने सोचा–पहले परीक्षा कर लूं। उसने दूत भेजा, दूत आया, नमस्कार किया। कौशल नरेश ने पूछा–'कहां से आए हो?'

दूत ने कहा–'महाराज ने इस संदेश के साथ भेजा है कि तुम कौशल नरेश के पास जाओ, यह सुरमा

ले जाओ। इसे राजा को भेंट करना और कह देना–इसे परीक्षा के तौर पर भेज रहा हूं। और जरूरत होगी तो विपुल मात्रा में भेज दूंगा।'

'सुरमे की विशेषता क्या है?'

'महाराज! इतना चमत्कारी सुरमा है कि जन्मांध व्यक्ति की आंख में आंजो तो वह चक्षुष्मान हो जाता है, आंखें खुल जाती हैं, ज्योति प्रगट हो जाती है।'

राजा ने देखा–डिबिया छोटी-सी है। सिर्फ दो शलाका भर सुरमा है, जिसे दो आंखों में आंजा जा सके।

राजा ने सोचा–बहुत अच्छा हुआ। मेरा प्रधानमंत्री जो इतना बुद्धिमान, इतना अनुभवी और इतना विशेषज्ञ था वह अंधा हो गया। उसको बुलाऊं, सुरमा दूं। वह चक्षुष्मान बन जाए, देखने लग जाए तो मेरे राज्य का काम बहुत अच्छा चलेगा। राजा ने तत्काल प्रधानमंत्री को, जो अंधता के कारण निवृत्त था, बुलाया, बुलाकर कहा–'प्रधानमंत्रीजी! यह एक दिव्य प्रसाद मुझे मिला है।'

'महाराज! क्या है?'

'यह सुरमा है। इसे आंजो, तुम्हारी आंख खुल जायेगी।'

मंत्री ने डिब्बी हाथ में ली। एक सलाई भरी। एक आंख में आंजा, एकदम ज्योति प्रगट हो गई।

राजा ने कहा–'सिर्फ एक आंख में आंज सके, इतना सुरमा और है।'

मंत्री ने सलाई भरी पर आंख में नहीं, जीभ पर डाली।

राजा ने कहा–'क्या कर रहे हैं? आप जीभ पर डाल रहे हैं। यह तो आंख में आंजने का है।'

'राजन्! चिंता मत करो। मैं जान-बूझकर कर रहा हूं। मैं मूर्खता नहीं कर रहा हूं।' सब आश्चर्यचकित रह गए।

मंत्री ने कहा–'महाराज! बस, दूत को विदा दें। अब सुरमा मंगाने की जरूरत नहीं है। मैंने सारा विश्लेषण कर लिया है कि इस सुरमे में क्या-क्या वस्तुएं हैं।'

बड़ी चामत्कारिक शक्ति थी यह इंद्रिय पाटव। अनेक आगम व्याख्या ग्रंथों में यह वर्णन आता है कि जीभ पर चीज रखी और उसमें जो पचास चीजें हैं, उनका विश्लेषण कर लिया, यह जान लिया कि क्या-क्या इसमें डाला हुआ है।

आज की लेबोरेट्री भी गलत विश्लेषण कर देती है। प्रयोगशाला में कई बार गलत नमूने आ जाते हैं। पर उस युग में इन्द्रिय-पाटव इतना विकसित था कि कोई भी विश्लेषण गलत नहीं होता था।

दूत वापस राजा के पास गया। राजा ने पूछा–'क्या हुआ।'

उसने कहा–'महाराज! वहां तो सुरमा तैयार हो गया।'

'अरे कैसे हुआ?'

'मंत्री ने सुरमा बना लिया, सारी चीजें बता दी।'



राजा ने कहा–'अब युद्ध की तैयारी बंद करो। जिसके पास इतना बुद्धिमान मंत्री है हम उसको कभी जीत नहीं सकते।'

प्रयोगशाला में जो होता है वह सारी शक्ति हमारे भीतर है पर वह तब विकसित होती है जब यह भेद-विज्ञान की बात आ जाए। भेद-विज्ञान करें–अलग-अलग करते चले जाएं। गेहूं को अलग और कंकड़ को अलग। चावल को अलग और कंकड़ को अलग। वैसे ही पदार्थ को अलग और आत्मा को अलग। अलग करते चले जाओ, इसका नाम है भेद-विज्ञान।

जंबू स्वामी को सुधर्मा स्वामी ने भेद-विज्ञान के अभ्यास का पहला पाठ दिया–'जंबू! तुम आत्मा को देखना चाहते हो, आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते हो तो यह अभ्यास पुष्ट करो–

मैं शरीर नहीं हूं। शरीर अलग है और मैं अलग हूं।

मैं श्वास नहीं हूं। श्वास अलग है और मैं अलग हूं।

भूख लग रही है। तुम सोचो–मैं भूख नहीं हूं। भूख अलग है और मैं अलग हूं।

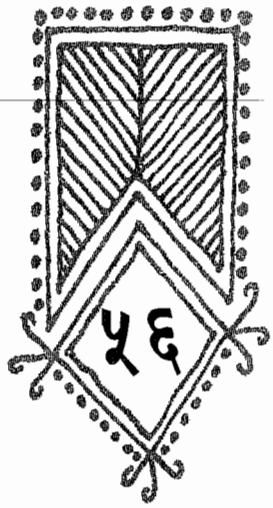
शरीर में कोई पीड़ा आये, व्याधि आये तो अनुभव करो कि मैं रोग नहीं हूं। रोग अलग है और मैं अलग हूं।'

आचार्य विनोबाभावे ने एक अनुभव की बात लिखी, उन्होंने लिखा–मैं जब छोटा बच्चा था, सिरदर्द बहुत होता था। सिरदर्द की सब दवाइयां ली पर कोई दवाई लगी नहीं। तब मैंने एक प्रयोग शुरू कर दिया। मैं एकान्त में जाकर बैठ जाता, सिर को पकड़ लेता, उसे हिलाता रहता और बोलना शुरू कर देता–'मैं सिर नहीं हूं ....मैं सिर नहीं हूं।' विनोबा ने लिखा–इस प्रयोग का बड़ा आश्चर्यकारी परिणाम आया। दस मिनट में ही सिरदर्द समाप्त हो गया।

जिस व्यक्ति ने भेद-विज्ञान की विद्या सीख ली, अपने आपको शरीर से अलग करना सीख लिया, उसके एक चामत्कारिक स्थिति का निर्माण होता है। जब-जब व्यक्ति आत्मा में जाता है, शरीर से अलग होता है तब-तब बीमारियां, दुविधाएं, चिन्ताएं, कुण्ठाएं, तनाव–सब नीचे रह जाते हैं और व्यक्ति स्वयं ऊपर आ जाता है।

यह भेद-विज्ञान अध्यात्म का पहला पाठ है। यह पहला पाठ जंबू स्वामी को सुधर्मा ने दे दिया।

जंबू स्वामी जैसे योग्य व्यक्ति और योग्य मुनि, जिनके मन में केवल एक ही लालसा है–आत्मा का साक्षात्कार। वे उस धुन में लग गये। लक्ष्य स्पष्ट हो गया। साधन मिल गया और प्रयत्न चालू हो गया।



'जा जा हविज्ज जयणा'–जितनी-जितनी यतना उतनी-उतनी सफलता, जितना-जितना प्रयत्न उतनी उतनी सफलता। कोई भी बड़ा लक्ष्य शिथिल प्रयत्न से प्राप्त नहीं होता। प्रयत्न कम है, मन भी कमजोर है ढीला-ढाला है और बड़ा लक्ष्य पाना चाहें तो यह कभी संभव नहीं होता। बहुत तीव्र और गहन प्रयत्न होता है तब लक्ष्य की सिद्धि मिलती है। जब तक संकल्प मजबूत नहीं होता, मनोबल दृढ़ नहीं होता और उसके अनुरूप प्रयत्न भी तीव्रतम नहीं होता, कार्य की सिद्धि नहीं होती।

गाथा
परम विजय की

जम्बूकुमार के सामने लक्ष्य था परम विजय का। उनकी यह स्पष्ट अवधारणा थी–आत्म विजय ही परम विजय है। उनका संकल्प था–मुझे आत्मा का साक्षात्कार करना है, कैवल्य को प्राप्त करना है।

मुनि बनने के बाद उन्होंने आचार्य सुधर्मा से लक्ष्य की पूर्ति का साधन जान लिया। वे उसमें लग गये।



एक साधना होती है कालबद्ध और एक साधना होती है कालातीत। कालबद्ध साधना है–साधक एक घंटा बैठा, ध्यान कर लिया। कोई दो घंटा, तीन घंटा बैठ गया। आखिर सीमा है। एक सीमा के बाद उठता है, ध्यान को सम्पन्न कर देता है। एक घंटा स्वाध्याय किया और स्वाध्याय को सम्पन्न कर दिया। ये सब कालबद्ध, समयबद्ध साधनाएं हैं। निश्चित समय कर दिया–इतने समय तक मैं अमुक साधना का प्रयोग करूंगा। समय पूरा हुआ, साधना पूरी हो गई।

एक साधना होती है कालातीत। समय का कोई प्रतिबंध नहीं होता। चौबीस घंटा निरन्तर प्रतिपल ध्यान चलता है, उसका नाम है भाव क्रिया। भाव क्रिया हमारी निरंतर होने वाली साधना है। भाव क्रिया यानी जो भी काम करें, जागरूकता से करें, जानते हुए करें और वर्तमान में जीने का अभ्यास करें। यह साधना चौबीस घंटा हो सकती है। साधक नींद लेता हुआ भी जाग सकता है।

आचारांग सूत्र का एक बहुत सुन्दर वचन है–**सुत्ता अमुणिणो सया**–अज्ञानी सदा सोया रहता है। चाहे दिन है, दोपहरी है, आंख खुली है फिर भी वह सोया हुआ है। **मुणिणो सया जागरंति**–मुनि सदा जागता है। रात को वह नींद ले रहा है तो भी जागता है। दिन में जागते हुए सोना और रात में नींद लेते हुए जागना–यह बहुत मर्म का सूत्र है।

नींद में हमारी चेतना वश में नहीं रहती। नींद में जब होते हैं तब यह चेतन मन निष्क्रिय बन जाता है, अवचेतन मन काम करने लग जाता है। अवचेतन मन पर नियंत्रण करना बहुत कठिन है किन्तु जो जागरूक साधक होता है वह उस पर भी नियंत्रण कर लेता है।

रामायण का प्रसंग है। महासती सीता को धीज कराने के लिए ले जाया गया। अग्निकुण्ड सामने है। उस अग्निकुण्ड पर खड़ी होकर महासती सीता कह रही है–'अग्नि! तुम मेरे विकृत और सकृत–दोनों की साक्षी हो। मैं तुमसे कहना चाहती हूं कि रघुपति रामचन्द्र के सिवाय मेरा मन किसी दूसरे के प्रति गया हो। मन में, वचन में, काया में, जागृत अवस्था में और स्वप्न में किसी दूसरे के प्रति पति का भाव आया हो तो तुम मुझे जला देना।'

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे, यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि।
तदिह दह शरीरं पावकं मामकेदं, विकृतसुकृतभाजां येन साक्षी त्वमेव।।

सबसे जटिल बात कह दी–जागृत अवस्था में और नींद में भी, सपने में भी अगर मेरा मन कहीं गया हो तो **तदिह दह शरीरं**–इस शरीर को तुम जला डालना। यह कितनी मार्मिक बात है। आदमी यह तो कह सकता है कि जागते हुए मैंने कुछ नहीं किया और नींद मेरे वश की बात नहीं है पर जो चौबीस घंटा जागरूक रहता है वह नींद में भी अकरणीय कार्य नहीं करता। उसकी चेतना बराबर जागृत बनी रहती है।

बहुत अच्छी बात कही गई–अमुनि, अज्ञानी सदा सोता है और ज्ञानी आदमी सदा जागता है। सदा जागने का अभ्यास है भावक्रिया। हम जो भी काम करें, जानते हुए करें। व्याख्यान सुनें तो मैं सुन रहा हूं–यह जागरूकता रहे। रोटी खायें तो यह ज्ञान रहे कि मैं रोटी खा रहा हूं, कोर तोड़ा है, हाथ ऊपर जा रहा है, मुंह में डाल रहा हूं, जीभ पर चला गया है, अब दांत अपना काम कर रहे हैं, चबा रहे हैं और चबाने के बाद मैं निगल रहा हूं, उदर में भी चला गया है। हर क्रिया के साथ चेतना जुड़ी रहे तो जागरूकता बढ़ जाती है। प्रत्येक क्रिया जानते हुए करना–यह बहुत बड़ा अभ्यास है। हम कोई भी धर्म की क्रिया करें तो जानते हुए करें। माला गिनें तो जानते हुए गिनें कि माला गिन रहा हूं, ध्यान माला में रहे। सामायिक करें तो हमारी जागरूकता रहे कि मैं सामायिक कर रहा हूं। शून्यता न आए।

जैन ध्यान पद्धति में सबसे ज्यादा बल इस बात पर दिया कि शून्यता में मत जाओ। शून्यता द्रव्य क्रिया है। शून्य होना कोई ध्यान नहीं है। चेतना का उपयोग बराबर रहना चाहिए। मैं क्या कर रहा हूं? क्या सोच रहा हूं? बराबर इसका खयाल हमें रहना चाहिए। चलें तो यह ध्यान रहे कि मैं चल रहा हूं। हर क्रिया में चेतना साथ रहती है तो जागरूकता बढ़ जाती है। भाव क्रिया का अभ्यास करने वाला व्यक्ति चौबीस घंटा ध्यान की स्थिति में रह सकता है। यह कालबद्ध नहीं होता, यह काल की सीमा से परे है। निरंतर ध्यान की अवस्था–सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते। जागरूकता की यह स्थिति बनती है तो लक्ष्य की ओर हमारी गति तेज हो जाती है।

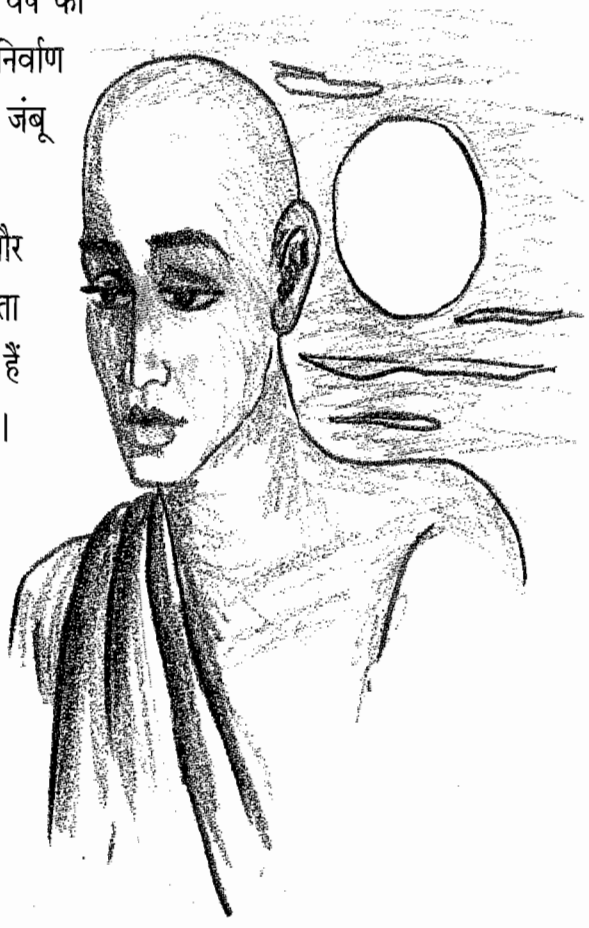
मुनि जम्बूकुमार ने इतनी जागरूकता विकसित कर ली। भेद-विज्ञान की साधना और निरन्तर जागरूकता। एक ही आत्मा का ध्यान, उस ध्यान में चलते गये, चलते गये। साधना करते-करते बीस वर्ष पूरे हो रहे हैं। पढ़ाई तो बारह वर्ष की होती है। आजकल थोड़ी ज्यादा होती है। व्यक्ति बी. ए. करता है,

एम. ए. करता है फिर पीएच.डी. करता है तो थोड़ा समय लंबा लग जाता है। सोलह वर्ष तो ऐसे ही लग जाते होंगे फिर हायर एजूकेशन, उच्च शिक्षा में जाए तो कुछ विशेष समय लग सकता है। किन्तु साधना का क्रम तो ऐसा है कि उसमें सोलह, बीस अथवा तीस वर्ष का कोई लेखा नहीं होता। जिसकी जितनी संचित कर्म राशि है, उसको पूरा क्षीण करना होता है। जो पहले से संचित किया है, अर्जित किया है जब तक उसका शोधन नहीं होता तब तक भीतर का ज्ञान प्रगट नहीं होता। जम्बूकुमार बीस वर्ष तक इस साधना में लगे रहे। बीस वर्ष बाद साधना का काल पकने को आया तो ऐसा लगा कि प्रकाश प्रगट हो रहा है। साधना पकते-पकते, भेदज्ञान का परिपाक होते-होते ऐसा परिपाक हुआ, एक क्षण आया–'**कसिणे पडिपुन्ने निरावरणे विसुद्धे केवलवरणाणदंसणे समुप्पन्ने**'–कृत्स्न, प्रतिपूर्ण, निरावरण, विशुद्ध प्रवर केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया।

एक ज्ञान होता है गृहीत और एक ज्ञान होता है उत्पन्न। एक वह ज्ञान, जो बाहर से पढ़ा जाता है, पुस्तकों से पढ़ा जाता है। वह गृहीत ज्ञान है, ग्रहण किया हुआ ज्ञान है, लिया हुआ ज्ञान है। एक ज्ञान होता है समुत्पन्न, जो भीतर से उपजता है, पैदा होता है। केवलज्ञान पढ़ाया नहीं जाता, उसकी कहीं पढ़ाई नहीं होती। हर विद्या शाखा की पढ़ाई होती है पर केवलज्ञान की कहीं कोई पढ़ाई नहीं होती। वह तो शोधन होते-होते भीतर से प्रगट होता है। एकदम ऐसा लगता है कि बादलों के भीतर सूरज छिपा हुआ था और सूर्य एकदम प्रगट हो गया, केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

जंबू केवली बन गये और साथ-साथ आचार्य भी बन गये। सोलह वर्ष तक गृहवास में रहे और बीस वर्ष तक मुनि अवस्था में छद्मस्थ रहे। छत्तीस वर्ष की अवस्था में जंबू केवली बने। सुधर्मा स्वामी का निर्वाण हुआ और जंबू स्वामी उनके उत्तराधिकारी बने। जंबू का शासन शुरू हो गया।





सुधर्मा और जंबू का संबंध इतना सघन और विशिष्ट रहा। आज कोई आगम साहित्य पढ़ता है, वह जानता है कि वहां जंबू स्वामी पूछ रहे हैं और सुधर्मा उत्तर दे रहे है–**एवं खलु जंबू**....। मुनि जम्बूकुमार ने बहुत जिज्ञासाएं की हैं। गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से बहुत प्रश्न पूछे हैं किन्तु महावीर के विषय में बहुत जानकारी जम्बूस्वामी ने करवाई है। जंबू की जिज्ञासा होती–भगवान महावीर ने इस विषय में क्या कहा है? सूत्रकृतांग में भगवान महावीर ने क्या कहा? तब सुधर्मा का उत्तर होता–**एवं खलु जंबू**–जंबू! महावीर ने इस प्रकार कहा।

जंबू का सुधर्मा स्वामी के साथ बहुत घनिष्ठ संबंध रहा। अब जंबू आचार्य बन गये, केवली बन गये। जम्बूकुमार की गृहवास से जो चिरकालीन लालसा थी–मैं केवली बनूं और आत्मा का साक्षात्कार करूं, वह आकांक्षा कृतार्थ हो गई। लक्ष्य पूरा हो गया तो सब कुछ मिल गया। जम्बूकुमार जिस लक्ष्य को लेकर चले थे, उनके सामने जो साध्य था, वह सिद्ध हो गया। **साध्ये सिद्धे सिद्धमेवास्ति सर्वं**–जब साध्य सिद्ध होता है तो सब कुछ सिद्ध हो जाता है। लक्ष्य पूरा हुआ और सब काम हो गया।

जम्बूकुमार का गृहवास का जीवन छोटा था किन्तु वह घटना बहुल रहा। फिर बीस वर्ष का मुनि जीवन साधना का जीवन रहा। वे चवालीस वर्ष तक केवली रहे। केवली होने के बाद जंबू स्वामी ने क्या-क्या किया? इसका ज्यादा वर्णन सूत्र में ग्रंथकारों ने नहीं लिखा। शायद परम्परा भी नहीं थी। अगर लिखते तो जंबू स्वामी का जीवन बहुत महत्त्वपूर्ण बनता। उस समय बहुत सारी घटनाएं घटित हुईं। सम्राट श्रेणिक का देहावसान हो गया था। कुणिक राज कर रहा था। उदायी का भी राज्य आ गया था। चण्डप्रद्योत भी नहीं रहा। सारी राज्य सत्ताएं बदल गईं। जंबू स्वामी के साथ किन-किन राजाओं का संबंध रहा, किन-किन श्रावकों का संबंध रहा, कौन-कौन प्रमुख श्राविकाएं हुईं? कौन प्रमुख साधु और साध्वियां हुईं–इनका इतिहास प्राप्त नहीं है। लिखा ही नहीं गया। शायद लिखने की बात ही नहीं रही। जब ज्ञान अतीन्द्रिय होता है, उस समय लोग उसमें डूबे रहते हैं। वे समझते हैं–अभी कोई जरूरत नहीं है। यदि वे भविष्य के लिए सोचते तो भावी पीढ़ी के लिए जरूर कुछ न कुछ लिखते पर लिखना शायद आवश्यक ही नहीं समझा।



हम यह मान लें कि केवली होने के बाद जंबू स्वामी का जो ४४ वर्ष का जीवन काल रहा, वह बिल्कुल अज्ञात जैसा रहा। साधना काल भी पूरा ज्ञात नहीं है। बीस वर्ष के साधनाकाल में क्या-क्या साधनाएं कीं। हम अनुमान से उसका आकलन कर सकते हैं पर लिखा हुआ नहीं मिलता।

एक होता है केवली और एक होता है श्रुतकेवली। जब केवलज्ञानी नहीं रहता तब श्रुतकेवली ही सबसे बड़ा ज्ञानी होता है। चौदह पूर्वों का ज्ञाता श्रुतकेवली कहलाता है।

दो परम्पराएं रहीं–महावीर केवली, सुधर्मा केवली और जंबू केवली। जंबू के बाद फिर श्रुतकेवली की परम्परा शुरू होती है। यह माना जाता है–जंबू स्वामी का निर्वाण हुआ और उनके साथ कुछ चीजें विच्छिन्न हो गईं। सामान्य बोलचाल की भाषा में कहते हैं–जंबू स्वामी मोक्ष का दरवाजा बंद कर गए। उनके साथ दस विशेष बातें, जो जैन परम्परा में चालू थीं, विच्छिन्न हो गईं–

१. **मणपज्जव णाणे**–जंबू स्वामी के निर्वाण के बाद मनःपर्यवज्ञान सम्पन्न हो गया। किसी को मनःपर्यवज्ञान नहीं हुआ। दूसरे के मन की बात को जानने का ज्ञान बहुत निर्मल होता है। जिससे किसी संज्ञी मनुष्य, प्राणी के मन के भावों को जान लिया जाता है, चाहे वह कहीं भी बैठा है, वह मनःपर्यवज्ञान विच्छिन्न हो गया।

२. **परमोहि णाणे**–परम अवधिज्ञान विच्छिन्न हो गया। अवधिज्ञान सामान्य भी होता है, अंगुल के असंख्यातवें भाग जितना भी होता है। पूरे लोक में रूपी द्रव्यों को जानने की क्षमता वाला ज्ञान भी होता है, वह परमावधि ज्ञान भी विच्छिन्न हो गया।

३. पुलाय लब्धि–पुलाक लब्धि भी नष्ट हो गई। पुलाक लब्धि बड़ी शक्ति होती है। आज सुनें तो आप आश्चर्य करेंगे। अणुबम आदि सब फीके पड़ जाते हैं। पुलाक लब्धि संपन्न मुनि का सामर्थ्य कितना है! कोई छेड़-छाड़ करता है या कोई अनिष्ट करता है और वह आवेश में आ जाता है, पुलाक लब्धि का प्रयोग करता है तो कितना अनर्थ होता है! चक्रवर्ती की विशाल सेना जो बारह योजन (४८ कोस और ९६ माइल) इतने विशाल क्षेत्र में पड़ी हुई है वह मुनि पुलाक लब्धि का प्रयोग करता है तो ऐसे दण्ड निकलते हैं कि सारी सेना को जैसे पील देता है, हत-प्रहत कर देता है, सब घबरा जाते हैं। इतनी भयंकर लब्धि है पुलाक लब्धि। पुलाक लब्धि भी विच्छिन्न हो गई। कुछ तो अच्छा ही हुआ। अगर बच जाती तो कोई न कोई दुरुपयोग कर भी लेता।

४. आहारक लब्धि–आहारक शरीर कितना शक्तिशाली होता है। जैसे चतुर्दशपूर्वी मुनि बैठा है। कोई आया प्रश्न पूछने और बहुत सूक्ष्म प्रश्न पूछा अथवा चतुर्दशपूर्वी भी कोई आ गया, कोई विशिष्टज्ञानी आ गया और प्रश्न पूछा–गणित का सूक्ष्म प्रश्न। उत्तर नहीं आ रहा है। तत्काल आहारक लब्धि का प्रयोग किया, शरीर से एक पुतला निकला और वह पुतला जहां सर्वज्ञ होते हैं विदेह क्षेत्र में, वहां जाता है। केवली भगवान से वह प्रश्न पूछता है, प्रश्न पूछकर वापस आकर उत्तर बता देता है और पुनः शरीरस्थ हो जाता है। यह सारी क्रिया होती है पर पूछने वाले को यह पता नहीं चलता कि मुझे उत्तर देने में विलम्ब किया। इतनी जल्दी सारा काम होता है। आजकल जैसे सुपर कम्प्यूटर की बात कुछ आती है। इतना द्रुतगामी काम होता है। एक पानी की बूंद गिर रही है और उसके फोटो लिए। कितने फोटो! कई करोड़ फोटो ले लिए। कोई सामान्य आदमी सोच नहीं सकता पर यह सूक्ष्म जगत् का ज्ञान इतना विचित्र है कि जो जानता है वही जानता है। इतने अल्प समय में सारी क्रिया हो जाती है। सामने वाले को विलम्ब का पता नहीं चलता। वह शक्ति है 'आहारक लब्धि'। वह भी विच्छिन्न हो गई।



५. क्षपक श्रेणी–जो केवली होता है, वह क्षपक श्रेणी के आरोहण से होता है। वह क्षपक श्रेणी विच्छिन्न हो गई।

६. उपशम श्रेणी भी विच्छिन्न हो गई। उपशम और क्षपक आरोहण की श्रेणियां हैं।

७. जिनकल्प की साधना–मुनि अकेला रहकर जिनकल्प की साधना करता। वह विशिष्ट साधना का प्रयोग था। वह साधना भी विच्छिन्न हो गई।

८. संयम त्रिक्–परिहार विशुद्धि चारित्र, सूक्ष्म संपराय चारित्र और यथाख्यात चारित्र–ये भी साधना के बड़े प्रयोग थे। ये चारित्र भी विच्छिन्न हो गए।

९. केवलज्ञान विच्छिन्न।

१०. मोक्ष की प्राप्ति विच्छिन्न।

जम्बूकुमार के निर्वाण काल के साथ ये दस बातें विच्छिन्न हो गईं। जिनभद्रगणि ने बहुत सुन्दर लिखा है– मनःपर्यवज्ञान, परम अवधिज्ञान, पुलाक लब्धि, आहारक शरीर, उपशम श्रेणी, क्षपक श्रेणी, जिनकल्प, संयम-त्रिक, केवली, सिद्ध–ये दस चीजें विच्छिन्न हो गईं।



मणपरमोहिपुलाएआहारगखवगउवसमे कप्पे।
संजमतिय केवली सिज्झणाए जम्बूम्मि वुच्छिन्ना।।

किसी का थोड़ा सा धन चला जाए तो व्यक्ति कहता है कि मेरा इतना चला गया। जैन शासन की कितनी सिद्धियां विच्छिन्न हो गईं। महाभारत का युद्ध हुआ। महाभारत काल में बड़े-बड़े विद्या के जानकार मर गये। कहा जाता है कि महाभारत युद्ध काल में भारत विद्या और विकास की दृष्टि से दरिद्र बन गया। ऐसा लगता है–जम्बू स्वामी के निर्वाण के बाद भी कुछ ऐसी स्थिति बनी कि काफी सिद्धियां, शक्तियां विलुप्त हो गईं।

हम जंबू स्वामी के निर्वाण को क्या मानें? ऐसे तो निर्वाण होना हर्ष का विषय है। मोक्ष में चले गये, मोक्ष हो गया पर पीछे क्या कर दिया? जंबू स्वामी स्वयं समझे, आठ नवपरिणीता बहुओं को समझाया, पांच सौ चोरों को समझाया, माता-पिता को समझाया और बड़ी सेना बनाकर दीक्षित हुए, साधना की, केवलज्ञान पाया। प्रभव को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। पूर्वज्ञान की जो परम्परा भगवान पार्श्वनाथ के शासन काल से चली आ रही थी, उस चौदह पूर्व की परम्परा को चालू कर दिया। अपने उत्तराधिकारी प्रभव स्वामी को पहला श्रुतकेवली बना दिया। इतने अच्छे काम किये पर यह क्या किया? इतनी शक्तियां थीं, इतनी जो विशेष लब्धियां थीं, सिद्धियां थीं, सबके दरवाजे एक साथ बंद कर दिए।

लोग कहते हैं–मोक्ष का दरवाजा बंद कर दिया। अरे! मोक्ष की बात जाने दो। कोई अभी न जाये, आगे तो जायेगा। जो एक बार सम्यक्दृष्टि बन गया, उसे कभी न कभी तो जाना है। पर जो बातें आज काम की थीं, उन सबके दरवाजे बंद कर दिये। हम किसको कहें? वे तो उत्तर देंगे नहीं। सुनेंगे भी नहीं। जानते तो हैं कि क्या कह रहे हैं पर सुनेंगे नहीं, क्योंकि सुनना कान का काम है। कान उनके हैं नहीं। उत्तर देना जीभ का काम है। जीभ उनके पास है नहीं। न तो सुनेंगे, न उत्तर देंगे किन्तु जानेंगे जरूर।

हमें ही जानना है कि ऐसा क्यों होता है? यहां काल लब्धि को सामने रखना होगा। काल भी एक बड़ा तत्त्व है। कोई भी कार्य होता है उसके साथ पांच बातें अनिवार्य होती हैं–काल, स्वभाव, नियति, पुरुषार्थ और कर्म। इन पांचों पर विचार करना जरूरी है। इनमें काल और क्षेत्र का बड़ा महत्त्व है।

'खेत्तं पप्प कालं पप्प'–क्षेत्र और काल को छोड़कर घटना की व्याख्या नहीं हो सकती। क्षेत्र का बड़ा प्रभाव होता है। एक क्षेत्र पर कोई आदमी गया, जाते ही मन प्रसन्न हो जाता है। एक ऐसे स्थान पर चला गया, वहां सोओ तो नींद नहीं आती, बैठो तो मन में उदासी बेचैनी, किसी काम में मन नहीं लगता। यह है क्षेत्र का प्रभाव।

ऐसे ही काल का भी प्रभाव होता है। एक क्षण ऐसा होता है कि आदमी की शक्तियां जाग जाती हैं और एक समय ऐसा आता है कि आदमी की शक्तियां सो जाती हैं, कोई काम नहीं होता। क्षेत्र और काल बहुत प्रभावित करते हैं। आइन्स्टीन ने सापेक्षवाद में इन दो तत्त्वों का बड़ा प्रयोग किया था। स्पेस और टाइम–इनके बिना किसी चीज की व्याख्या नहीं की जा सकती। जैन दर्शन में हजारों वर्ष पहले द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव–ये चार दृष्टियां भगवान महावीर ने बतलाईं। इन चारों को समझे बिना किसी घटना की ठीक व्याख्या नहीं की जा सकती। किसी घटना के मर्म को समझना है तो इन चारों को समझना पड़ेगा। जैन आचार्यों ने इन पर बहुत सूक्ष्म विचार किया।

सामान्य प्रश्न था–स्वाध्याय कहां करें, ध्यान कहां करें? इसका इतना विशद ज्ञान दिया है कि अपवित्र स्थान के पास बैठकर ध्यान करना अच्छा नहीं है, बाधा आयेगी। अमुक स्थान पर बैठकर ध्यान करना अच्छा नहीं है। पचासों ऐसे स्थान गिनाये हैं, जहां ध्यान नहीं करना चाहिए, स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। ऐसे स्थान भी गिनाये हैं कि जहां बैठकर यह काम करना चाहिए। यह क्षेत्र का प्रभाव, द्रव्य का प्रभाव है।

काल का प्रभाव होता है। किस काल में करना चाहिए, किस काल में नहीं करना चाहिए। मुनि कालिक सूत्रों की स्वाध्याय करता है। ठीक बारह बजे का समय या संध्याकाल का समय आए तो स्वाध्याय का क्रम बदल जायेगा। काल का भी एक नियम है, क्षेत्र का भी एक नियम है। ये सारी लब्धियां/शक्तियां विच्छिन्न हुईं, इसमें जंबू स्वामी तो निमित्त बने हैं किन्तु काल का परिवर्तन कारक तत्त्व बना है। काल का परिवर्तन होता है। एक काल ऐसा होता है कि आंतरिक विकास में सहायक बनता है और एक काल ऐसा आता है जो आंतरिक विकास में बाधक बन जाता है।

भगवान ऋषभ के समय का एक वर्णन आता है। अग्नि पहले पैदा नहीं हुई। पृथ्वी, पानी, वनस्पति और वायु–ये तो थे पर अग्नि पैदा नहीं हुई थी। एक दिन अकस्मात् अग्नि पैदा हो गई। युगलों ने देखा कि यह क्या है। आग को देखते ही लोग भयाक्रांत हो गए। दौड़े-दौड़े भगवान ऋषभ के पास गये, बोले–भगवन्! कोई नई चीज ऐसी आ रही है, जो जंगलों को जला रही है, आगे बढ़ रही है। भगवान ने अवधिज्ञान का प्रयोग किया, देखा और समझ गए–अब अग्नि पैदा हो गई है।



अग्नि अकस्मात् कैसे पैदा हुई? आचार्य बताते हैं–एकान्त स्निग्ध और एकान्त रूक्ष काल में अग्नि पैदा नहीं होती। पुरानी भाषा है स्निग्ध और रूक्ष। आज की भाषा में कहें तो पॉजीटिव और नेगेटिव, धन और ऋण। ये अलग होते हैं तो अग्नि पैदा नहीं होती। जब दोनों मिलते हैं, पॉजीटिव और नेगेटिव, धन और ऋण–दोनों का योग होता है तब अग्नि पैदा होती है। वह काल एकान्त स्निग्धता का काल था, इसलिए अग्नि पैदा नहीं हुई। जब रूक्ष साथ में जुड़ा, स्निग्ध और रूक्ष का योग मिला, अग्नि पैदा हो गई।

काल का बड़ा प्रभाव होता है। जंबू स्वामी जिस काल में थे, वह चौथा अर था और उसका बीतता हुआ समय था, अंतिम समय था। पांचवें अर का प्रारंभ होने वाला था। पांचवें अर का प्रभाव आया तो केवलज्ञान विच्छिन्न हो गया। अनेक लब्धियां विच्छिन्न हो गईं। शरीर की क्षमता नहीं रही कि जिनकल्प को स्वीकार कर सकें। अंतर्भावों की भी वह क्षमता नहीं रही कि केवलज्ञान को पा सकें या परमावधि और मनःपर्यवज्ञान को पा सकें। **अहो कालस्य माहात्म्यम्**–काल का प्रभाव बड़ा विचित्र होता है।

जंबू स्वामी का निर्वाण, दस चीजों की विच्छित्ति और प्रभव के शासनकाल का प्रारंभ, श्रुतकेवली की परम्परा का सूत्रपात।

जंबू के निर्वाण के साथ एक युग सम्पन्न। प्रभव स्वामी से नये युग का प्रारंभ, श्रुतकेवली के युग का प्रारंभ। यह एक आश्चर्यकारी घटना है–जो एक दिन चोरों का सरदार था, वह आज पूरी जैन परम्परा का एक मात्र आचार्य है। श्रुतकेवली–ज्ञान की विशाल राशि का संवाहक। कितनी विशाल ज्ञानराशि। कितना बड़ा है पूर्वों का ज्ञान। पहले पूर्व से चले। उपमा दी गई। अंबाबाड़ी सहित हाथी, इतनी स्याही। इतनी स्याही

से लिखे तो भी एक पूर्व लिखा नहीं जा सकता। इतनी बड़ी विशाल ज्ञानराशि, उसका एक मात्र प्रतिनिधित्व कर रहे हैं आचार्य प्रभव। उनका लक्ष्य भी वही है, जो केवली जंबू का था।

केवल जंबू और प्रभव का नहीं, प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य भी यही होता है। हर व्यक्ति विजयश्री का वरण करना चाहता है, किन्तु वे व्यक्ति विरल होते हैं, जो परम विजेता बन एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

केवली जंबू ने किशोर अवस्था में विजय का अभियान शुरू किया, मुनि बनकर परम विजय की साधना की। परम विजेता बन निर्वाण को प्राप्त किया।

परम विजय के ज्योति-कण आज भी प्रकाश-रश्मियों का विकिरण कर रहे हैं।

क्या हम उन आलोक रश्मियों को देख पा रहे हैं?

क्या हम विजय के पथ को पकड़ पा रहे हैं?

क्या हम विजय की गाथा को रचने का संकल्प संजो रहे हैं?

क्या हम परम विजय के मंत्र की साधना और आराधना के लिए प्रस्तुत हैं?

ये प्रश्न हमारे अंतःकरण को उद्वेलित और आंदोलित करें, हमारा जीवन इन प्रश्नों के समाधान की प्रयोगशाला बने....विजय-यात्रा के इस संदेश को हम पढ़ सकें, पकड़ सकें, जी सकें तो हम भी परम धन्यता और कृतार्थता के साथ गुनगुनाएंगे–परम विजय केवल सपना नहीं है, जीवन का अनुभूत सच है।

